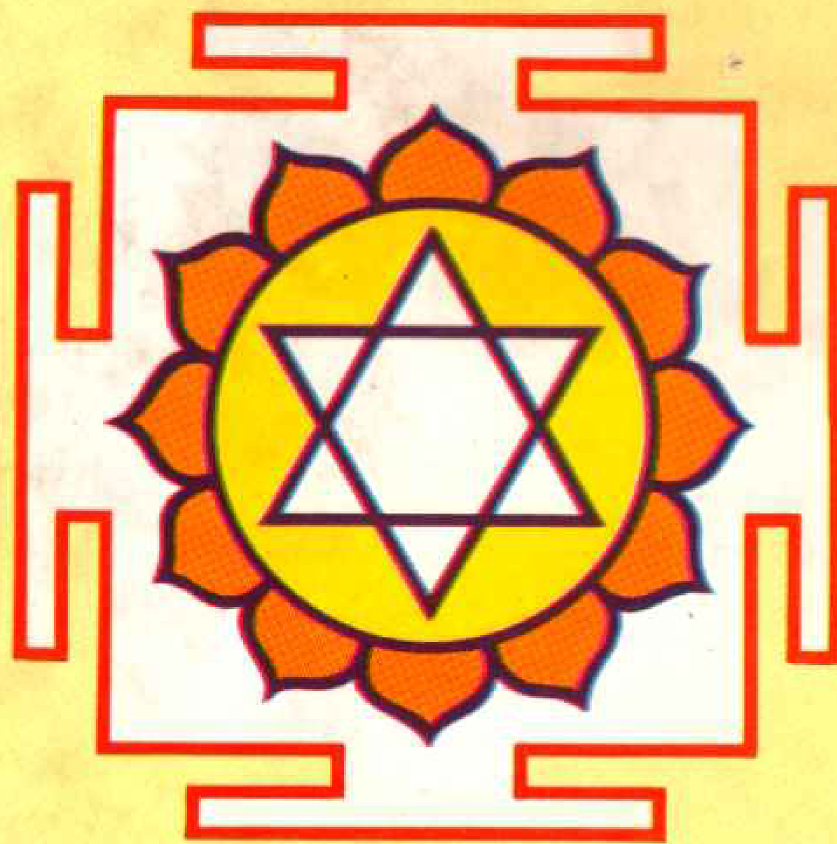
श्रीमन्महीधरविरचितः

मन्त्रमहोदधिः



डॉ० सुधाकर मालवीय

महीधर द्वारा रचित मन्त्रमहोदधि नाना ग्रन्थों में विकीर्ण देवमन्त्रों का विधिपूर्वक स्वरूप, अनुष्ठान-विधि आदि आवश्यक तान्त्रिक विषयों का विवरण प्रस्तुत करता है। यह निःसन्देह तन्त्रशास्त्र का एक श्लाघनीय विश्वकोश है।

महीधर वत्सगोत्रीय अहिच्छत्रीय ब्राह्मण थे। ये मूलतः अहिच्छत्र (उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद मण्डल का रामनगर) के निवासी थे। संसार की असारता से प्रेरित होकर ये काशी चले आए और अपने 'कल्याण' नामधारी पुत्र के कहने से कालीभैरव के समीपस्थ रहकर इन्होंने १६४५ विक्रमी संवत् में इस ग्रन्थ की रचना की।

मन्त्रमहादधि २५ तरङ्गों में विभक्त है। ग्रन्थकार की 'नौका' नामक स्वोपज्ञ टीका भी है जो टिप्पणीमात्र है। कठिन स्थलों का ही इसमें विवेचन है। मन्त्रमहोदधि के प्रथम तरङ्ग में पूजाविषयक सामान्य तथ्यों का निर्देश है। तदनन्तर एक देवता के विषय में सम्पूर्ण एक तरङ्ग विहित है यथा गणेश (२ तरङ्ग), दक्षिण काली (३ तरङ्ग), तारा (४ और ५ तरङ्ग), छिन्नमस्ता (६ त०), नाना यक्षिणी प्रयोग (७ त०), बाला (८ त०) अन्नपूर्णा, गंगा (९ त०), बगलामुखी (१० त०), श्रीविद्या (११ एवं १२ त०), हनुमान् (१३ त०), विष्णु (१४ त०), सूर्य (१५ त०), महामृत्युञ्जय (१६ त०), कार्तवीर्यार्जुन (१७ त०), कालरात्रि (१८ त०), चरणायुधा एवं शास्ता आदि (१९ त०)। बीसवाँ तरङ्ग विशेष रूप से यन्त्र साधन का है। इक्कीसवाँ तरङ्ग पूजातरङ्ग है। इस प्रकार २१ से लेकर २५ तरंग तक नित्य पूजा, विशेष अर्घ्य, मन्त्रशोधन एवं षटकर्म का विस्तृत विवेचन है।

महीधर लक्ष्मीनृसिंह के उपासक थे। उनकी निम्न नृसिंह वन्दना सप्तविभक्ति से समन्वित होने से नितान्त मनमोहक है-

राजा लक्ष्मीनृसिंहो जयति, सुखकरं श्रीनृसिंहं भजेयं
दैत्याधीशा महान्तोऽहसत नृहरिणा श्रीनृसिंहाय नौमि।
सेव्यो लक्ष्मीनृसिंहादपर इह नहि श्रीनृसिंहस्य पादौ।
सेवे लक्ष्मीनृसिंहे वसतु मम मनः श्रीनृसिंहाव भक्तम्।।

- मन्त्रमहोदधा २५. १३०, पृ० ७९७

॥ श्रीः ॥

व्रजजीवन प्राच्यभारती ग्रन्थमाला
८३

श्रीमन्महीधरविरचितः

मन्त्रमहोदधिः

स्वोपज्ञ-'नौका' टीकोपेतः 'अरित्र' हिन्दीव्याख्यासहितः

सम्पादक एवं व्याख्याकार

डॉ० सुधाकर मालवीय

एम० ए०, पीएच.डी., साहित्याचार्य,
संस्कृत-विभाग : कला-संकाय,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी



चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
दिल्ली

प्रकाशक
चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
38 यू. ए. जवाहरनगर, बंगलो रोड
पो. बा. नं. 2113
दिल्ली-110007
दूरभाष : 23856391; 41530902

पुनर्मुद्रित संस्करण 2009
मूल्य : 500-00

अन्य प्राप्तिस्थान
चौखम्बा विद्याभवन
चौक (बैंक ऑफ बडौदा भवन के पीछे)
पो. बा. नं. 1069
वाराणसी-221001

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन
पो. बा. नं. 1129
वाराणसी-221001

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस
4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)
गली नं. 21-ए, अंसारी रोड
दरियागंज, नई दिल्ली 110002

मुद्रक
ए. के. लिथोग्राफर्स, दिल्ली

The

BRAJAJIVAN PRACHYABHARATI GRANTHAMALA

83

MANTRAMAHODADHI

OF

MAHĪDHARA

with own Sanskrit Commentary 'Naukā'

&

'Aritra' Hindi Exposition

By

Dr. SUDHAKAR MALAVIYA

M. A., Ph. D. Sahityacharya

Deptt. of Sanskrit : Arts Faculty,

Banaras Hindu University, Varanasi



CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN

DELHI

Publishers

CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
38 U. A. Bungalow Road, Jawahar Nagar
Delhi 110007
Phone : (011) 23856391, 41530902
e-mail : csp_praveen@rediffmail.com

Also can be had from
CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
Chowk (Behind Bank of Baroda Building)
Post Box. No. 1069
Varanasi 221001

•

CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN
K. 37/117 Gopal Mandir Lane
Post Box. No. 1129
Varanasi 221001

•

CHAUKHAMBA PUBLISHING HOUSE
4697/2, Ground Floor, Street No. 21-A
Ansari Road, Darya Ganj
New Delhi 110002

Printers
A. K. Lithographers, Delhi

सर्वे वर्णात्मका मन्त्रास्ते च शक्त्यात्मकाः प्रिये ।
शक्तिस्तु मातृका ज्ञेया सा च ज्ञेया शिवात्मिका ॥

भगवान् विश्वनाथ को समर्पित
श्रद्धा सुमन



प्रस्तावना

श्रीमन्महीधर भट्ट विरचित 'मन्त्रमहोदधि' उनकी स्वोपज्ञ 'नौका' टीका के साथ विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत है । इस संस्करण में 'अरित्र' नामक हिन्दी व्याख्या संयोजित है। यह ग्रन्थ इन्हीं तीनों से पूर्ण होता है । यह ग्रन्थ मन्त्रों का महासमुद्र है, जिसे पार करने के लिए नौका (यान) की आवश्यकता है, किन्तु यह नौका बिना डाँड़े (अरित्र) के नहीं चल सकती थी, इसलिए अरित्र नामक हिन्दी व्याख्या अत्यन्त सजग होकर लिखी गई है । मूल, टीका तथा हिन्दी में एकवाक्यता का सदैव ध्यान दिया गया है । मन्त्रों के अक्षरों की गणना तीनों ही स्थल पर गिन कर एक सी प्रस्तुत की गई हैं । कहीं कहीं इन्हें मन्त्रों के बाद कोष्ठक में दर्शाया भी गया है । मन्त्रों के बीजाक्षरों की वर्तनी का ध्यान पदे-पदे रक्खा गया है । यन्त्रों के चित्र अत्यन्त अशुद्ध थे जिन्हे यथासम्भव शुद्ध करने का प्रयास किया गया है, फिर भी कोई सर्वज्ञ नहीं है, त्रुटि सम्भावित है, अतः बिना गुरु के मन्त्र-दीक्षा लिए इनका प्रयोग नहीं करना चाहिए ।

प्रारम्भ में एक विस्तृत विषय सूची संस्कृत में प्रस्तुत है । यन्त्र चित्रों की सूची अलग से दी गई है । ग्रन्थ को सरल बनाने के लिए वर्णमातृकाओं की संकेत सूची एवं संख्या सूची भी ग्रन्थारम्भ में दी गई है । ग्रन्थ के अन्त में मातृका कोश परिशिष्ट में रक्खा गया है । इस कोश में मातृकाओं के सांकेतिक शब्दों का संग्रह श्लोकबद्ध है । द्वितीय परिशिष्ट में सम्पूर्ण ग्रन्थ की श्लोकानुक्रमणिका सर्वप्रथम प्रस्तुत की गई है ।

इस ग्रन्थ में आये सात्त्विक मन्त्रों का प्रयोग तो मानव मात्र को करना चाहिए और राजस मन्त्रों का प्रयोग आवश्यकता पड़ने पर करे । किन्तु तामस मन्त्रों का प्रयोग किसी लालचवश या बिना गुरु के कदापि नहीं करना चाहिये । इन तामस मन्त्रों के अनुष्ठान में जरा सी भी त्रुटि रह जाने पर ये साधक का सर्वस्व नाश कर देते हैं । यदा-कदा इन मन्त्रों को किसी को देना या कहना भी नहीं चाहिये ।

आजकल के युग में कोई भी सर्वज्ञ नहीं हो सकता । अतः हर किसी को इन मन्त्रों हेतु गुरु नहीं बनाना चाहिये । इतना बड़ा ग्रन्थ पूर्ण करने में कहीं त्रुटि रह जाना सम्भव है । अतः किसी अनुष्ठान को करने के पहले पुस्तक में आये मूल का यथोचित मनन एवं चिन्तन कर लेना चाहिये और इनसे सम्बन्धित अन्य ग्रन्थों का भी अवलोकन कर लेना चाहिये ।

तन्त्र प्रयोग में प्रक्रिया का अत्यन्त महत्त्व है । साधक के लिए तन्त्र की पूजापद्धति का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है । इस ग्रन्थ में अनेक स्थल पर आवरण पूजा के संकेत हैं जिन्हें मैंने माधवभट्ट प्रणीत मन्त्रमहार्णव आदि अन्य ग्रन्थों से लेकर हिन्दी व्याख्या में विमर्श के अन्तर्गत प्रस्तुत किया है । तन्त्र सम्प्रदाय में मुख्य रूप से यन्त्र पर पूजा होती

है, अतः यन्त्र चित्रों को भी मैंने शुद्ध करने का प्रयास किया है । फिर भी साधक को इन्हें बनाने से पहले गुरु से विचार विमर्श अवश्य कर लेना चाहिए ।

तन्त्र सम्प्रदाय के इस ग्रन्थ की हिन्दी व्याख्या एवं सम्पादन करके मैं अपने आप को अत्यन्त भाग्यशाली मानता हूँ क्योंकि मन्त्र तत्त्व के मनन एवं संयोजन में समय का सदुपयोग हुआ । इस ग्रन्थ में जो कुछ भी मेरी गति हो सकी है या मैं इसे समझ सका हूँ उसमें मेरे पूज्य गुरुवर पं० हीरामणि मिश्र जी का ही कृपा प्रसाद है । तन्त्र साहित्य में मुझे गति प्रदान करने वाले उन गुरुवर्य के चरणों में मेरा शतशः प्रणाम है ।

इस संस्करण को सम्पादित करने के लिए काशिराजट्रस्ट से प्राप्त लीथोप्रिंट तथा खेमराज एवं पं० शुकदेव चतुर्वेदी के संस्करणों से सहायता ली गयी है । इसके लिए लेखक उनका अत्यन्त आभारी है । मूल में अनेक भ्रामक स्थलों को मैने अपने मित्र डा० महेशचन्द्र जोशी, का० हि० वि० वि०, पुराण विभाग, से विचार विमर्श करके शुद्ध किया है । इसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ ।

मन्त्रशास्त्र का यह अत्यन्त उपादेय ग्रन्थ जो इस रूप में आज विद्वानों के समक्ष आ सका है उसके लिए मैं चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान के संचालक श्री बल्लभदास गुप्त का अत्यन्त आभारी हूँ । ये ही मेरे प्रेरणा श्रोत हैं । यन्त्र चित्रों के संयोजन में श्री सरकार ने मेरी भरपूर सहायता की है, जिसके लिए मैं इनका अनुग्रहीत हूँ । मेरे चिरञ्जीव श्री रामरञ्जन एवं श्री चित्तरञ्जन ने कम्प्यूटर कार्य तथा इस ग्रन्थ के सम्पादन में मेरी सहायता की है । भगवान् शंकर इनका अभ्युदय करें । अन्ततः भगवान् विश्वनाथ से करबद्ध प्रार्थना है कि इस ग्रन्थ से मानवमात्र का अजस्त्र कल्याण करें ।

पुस्तकाभिकरां वामे दक्षेऽक्षवरधारिणीम् ।
शुक्लां त्रिनयनामाद्यां बालां श्रीत्रिपुरां श्रये ॥

दीपावली, १० नवम्बर, १९९६ — विद्वद्वशंवदः
३१/२१ लंका, वाराणसी — **सुधाकर मालवीय**



भूमिका

सहस्रचन्द्रप्रतिमोदयालुर्लक्ष्मीमुखालोकनलोलनेत्रः ।
दशावतारैः परितः परीतो नृकेसरी मङ्गलमातनोतु ॥

अगणित चन्द्र समूहों के समान कान्तिपुञ्ज से युक्त, दयालु स्वभाव वाले, लक्ष्मी का मुख देखने के लिए पुनः पुनः आकुल नेत्रों वाले, चारों ओर से दशावतारों से घिरे हुये भगवान् नृसिंह हमारा मङ्गल करें ।

मन्त्रयोग

नाम-रूपात्मक विषय जीव को बन्धनयुक्त करते हैं, नाम-रूपात्मक प्रकृति-वैभव से जीव अविद्याग्रस्त हुए रहते हैं । अतः अपनी-अपनी सूक्ष्म प्रकृति और प्रवृत्ति की गति के अनुसार नाममय शब्द तथा भावमय रूप के अवलम्बन से जो योग साधन किया जाय उसको 'मन्त्रयोग' कहते हैं । मन्त्र योगसाधना के निम्न सोलह मुख्य अङ्ग हैं -

भवन्ति मन्त्रयोगस्य षोडशाङ्गानि निश्चितम् ।
यथा सुधांशोर्जायन्ते कलाः षोडश शोभनाः ॥
भक्तिः शुद्धिश्चासनं च पञ्चाङ्गस्यापि सेवनम् ।
आचारधारणे दिव्यदेशसेवनमित्यपि ॥
प्राणक्रिया तथा मुद्रा तर्पणं हवनं बलिः ।
यागो जपस्तथा ध्यानं समाधिश्चेति षोडश ॥

चन्द्रमा की सोलह कलाओं की तरह मन्त्रयोग भी इन सोलह अंगो से परिपूर्ण हैं - १. भक्ति, २. शुद्धि, ३. आसन, ४. पञ्चाङ्गसेवन, ५. आचार, ६. धारणा, ७. दिव्यदेश सेवन, ८. प्राणक्रिया, ९. मुद्रा, १०. तर्पण, ११. हवन, १२. बलि, १३. याग, १४. जप, १५. ध्यान और १६. समाधि ।

शास्त्रों में इन सोलह अंगों का विस्तृत वर्णन किया गया है । १. **भक्ति** का विस्तार से वर्णन भागवत आदि भक्ति शस्त्रों के ग्रन्थों में हैं । २. **शुद्धि** के अनेक भेद हैं। किस दिशा में मुख करके साधना करनी चाहिए ? यह दिक्शुद्धि है । कैसे स्थान में बैठकर साधना करनी चाहिए - यह स्थानशुद्धि है । स्नानादि द्वारा शरीरशुद्धि और प्राणायामादि द्वारा मनःशुद्धि होती है । ३. **आसन** - कैसे आसन पर बैठना चाहिए जैसे कि चैलासन, मृगचर्मासन, कुशासन या कम्बल आदि - यह आसन शुद्धि है । ४. **पञ्चाङ्गसेवन** - अपने इष्ट की गीता, सहस्रनाम, स्तव, कवच और हृदय ये पाँच 'पञ्चाङ्ग' कहलाते हैं । ५. **आचार** के अनेक भेद तन्त्र और पुराणों में कहे गए हैं । ६. **धारणा** - मन को

बाहर मूर्त्ति आदि में लगाने से अथवा शरीर के भीतर स्थान विशेषों में मन के स्थिर रखने को 'धारणा' कहते हैं । ७. **दिव्यदेश** - जिन सोलह प्रकार के स्थानों में पीठ निर्माण कर पूजा की जाती है उनको 'दिव्यदेश' कहते हैं । जैसे - मूर्धास्थान, हत्प्रदेश, नाभिस्थान, घट, पट, पाषाणादि की मूर्त्तियाँ, वेदी (स्थण्डिल) एवं यन्त्र आदि । ८. **प्राण क्रिया** - मन्त्र शास्त्र में प्राणायामों के अतिरिक्त शरीर के नाना स्थानों में प्राण को ले जाकर साधन करने की आज्ञा है - ये सब साधन 'प्राण क्रिया' कहलाते हैं और 'न्यास' आदि इसी के अन्तर्गत आते हैं । ९. **मुद्रा** - मन्त्रयोग में अपने-अपने इष्टदेव को प्रसन्न करने के लिए जो विशेष चेष्टाएँ हैं वे 'मुद्रा' कही जाती हैं जैसे शंखमुद्रा, गदामुद्रा आदि। १०. **तर्पण** - अपने इष्टदेव का पदार्थ विशेष द्वारा तर्पण किया जाना - 'तर्पण' कहलाता है । ११. **हवन** - विशेष द्रव्य के द्वारा अग्नि में आहुति देने को 'हवन' कहते हैं। १२. **बलि** - देवताओं के लिए चरु आदि की बलि दी जाती है । यह बलि तीन प्रकार की कही गई हैं - १. आत्मबलि अहंकारादि की, २. इन्द्रियों की बलि तथा ३. काम-क्रोधादि की बलि । १३. **याग** - अन्तर्याग और बहिर्याग भेद से याग दो प्रकार के होते हैं । १४ **जप** - अपने इष्ट के नाम का या उनके मन्त्रों के जप को 'जप' कहते हैं। जप भी वाचनिक, उपांशु और मानसिक-भेद से तीन प्रकार का कहा गया है । १५. **ध्यान** - इष्ट के रूप का मन के द्वारा ध्यान करने से जो साधना निष्पन्न होती है उसे 'ध्यान' कहते हैं । १६. **समाधि** - इष्टदेव की रूपमाधुरी का ध्यान करते-करते अपने अस्तित्व को भूल जाने की जो अवस्था प्राप्त होती है उसे 'समाधि' कहा जाता है । मन्त्रयोग में इसे ही 'महाभावसमाधि' की संज्ञा दी जाती है ।

तन्त्र और आगम

परमशिवप्रोक्त तन्त्र-आगमों की साधना विधि का नाम 'मन्त्रयोग' है । भारतीय दर्शनों ने निगम (वेद), आगम (तन्त्र) को ही स्वतः परम प्रमाण माना है । ईश्वर के निःश्वासभूत होने से **'वेदाः प्रमाणम्'** और शिवप्रोक्त होने से **'आगमाः प्रमाणम्'** इस प्रकार से कहा गया है ।

आगम शब्द का अर्थ है - '**आगच्छति बुद्धिमारोहति यस्मादभ्युदयनिःश्रेयसोपायः स आगमः** ।' जिसके द्वारा इहलौकिक और पारलौकिक कल्याणकारी उपायों का यथार्थ ज्ञान हो वह 'आगम' शब्द से निरूपित होता है । तन्त्र शब्द भी आगम अर्थ का ही वाचक है, इसका शब्दार्थ इस प्रकार किया गया है -

तनोति विपुलानर्थांस्तत्त्वमन्त्रसमाश्रितान् ।
त्राणं च कुरुते पुंसां तेन तन्त्रमिति स्मृतम् ॥

मन्त्र तत्त्वों का विस्तृत विवेचन एवं उसके तात्पर्यार्थ साधना-प्रक्रिया का पूर्णरूप से विपुल प्रतिपादन करता है तथा मानव-जाति का सभी प्रकार के भयों से परित्राण करता है, अतः उसकी तन्त्र-संज्ञा होती है । इस प्रकार तन्त्रागम के विशाल साहित्य की रहस्यमयी साधनाविधि का नाम ही 'मन्त्रयोग' है ।

मन्त्र और मन्त्रशक्ति

मननात् त्रायत इति मन्त्रः, मननत्राणधर्माणो मन्त्राः ।

मन को मननीय शक्ति प्रदान (एकाग्र) करके जप के द्वारा समस्त भयों का विनाश करके पूर्ण रक्षा करने वाले शब्दों को 'मन्त्र' कहा जाता है । मन् और त्र - ये दो शब्द इसमें हैं । 'मन्' शब्द से मन को एकाग्र करना, 'त्र' शब्द से त्राण (रक्षा) करना जिनका धर्म है और जप से जो अभीष्ट फल प्रदान करें, वे 'मन्त्र' कहे जाते हैं ।

तन्त्र का सिद्धान्त

वेदान्त का सिद्धान्त है कि '**जीवो ब्रह्मैव नापरः**' 'जीव ही ब्रह्म है दूसरा नहीं ।' उसी प्रकार तन्त्र-आगमों का सिद्धान्त है - '**आनन्दं ब्रह्मणो रूपम्**' - आनन्द ही ब्रह्म का रूप है, '**आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते, आनन्देन जातानि जीवन्ति, आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति, आनन्दं ब्रह्मेति व्यजानात्**' आदि श्रुतियाँ भी इसी आगम-सिद्धान्त का प्रतिपादन करती हैं । परमानन्दघन परात्पर परमेश्वर पूर्ण ब्रह्म ने अपनी अमोघ संकल्प (इच्छा) शक्ति से '**एकोऽहं बहु स्याम**' - मैं अकेला हूँ बहुत हो जाऊँ, इस विचित्र विश्व की रचना करके इसी में प्रवेश किया - '**तत् सृष्ट्वा तदनु प्राविशत्**' ।

इसी तरह तन्त्र-आगमों के भी दार्शनिक सिद्धान्त हैं । यहाँ ब्रह्म का शिव नाम से व्यपदेश किया गया है । सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् भगवान् परमशिव स्वयं संसाररूपी क्रीडा करने के लिये अपनी सर्वज्ञता और सर्वकर्तृता-शक्ति को संकुचित करके मनुष्य-देह का आश्रयण करते हैं - '**मनुष्यदेहमाश्रित्य छन्नास्ते परमेश्वराः**' ।

मनुष्य-देह में प्रच्छन्न रूप से परमेश्वर ही विद्यमान है, यही गीता-शास्त्र में भी कहा गया है -

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ॥ गीता ६ . ११ ।

यह चराचरात्मक समस्त विश्व उन शिव की क्रीडा है, यह केवल लीलामात्र है - '**क्रीडात्वेनाखिलं जगत्**', '**लीलामात्रं तु केवलम्** ।' अतः यहाँ सिद्ध होता है कि वह परमशिव अपनी सर्वज्ञता एवं सर्वकर्तृता-शक्ति को संकुचित करके मनुष्यदेह में अल्पज्ञता और अल्पकर्तृता धारण करके क्रीडा कर रहे हैं । जब वह अपनी शक्ति को संकुचित करते हैं, तब सुख-दुःख, राग-द्वेष आदि सांसारिक धर्मों से जीव अभिभूत हो जाता है । इसी कारण जीव आधि-व्याधि, शोक-संताप, दीनता-हीनता, दरिद्रता, अहन्ता, ममता, संकल्प-विकल्प आदि आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक संतापों से संतप्त-दुःखित हो भय-विह्वल होकर इनसे मुक्ति चाहता है । बस इसी के लिये शास्त्रों में एवं शास्त्रतत्त्वज्ञ योगीन्द्र, मुनीन्द्र, सिद्ध महात्माओं ने विविध प्रकार की साधना-उपासनाओं के विविध विधानों का प्रतिपादन किया है ।

श्रीशिव-निर्मित तन्त्र-आगम-शास्त्रों में स्वात्मबोध एवं स्वरूप-ज्ञान तथा सांसारिक भयंकर संतापों की निवृत्ति के लिये मन्त्र-साधना को ही सर्वोत्तम मान्यता दी गयी है ।

तन्त्रागम के गम्भीर सिद्धान्तों के तात्त्विक एवं विवेचनात्मक ग्रन्थ 'महार्थमञ्जरी' में मन्त्रस्वरूप का सुन्दर संकलन किया गया है -

मननमयी निजविभवे निजसंकोचभये त्राणमयी ।
कवलितविश्वविकल्पा अनुभूतिः कापि मन्त्रशब्दार्थः ॥

सर्वज्ञता-सर्वकर्तृता-शक्ति-सम्पन्न अपने विभव (ऐश्वर्य) का बोध कराना तथा अल्पज्ञता एवं अल्पकर्तृतारूपी संकुचित शक्ति से समुत्पन्न दीनता, हीनता, दरिद्रता आदि सांसारिक संतापों से मुक्त करना और कुत्सित वासनाओं के संकल्प-विकल्पों का 'ग्रास' (विनाश) करके '**शिवोऽहं**' की भावना से भावित अनुभूति होना ही मन्त्र-शब्द का तात्पर्यार्थ, स्वरूप या प्रयोजन है । इसी भाव को और भी स्पष्ट किया गया है -

मोचयन्ति च संसाराद्योजयन्ति परे शिवे ।
मननत्राणधर्मित्वात्तेन मन्त्रा इति स्मृताः ॥

नेत्र-तन्त्र में बहुत विस्तार से मन्त्र के तात्त्विक रहस्यों का विवेचन किया गया है। सात करोड़ मन्त्र शिव के मुख से विनिर्गत हुए हैं -

'सप्तकोटिमहामन्त्राः शिववक्त्राद्विनिर्गताः ।'

वर्णमातृकाएँ और मन्त्र का स्वरूप

वर्णमाला के 'अ' से लेकर 'क्ष' तक पचास अक्षरों को 'मातृका' कहते हैं । इन मातृका-वर्णों से ही समस्त मन्त्रों का निर्माण हुआ है । मातृका शब्द का अर्थ है माता या जननी । अतः समस्त वाङ्मय की यह जननी है । ये समस्त मन्त्र वर्णात्मक हैं और मन्त्र शक्ति-स्वरूप हैं । यह मातृका की ही शक्ति है और वह शक्ति शिव की है । अतः समस्त मन्त्र साक्षात् शिवशक्ति-स्वरूप हैं । यही सिद्धान्त भगवान् शंकर पार्वती से कहते हैं -

सर्वे वर्णात्मका मन्त्रास्ते च शक्त्यात्मकाः प्रिये ।
शक्तिस्तु मातृका ज्ञेया सा च ज्ञेया शिवात्मिका ॥

मन्त्र अचिन्त्य शक्तिसम्पन्न होते हैं । इनके सामर्थ्य की इयत्ता का निर्धारण नहीं किया जा सकता । इसीलिये कहा गया है '**मन्त्राणामचिन्त्यशक्तिता**' (परशुरामकल्पसूत्र), '**अचिन्त्यो हि मणिमन्त्रौषधिप्रभावः** ।' इन्हीं मन्त्रात्मक वर्णों से ही समस्त विश्व का सृजन हुआ है - '**वागेव विश्वा भुवनानि जज्ञे** ।' इस प्रकार श्रुति वाक्य भी है ।

आगम-दर्शन की मूल भित्ति शिवादि-क्षिति-पर्यन्त छत्तीस तत्त्वों पर आधारित है । ये तत्त्व मातृका के छत्तीस अक्षरों पर आधारित हैं । इन्हीं तत्त्वों से दृश्यमान समस्त चराचरात्मक विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और लय आदि होते हैं । अतः मन्त्रात्मक अक्षरों

को शब्दब्रह्म कहा जाता है । संसार का व्यवहार भी शब्दों के द्वारा ही होता है, इसलिये शब्द-शक्ति सर्वोपरि मानी गयी है। भगवान् परमशिव ने इन्हीं शब्दों से विचित्र चमत्कारपूर्ण समस्त अभीष्ट प्रदान करने वाले मन्त्रों की रचना करके समस्त सांसारिक जीवों पर कारुण्य-पूर्ण अनुग्रह किया । इन मन्त्रों की साधना से सम्पूर्ण अभीष्टों की सिद्धि सरलता से की जा सकती है । किन्तु इनकी साधना विधिवत् एवं शास्त्रानुमोदित करनी चाहिये ।

तन्त्रों में मन्त्रों के स्वरूप का विस्तृत विवेचन उपलब्ध होता है । उसमें तीन जातियाँ एवं चार प्रकार मुख्य हैं । इनका 'शारदातिलक' तन्त्र में इस प्रकार प्रतिपादन किया गया है -

पुंस्त्रीनपुंसकात्मनो मन्त्राः सर्वे समीरिताः ।
मन्त्राः पुंदेवता ज्ञेया विद्या स्त्री देवता स्मृता ॥

पुरुष, स्त्री और नपुंसक - ये तीन जातियाँ मन्त्रों की मानी गयी हैं ।[1] मन्त्र पुरुष-देवतात्मक होते हैं एवं महाविद्या, श्रीविद्या आदि विद्याओं के मन्त्र स्त्री-देवतात्मक कहे जाते हैं । इनके चार प्रकार **नित्यातन्त्र** में इस प्रकार वर्णित हैं -

मन्त्रा एकाक्षराः पिण्डाः कर्तर्यो द्व्यक्षरा मताः ।
वर्णत्रयं समारभ्य नवार्णावधिबीजकाः ॥
ततो दशार्णमारभ्य यावद्विंशतिमन्त्रकाः ।
अत ऊर्ध्वं गता मालास्तासु भेदो न विद्यते ॥

'एक अक्षर वाले मन्त्र की 'पिण्ड' संज्ञा कही गई है, एवं दो अक्षर की 'कर्तरी', तीन अक्षर से नौ अक्षर तक के मन्त्रों को 'बीज' मन्त्र कहा जाता है, दस अक्षर से बीस अक्षर तक का 'मन्त्र' नाम होता है । बीस अक्षर से अधिक संख्या वाले मन्त्रों को 'माला' मन्त्र कहते हैं ।'[2]

साधक के नाम के साथ इन मन्त्रों के मित्र, शत्रु, साध्य, सिद्ध, सुसिद्ध आदि सम्बन्ध होते हैं । अतः मेलापक-प्रक्रिया से विचार करके मन्त्र ग्रहण करने से ही अभीष्ट-सिद्धि होती है । कामना-परक मन्त्रों का अविचारित रूप से अनुष्ठान करना विपरीत फलदायक भी हो सकता है । अतः **'तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ'** इस गीतोक्त वचन के अनुसार शास्त्रों के प्रमाण से कर्तव्याकर्तव्य निर्धारण करना आवश्यक है । अतः मन्त्र-साधना तन्त्रशास्त्र प्रतिपादित विधानानुसार करने से ही ऐहिक एवं पारलौकिक अभीष्ट-सिद्धि होती है ।

तन्त्रशास्त्र में कुछ मन्त्र, विद्याएँ कलियुग में सिद्ध मानी गयी हैं । वे सबके लिये उपयोगी हैं । उनमें सिद्धारि आदि मेलापक का विचार आवश्यक नहीं हैं ।

---

१. मन्त्रमहोदधि २४. ६२ ।
२. मन्त्रमहोदधि २४. ७५-७६ ।

मन्त्र-साधन-प्रक्रिया

तन्त्र-आगम-शास्त्र में वर्णित लक्षणों से युक्त गुरु से विधिवत् मन्त्र-दीक्षा-ग्रहण करना चाहिये । उस मन्त्र को अपने इष्टदेव का स्वरूप ही मानना चाहिये । देवताओं का स्वरूप मन्त्रात्मक ही होता है ।

'मन्त्रा वर्णात्मकाः सर्वे सर्वे वर्णाः शिवात्मकाः ।'

श्रीगुरु के मुखारविन्द से निःसृत मन्त्ररूप इष्टदेव को स्वकीय कर्णों के द्वारा हृदय-प्रदेश में विराजमान करके निरन्तर उसकी परिचर्या में संलग्न हो जाना चाहिये । इस साधना के तीन अंग मुख्य हैं - नित्यकर्म, नैमित्तिककर्म और काम्यकर्म ।

नित्यकर्म - नित्यकर्म में प्रातःस्मरण, शौच, दन्तधावन, स्नान, सन्ध्या, पूजा, स्तोत्रपाठ आदि का विधान शास्त्र से या गुरु से सम्यक् प्रकार से जानकर उसका सम्पादन करना चाहिये । प्रातःकाल से लेकर रात्रि में शयनपर्यन्त सभी क्रियाएँ विधिपूर्वक सम्पन्न होनी चाहिये । नित्यकर्मों का पालन करना मन्त्र-साधक के लिये परमावश्यक है ।

नित्यकर्म का लोप होने से प्रत्यवाय होता है । अतः प्रायश्चित्त का विधान है । मनुष्य स्वभाव-सुलभ प्रमाद, विप्रलिप्सा, करणापाटवादि दोषों से यदि नित्यकर्म लोप हो जाय तो प्रायश्चित्त करना परमावश्यक है । वैदिक विधानों के अनुसार मन्त्रयोग में चान्द्रायण व्रतादिकों की तरह प्रायश्चित्त का कठोर विधान नहीं है । केवल कर्मवैगुण्य के अनुसार लाघव-गौरव देखकर मूल मन्त्र-जप-संख्या का ही न्यूनाधिक रूप से सरल विधान शास्त्रों द्वारा प्रतिपादित है । जैसे संध्यालोप होने से मूल मन्त्र का शत-संख्यात्मक एक माला तथा नैमित्तिक कर्म के लोप में सहस्त्र संख्यात्मक दस माला का विधान है ।

नैमित्तिककर्म - विशेष पर्वों पर नैमित्तिक कर्म किए जाते हैं । परशुराम-कल्पसूत्र में पाँच मुख्य पर्व माने गये हैं । पञ्चपर्वों में विशेषार्चा हैं । रात्रिव्यापिनी कृष्णाष्टमी, कृष्णचतुर्दशी, अमावास्या, पूर्णिमा, संक्रान्ति - इन पञ्च पर्वों पर दिन में व्रत रखकर रात्रि में विशेष पूजा-सामग्री से अर्चन करने का विधान है एवं गुरु का जन्मदिन, व्याप्तिदिन, स्वविद्याग्रहणदिन, पुष्यार्क, नवरात्र आदि पर्वों पर अपनी शक्ति के अनुसार व्रतपूर्वक यथाविभव विशेष उत्सव का आयोजन करना चाहिये । इस नित्य और नैमित्तिक कर्म करने वाले साधक के सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं ।

काम्यकर्म - काम्यकर्म उसे कहते हैं जो विशेष कामना-पूर्त्ति के लिये किया जाता है । अपने मूल मन्त्र का पञ्चाङ्ग-पुरश्चरण करने पर जब मन्त्र-चैतन्य का लक्षण उत्पन्न हो जाय तो भिन्न-भिन्न कामनाओं के लिये पृथक्-पृथक् वस्तुओं से होम करने का विधान शास्त्रों में वर्णित है, उन-उन वस्तुओं से होम करने से तत्-तत् कामनाएँ पूर्ण होती है । परन्तु काम्यकर्म करने का शास्त्रों में निषेध ही किया गया है -

शुभं वाप्यशुभं वापि काम्यं कर्म करोति यः ।
तस्यारित्वं व्रजेन्मन्त्रस्तस्मान्न तत्परो भवेत् ॥

अर्थात् शुभ या अशुभ अभिचारादि काम्य कर्म जो करता है, उसके लिये वही मन्त्र शत्रु-भावापन्न हो जाता है ।[१] इसलिये काम्यकर्म में तत्पर नहीं होना चाहिये ।' कोई अत्यावश्यक कार्य हो तो उसके लिये कदाचित् कर लेने का विधान है । अपने मन्त्र का नित्य-नैमित्तिक कर्म करने मात्र से साधक का जिसमें कल्याण निहित है, उसे मन्त्र के अधिष्ठातृ देवता स्वयं सम्पादित करते रहते हैं ।

निष्काम उपासना से ज्ञान प्राप्ति एवं मुक्ति

उपासना का अर्थ है सेवा । इसके कायिक, वाचिक और मानसिक तीन भेद हैं । कायिक का अर्थ है पाद्य, अर्घ्य, स्नान, धूप, दीप, नैवेद्य आदि पञ्चोपचार या षोडशोपचार से पूजा । वाचिक का अर्थ स्तोत्रपाठ करना है । मानसिक का अर्थ ध्यान-जपादि है ।

अपने इष्टदेव के समक्ष सर्वात्मना-(समर्पण)-शरणागत होकर देवता-प्रीत्यर्थ कर्म करने से सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं, यह शास्त्रसम्मत सिद्धान्त है -

निष्कामो देवतां नित्यं योऽर्चयेद् भक्तिनिर्भरः ।
तामेव चिन्तयन्नास्ते यथाशक्ति मनुं जपन् ॥
सैव तस्यैहिकं भारं वहेन्मुक्तिं च साधयेत् ।
सदा संनिहिता तस्य सर्वं च कथयेत सा ॥
वात्सल्यसहिता धेनुर्यथा वत्समनुव्रजेत् ।
तथानुगच्छेत् सा देवी स्वं भक्तं शरणागतम् ॥

निष्काम भक्तिभाव सहित जो इष्ट देवता का अर्चन करता है और निरन्तर उसका ही चिन्तन करता हुआ यथाशक्ति मन्त्र का जप करता है, उसके सांसारिक जितने कार्य हैं, उन सबका वहन भगवती स्वयं करती हैं और अन्त में मोक्ष-प्रदान भी कर देती हैं । इतना ही नहीं, सदा उसके सन्निहित रहती हैं और सब कुछ बताती रहती हैं । वात्सल्यभाव से युक्त होकर जैसे धेनु अपने बछड़े के पीछे रहती है, उसी तरह वह वात्सल्यमयी माता भगवती शरणागत भक्त के कल्याण करने में निरन्तर तत्पर रहती है । इसलिये गीता[२] में भी कहा गया है -

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥

निष्काम कर्म करने वाले का कभी क्रम-भंग नहीं होता और कोई निषिद्ध कर्म की सम्भावना भी नहीं रहती । निष्काम कर्म का स्वल्परूप आचरण करने से महाभय से परित्राण होता है । अतः मन्त्र-चैतन्य के लिये पुरश्चरणादि अनुष्ठान के बाद मन्त्र-सिद्धि हो जाने पर ऐहिक और पारलौकिक समस्त कार्य स्वयं सिद्ध होते रहते हैं ।

---

१. मन्त्रमहोदधि २५. ७३-७४ ।
२. गीता २. ४० ।

मन्त्रसिद्धि के लिए पुरश्चरण

मन्त्रसिद्धि के लिये पञ्चाङ्ग-पुरश्चरण अत्यावश्यक है एवं अन्य प्रकार से ग्रहण आदि में संक्षेप-पुरश्चरणों का भी शास्त्र में विधान किया गया है तथा औषधियों आदि के प्रयोग से भी सरलता से मन्त्र-सिद्धि हो जाती है । पुरश्चरण नहीं करने से मन्त्र सिद्धिप्रद नहीं होता । कहा भी है -

जीवहीनो यथा देहः सर्वकर्मसु न क्षमः ।
पुरश्चरणहीनोऽपि तथा मन्त्रो न सिद्धिदः ॥

जैसे जीवहीन देह कोई कर्म करने में समर्थ नहीं होता, वैसे ही पुरश्चरण के बिना मन्त्र सिद्धिदायक नहीं होता । अतः भोग एवं मोक्ष दोनों चाहने वाले साधक को पुरश्चरण करना अनिवार्य है । कुछ महाविद्याएँ श्रीविद्या आदि में पुरश्चरण आवश्यक नहीं है । क्योंकि ये विद्याएँ मोक्ष-प्रधान होती हैं, भोगों की इनमें अप्रधानता होती है -

'भोगा भवन्ति चेद् भवन्तु मा भवन्ति मा भवन्तु ।'

भोगों की प्राप्ति होनी ठीक है, न हो तो उनके लिये विशेष अभिलाषा नहीं होती । वैराग्यवान् साधक इन महाविद्याओं का अनुष्ठान मोक्षैक मात्र-प्राप्ति के लिये करते हैं । अन्य मन्त्रों का पुरश्चरण तो परमावश्यक है । पुरश्चरण करने पर भी मन्त्रसिद्धि के लक्षण उत्पन्न न हों तो द्रावण-बोधनादि मन्त्र के संस्कार करने चाहिये ।[१] इनसे मन्त्र सिद्धि देने वाला हो जाता है ।

द्रावणं बोधनं वश्यं पीडनं पोषशोषणम् ।
दाहनं च बुधः कुर्यात्ततः सिद्धो भवेन्मनुः ॥

इन संस्कारों के करने पर भी यदि मन्त्र-सिद्धि न हो तो उस मन्त्र का परित्याग कर देना चाहिये, ऐसा शास्त्रों का मत है । किन्तु महाविद्याओं के परित्याग का विधान नहीं है ।

मन्त्रसिद्धि के लक्षण

तन्त्रान्तरों में मन्त्रसिद्धि के तीन प्रकार के लक्षण बताये गये हैं - उत्तम, मध्यम और अधम ।[२]

उत्तम लक्षण - **'मनोरथानामक्लेशः सिद्धेरुत्तमलक्षणम्'** - बिना क्लेश के सभी मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं । (साधना करने वालों के शुभ भाव, पवित्र विचार, सत्संकल्प और श्रेष्ठ मनोरथ होते हैं ।) अतः सिद्ध हुए मन्त्र के द्वारा सदिच्छा पूर्ण हो जाती है एवं अकाल मृत्यु का भय दूर हो जाता हे । देवता के दर्शन होते हैं एवं और भी अनेक प्रकार की यौगिक सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं ।

---

१. मन्त्रमहोदधि २४. ६८-१०८ ।

२. मन्त्रमहोदधि २५. ६७-१००

मध्यम लक्षण - 'ख्यातिर्वाहनभूषादिलाभः सुचिरजीवनम्०' - यश, वाहन, भूषण, आरोग्य, रोगविषापहरण शक्ति, पाण्डित्य, कवित्व, वैराग्य, मुमुक्षुत्व, सर्ववश्यता, त्यागभावना, अष्टाङ्गादि योगों का अभ्यास, भोगों की नगण्य इच्छा, समस्त प्राणियों में दया भाव, सर्वज्ञतादि गुणों का उदय आदि मध्यम सिद्धि के लक्षण हैं ।

अधम लक्षण - ख्याति, वाहन, भूषण आदि वैभव की प्राप्ति तथा धन, पुत्र, दारादि लोकैश्वर्य की प्राप्ति - ये मन्त्रसिद्धि के अधम लक्षण है ।

मन्त्रसिद्धि और योग

मनुष्य में यह योग्यता है कि वह सर्वशक्तिमान् से अपने आत्मा का सम्बन्ध स्थापित कर सकता है । इसके लिए योग की आवश्यकता है । चित्तवृत्ति-निरोध द्वारा आत्मसाक्षत्कार के लिए निर्दिष्ट क्रियाओं का नाम 'योग' है । योग के चार पर्व हैं - १. मन्त्रयोग, २. हठयोग, ३. लययोग, ४. राजयोग । इनमें मन्त्रयोग स्थूल, हठयोग सूक्ष्म, लययोग सूक्ष्मतर और राजयोग सूक्ष्मतम है अर्थात् सूक्ष्मातिसूक्ष्म है । वस्तुतः आरम्भ मन्त्रयोग से ही होता है । इन चारों का संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है - शब्द (मन्त्र एवं अर्थ) तथा मूर्ति - इन दोनों के अवलम्बन से जो योग साधा जाता है वह 'मन्त्रयोग' है। जिन क्रियाओं से चित्तवृत्ति का निरोध किया जाता है वह 'हठयोग' है । पुरुष (आत्मा) में प्रकृति (माया) का लय 'लययोग' है । जो अन्तःकरण (बुद्धि) के द्वारा साधा जाता है वह 'राजयोग' है । योगों में श्रेष्ठ होने के कारण इसको 'राजयोग' कहते हैं । राजयोग में बुद्धि से सम्बन्ध रखने वाली क्रियाओं का अधिक सम्बन्ध है । लययोग में मानसक्रिया का आधिक्य है । 'हठयोग' में वायु-जप क्रिया का प्राबल्य है और 'मन्त्रयोग' में ब्रह्मचर्य रक्षा तथा रेतोधारण पर विशेष आग्रह है ।

मन्त्र के अन्य तत्त्व एवं न्यास

ऋषि - जिन साधक ने सर्वप्रथम शिवजी के मुख से मन्त्र सुनकर विधिवत् उसे सिद्ध किया था, वह उस मन्त्र के 'ऋषि' कहलाते हैं । उन ऋषि को उस मन्त्र का आदि गुरु मानकर श्रद्धा सहित उनका मस्तक में न्यास किया जाता है ।

देवता - जीव मात्र के समस्त क्रिया कलापों को प्रेरित, संचालित एवं नियन्त्रित करने वाली प्राणशक्ति को 'देवता' कहते हैं । यह शक्ति व्यक्ति के हृदय में स्थित होती है । अतः देवता का हृदय में न्यास करते हैं ।

छन्द - मन्त्र को सर्वतोभावेन आच्छादित करने की विधि को 'छन्द' कहते हैं । अक्षर या पदों से छन्द बनता है तथा इनका उच्चारण मुख से होता है । अतः छन्द का मुख में न्यास किया जाता है ।

बीज - मन्त्र शक्ति को उद्भावित करने वाला तत्त्व 'बीज' कहलाता है । अतः बीज का गुप्ताङ्ग (सृजनाङ्ग) में न्यास किया जाता है ।

शक्ति - जिसकी सहायता से बीज मन्त्र बन जाता है, वह तत्त्व 'शक्ति' कहलाता है । उसका पादस्थान में न्यास करते हैं ।

विनियोग - गौतमीय तन्त्र के अनुसार ऋषि एवं छन्द का ज्ञान न होने पर मन्त्र का फल नहीं मिलता तथा उसका विनियोग न करके मात्र जप करने से मन्त्र दुर्बल हो जाता है । मन्त्र को फल की दिशा का निर्देश देना 'विनियोग' कहलाता है । तान्त्रिक परम्परा में ऋषि आदि की जानकारी के साथ साथ उसका यथार्थ विनियोग करना आवश्यक माना गया है । विनियोग में ऋषि, छन्द, देवता, बीज एवं शक्ति के अलावा एक और भी तत्त्व होता है, जिसे कीलक कहते हैं । मन्त्र को धारण करने वाला या मन्त्र शक्ति को सन्तुलित रखने वाला तत्त्व 'कीलक' कहलाता है । इसका सर्वांग में न्यास किया जाता है ।

न्यास - बिना न्यास के मन्त्र जप करने से जप निष्फल और विघ्नदायक कहा गया है । (२१. १५७) संहारन्यास का अर्थ है एक-एक अक्षर का पादादि अंगों में न्यास करना । मन्त्रमहोदधि के ११ वें तरङ्ग में ८ से लेकर ४८ श्लोक तक विभिन्न प्रकार के न्यासों का कथन है ।

अङ्गन्यास - कुलार्णव तन्त्र के अनुसार जो व्यक्ति न्यासरूपी कवच से आच्छादित होकर मन्त्र का जप करता है, उसकी साधना में विघ्न-बाधाएं स्वयं दूर हो जाती हैं, तथा उसे निश्चित सिद्धि मिलती है । जो व्यक्ति अज्ञान या प्रमादवश न्यास नहीं करता उसे पग पग पर विघ्नों का सामना करना होता है । हृदय, शिर, शिखा, कवच, नेत्र एवं करतल इन छः अंगों में मन्त्र का न्यास करना अंगन्यास कहलाता है।

पंचाङ्ग एव षडङ्गन्यास - शारदा तिलक के अनुसार जहाँ पञ्चाङ्ग न्यास कहा गया हो, वहाँ नेत्र को छोड़कर शेष पूर्वोक्त पाँच अंगों में न्यास करना चाहिए । अन्यथा पूर्वोक्त ६ अंगों में न्यास करना चाहिए ।

मन्त्रमहोदधि के कर्ता

श्रीमन्महीधर भट्ट मन्त्रमहोदधि के कर्ता हैं जो राम भक्त फनू भट्ट के आत्मज हैं । ये वत्सगोत्रीय ब्राह्मण हैं । ये संसार की असारता को समझकर अहिच्छत्र ग्राम से आकर काशी में बस गए थे । इन्होंने अपने कल्याण नामक पुत्र और अन्य विद्वानों के आग्रह के कारण इस ग्रन्थ की रचना की थी [१] । ग्रन्थकार के अनुसार १६४५ ई० में इसे काशी में रचा गया था । श्री मन्महीधर लक्ष्मीनृसिंह के उपासक थे [२] ।

श्री मन्महीधर भट्ट ने 'नौका' नामक स्वोपज्ञ टीका भी लिखी है । यह टीका अत्यन्त उपादेय है । जहाँ कहीं संकेत हैं उन्हें यह अनावृत कर देती है ।

---

१. मं० महो० २५. १२१-१२५ ।

२. मं० महो० २५. १२७-१३२ ।

इस ग्रन्थ के कुल ३३ सौ श्लोक अधिकतर अनुष्टुप् छन्द में विरचित हैं । प्रत्येक तरङ्ग में एक देवता और उनसे सम्बन्धित अन्य उनके भेदोपभेद का वर्णन है । पहले उन देवता का ध्यान बतलाते हैं फिर उनकी पूजा पद्धति और उनमें प्रयुक्त होने वाले मन्त्रों का उद्धार करते हैं । नौका टीका में शारदातिलक[1] और डामर तन्त्र का उल्लेख होने से ऐसा प्रतीत होता है कि इन्होंने यद्यपि इस ग्रन्थ की रचना अन्य ग्रन्थों के भी आधार पर की है किन्तु मुख्यतया ये दो ग्रन्थ इनके लिए उपजीव्य रहे हैं ।

मन्त्रमहोदधि के विषय

मन्त्रमहोदधि में पच्चीस तरङ्ग हैं । प्रथम तरङ्ग में भूतशुद्धि, प्राणप्रतिष्ठा, मातृकान्यास, पुरश्चरण और होम की विधि तथा तर्पण का विषय प्रतिपादन किया गया है । द्वितीय तरङ्ग में गणेश के विविध मन्त्र और उनकी सिद्धि के प्रकार कहे गए हैं । तृतीय तरङ्ग में काली तथा काली नाम से अभिहित दक्षिणकाली आदि के अनेक मन्त्र एवं सुमुखी के मन्त्र का प्रतिपादन एवं काम्यप्रयोग कहा गया है । चतुर्थ तरङ्ग में तारा की उपासना तथा पञ्चम तरङ्ग में तारा के भेद कहे गए हैं ।

छठे तरङ्ग में छिन्नमस्ता, शबरी, स्वयम्बरा, मधुमती, प्रमदा, प्रमोदा, बन्दी जो बन्धन से मुक्त करती हैं - उनके मन्त्रों को बताया गया है । सप्तम तरङ्ग में वटयक्षिणी, वटयक्षिणी के भेद, वाराही, ज्येष्ठा, कर्णपिशाचिनी, स्वप्नेश्वरी, मातङ्गी, बाणेशी एवं कामेशी के मंत्रों को प्रतिपादित किया गया है । अष्टम तरङ्ग में त्रिपुरा बाला तथा उनके भेदों का विवेचन विस्तार से किया गया है । नवम तरङ्ग में अन्नपूर्णा, उनके भेद त्रैलोक्यमोहन गौरी एवं ज्येष्ठालक्ष्मी तथा उनके साथ ही प्रत्यंगिरा के भी मन्त्रों का निर्देश किया गया है । दशम तरङ्ग में बगलामुखी तथा वाराही एवं वार्त्ताली को भी बतलाया गया है ।

एकादश तरङ्ग में श्रीविद्या तथा द्वादश तरङ्ग में उनके आवरण पूजा की विधि बताई गई है । त्रयोदश तरङ्ग में भक्तराज हनुमान् के मन्त्रों एवं प्रयोगों का विशद् रूप से प्रतिपादन किया गया है । चतुर्दश तरङ्ग में नृसिंह, गोपाल एवं गरुड मन्त्रों का प्रतिपादन है । पञ्चदश तरङ्ग में सूर्य, भौम, बृहस्पति, शुक्र एवं वेदव्यास के मन्त्रों को बताया गया है ।

षोडश तरङ्ग में महामृत्युञ्जय, रुद्र एवं गङ्गा तथा मणिकर्णिका के मन्त्र कहे गए हैं । सप्तदश तरङ्ग में कार्त्तवीर्यार्जुन के मन्त्र, दीपदान विधि आदि का वर्णन है । अष्टादश तरङ्ग में कालरात्रि के मन्त्र, नवार्णमन्त्र, शतचण्डी और सहस्रचण्डी विधान का सविस्तार वर्णन किया गया है । उन्नीसवें तरङ्ग में चरणायुध मन्त्र, शास्ता मन्त्र, पार्थिवार्चन, धर्मराज, चित्रगुप्त के मन्त्रों का प्रतिपादन करते हुये आसुरी (दुर्गा) मन्त्र की विधि का प्रतिपादन किया गया है । बीसवें तरङ्ग में विविध यन्त्र, स्वर्णाकर्षण भैरव की उपासना विधि तथा अनेक यन्त्रों का वर्णन है ।

---

१. मं० महो० ६. ५२-५३ पर नौका टीका ।

इक्कीसवें तरङ्ग में स्नान से लेकर अन्तर्याग तथा नित्यकर्म का वर्णन है । बाइसवें तरङ्ग में अर्घ्यस्थापन से लेकर पूजन पर्यन्त कृत्य तथा पूजा के भेद बतलाये गए हैं । त्रयोविंशति तरङ्ग में दमनक तथा पवित्रक से इष्टदेव के समर्चन का विधान कहा गया है । चौबीसवें तरङ्ग में मन्त्र शोधन की नाना प्रकार की प्रक्रिया कही गई है । पच्चीसवें तरङ्ग में षट्कर्मों के समस्त विधान का निर्देश है । इस प्रकार मन्त्रमहोदधि के पच्चीस तरङ्गों में मन्त्र सम्बन्धी समस्त विषयों का प्रतिपादन किया गया है ।

भूतशुद्धि

प्रथम तरङ्ग में १० वें श्लोक से लेकर ३४ वें श्लोक तक भूतशुद्धि का विवेचन है जो संक्षेप में इस प्रकार है -

भूतशुद्धि का अर्थ है अव्यय ब्रह्म के संयोग से शरीर के रूप में परिणत पञ्चभूतों का शोधन । भावनाशक्ति और मन्त्रशक्ति के संयोग से क्रियाविशेष द्वारा शरीरस्थ मलिन भूतों को भस्म करके, नवीन दिव्य भूतों का निर्माण करने और स्थूलशरीर और सूक्ष्मशरीर के शोधन में ही इस क्रिया का तात्पर्य है । चित्तशुद्धि के लिए जितनी क्रियाओं का निर्देश किया गया है, उनमें इस क्रिया का स्थान सर्वोपरि है । **वसिष्ठसंहिता** में तो यहाँ तक कहा गया है कि इसके बिना जप-पूजादि कृत्य निरर्थक हो जाते हैं । वास्तव में ऐसी ही बात है । जब तक शरीर अशुद्ध रहेगा, मन में पाप भावनाएँ रहेंगी तब तक एकाग्र भाव से किसी की पूजा, ध्यान आदि कैसे किये जा सकते हैं । मन्त्रमहोदधि में इसकी विधि इस प्रकार बताई गई है -

स्नान, सन्ध्या आदि नित्य कृत्यों से निवृत्त होकर ध्यान के स्थान पर आवे और वहाँ आसन पर बैठकर आचमनादि आवश्यक कृत्य करके अपने चारों ओर जल छिड़के और ऐसी भावना करे कि मेरे चारों तरफ अग्नि की एक दिव्य चहारदीवारी है - ऐसा करते समय अग्नि बीज 'रं' का जप करता रहे और मेरा आसन दृढ़ एवं शरीर स्थिर है, परमात्मा की कृपा से कोई विघ्न-बाधा मुझे अपने संकल्प से विमुख नहीं कर सकेगी इस प्रकार सोंचे । इसके पश्चात् भूतशुद्धि का संकल्प करे -

'ओम् अद्येत्यादि देवपूजाद्यधिकारसिद्धये भूतशुद्धयाद्यहं करिष्ये ।'

तत्पश्चात् कुण्डलिनी का चिन्तन करे । कुण्डलिनी सहस्त्र सहस्त्र विद्युत् की कान्ति के समान देदीप्यमान है और कमलनालगत तन्तु के समान सूक्ष्म एवं सर्पाकार है । वह मूलाधार चक्र में सोती रहती है । अब वह जग गयी है और क्रमशः स्वाधिष्ठान और मणिपूर चक्र का भेदन करके सुषुम्णामार्ग से हृदय स्थित अनाहत चक्र में आ गयी है । हृदय में दीपशिखा के समान आकार वाला जीव निवास करता है । उसे उसने अपने मुख में ले लिया और कण्ठस्थ विशुद्धचक्र तथा भ्रूमध्यस्थ आज्ञा चक्र का भेदन करके पूर्वोक्त मार्ग से ही सहस्रार में पहुँच गयी । सहस्रार में परमात्मा का निवास है । 'हंसः' मन्त्र के द्वारा वह कुण्डलिनी जीवात्मा के साथ ही परमात्मा में विलीन हो गयी ।

इसके बाद ऐसी भावना करनी चाहिए कि शरीर में पैर के तलवे से लेकर जानुपर्यन्त (१) पृथिवी-मण्डल है । वह चौकोर है और उसका रंग पीला है । उसी में पादेन्द्रिय, चलने की क्रिया, गन्तव्य, स्थान, गन्ध, घ्राण, पृथिवी, ब्रह्मा, निवृत्ति कला एवं समान वायु निवास करते हैं । इनका स्मरण करके **'ॐ ह्रां ब्रह्मणे पृथिव्यधिपतये निवृत्ति कलात्मने हुं फट् स्वाहा'** इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए कुण्डलिनी के द्वारा उन्हें जलस्थान में विलीन कर देना चाहिए ।

जानु से नाभि पर्यन्त श्वेत वर्ण का अर्द्धचन्द्राकार (२) जलमण्डल है । उसी में हस्त-इन्द्रिय, दानक्रिया, दातव्य, रस, रसनेन्द्रिय, जल, विष्णु, प्रतिष्ठाकला, और उदान वायु निवास करते हैं । उनका स्मरण करके **'ॐ ह्रीं विष्णवे जलाधिपतये प्रतिष्ठाकलात्मने हुं फट् स्वाहा'** । इस मन्त्र का उच्चारण करके कुण्डलिनी के द्वारा उन सबको अग्नि स्थान में विलीन कर देना चाहिए ।

नाभि से लेकर हृदय पर्यन्त रक्तवर्ण का त्रिकोण (३) अग्निमण्डल है। उसमें पायु-इन्द्रिय, विसर्ग क्रिया, विसर्जनीय, रूप, चक्षु, तेज, रुद्र, विद्याकला एवं व्यान वायु निवास करते हैं । उनका स्मरण करके - **'ॐ ह्रूं रुद्राय तेजोऽधिपतये विद्याकलात्मने हुं फट् स्वाहा'** इस मन्त्र का उच्चारण करके कुण्डलिनी के द्वारा वायुमण्डल में विलीन कर देना चाहिए ।

हृदय से भ्रूपर्यन्त काले रंग का गोलाकार छः बिन्दुओं से चिन्हित (४) वायुमण्डल है । उसमें उपस्थ-इन्द्रिय, आनन्द-क्रिया, उस इन्द्रिय का विषय, स्पर्श, स्पर्श का विषय और वायु ईशान, शान्तिकला एवं अपान वायु का निवास है । उनका स्मरण करके - **'ॐ ह्रैं ईशानाय वाय्वधिपतये शान्तिकलात्मने हुँ फट् स्वाहा'** इस मन्त्र का उच्चारण करके आकाशमण्डल में उनको विलीन कर देना चाहिए ।

भ्रूमध्य से ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त स्वच्छ (५) आकाशमण्डल है । उसमें वाग्-इन्द्रिय, वचन-क्रिया, वक्तव्य शब्द, श्रोत्र, आकाश, सदाशिव, शान्त्यतीतकला और प्राण वायु का निवास है । उनका स्मरण करके - **'ॐ ह्रौं सदाशिवाय आकाशाधिपतये शान्त्यतीत-कलात्मने हुं फट् स्वाहा'** इस मन्त्र का उच्चारण करके उन सबको कुण्डलिनी के द्वारा अहंकार में विलीन कर दे ।

अहंकार को महत्तत्त्व में और महत्तत्त्व को शब्दब्रह्मरूपा हृदयशब्द के सूक्ष्मतम अथ प्रकृति में विलीन कर दे और प्रकृति को नित्यशुद्धबुद्ध स्वभाव, स्वयं प्रकाश, सत्यज्ञान, अनन्त, आनन्दस्वरूप, परम कारण, ज्योतिःस्वरूप परब्रह्म परमात्मा में विलीन कर दे ।

इसके पश्चात् पाप पुरुष का शोषण करने के लिये विनियोग करे - **'ॐ शरीरस्यान्तर्यामीऋषिः सत्यं देवता प्रकृतिपुरुषश्छन्दः पापपुरुषशोषणे विनियोगः'** । पहले पाप पुरुष का चिन्तन इस प्रकार करना चाहिए - मेरी वाम कुक्षि में अनादि कालीन पाप मूर्तिमान् पुरुष के रूप में निवास करता है । उसका शरीर अँगूठे के बराबर है । वह

कान्तिहीन है । पाँच महापापों से ही उसके शरीर का निर्माण हुआ है - ब्रह्महत्या उसका सिर है, स्वर्णस्तेय (सोने की चोरी) दोनों हाथ हैं, सुरापान हृदय है, गुरुतल्पगमन कटि है और इन पापों से युक्त पुरुषों का संसर्ग दोनों पैर हैं, अंग-प्रत्यंग पाप से ही बने है । रोम-रोम उपपातक हैं, दाढ़ी और आँखें लाल हैं, उसके हाथों में अविवेक का खड्ग और अहंता की ढाल है, असत्य के घोड़े पर सवार है, चेहरे से पिशुनता प्रकट हो रही है, क्रोध के दाँत हैं, काम का कवच है । गदहे के समान रेंकता है । ऐसा मूढ़ पाप पुरुष व्याधिग्रस्त होने के कारण मरणासन्न हो रहा है ।

इस प्रकार पाप पुरुष का चिन्तन करके उसके शोषण का विनियोग करना चाहिए । ॐ 'यं' - यह वायु-बीज है । इसके किष्किन्ध ऋषि हैं, वायु देवता हैं और जगती छन्द है । पाप पुरुष के शोषण में इनका विनियोग है । नाभि के मूल में षड्बिन्दु चिन्हित एक मण्डल है । उस पर धूम्रवर्ण का वायु बीज 'यं' रहता है । उसकी ध्वजाए चञ्चल होती रहती हैं और उसमें से 'घूं-घूं' शब्द निकलता रहता है । सबको सुखा डालना उसका काम है । इस प्रकार 'यं' बीज का चिन्तन करके और पूरक के द्वारा सोलह बार उसकी आवृत्ति करके उस बीज से उठे हुए वायु के द्वारा पाप पुरुष के समस्त शरीर को सूखा हुआ देखना चाहिए ।

इसके पश्चात् अग्नि-बीज 'रं' का चिन्तन करना चाहिए । इसके कश्यप ऋषि, अग्नि देवता और त्रिष्टुप छन्द हैं । हृदय में रक्तवर्ण का अग्निमण्डल है । उसके देवता रुद्र हैं, विद्याकला का उसी में निवास है । उसमें बीज है 'रं' । ऐसा चिन्तन करके कुम्भक के द्वारा ६४ या ५० बार 'रं' की आवृत्ति करके पाप पुरुष के सूखे हुए शरीर को भस्म कर दे । इसके पश्चात् पूर्वोक्त प्रकार से वायु-बीज 'यं' की ३२ बार आवृत्ति करके रेचक प्राणायाम के द्वारा पापपुरुष का भस्म उड़ा दे ।

इसके पश्चात् वरुण-बीज 'वं' का चिन्तन करे । इसके हिरण्यगर्भ ऋषि हैं, हंस देवता हैं और त्रिष्टुप् छन्द है । सिर में अर्द्धचन्द्राकार दो श्वेत पद्म वाले वरुणदैवत वरुण-बीज 'वं' का चिन्तन करना चाहिए और उससे प्रवाहित होने वाले अमृत से पिण्डीभूत भस्म को आप्लावित अनुभव करना चाहिए ।

इसके पश्चात् पृथिवी-बीज 'लं' का चिन्तन करे । इसके ऋषि ब्रह्मा हैं, देवता इन्द्र हैं और छन्द गायत्री । आधारमण्डल में वज्रलाञ्छित पृथिवी है - चौकोर, कड़ी, पीली और इन्द्रदैवत । उस पर 'लं' बीज का चिन्तन करना चाहिए ।

उसके प्रभाव से शरीर को दृढ़ एवं कठिन चिन्तन करके आकाश-बीज 'हं' का चिन्तन करना चाहिए । आकाश मण्डल वृत्ताकार, स्वच्छ, शान्त्यतीतकला से युक्त, आकाश दैवत एवं 'हं' रूप है । इसकी भावना से शरीर सावकाश एवं व्यूहित हो जाता है । इसमें अपना दिव्य शरीर भावित करके पूर्वोक्त प्रक्रिया से परमात्मा में विलीन तत्त्वों को पुनः अपने-अपने स्थान पर स्थापित करना चाहिए ।

इस प्रकार जब सूक्ष्म शरीर और स्थूलशरीर की दिव्यता सम्पन्न हो जाय, तब 'ॐ सोऽहम्' इस मन्त्र से परमात्मा की सन्निधि से जीव को हृदय-कमल में ले आवे और ऐसा अनुभव करे कि मैं परमात्मा की सत्ता, शक्ति, कृपा, सान्निध्य और सायुज्य का अनुभव करके परम पवित्र और दिव्य हो गया हूँ । मेरा शरीर, पापरहित, नूतन, निर्मल और इष्ट देवता की आराधना के योग्य हो गया है । इसके पश्चात् आगे का अनुष्ठान कार्य प्रारम्भ करे ।

गणेश

गणेश विघ्न निवारण के देवता हैं । इसलिए मन्त्रमहोदधि में भूतशुद्धि आदि के बाद द्वितीय तरङ्ग में इनसे सम्बन्धित मन्त्रों का वर्णन है । यह जल तत्त्व के देवता हैं अतः पञ्चायतन देवों में भी इनकी उपासना पूजा होती है ।

विद्यास्वरूपा महाशक्ति

तृतीय तरङ्ग से लेकर १२वें तरङ्ग तक महाविद्याओं से सम्बन्धित मन्त्रों का विवेचन है । इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है -

महाशक्ति विद्या और अविद्या दोनों ही रूपों में विद्यमान हैं । अविद्या-रूप में वे प्राणियों के मोह की कारण हैं तो विद्या-रूप में मुक्ति की । शास्त्र और पुराण उन्हें विद्या के रूप में और परम-पुरुष को विद्यापति के रूप में मानते हैं ।

महाविद्याओं का प्रादुर्भाव - दस महाविद्याओं का सम्बन्ध परम्परातः सती, शिवा और पार्वती से है । ये ही अन्यत्र नवदुर्गा, शक्ति, चामुण्डा, विष्णुप्रिया आदि नामों से पूजित और अर्चित होती हैं ।

महाभागवत में कथा आती है कि दक्ष प्रजापति ने अपने यज्ञ में शिव को आमन्त्रित नहीं किया । सती ने शिव से उस यज्ञ में जाने की अनुमति माँगी । शिव ने अनुचित बताकर उन्हें जाने से रोका, पर सती अपने निश्चय पर अटल रहीं। उन्होंने कहा - 'मैं प्रजापति के यज्ञ में अवश्य जाऊँगी और वहाँ या तो अपने प्राणेश्वर देवाधिदेव के लिए यज्ञभाग प्राप्त करूँगी या यज्ञ को ही नष्ट कर दूँगी । यह कहते हुए सती के नेत्र लाल हो गये । वे शिव को उग्र दृष्टि से देखने लगीं । उनके अधर फड़कने लगे, वर्ण कृष्ण हो गया । क्रोधाग्नि से दग्ध शरीर महाभयानक एवं उग्र दीखने लगा । देवी का यह स्वरूप साक्षात् महादेव के लिए भी भयप्रद और प्रचण्ड था । उस समय उनका श्रीविग्रह करोड़ों मध्याह्न के सूर्यों के समान तेजःसम्पन्न था और वे बारंबार अट्टहास कर रही थीं ।

देवी के इस विकराल महाभयानक रूप को देखकर शिव भाग चले । भागते हुए रुद्र को दसों दिशाओं में रोकने के लिए देवी ने अपनी अङ्गभूता दस देवियों को प्रकट किया । देवी की ये स्वरूपा शक्तियाँ ही दस महाविद्याएँ हैं, जिनके नाम हैं - काली, तारा, छिन्नमस्ता, भुवनेश्वरी, बगलामुखी, धूमावती, त्रिपुरसुन्दरी, मातङ्गी, षोडशी और त्रिपुरभैरवी ।

शिव ने सती से इन महाविद्याओं का जब परिचय पूँछा, तब सती ने स्वयं इसकी व्याख्या करके उन्हें बताया -

येयं ते पुरतः कृष्णा सा काली भीमलोचना ।
श्यामवर्णा च या देवी स्वयमूर्ध्व व्यवस्थिता ॥
सेयं तारा महाविद्या महाकालस्वरूपिणी ।
सव्येतरेयं या देवी विशीर्षातिभयप्रदा ॥
इयं देवी छिन्नमस्ता महाविद्या महामते ।
वामे तवेयं या देवी सा शम्भो भुवनेश्वरी ॥
पृष्ठतस्तव या देवी बगला शत्रुसूदनी ।
वह्निकोणे तवेयं या विधवारूपधारिणी ॥
सेयं धूमावती देवी महाविद्या महेश्वरी ।
नैर्ऋत्यां तव या देवी सेयं त्रिपुरसुन्दरी ॥
वायौ या ते महाविद्या सेयं मतङ्गकन्यका ।
ऐशान्यां षोडशी देदी महाविद्या महेश्वरी ॥
अहं तु भैरवी भीमा शम्भो मा त्वं भयं कुरु ।
एताः सर्वाः प्रकृष्टास्तु मूर्तयो बहुमूर्तिषु ॥

'शम्भो ! आपके सम्मुख जो यह कृष्णवर्णा एवं भयंकर नेत्रों वाली देवी स्थित हैं वह **'काली'** हैं । जो श्याम वर्ण वाली देवी स्वयं ऊर्ध्व भाग में स्थित हैं, यह महाकालस्वरूपिणी महाविद्या **'तारा'** हैं । महामते ! बायीं ओर जो यह अत्यन्त भयदायिनी मस्तकरहित देवी हैं, यह महाविद्या **' छिन्नमस्ता'** हैं । शम्भो ! आपके वामभाग में जो यह देवी है, वह **'भुवनेश्वरी'** हैं । आप के पृष्ठभाग में जो देवी है, वह शत्रुसंहारिणी **'बगला'** हैं । आपके अग्निकोण में जो यह विधवा का रूप धारण करने वाली देवी है, वह महेश्वरी-महाविद्या **'धूमावती'** हैं । आप के नैर्ऋत्य कोण में जो देवी है, वह **'त्रिपुरसुन्दरी'** हैं । आप के वायव्यकोण में जो देवी है, वह मतङ्गकन्या महाविद्या **मातङ्गी** हैं । आपके ईशानकोण में महेश्वरी महाविद्या **'षोडशी'** देवी हैं । शम्भो ! मैं भयंकर रूपवाली **'भैरवी'** हूँ । आप भय मत करें । ये सभी मूर्तियाँ बहुत-सी मूर्तियों में प्रकृष्ट हैं ।'

महाविद्याओं के क्रम-भेद तो प्राप्त होते हैं, परन्तु काली की प्राथमिकता सर्वत्र देखी जाती है । यों भी दार्शनिक दृष्टि से कालतत्त्व की प्रधानता सर्वोपरि है । इसलिए मूलतः महाकाली या काली अनेक रूपों में विद्याओं की आदि हैं और उनकी विद्यामय विभूतियाँ ही महाविद्याएँ हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि महाकाल की प्रियतमा काली अपने दक्षिण और वाम रूपों में दस महाविद्याओं के रूप में विख्यात हुई और उनके विकराल तथा सौम्य रूप ही विभिन्न नाम-रूपों के साथ दस महाविद्याओं के रूप में अनादिकाल से अर्चित हो रहे हैं । ये रूप अपनी उपासना, मन्त्र और दीक्षाओं के भेद से अनेक होते हुए भी मूलतः एक ही हैं । अधिकारि भेद से इनके अलग-अलग रूप और उपासना स्वरूप प्रचलित हैं।

सृष्टि में शक्ति और संहार में शिव की प्रधानता दृष्ट है । जैसे अमा और पूर्णिमा दोनों दो भासती हैं, पर दोनों दोनों की तत्त्वतः एकात्मता और एक दूसरे की कारण-परिणामी हैं, वैसे ही दस महाविद्याओं के रौद्र और सौम्य रूपों को भी समझना चाहिए । काली, तारा, छिन्नमस्ता, बगला और धूमावती विद्यास्वरूप भगवती के प्रकट-कठोर किंतु अप्रकट करुण-रूप हैं तो भुवनेश्वरी, षोडशी (ललिता), त्रिपुरभैरवी, मातङ्गी और कमला विद्याओं के सौम्यरूप हैं ।

बृहन्नील तन्त्र में कहा गया है कि रक्त और कृष्ण भेद से काली ही दो रूपों में अधिष्ठित हैं । कृष्णा का नाम 'दक्षिणा' है तो रक्तवर्णा का नाम सुन्दरी -

विद्या हि द्विविधा प्रोक्ता कृष्णा रक्ता-प्रभेदतः ।
कृष्णा तु दक्षिणा प्रोक्ता रक्ता तु सुन्दरी मता ॥

इस प्रकार उपासना के भेद से दोनों में द्वैत है, परन्तु तत्त्वदृष्टि से अद्वैत है । देवीभागवत के अनुसार सदाशिव फलक हैं तथा ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और ईश्वर उस फलक या श्रीमञ्च के पाये हैं । इस श्रीमञ्च पर भुवनेश्वरी भुवनेश्वर के साथ विद्यमान हैं और सात करोड़ मन्त्र इनकी आराधना में लगे हुए हैं ।

१. काली - दस महाविद्याओं में काली प्रथम हैं । कालिका पुराण के अनुसार एक बार देवताओं ने हिमालय पर जाकर महामाया का स्तवन किया । पुराणकार के अनुसार यह स्थान मतङ्ग मुनि का आश्रम था । स्तुति से प्रसन्न होकर भगवती ने मतङ्ग-वनिता बनकर देवताओं को दर्शन दिया और पूँछा कि 'तुमलोग किस की स्तुति कर रहे हो ।' तत्काल उनके श्रीविग्रह से काले पहाड़ के समान वर्ण वाली दिव्य नारी का प्राकट्य हुआ । उस महातेजस्विनी ने स्वयं ही देवताओं की ओर से उत्तर दिया कि 'ये लोग मेरा ही स्तवन कर रहे हैं ।' वे गाढ काजल के समान कृष्णा थीं, इसीलिए उनका नाम 'काली' पड़ा ।

महाकाली प्रलय काल से सम्बद्ध होने से अतएव कृष्णवर्णा हैं । वे शव पर आरूढ इसीलिए हैं कि शक्तिविहीन विश्व मृत ही है । शत्रुसंहारक शक्ति भयावह होती हैं, इसीलिए काली की मूर्ति भयावह है । शत्रु-संहार के बाद विजयी योद्धा का अट्टहास भीषणता के लिए होता है, इसलिए महाकाली हँसती रहती हैं ।

२. तारा - वास्तव में काली को ही नीलरूपा होने से 'तारा' भी कहा गया है । वचनान्तर से तारा नाम का रहस्य यह भी है कि वे सर्वदा मोक्ष देने वाली - तारने वाली हैं, इसलिए तारा हैं । अनायास ही वे वाक् प्रदान करने में समर्थ हैं, इसलिए 'नीलसरस्वती' भी हैं । भयंकर विपत्तियों से रक्षण कर कृपा प्रदान करती हैं, इसलिए वे उग्रतारिणी या 'उग्रतारा' हैं ।

तारा और काली यद्यपि एक ही हैं तथापि बृहन्नील तन्त्रादि ग्रन्थों में उनके विशेष रूप की चर्चा है । हयग्रीव का वध करने के लिए देवी को नील-विग्रह प्राप्त हुआ ।

शव-रूप शिव पर प्रत्यालीढ मुद्रा में भगवती आरूढ हैं और उनकी नीले रंग की आकृति है तथा नील कमलों की भाँति तीन नेत्र तथा हाथों में कैंची, कपाल, कमल और खड्ग हैं । व्याघ्रचर्म से विभूषित उन देवी के कण्ठ में मुण्डमाला है । वे उग्रतारा हैं, पर भक्तों पर कृपा करने के लिए उनकी तत्परता अमोघ है । इस कारण वे महाकरुणामयी हैं ।

तारा तन्त्र में कहा गया है -

समुद्र मथने देवि कालकूट समुपस्थितम् ॥

समुद्र मन्थन के समय जब कालकूट विष निकला तो बिना किसी क्षोभ के उस हलाहल विष को पीने वाले शिव ही अक्षोभ्य हैं और उनके साथ तारा विराजमान हैं । **शिव शक्ति संगम तन्त्र** में अक्षोभ्य शब्द का अर्थ महादेव ही निर्दिष्ट है । अक्षोभ्य को द्रष्टा ऋषि शिव कहा गया है । अक्षोभ्य शिव ऋषि को मस्तक पर धारण करने वाली तारा तारिणी अर्थात् तारण करने वाली हैं । उनके मस्तक पर स्थित पिङ्गल वर्ण उग्र जटा का रहस्य भी अद्भुत है । यह फैली हुई उग्र पीली जटाएं सूर्य की किरणों की प्रतिरूपा हैं । यही एकजटा है । इस प्रकार अक्षोभ्य एवं पिङ्गोग्रैक जटा धारिणी उग्र तारा एकजटा के रूप में पूजित हुईं । वही उग्र तारा शव के हृदय पर चरण रख कर उस शव को शिव बना देने वाली नीलसरस्वती हो गईं । जैसा कि कहा है -

मातर्नीलसरस्वति प्रणमतां सौभाग्य सम्पत्प्रदे ।
प्रत्यालीढपदस्थिते शिवहृदि स्मेराननाम्भोरुहे ॥

शब्दकल्पद्रुम के अनुसार तीन रूपों वाली तारा, एकजटा और नीलसरस्वती एक ही तारा के त्रिशक्ति रूप हैं ।

नीलया वाक्प्रदा चेति तेन नीलसरस्वती ।
तारकत्वात् सदा तारा सुखमोक्षप्रदायिनी ॥
उग्रापत्तारिणी यस्मादुग्रतारा प्रकीर्तिता ।
पिङ्गोग्रैकजटायुक्ता सूर्यशक्तिस्वरूपिणी ॥

सर्वप्रथम महर्षि वसिष्ठ ने तारा की उपासना की । इसलिए तारा को 'वसिष्ठाराधिता तारा' भी कहा जाता है । वसिष्ठ ने पहले वैदिक रीति से आराधन की, जो सफल न हो सकी । उन्हें अदृश्य शक्ति से संकेत मिला कि वे तान्त्रिक पद्धति के द्वारा जिसे 'चीनाचार' कहा गया है, उपासना करें । ऐसा करने से ही वसिष्ठ को सिद्धि मिली। यह कथा **'आचार-तन्त्र'** में वसिष्ठ मुनि की आराधना के उपाख्यान में वर्णित है ।

३. छिन्नमस्ता - एक बार भगवती भवानी अपनी सहचरियों जया और विजया के साथ मन्दाकिनी में स्नान करने के लिए गयीं । वहाँ स्नान करने पर क्षुधाग्नि से पीड़ित होकर वे कृष्णवर्ण की हो गयीं । उस समय उनकी सहचरियों ने उनसे कुछ भोजन करने के लिए माँगा । देवी ने उनसे कुछ प्रतीक्षा करने के लिए कहा । कुछ समय प्रतीक्षा करने

के बाद पुनः याचना करने पर देवी ने पुनः प्रतीक्षा करने के लिए कहा । बाद में उन देवियों ने विनम्र स्वर में कहा कि 'माँ तो शिशुओं को तुरन्त भूख लगने पर भोजन प्रदान करती है ।' इस प्रकार उनके मधुर वचन सुनकर कृपामयी ने अपने कराग्र से अपना सिर काट दिया । कटा हुआ सिर देवी के बायें हाथ में आ गिरा और कबन्ध से तीन धाराएँ निकलीं । वे दो धाराओं को अपनी दोनों सहेलियों की ओर प्रवाहित करने लगीं, जिसे पीती हुई वे दोनों प्रसन्न होने लगीं और तीसरी धारा जो ऊपर की ओर प्रवाहित थी उसे वें स्वयं पान करने लगीं । तभी से वे 'छिन्नमस्ता' कही जाने लगीं ।

छिन्नमस्ता भगवती छिन्नशीर्ष (कटा सिर) कर्तरी (कृपाण) एवं खप्पर लिए हुए स्वयं दिगम्बर रहती हैं । कबन्ध-शोंणित की धारा पीती रहती हैं । कटे हुए सिर में नागबद्धमणि विराज रही है, सफेद खुले केशों वाली, नील-नयना और हृदय पर उत्पल (कमल) की माला धारण किए हुए ये देवी सुरतासक्त मनोभव के ऊपर विराजमान रहती हैं ।

४. भुवनेश्वरी - देवी भागवत में वर्णित मणिद्वीप की अधिष्ठात्री देवी हृल्लेखा (ह्रीं) मन्त्र की स्वरूपा शक्ति और और सृष्टि क्रम में महालक्ष्मी स्वरूपा - आदि शक्ति भगवती भुवनेश्वरी शिव के समस्त लीला-विलास की सहचरी और निखिल प्रपञ्चों की आदि-कारण, सब की शक्ति और सब को नाना प्रकार से पोषण प्रदान करने वाली हैं । जगदम्बा भुवनेश्वरी का स्वरूप सौम्य और अङ्गकान्ति अरुण है । भक्तों को अभय एवं समस्त सिद्धियाँ प्रदान करना उनका स्वाभाविक गुण है । शास्त्रों में इनकी अपार महिमा बतायी गयी है ।

देवी का स्वरूप 'ह्रीं' इस बीजमन्त्र में सर्वदा विद्यमान है, जिसे देवी भागवत में देवी का 'प्रणव' कहा गया है ।

विश्व का अधिष्ठान त्र्यम्बक सदाशिव हैं, उनकी शक्ति 'भुवनेश्वरी' है । सोमात्मक अमृत से विश्व का आप्यायन (पोषण) हुआ करता है । इसीलिए भगवती ने अपने किरीट में चन्द्रमा धारण कर रखा है । ये ही भगवती त्रिभुवन का भरण-पोषण करती रहती है, जिसका संकेत उनके हाथ की मुद्रा करती है । ये उदीयमान सूर्यवत् कान्तिमती, त्रिनेत्रा एवं उन्नत कुचयुगला देवी हैं । कृपा दृष्टि की सूचना उनके मृदुहास्य (स्मेर) से मिलती है । शासनशक्ति के सूचक अंकुश, पाश आदि को भी वे धारण करती हैं ।

५. श्रीबगला - सत्ययुग में सम्पूर्ण जगत् को नष्ट करने वाला तूफान आया । प्राणियों के जीवन पर संकट आया देखकर महा विष्णु चिन्तित हो गये और वे सौराष्ट्र देश में हरिद्रा सरोवर के समीप जाकर भगवती को प्रसन्न करने के लिए तप करने लगे । श्रीविद्या ने उस सरोवर से निकलकर 'पीताम्बरा' के रूप में उन्हें दर्शन दिया और बढ़ते हुए जल-वेग तथा विध्वंसकारी उत्पात का स्तम्भन किया । वास्तव में दुष्ट वही है, जो जगत् के या धर्म के छन्द का अतिक्रमण करता है । बगला उसका स्तम्भन किंवा नियन्त्रण करने काली महाशक्ति हैं । वे परमेश्वर की सहायिका हैं और

वाणी, विद्या तथा गति को अनुशासित करती हैं । वें सर्वसिद्धि देने में समर्थ और उपासकों की वाञ्छाकल्पतरु हैं ।

श्रीबगला को 'त्रिशक्ति' भी कहा जाता है -

सत्ये काली च श्रीविद्या कमला भुवनेश्वरी ।
सिद्धविद्या महेशानि त्रिशक्तिर्बगला शिवे ॥

श्रीबगला पीताम्बरा को तामसी मानना उचित नहीं, क्योंकि उनके आभिचारिक कृत्यों में रक्षा की ही प्रधानता होती है और यह कार्य इसी शक्ति द्वारा होता है । शुक्ल-आयुर्वेद की माध्यंदिन संहिता के पाँचवें अध्याय की २३, २४, २५वीं कण्डिकाओं में अभिचार-कर्मकी निवृत्ति में श्रीबगलामुखी को ही सर्वोत्तम बताया गया है, । अर्थात् शत्रु के विनाश के लिए जो कृत्याविशेष को भूमि में गाड़ देते हैं, उन्हें नष्ट करने वाली वैष्णवी महाशक्ति श्रीबगलामुखी ही हैं ।

सिद्धेश्वर-तन्त्र के बगलापटल में मन्त्र जपादि के विषय में विशेष विधान बताए गए हैं, जो इस प्रकार हैं -

पीताम्बरधरो भूत्वा पूर्वाशाभिमुखः स्थितः ।
लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं हरिद्राग्रन्थिमालया ॥
ब्रह्मचर्यरतो नित्यं प्रयतो ध्यानतत्परः ।
प्रियंगुकुसुमेनापि पीतपुष्पैश्च होमयेत् ॥

बगला के जप में पीले रंग का विशेष महत्त्व है । जपकर्ता को पीला वस्त्र पहन कर हल्दी की गांठ की माला से जप करना चाहिए । देवी की पूजा और होम में पीले पुष्पों, प्रियंगु, कनेर, गेंदा आदि के पुष्पों का प्रयोग करना चाहिए । शुचिर्भूत हो पीले कपड़े पहन कर साधक पूर्वाभिमुख बैठ कर ही जप करे । उसे ब्रह्मचर्य का पालन अनिवार्यतः करना चाहिए और सदैव पवित्र रहकर भगवती का ध्यान करना चाहिए ।

श्रीबगला के साधक श्रीप्रजापति ने यह उपासना वैदिक रीति से की और वे सृष्टि की संरचना में सफल हुए । श्रीप्रजापति ने इस महाविद्या का उपदेश सनकादिक मुनियों को किया । सनत्कुमार ने श्रीनारद को तथा श्रीनारद ने सांख्ययन नामक परमहंस को बताया तथा सांख्यायन ने ३६ पटलों में उपनिबद्ध **बगला-तन्त्र** की रचना की । दूसरे उपासक भगवान् श्रीविष्णु हुए, जिनका वर्णन **'स्वतन्त्र-तन्त्र'** में मिलता है । तीसरे उपासक श्रीपरशुराम जी हुए तथा श्रीपरशुराम जी ने यह विद्या आचार्य द्रोण को बतायी ।

महर्षि च्यवन ने भी इसी विद्या के प्रभाव से इन्द्र के वज्र को स्तम्भित कर दिया था । श्रीमद्गोविन्दपाद की समाधि में विघ्न डालने वाली रेवा नदी का स्तम्भन श्री शंकराचार्य ने इसी विद्या के बल से किया भा । महामुनि श्रीनिम्बार्क ने एक परिव्राजक को नीमवृक्ष पर सूर्य का दर्शन इसी विद्या के प्रभाव से कराया था । अतः साधकों को चाहिए कि वे श्रीबगला की विधिपूर्वक उपासना करें ।

६. धूमावती - एक बार पार्वती ने महादेव जी से अपनी क्षुधा को निवारण करने का निवेदन किया । महादेव जी चुप रह गये । कई बार निवेदन करने पर भी जब देवाधिदेव ने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया, तब उन्होंने महादेव जी को ही निगल लिया । उनके शरीर से धूमराशि निकली । तब शिवजी ने शिवा से कहा कि 'आपकी मनोहर मूर्त्ति बगला अब 'धूमावती' या 'धूम्रा' कही जायगी ।' यह धूमावती वृद्धास्वरूपा, डरावनी और भूख-प्यास से व्याकुल स्त्री-विग्रहवत् अत्यन्त शक्तिमयी हैं । अभिचार कर्मों में इनकी उपासना का विधान है ।

विश्व की अमाङ्गल्यपूर्ण अवस्था की अधिष्ठात्री शक्ति 'धूमावती' हैं । ये विधवा समझी जाती हैं, अतएव इनके साथ पुरुष का वर्णन नहीं है । यहाँ पुरुष अव्यक्त है । चैतन्य, बोध आदि अत्यन्त तिरोहित होते हैं । इनके ध्यान में बताया गया है कि ये भगवती विविर्णा, चञ्चला, दुष्टा एवं दीर्घ तथा गलित अम्बर (वसन) धारण करने वाली, खुले केशों वाली, विरल दन्त वाली, विधवा रूप में रहने वाली, काक-ध्वज वाले रथ पर आरूढ, लम्बे-लम्बे पयोधरों वाली, हाथ में शूर्प (सूप) लिए हुए, अत्यन्त रूक्ष नेत्रों वाली, कम्पित-हस्ता, लम्बी नासिका वाली, कुटिल-स्वभावा, कुटिल नेत्रों से युक्त, क्षुधा, पिपासा से पीड़ित, सदैव भयप्रदा और कलह की निवास-भूमि हैं ।

पुत्र-लाभ, धन-रक्षा और शत्रु-विजय के लिए धूमावती की साधना उपासना का विधान है ।

७. त्रिपुरसुन्दरी - कालिकापुराण के अनुसार शिवजी की भार्या त्रिपुरा श्रीचक्र की परम नायिका है । परम शिव इन्हीं के सहयोग से सूक्ष्म से सूक्ष्म और स्थूल से स्थूल रूपों में भासते हैं । त्रिपुरभैरवी महात्रिपुरसुन्दरी की रथ वाहिनी हैं, ऐसा उल्लेख मिलता है ।

वास्तव में काली, तारा, छिन्नमस्ता, वगलामुखी, मातङ्गी, धूमावती - ये विद्याएं रूप और विग्रह में कठोर तथा भुवनेश्वरी, षोडशी, कमला और भैरवी अपेक्षाकृत माधुर्यमयी रूपों की अधिष्ठातृ विद्याएँ हैं । करुणा और भक्तानुग्रहाकांक्षा तो सब में समान हैं । दुष्टों के दलन-हेतु विराजित होकर नाना प्रकार की सिद्धियाँ प्रदान करती हैं ।

८. मातङ्गी - मतङ्ग मुनि की कन्या मातङ्गी कही गयी हैं । वस्तुतः वाणी-विलास की सिद्धि प्रदान करने में इनका कोई विकल्प नहीं । चाण्डाल रूप को प्राप्त शिव की प्रिया होने के कारण इन्हें 'चाण्डाली' या 'उच्छिष्ट चाण्डाली' भी कहा गया है । गृहस्थ-जीवन को सुखी बनाने, पुरुषार्थ-सिद्धि और वाग्विलास में पारङ्गत होने के लिए मातङ्गी-साधना श्रेयस्करी है ।

६. षोडशी - प्रशान्त हिरण्यगर्भ या सूर्य शिव हैं और उन्हीं की शक्ति है षोडशी, षोडशी का विग्रह या मूर्त्ति पञ्चवक्त्र अर्थात् पाच मुखों वाली है । चारों दिशाओं में चार और एक ऊपर की ओर मुख होने से इन्हें 'पञ्चवक्त्रा' कहा जाता है । ये पाँचों मुख तत्पुरुष, सद्योजात, वामदेव, अघोर और ईशान-शिव के इन पाँच रूपों के प्रतीक हैं ।

पूर्वोक्त पाँच दिशाओं के रंग क्रमशः हरित, रक्त, धूम्र, नील और पीत होने से मुख भी इन्हीं रंगों के हैं । देवी के दस हाथ हैं, जिनमें वे अभय, टंक, शूल, वज्र, पाश, खड्ग, अंकुश, घण्टा, नाग और अग्नि लिए हैं । ये बोधरूपा हैं । इनमें षोडश कलाएँ पूर्णरूपेण विकसित हैं, अतएव ये 'षोडशी' कहलाती हैं ।

षोडशी माहेश्वरी शक्ति की सबसे मनोहर श्रीविग्रह वाली सिद्ध विद्यादेवी हैं । १६ अक्षरों के मन्त्र वाली उन देवी की अङ्गकान्ति उदीयमान सूर्यमण्डल की आभा की भाँति हैं । उनके चार भुजाएँ एवं तीन नेत्र हैं । शान्त मुद्रा में लेटे हुए सदाशिव पर स्थित कमल के आसन पर विराजिता षोडशी देवी के चारों हाथों में पाश, अंकुश, धनुष और बाण सुशोभित हैं । वर देने के लिए सदा-सर्वदा उद्यत उन भगवती का श्रीविग्रह सौम्य और हृदय दया से आपूरित है । जो उनका आश्रय ग्रहण कर लेते हैं, उनमें और ईश्वर में कोई भेद नहीं रह जाता ।

श्रीविद्या - संस्कृत वाङ्मय में शक्ति उपासना की विविध विद्याएँ प्रचुर रूप से उपलब्ध हैं । इनमें सर्वश्रेष्ठ स्थान है श्रीविद्या साधना का । भारत वर्ष की यह परम रहस्यमयी सर्वोत्कृष्ट साधनाप्रणाली मानी जाती है । ज्ञान, भक्ति, योग, कर्म आदि समस्त साधनाप्रणालियों का समुच्चय ही श्रीविद्या है । ईश्वर के निःश्वासभूत होने से वेदों की प्रामाणिकता है । अतः सूत्र रूप से वेदों में एवं विशद रूप से तन्त्र - शास्त्रों में श्री विद्या - साधना के क्रम का विवेचन है ।

आचार्य शंकर भगवत्पाद 'सौन्दर्य-लहरी' में इसे इन शब्दों में प्रकट करते हैं -

चतुःषष्ट्या तन्त्रैः सकलमतिसंधाय भुवनं
स्थितस्तत्तत्सिद्धिप्रसवपरतन्त्रैः पशुपतिः ।
पुनस्त्वन्निर्बन्धादखिलपुरुषार्थैकघटना-
स्वतन्त्रं ते तन्त्रं क्षितितलमवातीतरदिदम् ॥

'पशुपति भगवान् शंकर वाममार्ग के चौंसठ तन्त्रों के द्वारा साधकों की जो-जो स्वाभिमत सिद्धि है, उन सब का वर्णन कर शान्त हो गए । फिर भी भगवती ! आपके निर्बन्ध अर्थात् आग्रह पर उन्होंने सकल पुरुषार्थों अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को प्रदान करने वाले इन श्रीविद्या-साधना-तन्त्र का प्राकट्य किया ।'

श्रीमत्शंकराचार्य 'सौन्दर्य-लहरी' में मन्त्र, यन्त्र आदि साधनाप्रणाली का वर्णन करते हुए इस श्रीविद्या-साधना की फलश्रुति इस प्रकार कहते हैं -

सरस्वत्या लक्ष्म्या विधिहरिसपत्नो विहरते
रतेः पातिव्रत्यं शिथिलयति रम्येण वपुषा ।
चिरं जीवन्नेव क्षपितपरशुपाशव्यतिकरः
परानन्दाभिख्यं रसयति रसं त्वद्भजनवान् ॥

(सौन्दर्य-लहरी १०१)

'देवि ललिते ! आपका भजन करने वाला साधक विद्याओं के ज्ञान से विद्यापतित्त्व एवं धनाढ्यता से लक्ष्मीपतित्त्व को प्राप्त कर ब्रह्मा एवं विष्णु के लिए 'सपन्त' अर्थात् अपरपति प्रयुक्त असूया का जनक हो जाता है । वह अपने सौन्दर्यशाली शरीर से रतिपति काम को भी तिरस्कृत करता है एवं चिरञ्जीवी होकर पशु-पाशों से मुक्त जीवन्मुक्त - अवस्था को प्राप्त हो कर 'परानन्द' नामक रस का पान करता है ।'

आचार्य शंकर भगवत्पाद ने सौन्दर्य-लहरी में स्तुति व्याज से श्रीविद्या-साधना का सार सर्वस्व बता दिया है और श्रीविद्या के पञ्चदशाक्षरी मन्त्र के एक-एक अक्षर पर बीस नामों वाले ब्रह्माण्डपुराणोक्त 'ललिता-त्रिशती' स्तोत्र पर भाष्य लिखकर अपने चारों मठों में श्रीयन्त्र द्वारा श्रीविद्या साधना का परिष्कृत क्रम प्रारम्भ कर दिया है । जन्म-जन्मान्तरीय पुण्य पुञ्ज के उदय होने से यदि किसी को गुरुकृपा से इस साधना का क्रम प्राप्त हो जाय और वह सम्प्रदाय पुरस्सर साधना करे तो कृतकृत्य हो जाता है, उसके समस्त मनोरथपूर्ण हो जाते हैं और वह जीवन्मुक्त-अवस्था को प्राप्त हो जाता है ।

१०. त्रिपुरभैरवी - क्षीयमान विश्व का अधिष्ठान दक्षिण मूर्त्ति कालभैरव हैं । उनकी शक्ति ही 'त्रिपुरभैरवी' है । उनके ध्यान में बताया गया है कि वे उदित हो रहे सहस्रों सूर्यों के समान अरुण कान्ति वाली और क्षौमाम्बरधारिणी होती हुई मुण्डमाला पहने हैं । रक्त से उनके पयोधर लिप्त हैं । वे तीन नेत्र एवं हिमांशु-मुकुट धारण किए, हाथ में जपवटी, विद्या, वर एवं अभयमुद्रा धारण किए हुए हैं । ये भगवती मन्द-मन्द हास्य करती रहती हैं ।

इन्द्रियों पर विजय और सर्वतः उत्कर्ष की प्राप्ति हेतु त्रिपुर-भैरवी की उपासना का विधान शास्त्रों में कहा गया है । त्रिपुरभैरवी की महिमा का वर्णन करते हुए शास्त्र कहते हैं -

वारमेकं पठन्मर्त्यो मुच्यते सर्वसंकटात् ।
किमन्यद् बहुना देवि सर्वाभीष्टफलं लभेत् ॥

हनुमान् - श्रीहनुमान् जी भगवान् श्रीराम के भक्त हैं । इनका जन्म वायुदेव के अंश से और माता अञ्जनि के गर्भ से हुआ है । श्रीहनुमान् जी बालब्रह्मचारी महान् वीर अत्यन्त बुद्धिमान्, स्वामिभक्त हैं ।

आदि काव्य के अनुसार ब्रह्मा द्वारा प्रेरित हो कर श्रीसूर्यदेव ने बालक हनुमान् को अपने तेज का सौवाँ भाग प्रदान करते हुए आशीर्वाद दिया कि मैं इन्हें शास्त्र ज्ञान दूँगा जिससे यह श्रेष्ठ वक्ता होंगे । शास्त्र ज्ञान में इनकी समता करने वाला कोई नहीं होगा -

तदास्य शास्त्रं दास्यामि येन वाग्मि भविष्यति ।
न चास्य भविता कश्चिद् सदृशः शास्त्रदर्शने ॥

(वा. रा. ७. ३६. १४)

श्रीविद्यार्णव तन्त्र में उनके पीताम्बर से अलंकृत रूप का ध्यान इस प्रकार है -

ध्यायेद् बालदिवाकरप्रतिनिभं देवारिदर्पापहं
देवेन्द्रप्रमुखैः प्रशस्तयशसं देदीप्यमानं रुचा ।
सुग्रीवादिसमस्तवानरयुतं सुव्यक्ततत्त्वप्रियं
संरक्तारुणलोचनं पवनजं पीताम्बरालङ्कृतम् ॥

(श्रीविद्यार्णवतन्त्र, द्वादशाक्षरमन्त्र ३३. १२)

'जिनके शरीर का वर्ण बालसूर्य के समान अरुण है, जो देव-शत्रुओं के दर्प को चूर्ण करने वाले हैं, देवेन्द्र आदि प्रमुख देवगण जिनका यशोगान करते हैं, जो अपनी कान्ति से उद्भासित हो रहे हैं, सुग्रीव आदि समस्त वानर जिन्हें घेरे हुए हैं, जो सुव्यक्त - श्रीरामतत्त्व के प्रेमी हैं, जिनके नेत्र लाल हैं, उन पीताम्बरधारी पवन नन्दन का ध्यान करना चाहिए ।'

मन्त्र महोदधि के १३वें पटल में हनुमान् जी के मन्त्रों का संग्रह किया गया है । जिसका उपजीव्य नारद पुराण पूर्वखण्ड ७४ अध्याय से ७८ अध्याय तथा सुदर्शन संहिता आदि तन्त्र ग्रन्थों को माना जा सकता है ।

हनुमान् जी समस्त अभीष्ट फलों को प्रदान करने वाले श्रेष्ठ देवता हैं -

हनुमान् देवता प्रोक्तः सर्वाभीष्टफलप्रदः ।

(श्रीविद्यार्णव २८. ११)

महामृत्युञ्जय - मन्त्रशास्त्र में वेदोक्त **'त्र्यम्बकं यजामहे०'** (ऋक् ७। ५६ ।१२, यजु० ३। ६०, अथर्व० १४। १। १७, तैत्ति० सं० १। ८। ६। १२, निरुक्त १४। ३५) इत्यादि को ही मृत्युञ्जय नाम प्राप्त है । पुराणों में, मन्त्रमहोदधि, मन्त्रमहार्णव, शारदातिलक, विविध निबन्ध-ग्रन्थों में तथा मृत्युञ्जय-तन्त्र, मृत्युञ्जय कल्प, मृत्युञ्जय पञ्चाङ्ग आदि में इस मन्त्र का भाष्य, विधान, पटल, पद्धति, स्तोत्र आदि सब कुछ मिलते हैं । शिवपुराण - सतीखण्ड ३८। २१ - ४२ में इसका विस्तृत भाष्य है । वहाँ इसी को शुक्राचार्य की 'मृतसञ्जीवनीविद्या' कहा गया है, (मृतसञ्जीवनी मन्त्रो मम सर्वोत्तमः स्मृतः। - शिवपुराण, रुद्रसंहिता, सतीखण्ड ३८। ३० का पूर्वार्ध) तथा स्वयं शुक्राचार्य ने ही इस मन्त्र का दधीचि को उपदेश किया है । 'विष्णुधर्मोत्तर' आदि में इसके हवनादि के भेद से अनेक अर्थ-कामसाधक आदि दूसरे भी काम्य प्रयोग बतलाए गए हैं । यथा -

त्र्यम्बकं यजामहेति होमः सर्वार्थसाधकः ।
धत्तूरपुष्पं सघृतं तथा हुत्वा चतुष्पथे ॥
शून्ये शिवालये वापि शिवात् कामानवाप्नुयात् ।
हुत्वा च गुग्गुलं राम स्वयं पश्यति शङ्करम् ॥

(विष्णुधर्म० २। १२५। २३ - २५)

ऋग्विधान आदि में भी ऐसा ही बतलाया गया है । 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' प्रकृति खण्ड के ५६ वें अध्याय में कहा गया है कि भगवान् श्रीकृष्ण ने अंगिरा की पत्नी को मृत्युञ्जय ज्ञान दिया था ।

पञ्चदेवोपासना क्यों आवश्यक

यह शरीर पृथ्वी, जल आदि पञ्च महाभूतों से निर्मित है । पञ्चमहाभूतों के पाँच देवों का शरीर में निवास है । सूर्य वायु के अधिष्ठातृ देव हैं । विष्णु अकाश तत्त्व हैं । शक्ति अग्नि तत्त्व हैं । ईश क्षिति तत्त्व हैं और जल तत्त्व के देव गणेश हैं । इन पाँच महाभूतों का व्यतिक्रम ही शरीर के अवयवों को प्रभावित करता है और अन्ततः ब्लड प्रेशर आदि रोगों का कारण बनता है । चूंकि इन देवताओं का सम्बन्ध सीधे पञ्च महाभूतों से है और इन्ही पञ्च महाभूतों से शरीर निर्मित है । अतः इनकी अर्चना से शरीर (पञ्च तत्त्वों) का प्रभावित होना स्वाभाविक है । अतः व्यतिक्रम न हो इसलिए पञ्चायतन पूजा आवश्यक है ।

दमनक एवं पवित्र पूजा पद्धति -

दमनक एवं पवित्र पूजा का वर्णन तेइसवें तरङ्ग में किया गया है । इसकी विधि सौ श्लोकों में बताई गई है । दमनक एक लता (द्रोण लता) है, जिसका प्रादुर्भाव रति के विलाप से गिरे अश्रु कणों से हुआ था । इसका विवेचन ज्ञानदीपविमर्शिनी टीका में विद्यानाथ ने इस प्रकार किया है -

दमनकपद्धतिः

अथ दमनकारोपणं द्विविधं बाह्याभ्यन्तरभेदेन -

हेलावलोकनबलाद्विलयं विधाय
कामं चकार तरसाभिनवं स शम्भुः ।
यद्दीप्तवीर्यविभवाश्रयणेन शक्तिः
साव्यात् त्रिलोकजननी त्रिपुरा जगन्ति ॥
देव्याः करोति परशक्तिमहोदयेन
दिव्यं वसन्तसमये दमनोत्सवं यः ।
कामान् नितान्तमिह कामिजनः समन्ता-
दाप्नोति शश्वदमितान् स्वहृदन्तरस्थान् ॥
दमनकस्य विधिं वक्ष्ये शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ।
येन सांवत्सरी पूजा साफल्यं भजते नृणाम् ॥
पूर्वं समाधिसंस्थस्य शिवस्यामिततेजसः ।
तपोनिकृत्तये कामः शक्रेण प्रेषितो यदा ॥
तदा ललाटनेत्राग्निज्वालाभिस्तेन शम्भुना ।
भस्मराशीकृतः कोपात् स कामस्तत्र विश्वजित् ॥

रतिः पतिवियोगार्ता प्रीतिः शोकाद् रुरोद च ।
तदश्रुपातादुद्भूता दमनस्य लता शुभा ॥
तद् रामणीयं सौरभ्यं पवित्रत्वं च शङ्करः ।
दृष्ट्वादाय मुद्रा दध्रे मूर्ध्नि तामतिकौतुकात् ॥
रतिप्रीतिशुचं ज्ञात्वा करुणाविष्टमानसः ।
अनङ्गं निर्ममे शम्भुर्भूयः संकल्पमात्रतः ॥
ततो वरं ददौ तस्मै कन्दर्पाय स शक्तिमान् ।
वसन्ते दामनीं पूजामस्माकं न करोति यः ॥
वत्सरार्चाफलं तस्य तव सर्वं भविष्यति ।
इत्यस्मात्कारणात् सन्तः कुर्वन्ति दमनोत्सवम् ॥

- इति विद्यानन्दनाथः ज्ञानदीपविमर्शिन्याम्, पृ० १३१ - १३२

पवित्र पद्धतिः

अथ पवित्रारोपणं बाह्याभ्यन्तरभेदेन लिख्यते । तत्र मिथुनसंक्रान्तिमारभ्य तुलासंक्रमणपर्यन्तमुभयपक्षचतुर्थ्यष्टमीनवमीचतुर्दशीनामेकस्यां तिथौ -

सौवर्णं राजतं ताम्रं कृतादिषु यथाक्रमम् ।
कलौ कार्पासजं वापि यथाशक्ति पवित्रकम् ॥
कर्तितं द्विजकन्याभिस्त्रिगुणं त्रिगुणीकृतम् ।
धौतं शुक्लं शुभं सूत्रमन्यदप्युपयुज्यते ॥
पट्टवल्कलपद्मोत्थं क्षौमं दार्भं शणोद्भवम् ।
मुञ्जादिसंभवं सूत्रं पवित्राय प्रशस्यते ॥
प्रणवश्चन्द्रमा वह्निर्ब्रह्म नागो गुहो रविः ।
सादाख्यः सर्वदेवाश्च क्रमेण नवतन्तुषु ॥

सोमशम्भुग्रन्थोक्तयुक्त्या नवतन्तुसूत्रं विधाय शिरोमन्त्राभिमन्त्रितेन पञ्चगव्येन संशोध्य मदनफलादिजलेन हृन्मन्त्रितेन प्रक्षाल्य पुनरस्त्रेणाभ्युक्ष्य नेत्रेणावरोध्य कवचेन ग्रथित्वा रक्तचन्दनकाश्मीरकस्तूरीचन्द्ररोचनाहरिद्रागैरिककषायकल्कादिना रञ्जयेत् । अन्यतमेन तदेति यथासम्पत्ति शिखामन्त्रेण रञ्जयित्वा समस्तेनाङ्गषट्केनोद्धृत्य मूलमन्त्रेण मण्डपेशाने स्थापयेत् । तत्र पूर्वेद्युरधिवासनार्थं निजबाहुमात्रं पञ्चाशद्गुणमेकग्रन्थि श्रीखण्डमण्डितं पवित्रकं विरच्य ततोऽपरेद्युरारोपणार्थमष्टोत्तरशतचतुःपञ्चाशत्सप्तविंशतिगुणमुत्तमादिक्रमेण षोडशद्वादशनवसंख्याधारग्रन्थि तत्पुर्यष्टकाभिप्रायेण स्वरैः षोडशभिरनपुंसकैर्द्वादशभिर्वर्गाद्यैः सक्षकारैर्नवभिः स्वगुणसंख्याकैरङ्गुलैः प्रतिपर्वमानं वा पवित्रत्रयं कुर्यात् ।

- इति विद्यानन्दनाथः ज्ञानदीपविमर्शिन्याम्, पृ० १२४ - १२५

इस प्रकार वर्ष भर के पूजन की फल प्राप्ति के लिए दमनक पूजा और आरोग्य की प्राप्ति के लिए पवित्र पूजा की जाती है ।

ग्रन्थ के भ्रामक स्थल

(१) द्वितीय तरङ्ग ६२ श्लोक में एक लाख जप कहा गया है । वहीं २.६३ में कृष्णाष्टम्यादितद् ... आदि श्लोक में प्रत्यहं साष्टसाहस्रं कहा गया है । अष्टमी से चतुर्दशी तक ७ दिन में ८५०० प्रतिदिन जप करते हुए मात्र ६० हजार ही जप होता है । यदि यह अर्थ किया जाय कि ८५०० से कम जप न हो तब समाधान हो सकता है ।

(२) त्रयोदश तरङ्ग (५४-७६) में हनुमान् जी का माला मन्त्र ५८८ वर्णों का कहा गया है । इन्हें गिनने में ५८३ ही वर्ण होते हैं । श्लोकों के अनुसार पूर्णरूप से मिलाया गया है किन्तु कहीं भी ५ अक्षरों की कोई गुञ्जाइश नहीं हो सकी । पञ्चकूट को एक-एक अक्षर माना जाता है । 'श्रीरामदूत' कहीं जोड़ दिया जाय तब ५८८ अक्षर हो जायेंगे । 'श्रीरामभक्तितत्पर' के पहले या बाद में इसे जुड़ना चाहिए था। किन्तु यह मूल में नहीं है अतः ५ स्थानों पर मैंने सन्धि तोड़कर इन्हें अलग किया है जिससे ५८८ अक्षर हो जाते हैं । ये स्थल हैं - 'सुत अञ्जना', अक्षकुमार, एहि एहि मूल श्लोक में इनकी सन्धि की हुई है ।

(३) २. ३० में 'पावकगेहिनी' टीका में है जब कि मूल में 'पावकमोहिनी' है । ५. २५ में 'फान्तोलार्घीशबिन्दुयुक्' पाठ न होकर 'मांसार्घीशबिन्दुयुक्' होना चाहिए । ११. ८६ में 'दृष्वा' के स्थान पर 'इष्ट्वा' (= यजन कर) होना चाहिए । १५. २२ में 'प्रोच्य' के स्थान पर 'प्रार्च्य' होना चाहिए । १६.१८ में 'पीयूषोन्नतनुं' के स्थान पर 'पीयूषोऽन्नतनुं' होना चाहिए । १६. ११६ में कृष्णे विन्ध्यात्मिका गलत पाठ है 'कृष्णेश विध यात्मिका' होना चाहिए । २२. ८६ में 'अक्षतानार्कधत्तूर' के स्थान पर 'अक्षतानाकधत्तूर' होना चाहिए ।

मन्त्रमहोदधि के पाठान्तर

पाठान्तरों का उल्लेख स्वयं नौका टीका में ग्रन्थकार ने किया है । भगवान् नृसिंह के ध्यान (१४. ५ श्लोक) में दो पाठान्तर दिए गए हैं । 'घनविरामहिमांशु समप्रभम्' के स्थान पर 'घनसमानलं शशिसमप्रभम्' पाठान्तर है जो छन्दोभंग होने से त्याज्य है । मन्त्रमहोदधि के ५.५२ में ३१ ही नाम हैं सर्वेश्वरी नहीं है । जिसे अन्य ग्रन्थ से जोड़ा गया है ।

ग्रन्थ का प्रयोजन

मन्त्रमहोधिकार श्रीमन्महीधर भट्ट ने स्वयं ग्रन्थ का प्रयोजन इस प्रकार कहा है -

हमने मन्त्र साधकों के सन्तोष के लिए षट्कर्मों (शान्ति, वश्य, स्तम्भन, विद्वेषण उच्चाटन और मारण) की विधि बताई है । सर्वप्रथम विधिवत् न्यास द्वारा आत्मरक्षा करने के बाद ही काम्य कर्मों का अनुष्ठान करना चाहिए । अन्यथा हानि और असफलता ही प्राप्त होती है । जो व्यक्ति शुभ अथवा अशुभ किसी भी प्रकार का काम्य कर्म करता है मन्त्र उसका शत्रु बन जाता है । इसलिए काम्यकर्म न करे, यही उत्तम है ।

अब प्रश्न होता है कि यदि काम्य कर्म करने का निषेध है तो इतनी बड़ी विधियुक्त पुस्तक के निर्माण का क्या हेतु है ? इसका उत्तर देते हैं -

विषयासक्त चित्त वालों के सन्तोष के लिए प्राचीन आचार्यों ने काम्य कर्म की विधि का प्रतिपादन किया है **किन्तु काम्य कर्म हितकारी नहीं है** । काम्य कर्म करने वालों के लिए केवल कामना सिद्धि मात्र फल की प्राप्ति होती है ।

किन्तु निष्काम भाव से देवताओं की उपासना करने वालों को सारी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती है । केवल सुख प्राप्ति के लिए प्रत्येक मन्त्रों के जितने भी प्रयोग बतलाये गए हैं उनकी आसक्ति का त्याग कर निष्काम रूप से देवता की पूजा करनी चाहिए ।

वेदों में कर्मकाण्ड, उपासना और ज्ञान तीन काण्ड बतलाये गए हैं ।[१] 'ज्योतिष्टोमेन यजेत' यह कर्मकाण्ड है, 'सूर्यो ब्रह्मेत्युपासीत' यह उपासना है, ये दोनों काण्ड ज्ञान के साधन हैं 'अयमात्मा ब्रह्म' यह ज्ञान है जो स्वयं में साध्य है । यही उक्त दोनों का फल भी है । इसलिए ज्ञान प्राप्ति के लिए वेदोदित कर्म और उपासना दोनों में ही वेदोक्त मार्ग के अनुसार प्रवृत्त होना चाहिए । देवता की उपासना से अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है । जिससे उत्तम ज्ञान की प्राप्ति होती है । कार्यकारणसंघात शरीर में प्रविष्ट हुआ जीव ही परब्रह्म है । इसी ज्ञान से साधक मुक्त हो जाता है । अतः मनुष्य देह प्राप्त कर देवताओं की उपासना से मुक्ति प्राप्त कर लेनी चाहिए । जो मनुष्य देह प्राप्त कर संसार बन्धन से मुक्त नही होता, वही महापापी है । भागवत में ऐसा ही कहा भी गया है -

नेह यत्कर्म धर्माय न विरागाय कल्पते ।
न तीर्थपदसेवायै जीवन्नपि मृतो हि सः ॥

- भाग० ३. २३. ५६

"इस संसार में जिस व्यक्ति का कर्म न तो धर्म के लिए होता है, न वैराग्य के लिए और न तीर्थपाद भगवान् की चरणसेवा के लिए ही होता है वह जीते जी भी मरे हुए के समान है ।"

इसलिए उपासना और कर्म से काम-क्रोधादि शत्रुओं का नाश कर आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए सत्पुरुषों को सतत प्रयत्न करते रहना चाहिए ।

दीपावली, १० नवम्बर, १९९९
३१/२१ लंका, वाराणसी

विद्वद्वशंवदः
सुधाकर मालवीय



१. मन्त्रमहोदधि २५. ७७-८१ ।

विषयानुक्रमणिका

त्रयोदशः तरङ्गः ३९२ – ४१६

हनूमन्मन्त्रनिरूपणम्

चतुर्दशः तरङ्गः ४१७ – ४४८

विष्णूगरुडमन्त्रनिरूपणम्

यन्त्र चित्रानुक्रमणिका

वर्णसंकेतसूची

अक्रूर	अं	कपोल	लृ
अक्षि	इ	कमण्डलू	ठ
अग्नि	र	कमला	श्रीं
अग्निबीज	रं	कर्ण	उ
अर्घीश	ऊ	कवच	हुं
अतिथीश	ॠ	काम (बीज)	क्लीं
अमरेश	उ	कामिका	त
अजपा	हंसः	कूर्चं	हूँ
अन्तिम	क्षं	कूर्म	च
अत्रि	द	कृष्ण	थ
अधर	ए	क्लीब (वर्ण)	ऋ ॠ लृ लॄ
अर्धनारीश	ढ्	क्रोधबीज	हुँ
अनन्त	अः	क्रोधीश	क
अनलः	रं	क्रिया	लः
अनलान्तिम	ल	खड्गीश	ब
अनुग्रह	औ	खम्	हं
अमृतबीज	वं	गणपतिबीज	गं
अम्भ	ब	गणनायक (बीज)	गं
अस्त्र (मन्त्र)	अस्त्राय फट्	गोविन्द	ई
आकाशबीज	हं	गदी	खः
आत्मभूः	क्लीं	गजमुख	गं
आप्यायनी	ॐ	गगन	ह
आषाढी	त	गिरिसुता (बीज)	ह्रीं
अंकुश	क्रों	गिरिजा	ह्रीं
औरस	औ	चक्री	कं
इन्दु	अनुस्वार	चतुरानन	क
इन्धिका	उ	चन्द्र	अनुस्वार
उमाकान्त	ण	चन्द्रमा	अनुस्वार
उषर्बुधप्रिया	स्वाहा	जनार्दन	फ
एकनेत्र	छ	जरासन	ट

जल	व	पावकमो(गे)हिनी	स्वाहा
झिण्टीश	ए	पाश	आं
ठद्वयं	स्वाहा	पाशबीज	आं
णान्त	त	पिनाकी	ल
तन्द्री	म	पुरुषोत्तम	य
तरल	त	प्राण	ह
तर्जनी	न	प्रीती	ध
तार	प्रणव (ॐ)	फान्त	ब
तीव्र	त	बलानुज	ब
तोयं	वः	बिन्दु	अनुस्वार
त्रपा	ह्री	ब्रह्मा	कः
त्रिध्रुव	प्रणव	भग	ए
त्रिपुरान्तक	ॠ	भगी	ए
त्रिमूर्ति	ईकारं	भानु	म
दक्षपापांगुलीमूल	ढ	भुवनेश्वरी	ह्रीं
दण्डी	तृ	भूबीज	ग्लौं, लं
दहनाङ्गना	स्वाहा	भृगु	स
दारक	ड	भौतिक	ए
दीर्घत्रय	आ ई ऊ	मनु	औ
दीर्घनन्दी	डा	मनोजन्मा	क्लीं
दीपिका	ऊ	मन्मथ	क्लीं
द्युतिसनयना	च्छि	मातृकाद्य	अ
ध्रुव	प्रणव	माधव	इ
नकुल	ह	माया	ह्रीं
नन्दी	ड	मारुत	य
नभ	हं	मीनेश	ध
नभबीज	हं	मुरारी	औ
नील	त	मुसली	छ
नृसिंहाङ्ग	औ	मेघ	घ
पञ्चान्तक	ग	मेरुः	क्षः
पद्मनाभ	ए	मेष	न
पद्मा	श्रीं	मृत्युः	श
परा	ह्रीं	मांस	ल
पावक	र	युग्वसु	र
पावककामिनी	स्वाहा	रमा	श्रीं

रति	ण	व्यापिनी	औ
रात्रीश	अनुस्वार	व्योम	ह
लकुली	ह	शक्ति	ह्रीं
लक्ष्मी	च	शक्तिबीज	ह्रीं
लक्ष्मी (बीज)	श्रीं	शशिशेखर	अनुस्वार
लज्जा	ह्रीं	शार्ङ्गी	ग
लांगलीश	ठ	शान्तिः	ई
लोहित	प	शिखी	फः
वक	श	शिरः	क
वर्म	हूं	शिव	ल
वराह	ह	शिवा	ह्रीं
वह्न्यासन	र	शिवोत्तम	घ
वह्नि	र	शुचिप्रिया	स्वाहा
वह्निकामिनी	स्वाहा	शूर	प
वह्निबीज	रं	शौरी	थ
वह्निवधू	स्वाहा	श्वेत	ष
वाक्	ऐं	सत्यः	द
वागीश	ऐं	सदागति	य
वाणी	ऐं	सदाशिव	ह
वामकर्ण	ऊ	सदृक्	इ
वामकूर्पर	छ	सद्य	ओ
वामनासिका	ऋ	समीरणः	यः
वाँमनेत्र	ई	सर्ग	विसर्ग
वामाक्षि	ई	सर्गिनन्दज	ठः
वाल	व	सात्वत	ध
वायु	य	सुधाबीज	वं
वायुबीज	यं	सूर्यः	मः
विष	म	सृष्टिः	कः
विधु	अनुस्वार	सृणि	क्रौं
विमल	लं	संकर्षण	औ
वियत्	ह	संवर्तक	क्ष
विशालाक्ष	थ	स्थिरा	ज
वेदादि	ॐ	स्मृति	ग
वैकुण्ठ	म	स्वर्गरितसवल्लभा	स्वाहा
व्याघ्रपाद	ड	हयानन	ह

हरिः	त	हंसः	सः
हाटकरेतस	वह्नि	हृत्	नमः
हिमाद्रिजा	ह्रीं	हृदय	नमः
हुताशन	र	हृल्लेखा	ह्रीं

संख्या संकेत सूची

अक्षि	दो	बाहु	दो
अधर	एक	भुजा	दो
अद्रि	सात	भू	एक
अर्क	बारह	मनु	चौदह
आदित्य	बारह	मुनि	सात
इषु	पाँच	रवि	बारह
क्ष्मा	एक	रस	छः
गुण	तीन	राम	तीन
चन्द्र	एक	रुद्र	एकादश
तिथि	पन्द्रह	वह्नयः	तीन
दिक्	दस	वसु	आठ
धरा	एक	वेद	चार
नक्षत्र	सत्ताइस	शिव	एकादश
नन्द	नौ	सागर	चार
नन्दा	नौ	सायक	पाँच
नेत्र	दो	सूर्य	बारह



मन्त्रमहोदधिः

॥ श्रीः ॥

श्रीमन्महीधरकृतः

मन्त्रमहोदधिः

स्वोपज्ञ-'नौका'टीकोपेतः 'अरित्र'हिन्दीव्याख्याविभूषितश्च

****

अथ प्रथमः तरङ्गः

मङ्गलाचरणम्

प्रणम्य लक्ष्मीनृहरिं महागणपतिं गुरुम् ।
तन्त्राण्यनेकान्यालोक्य वक्ष्ये मन्त्रमहोदधिम् ॥ १॥
प्रातरुत्थाय शिरसि ध्यात्वा गुरुपदाम्बुजम् ।
आवश्यकं विनिर्वर्त्य स्नातुं यायात् सरित्तटे ॥ २॥

---

* नौका *

नत्वा लक्ष्मीपतिं देवं स्वीये मन्त्रमहोदधौ ।
नावं विरचये रम्यां तरणाय गुणैर्युताम् ॥

तत्र तावन्मन्त्रमहोदधिनामकं तन्त्रं चिकिर्षुराचार्यः शिष्टाचारपरिपालनाय निर्विघ्नग्रन्थसमाप्तये चेष्टदेवतानमस्कारपूर्वकं ग्रन्थकरणं प्रतिजानीते – **प्रणम्येति**। लक्ष्म्या युक्तो नृहरिर्लक्ष्मीनृहरिः । मध्यमपदलोपीसमासः । गुरुं श्रीनृसिंहाश्रमम् । मन्त्रा एव महान्त्युदकानि धीयन्तेऽस्मिन्निति मन्त्रमहोदधिः ग्रन्थः ॥ १॥ तत्र प्रातरारभ्य मन्त्रिणः कृत्यमाह–**प्रातरिति** । स्पष्टम । गुरुपादाम्बुजगलिताऽमृतधारया मानसं स्नानं

---

* अरित्र *

साम्बं सदाशिवं देवं तन्त्रमार्गप्रदर्शकम् । मङ्गलाय च लोकानां भक्तानां रक्षणाय च ॥ १॥
विद्याप्रदं गणपतिं सर्वप्रत्यूहनाशकम् । भक्ताभीष्टप्रदातारं बुद्धिजाड्यापहारकम् ॥ २॥
तथा श्रेयस्करीं शक्तिं नत्वा मन्त्रमहोदधेः। भाषाटीकां वितनुते मालवीयः सुधाकरः ॥ ३॥
नारोचकीं न वा क्लिष्टां नाव्यक्तां न च विस्तृताम्। पदाक्षरानुगां स्पष्टां भावमात्रप्रबोधिनीम् ॥ ४॥

लक्ष्मी से युक्त श्रीनृसिंह भगवान्, महागणपति एवं श्रीगुरु (श्रीनृसिंहाश्रम) को नमस्कार कर तथा अनेक तन्त्र ग्रन्थों का आलोडन कर मन्त्र ही जिसमें महान् उदक हैं ऐसे मन्त्रमहोदधि नामक ग्रन्थ का (मैं महीधर) निर्माण करता हूँ ॥ १॥

मन्त्रवेत्ता ब्राह्ममुहूर्त में उठकर शिरःप्रदेश में अपने श्रीगुरु के चरणकमलों का ध्यान

श्रौतेन विधिना स्नात्वा मन्त्रस्नानं समाचरेत् ।
स्मार्तसन्ध्यां मन्त्रसन्ध्यां कृत्वा देवं विचिन्तयेत् ॥ ३ ॥

द्वारपूजाक्रमः

गृहद्वारमथागत्य द्वारपूजां समाचरेत् ।
द्वारमस्त्राम्बुना प्रोक्ष्य गणेशं चोर्ध्वतो यजेत् ॥ ४ ॥
महालक्ष्मीं दक्षभागे वामभागे सरस्वतीम् ।
पुनर्दक्षे यजेद् विघ्नं गङ्गां च यमुनामपि ॥ ५ ॥
पुनर्वामे क्षेत्रपालं स्वः सिन्धुयमुने अपि ।
पुनर्दक्षे तु धातारं विधातारं तु वामतः ॥ ६ ॥
तद्वन्निधि[१] शङ्खपद्मौ ततोऽर्च्चेद् द्वारपालकान् ।

प्राणायामविधिः

द्वारपूजां विधायेत्थं प्रविश्यार्चनमन्दिरम् ॥ ७ ॥

कुर्यात् – इत्यादि पूजातरङ्गे (२१) वक्ष्यति ॥ २–३ ॥ **अस्त्राम्बुना** । अस्त्राय फडित्यभिमन्त्रितजलेन ॥ ४ ॥ * ॥ ५–६ ॥ शङ्खपद्मौ निधी तद्वद्दक्षवामयोः द्वारपालांस्तत्तद्देवानां वक्ष्यमाणान् ॥ ७ ॥ * ॥ ८ ॥

करे । फिर आवश्यक शौचादि क्रिया से निवृत्त होकर स्नान के लिए किसी नदी तट पर जाए ॥ २ ॥

सरिता में श्रौतविधि से स्नान कर मन्त्रस्नान करे । तदनन्तर स्मृतिशास्त्रों में कही गयी विधि के अनुसार सन्ध्योपासन करे ॥ ३ ॥

विमर्श — स्नान तीन प्रकार के कहे गये हैं – १. कायिकस्नान, २. मन्त्रस्नान तथा ३. मानस स्नान । कायिक स्नान जल से, मन्त्रस्नान मन्त्र को पढ़ते हुए भस्मादि द्वारा तथा मानस स्नान गुरु के चरणकमल से निकली हुई अमृतधारा से करना चाहिए । इसका वर्णन पूजा तरङ्ग (२१) में आगे करेंगे ॥ ३ ॥

द्वारपूजा — तदनन्तर घर के दरवाजे पर आकर द्वार की पूजा करनी चाहिए । उसकी विधि इस प्रकार है - प्रथमतः साधक द्वार को 'अस्त्र-मन्त्र' (अस्त्राय फट्) से अभिमन्त्रित जल से प्रोक्षण करे । तत्पश्चात् उसके ऊपर स्थित श्रीगणेश देवता का पूजन करना चाहिए ॥ ४ ॥

पुनः द्वार के दक्षिण भाग में महालक्ष्मी तथा वामभाग में महासरस्वती का पूजन करे । फिर दाहिनी ओर विघ्नेश्वर, गङ्गा एवं यमुना का पूजन करे ॥ ५ ॥

तदनन्तर वाम भाग में क्षेत्रपाल (स्वर्ग) सिन्धु तथा यमुना का पूजन कर दक्षिण भाग में धाता तथा वामभाग में विधाता का पूजन करे । तदनन्तर द्वार के दक्षिण में शङ्खनिधि और वामभाग में पद्मनिधि का पूजन कर आगे कहे जाने वाले द्वार स्थित तत्तद्देवता रूप द्वारपालों का पूजन करे ॥ ६-७ ॥

---

१. शङ्खनिधये नमः। पद्मनिधये नमः।

उपविश्यासने नत्वा गणेशगुरुदेवताः ।
प्राणानायम्य तारेण पूरकुम्भकरेचकैः ॥ ८ ॥
द्वात्रिंशता चतुःषष्ट्या क्रमात् षोडशसङ्ख्यया ।
देवार्चायोग्यताप्राप्त्यै भूतशुद्धिं समाचरेत् ॥ ६ ॥
मूलाधारस्थितां देवीं कुण्डलीं परदेवताम् ।
बिसतन्तुनिभां विद्युत्प्रभां ध्यायेत् समाहितः ॥ १० ॥
मूलाधारात् समुत्थाप्य संङ्गतां हृदयाम्बुजे ।
सुषुम्नामार्गमाश्रित्यादाय जीवं हृदम्बुजात् ॥ ११ ॥
प्रदीपकलिकाकारं ब्रह्मरन्ध्रगतं स्मरेत् ।
जीवं ब्रह्मणि संयोज्य हंसमन्त्रेण साधकः ॥ १२ ॥
पादादिब्रह्मरन्ध्रान्तं स्थितं भूतगणं स्मरेत् ।
स्ववर्णबीजाकृतिभिर्युक्तं तद्विधिरुच्यते ॥ १३ ॥

द्वात्रिंशद्वारं प्रणवजपन् प्राणं पूरयेत् । चतुःषष्टिवारं जपन् कुम्भयेत्। षोडशवारं जपन् रेचयेदित्यर्थः ॥ ६ ॥ मूलाधारात् कुण्डलिनीमुत्थाप्य समाहितः सन्ध्यायेत् ॥ १० ॥ हृदो जीवं गृहित्वा सुषुम्नामार्गेण ब्रह्मरन्ध्रं नीत्वा ब्रह्मणि स्थापयेदिति गुरूपदेशगम्योऽर्थो योगिना ज्ञेयः। योगाभावे स्मरणमात्रं विधेयम् ॥ ११–१२॥ वर्णाः

प्राणायाम की विधि - इस प्रकार द्वारपूजा संपादन कर पूजागृह में प्रवेश कर आसन पर बैठ कर गणेश, गुरु एवं इष्टदेवता को प्रणाम करना चाहिये । बत्तीस बार प्रणव का जप करते हुए प्राणवायु को ऊपर खींच कर पूरक, चौंसठ बार प्रणव का जप करते हुए प्राणवायु को रोक कर कुम्भक तथा सोलह बार प्रणव का जप करते हुए प्राणवायु को छोड़ते हुए रेचक द्वारा प्राणायाम करे । तदनन्तर देवार्चन की योग्यता प्राप्त करने के लिये 'भूतशुद्धि' की क्रिया करे ॥ ७-६ ॥

विमर्श - 'भूतशुद्धि' वह क्रिया है जिसके द्वारा शरीरगत पृथ्व्यादि पञ्चतत्त्वों को शुद्ध कर अव्यय परमात्मा के अर्चन की योग्यता प्राप्त की जाती है ॥ ६ ॥

भूतशुद्धि - भूतशुद्धि की विधि इस प्रकार है - सर्वप्रथम मूलाधार चक्र में स्थित कमलनाल तन्तु के समान एवं सूक्ष्म विद्युत प्रभा के समान देदीप्यमान परदेवता-स्वरूप कुण्डलिनी का एकाग्रचित्त हो ध्यान करे । पुनः उस कुण्डलिनी को मूलाधार से सुषुम्ना मार्ग द्वारा ऊपर ले जा कर हृदयकमल में स्थापित करे । वहाँ प्रदीप शिखा के आकार वाले जीव से संयुक्त कर पुनः ब्रह्मरन्ध्र में स्थित सहस्रार चक्र में ले जा कर स्थापित कर इस प्रकार ध्यान करना चाहिए । यतः वहाँ परमात्मा परब्रह्म का निवास है, अतः साधक को 'हंसः आदि' मन्त्र का जप करते हुए जीव सहित कुण्डलिनी को उस परमात्मा में संयुक्त कर देना चाहिए ॥ १०-१२ ॥

इस शरीर में पञ्चतत्त्व अपने अपने वर्ण (रंग) आकृति (आकार) एवं बीजाक्षर से युक्त हो कर पैर के तलवे से ले कर ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त स्थित हैं । अतः उनके

पादादिजानुपर्यन्तं चतुष्कोणं सवज्रकम् ।
भूबीजाढ्यं स्वर्णवर्णं स्मरेदेवनिमण्डलम् ॥ १४ ॥
जान्वाद्यानाभिचन्द्रार्द्धनिभं पद्मद्वयाङ्कितम् ।
वंबीजयुक्तं श्वेताभमम्भसो मण्डलं स्मरेत् ॥ १५ ॥
नाभेर्हृदयपर्यन्तं त्रिकोणं स्वस्तिकान्वितम् ।
रंबीजेन युतं रक्तं स्मरेत् पावकमण्डलम् ॥ १६ ॥
हृदो भ्रूमध्यपर्यन्तवृत्तं षड्बिन्दुलाञ्छितम् ।
यंबीजयुक्तं धूम्राभं नभस्वन्मण्डलं स्मरेत् ॥ १७ ॥
आब्रह्मरन्ध्रं भ्रूमध्याद् वृत्तं स्वच्छमनोहरम् ।
हंबीजयुक्तमाकाशमण्डलं प्रविचिन्तयेत् ॥ १८ ॥

पीतादयः । बीजानि लमित्यादीनि । आकृतयश्चतुष्कोणादयः । तद्युक्तं भूतगणम् ॥ १३ ॥ तदेव दर्शयति – **पादादीति** ॥ १४ ॥ भूमण्डले यदिन्द्रियं गमनं घ्राणं गन्धः ब्र ह्मनिवृत्तिः समानः गन्तव्यो देशोऽपि । एवमष्टौ पदार्थाश्चिन्त्या । एवं जलमण्डलम् ॥ १५ ॥ * ॥ १६–२१ ॥

उन उन रंगों, आकृतियों एवं बीजाक्षरों का स्मरण कर भूतशुद्धि करनी चाहिए । उसका विधान इस प्रकार है - ॥ १३ ॥

पैर के तलवे से ले कर जानुपर्यन्त **पृथ्वी** तत्त्व का स्मरण करे । इसकी आकृति चौकोर एवं वज्र के समान है । उसका भू बीज (लं) यह बीजाक्षर है तथा वर्ण स्वर्ण के समान पीला है । इस प्रकार साधक को भू-तत्त्व का ध्यान करना चाहिए ॥ १४ ॥

जानु से ले कर नाभिपर्यन्त **जल** तत्त्व है । जिसकी आकृति अर्धचन्द्राकार तथा उसका वर्ण श्वेत है । इसमें दो कमल के चिन्ह हैं । इसका बीज 'वम्' अक्षर है, इस प्रकार वहाँ सोम - मण्डल का ध्यान करना चाहिए ॥ १५ ॥

नाभि से ले कर हृदय पर्यन्त **अग्नि** तत्त्व है । इसकी आकृति स्वस्तिकयुक्त त्रिकोणाकार है । वर्ण रक्त है तथा 'रम्' यह बीजाक्षर है । इस प्रकार वहाँ अग्निमण्डल का ध्यान करना चाहिए ॥ १६ ॥

हृदय से ले कर भ्रूमध्य पर्यन्त **वायु** तत्त्व है जो गोलाकार एवं षड्बिन्दुओं से युक्त हैं, इसका वर्ण धूम्र के समान है तथा 'यम्' बीजाक्षर है । इस प्रकार वहाँ वायुमण्डल का ध्यान करना चाहिए ॥ १७ ॥

भ्रूमध्य से ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त **आकाश** तत्त्व है जो अत्यन्त मनोहर एवं वृत्ताकार है । इसका वर्ण स्वच्छ है । यह 'हम्' बीजाक्षर से युक्त है । इस प्रकार वहाँ आकाशमण्डल का ध्यान करना चाहिए ॥ १८ ॥

विमर्श - इस प्रकार पञ्चमहाभूत के ध्यान से साधक को शुद्धि प्राप्त होती है ॥ १८ ॥

पृथ्वी आदि मण्डलों में अपने गमन एवं आदान आदि विषयों के साथ पाद, हस्त, पायु, उपस्थ एवं वाक् - इन कर्मेन्द्रियों का गन्ध, रस, रूप, स्पर्श एवं शब्दादि

पद्धस्तपायूपस्थावाक्क्रमाद्ध्येया धरादिगाः ।
स्वकीय[1]विपर्ययैर्युक्ता गमनग्रहणादिभिः ॥ १९ ॥
घ्राणं च रसना चक्षुः स्पर्शनं श्रोत्रमिन्द्रियम् ।
क्रमाद्ध्येयं धरादिस्थं गन्धादिगुणसंयुतम् ॥ २० ॥
ब्रह्मविष्णुशिवेशानाः सदाशिवइतीरिताः ।
धरादिभूतसङ्घेशा ध्येयास्तत्मण्डलेषु ते ॥ २१ ॥
निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च विद्याशान्तिश्चतुर्थिका ।
शान्त्यतीतेति पञ्चैव कला ध्येया धरादिगाः ॥ २२ ॥
समानोदानव्यानाश्चापानप्राणौ च वायवः ।
धरादिमण्डलगताः पञ्चध्येयाः क्रमादिमे ॥ २३ ॥
एवंभूतानि[2] सञ्चिन्त्य प्रत्येकं प्रविलापयेत् ।
भुवं जले जलं वह्नौ वह्निं वायौ नभस्यमुम् ॥ २४ ॥
विलाप्य खमहङ्कारे महत्तत्त्वेप्यहङ्कृतिम् ।
महान्तं प्रकृतौ मायामात्मनि प्रविलापयेत् ॥ २५ ॥

हस्तग्रहणग्राह्यरसनारसविष्णुप्रतिष्ठोदानाः । **तेजसि** – पायुविसर्गविसर्जनीयचक्षूरूपं शिवविद्याव्यानाः । **वायौ** उपस्थानदस्त्रीस्पर्शनस्पर्शेशानशान्त्यपानाः । **नभसि** – वाग्वक्तव्यवदनश्रोत्रशब्दसदाशिवशान्त्यतीताप्राणाः ॥ २२–२४ ॥ * ॥ २५–२८ ॥

विषयों का तथा १. नासिका, २. जिह्वा, ३. चक्षु, ४. त्वक् एवं ५. कर्ण - इन सभी पाँच ज्ञानेन्द्रियों का चिन्तन करना चाहिए ॥ १९-२० ॥

इन तत्त्वों के क्रमशः १. ब्रह्मा, २. विष्णु, ३. शिव, ४. ईशान एवं ५. सदाशिव देवता कहे गये हैं । इनकी १. निवृत्ति, २. प्रतिष्ठा, ३. विद्या, ४. शान्ति एवं ५. शान्त्यतीता - ये क्रमशः कलायें हैं तथा १. समान, २. उदान, ३. व्यान, ४. अपान एवं ५. प्राण इनके पञ्च वायु हैं । अतः पृथिव्यादि मण्डलों में क्रमशः इनका भी ध्यान करना चाहिए ॥ २१-२३ ॥

विमर्श - इस प्रकार से निष्कर्ष हुआ कि पृथ्वी आदि मण्डलों में - पञ्चकर्मेन्द्रियों, पाँच विषयों, पञ्चज्ञानेन्द्रियों का चिन्तन कर उन तत्त्वों के पाँच देवता, पाँच कलाएँ और पञ्चवायु का भी ध्यान करे ॥ २१-२३ ॥

इस प्रकार पञ्चभूततत्त्वों का ध्यान कर भूमि को जल में, जल को अग्नि में, अग्नि को वायु में, वायु को आकाश में, आकाश को अहङ्कार में, अहङ्कार को महत्तत्त्व में,

---

१. स्वकीयविषयसंयुक्तागमनग्रहणादिभिश्च युक्ता इत्यर्थः। **विषयास्तु** – गन्तव्यदेश - ग्राह्यवस्तुविसर्जनीयविटस्त्रीयोनिवक्तव्यवस्तुमात्रात्मकाः । **गमनादयस्तु** – गमनग्रहणविसर्ग–स्त्रीयोनिस्पर्शवर्जनानन्दवदनरूपा इति सांप्रदायिकाः ।

२. एवमिति चतुष्कोणं सवज्रकं भूबीजाढ्यं स्वर्णवर्णपदाद्यष्टकयुक्तभूमण्डलं चिन्तयेत् । एवमेवाग्निमेषु चतुर्ष्विति भावः ।

शुद्धसच्चिन्मयो भूत्वा चिन्तयेत् पापपूरुषम् ।
दक्षकुक्षिस्थितं कृष्णमङ्गुष्ठपरिमाणकम् ॥ २६ ॥
विप्रहत्याशिरो युक्तं कनकस्तेयबाहुकम् ।
मदिरापानहृदयं गुरुतल्पकटीयुतम् ॥ २७ ॥
पापिसंयोगिपद्द्वन्द्वमुपपातकरोमकम् ।
खड्गचर्मधरं दुष्टमधोवक्त्रं सुदुःसहम् ॥ २८ ॥
वायुबीजं स्मरन् वायुं संपूर्यैनं विशोषयेत् ।
स्वशरीरयुतं मन्त्री वह्निबीजेन निर्दहेत् ॥ २९ ॥
कुम्भके परिजप्तेन ततः पापनरोद्भवम् ।
बहिर्भस्मसमुत्सार्य्य वायुबीजेन रेचयेत् ॥ ३० ॥
सुधाबीजेन देहोत्थं भस्मसंप्लावयेत् सुधीः ।
भूबीजेन घनीकृत्य भस्मतत्कनकाण्डवत् ॥ ३१ ॥
विशुद्धमुकुराकारं जपन्बीजं विहायसः ।
मूर्द्धादिपादपर्यन्तान्यङ्गानि रचयेत् सुधीः ॥ ३२ ॥

वायुबीज यं, वह्निबीजं रम् ॥ २९–३०॥ सुधाबीजं वं, भूबीजं लं, नभो बीजं हं, तेन शरीरं सावयवं कुर्यात् ॥ ३१–३२ ॥

महत्तत्त्व को प्रकृति में तथा प्रकृति को माया में एवं माया को आत्मा में विलीन कर देना चाहिए ॥ २४-२५ ॥

इस प्रकार शुद्ध सच्चिदानन्दमय आत्मस्वरूप हो कर पापपुरुष का ध्यान करना चाहिए । इसका स्वरूप इस प्रकार है - पापपुरुष का निवास वामकुक्षि में है वह कृष्ण वर्ण का तथा अङ्गुष्ठ मात्र परिमाण वाला है, उसके शिर ब्रह्महत्या है, सुवर्णस्तेय उसके हाथ हैं, मदिरापान उसका हृदय है, गुरुतल्पगमन उसकी कटि है, उसके दोनों पैर पापपुरुषों के संसर्ग से युक्त हैं, उपपातक उसके रोम हैं । वह १ खड्ग (अविवेक) एवं २ चर्म (अहङ्कार) धारण किये हुये हैं । वह दुष्ट है तथा मुख नीचे किये रहता है, जो अत्यन्त भयानक भी है ॥ २६-२८॥

अब उसके भस्म करने कर उपाय कहते हैं - वायु बीज 'यं' का स्मरण कर पूरक विधि से उस पापपुरुष का शोषण करे । फिर अग्नि बीज 'रम्' का जप करते हुये साधक अपने शरीर के साथ उसे भस्म कर देवे । तदनन्तर पुनः वायु बीज (यं) का जप कर उस भस्मीभूत पापपुरुष को रेचक द्वारा बाहर निकाल देवे ॥ २९-३० ॥

तदनन्तर बुद्धिमान साधक सुधा बीज 'वम्' का जप करते हुए उस देह के भस्म को आप्लावित (आर्द्र) करे । फिर भू बीज 'लम्' इस मन्त्र का जप कर भस्म को घना सोने के अण्डे के समान कठोर बनावे । तदनन्तर विशुद्ध दर्पण के समान स्वच्छ आकाश बीज 'हम्' का जप करते हुए शिर से ले कर पैर तक के अङ्गों का निर्माण करे ॥ ३१-३२ ॥

आकाशादीनि भूतानि पुनरुत्पादयेच्चितः[1] ।
सोऽहं मन्त्रेण चात्मानमानयेद् हृदयाम्बुजे ॥ ३३ ॥
कुण्डलीं जीवमादाय परसंगात् सुधामयम् ।
संस्थाप्य हृदयाम्भोजे मूलाधारगतां स्मरेत् ॥ ३४ ॥

प्राणप्रतिष्ठा

भूतशुद्धिं विधायैवं प्राणस्थापनमाचरेत् ।
प्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्य[2] मुनयोऽजेशपद्मजाः ॥ ३५ ॥
छन्दऋग्यजुषं सामप्राणशक्तिस्तु देवता ।
पाशो बीजं त्रपा शक्तिर्विनियोगोऽसुसंस्थितौ ॥ ३६ ॥
ऋषीञ्छिरसि वक्त्रे तु छन्दांसि हृदिदेवताम् ।

चितः ब्रह्मणः सकाशात् ॥ ३३ ॥ * ॥ ३४–३५ ॥ पाशः आं । त्रपा ह्रीं । असुसंस्थितौ = प्राणस्थापने विनियोगः ॥ ३६ ॥ * ॥ ३७ ॥

फिर चित्स्वरूप आत्मा से आकाशादि पञ्चभूतों को उत्पन्न कर 'सोऽहम्' इस मन्त्र का जप कर हृदयकमल में आत्मा को स्थापित करे । फिर उस परतत्त्व आत्मा से सुधामयी कुण्डलिनी तथा जीव को ले कर जीव को हृदयकमल में और कुण्डलिनी को मूलाधार में स्थापित कर उनका स्मरण करे ॥ ३३-३४ ॥

प्राणप्रतिष्ठा - इस प्रकार भूतशुद्धि कर उसमें पुनः प्राणप्रतिष्ठा करे । उसके विनियोग की विधि इस प्रकार है - ॐ अस्य श्रीप्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्य अजेशपद्मजाऋषयः ऋग्यजुःसामानि छन्दांसि प्राणशक्तिर्देवता पाश (आं) बीजं त्रपा (ह्रीं) शक्तिः क्रौं कीलकं प्राणप्रतिष्ठापने विनियोगः ॥ ३५-३६ ॥

तदनन्तर ऋषियों के नाम ले कर शिर में, छन्द का नाम लेकर मुख में, देवता का नाम ले कर हृदय में, बीजाक्षर का उच्चारण कर गुह्यस्थान में और शक्ति का नाम ले कर पैर में न्यास कर फिर (वक्ष्यमाण रीति से) षडङ्गन्यास करना चाहिये ॥ ३७ ॥

विमर्श - ऋष्यादिन्यास - १. अजेशपद्मजाऋषिभ्यो नमः शिरसि, २. ऋग्यजुःसामछन्देभ्यो नमः मुखे, ३. प्राणशक्तिर्देवतायै नमः हृदि, ४. आं बीजाय नमः गुह्ये, ५. ह्रीं शक्तये नमः

---

१. चित इति । विलापनव्युत्क्रमेण चिदादितो मायादिप्रादुर्भावयेत् । अहङ्कारादित आकाशादीनि भावयेदित्यर्थः ।

२. अस्य श्रीप्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्य अजेशपद्मजाऋषयः ऋग्यजुःसामानि च्छन्दांसि प्राणशक्तिर्देवता आं बीजं ह्रीं शक्तिः क्रौं कीलकं प्राणस्थापने विनियोगः ।

प्रयोगस्तु – ङं कं खं घं गं नभो वाय्वग्निवार्भूम्यात्मने हृदयाय नम इत्यादि एवमेवाग्रेपि स्वस्वजातियुक्तं न्यसेत् ।

तथाहि – ञं चं छं झं जं शब्दस्पर्शरूपरसगन्धात्मने शिरसे स्वाहा । णं टं ठं ढं डं श्रोत्रत्वङ्नयनजिह्वाघ्राणात्मने शिखायै वषट् । नं तं थं धं दं वाक्पाणिपादपायूपस्थात्मने कवचाय हुं । मं पं फं भं बं वक्तव्यादानगमनविसर्गानन्दात्मने नेत्रत्रयाय वौषट् । शं यं रं वं लं हं षं क्षं सं लं बुद्धिमनोहंकारचित्तात्मने अस्त्राय फट् ।

गुह्ये बीजं पदोः शक्तिं न्यस्य कुर्यात्षडङ्गकम् ॥ ३७ ॥
कवर्गनभआद्यैर्हृच्च शब्दाद्यैः शिरः स्मृतम् ।
टश्रोत्राद्यैः शिखाप्रोक्ता तवर्गाद्यैस्तनुच्छदम् ॥ ३८ ॥
पवक्तव्यादिभिर्नेत्रमस्त्रं येनान्तरिन्द्रियैः ।
आत्मनेतान्मनूनङ्गान् विन्यसेद् हृदयादिषु ॥ ३९ ॥
पञ्चमं प्रथमं पश्चाद् द्वितीयं च चतुर्थकम् ।
तृतीयमित्थं क्रमतो वर्गवर्णान् समुच्चरेत् ॥ ४० ॥
यवर्गेऽप्येवमुच्चार्य नभः श्वेतोऽन्तिमो भृगुः ।
विमलश्चेति चोच्चार्याः क्रमाद्वर्णाः सबिन्दवः ॥ ४१ ॥
नभो वाय्वग्निवार्भूमिनभ आदय ईरिताः ।
शब्दस्पर्शौ रूपरसगन्धाः शब्दादयो मताः ॥ ४२ ॥
श्रोत्रं त्वङ्नयनं जिह्वाघ्राणं श्रोत्रादयः स्मृताः ।
वाक्पाणी पादपायू चोपस्थौ वागादयः पुनः ॥ ४३ ॥
वक्तव्यादानगमनविसर्गानन्दसंज्ञकाः ।
वक्तव्याद्या बुद्धिमनोहंकाराश्चित्तसंयुताः ॥ ४४ ॥
अन्तरिन्द्रिय संज्ञाः स्युरेवमुक्तं षडङ्गकम् ।

कवर्गेति क्रमतः पञ्चमममतिप्रयोगः ङं कं खं घं गं आकाशवायुतेजो-जलपृथिव्यात्मने हृदयाय नम इत्यादि ॥ ३८ ॥ * ॥ ३९-४५ ॥

पादयोः, ६. क्रौं कीलकाय नमः सर्वाङ्गे ॥ ३७॥

कवर्ग एवं नभ आदि से हृदय में, चवर्ग एवं शब्दादि से शिर में, टवर्ग एवं श्रोत्रादि से शिखा में, तवर्ग एवं वाक् आदि से कवच में, पवर्ग एवं वक्तव्यादि से नेत्र में, यवर्ग एवं अतीन्द्रियादि से करतल में न्यास करना चाहिए । फिर अपने हृदयादि अङ्गों में इन मन्त्रों का न्यास करना चाहिए ॥ ३८-३९॥

न्यास का प्रकार - न्यास में पहले प्रत्येक वर्ग का पञ्चम वर्ण, फिर क्रमशः प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ तदनन्तर तृतीय वर्ण, इन सभी का अनुस्वार सहित उच्चारण करना चाहिए । यवर्ग में प्रथम शं यं रं वं लं इन पाँच अक्षरों का उच्चारण कर नभ (हं), श्वेत (षं), तिभ (क्षं), भृगु (सं) एवं विमल (लं) इन अक्षरों को सानुस्वार उच्चारण करना चाहिए । श्लोक में नभ आदि का अर्थ नभः 'वाय्वग्निवार्भूमि' है, शब्दादि का अर्थ 'शब्दस्पर्शरूपरसगन्ध' है श्रोत्रादि का अर्थ 'श्रोत्रत्वङ्नयन जिह्वाघ्राण' है, वाक् आदि का अर्थ 'वाक्पाणि-पादपायूपस्थ' है, वक्तव्यादि का अर्थ 'वक्तव्यादानगमनविसर्गानन्द' है तथा अन्तरिन्द्रिय का अर्थ 'बुद्धिमनोहङ्कारचित्त' है, इस प्रकार इन श्लोकों से षडङ्गन्यास का प्रकार बताया गया है ॥ ४०-४५॥

विमर्श - इन श्लोकों का स्पष्टार्थ निम्नलिखित है -

नाभेरारभ्य पादान्तं पाशबीजं प्रविन्यसेत्॥ ४५॥
नाभ्यन्तं हृदयाच्छक्तिं हृदन्तं मस्तकाच्छृणिम्।
[1]त्वगसृङ्मांसमेदोस्थिमज्जाशुक्राणि विन्यसेत्॥ ४६॥
आत्मने हृदयान्तानि यादिसप्तादिकान्यपि।
ओजः सद्यान्विताकाशपूर्वं प्राणं तु खादिकम्॥ ४७॥
भृग्वादिकं न्यसेज्जीवमेतान् हृदयदेशतः।
यकाराद्या[2] आद्यवर्णाः सर्वेस्युश्चन्द्रभूषिताः॥ ४८॥

शक्तिं ह्रीं श्रृणिं क्रौं ॥ ४६॥ आत्मने इति । आत्मने नम इत्यन्तानि त्वगादीनि हृदि न्यसेत् यादिवर्णपूर्वाणि यं त्वगात्मने नम इत्यादि । सद्य ॐकारस्तदन्वितआकाशो हः तदाद्यमोजः हों ओज आत्मने नमः । खं हः तदादिकं प्राणं हं प्राणात्मने नमः॥ ४७॥ भृगुः सः । तदादिकं जीवात्मने नमः । यादयो

ॐ ङं कं खं घं गं नभोवाय्वग्निवार्भूम्यात्मने हृदयाय नमः ।
ॐ ञं चं छं झं जं शब्दस्पर्शरूपरसगन्धात्मने शिरसे स्वाहा ।
ॐ णं टं ठं ढं डं श्रोत्रत्वङ्नयनजिह्वाप्राणात्मने शिखायै वषट् ।
ॐ नं तं थं धं दं वाक्पाणिपादपायूपस्थात्मने कवचाय हुम् ।
ॐ मं पं फं भं बं वक्तव्यादानगमनविसर्गानन्दात्मने नेत्रत्रयाय वौषट् ।
ॐ शं यं रं वं लं हं षं क्षं लं बुद्धिमनोहंकारचित्तात्मने अस्त्राय फट् ॥ ४०-४५॥

षडङ्गन्यास के पश्चात् नाभि से ले कर पैर के तलवे तक पाश बीज़ (आं) का न्यास करे । हृदय से नाभि तक शक्तिबीज (ह्रीम्) का न्यास करे, मस्तक से हृदय तक श्रृणि (क्रौम्) का न्यास करे ॥ ४५-४६॥

विमर्श - तद् यथा - नाभेरारभ्य पादान्तं पाशबीजं (आं) न्यसामि । हृदयादारभ्य नाभ्यन्तं शक्तिबीजं (ह्रीम्) न्यसामि । मस्तकादारभ्य हृदयान्तं श्रृणिबीजं (क्रौं) न्यसामि ॥ ४५-४६॥

त्वक्, असृज्, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा एवं शुक्र शब्द के आगे 'आत्मने नमः' लगा कर हृदय प्रदेश में न्यास करे । उनके आदि में सानुस्वार यकारादि सात वर्णों का उच्चारण कर तथा फिर सद्य (ओ) से युक्त आकाश (ह) को प्रारम्भ में उच्चारण कर 'ओजात्मने नमः' ख आकाश बीज (हं) के आगे 'प्राणात्मने नमः' लगा कर तथा भृगु (स) के आगे 'जीवात्मने नमः' लगा कर हृदय में न्यास करे । फिर यकारादि समस्त वर्णों को चन्द्र (अनुस्वार) से भूषित कर मूलमन्त्र से मूर्धादि चरणावधि व्यापक न्यास करके तब पीठदेवता का न्यास करे ॥ ४६-४८॥

विमर्श - यथा - ॐ यं त्वगात्मने नमः हृदि, ॐ रं असृगात्मने नमः हृदि, ॐ लं मांसात्मने नमः हृदि, ॐ वं मेदसात्मने नमः हृदि, ॐ शं अस्थ्यात्मने नमः हृदि, ॐ षं मज्जात्मने नमः हृदि, ॐ सं शुक्रात्मने नमः हृदि, ॐ हां ओजात्मने नमः हृदि, ॐ हं प्राणात्मने नमः हृदि, ॐ सं जीवात्मने

१. यं त्वगात्मने नमः, रं असृगात्मने नमः इत्यादि ।
२. यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं मूर्द्धादिचरणावधिव्यापकं कुर्यात् ।

ततः समस्तमूलेन मूर्द्धादिचरणावधि ।
विधाय व्यापकन्यासं विन्यसेत् पीठदेवताः ॥ ४९ ॥

पीठदेवतान्यासः

मण्डूकश्चाथ[1] कालाग्नी रुद्र आधारशक्तियुक् ।
कूर्मोधरासुधासिन्धुः श्वेतद्वीपं सुराङ्घ्रिपाः ॥ ५० ॥
मणिहर्म्यं हेमपीठं धर्मो ज्ञानं विरागता ।
ऐश्वर्यं धर्मपूर्वास्तु चत्वारस्ते नञादिकाः ॥ ५१ ॥
धर्मादयः स्मृताः पादाः पीठगात्राणि चेतरे ।
मध्येऽनन्तस्तत्त्वपद्ममानन्दमयकन्दकम् ॥ ५२ ॥
संविन्नालं[2] ततः प्रोक्ता विकारमयकेसराः ।
प्रकृत्यात्मकपत्राणि पञ्चाशद्वर्णकर्णिका ॥ ५३ ॥
सूर्यस्येन्दोः पावकस्य मण्डलत्रितयं[3] ततः ।
सत्त्वं रजस्तमः पश्चादात्मयुक्तोन्तरात्मना ॥ ५४ ॥
परमात्माथ ज्ञानात्मा तत्त्वे [4]मायाकलादिके ।
विद्यातत्त्वं परं तत्त्वं कथिताः पीठदेवताः ॥ ५५ ॥

वर्णाश्चन्द्रेर्णानुस्वारेण भूषिता युताः कार्याः ॥ ४८ ॥ * ॥ ४९ ॥ मण्डूक इत्यादि पीठदेवताः । सुधासिन्धुरित्यत्र समुद्रविशेषं वक्ष्यति ॥ ५० ॥ विरागता वैराग्यम् । नञादिका अधर्माय नम इत्यादि॥ ५१॥ *॥ ५२–५६॥

नमः हृदि । इस प्रकार उक्त मन्त्रों का उच्चारण कर हृदय में न्यास करे । तत्पश्चात् 'ॐ यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं मूर्धादिचरणावधि व्यापकं करोमि' - पढ़ कर व्यापक न्यास करे ॥ ४९॥

अब **पीठ देवता का न्यास** कहते हैं - सानुस्वार अपने नाम के आद्यक्षर सहित तत्तद् पीठ देवताओं का न्यास पीठ के मध्य में करना चाहिए - मण्डूक, कालाग्निरुद्र, आधारशक्ति, कूर्म, पृथ्वी, सुधासिन्धु (क्षीरसागर), श्वेतद्वीप, कल्पवृक्ष, मणिमण्डप, स्वर्ण सिंहासन, धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य, अनैश्वर्य ये पीठ के देवता हैं । जिसमें धर्म से लेकर अनैश्वर्य पर्यन्त पीठ के पाद कहे गये हैं, शेष पीठ के अङ्ग हैं पीठ के मध्य में रहने वाले अनन्त, पद्म, आनन्द, मयकन्दक, संविन्नाल, विकारमयकेसर, प्रकृत्यात्मकपत्र, पञ्चाशद्वर्ण कर्णिका, सूर्यमण्डल, चन्द्रमण्डल, अग्निमण्डल, सत्त्व, रजस्, तमस्, आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा, ज्ञानात्मा, मायातत्त्व, कलातत्त्व, विद्यातत्त्व एवं परतत्त्व - ये सभी पीठ देवता कहे गये हैं ॥ ५०-५५ ॥

---

१. मं मण्डूकाय नमः, कं कालाग्निरुद्राय, ह्रों ओजात्मने, हं प्राणात्मने सञ्जीवात्मने । एवं सर्वत्राधर्मपूर्वेषु चतुर्षु नञ्समासः । अं अधर्माय, अं अज्ञानाय, अं अवैराग्याय, अं अनैश्वर्याय नमः।

२. सं संविन्नालाय नमः, विं विकारमयकेसरेभ्यो नमः ।

३. सं सूर्यमण्डलाय, चं चन्द्रमण्डलाय, अं अग्निमण्डलाय ।

४. मं मायातत्त्वाय, कलातत्त्वाय ।

पूजने सर्वदेवानां पीठे ताः परिपूजयेत्।
न्यासस्थानानि चैतासां शरीरे बहिरर्चने ॥ ५६ ॥
पूजातरङ्गे वक्ष्यन्ते सेन्द्वाद्यर्णयुताश्च ताः।
प्राणशक्तेस्ततः पूज्या अष्टौ पीठस्य शक्तयः ॥ ५७ ॥

पीठदेवतानां न्यासस्थानानि बहिर्यागे च पूजास्थानानि एकविंशे तरङ्गे वक्ष्यन्ते । ताः मण्डूकाद्याः सेन्द्वाद्यर्णयुताः । सानुस्वार प्रथमाक्षरयुताः । मं मण्डूकाय नम इत्यादि ॥ ५७ ॥

विमर्श - न्यासविधि - यथा - पीठ के मध्य में - मं मण्डूकाय नमः, कं कालाग्निरुद्राय नमः, आं आधारशक्तये नमः, कूं कूर्माय नमः, पृं पृथिव्यै नमः, क्षीं क्षीरसमुद्राय नमः, श्वें श्वेतद्वीपाय नमः, कं कल्पवृक्षाय नमः, मं मणिमण्डलाय नमः, स्वं स्वर्णसिंहासनाय नमः, इन मन्त्रों से तत्तद्देवताओं का न्यास करना चाहिए ।

पुनः पीठ के चारों कोणों में क्रमशः आग्नेय कोण से प्रारम्भ कर - धं धर्माय नमः, ज्ञां ज्ञानाय नमः, वैं वैराग्याय नमः, ऐं ऐश्वर्याय नमः - इन मन्त्रों से न्यास करना चाहिए ।

पुनः पीठ के चारों दिशाओं में पूर्व दिशा से प्रारम्भ कर - अं अधर्माय नमः, अं अज्ञानाय नमः, अं अवैराग्याय नमः, अं अनैश्वर्याय नमः - इन मन्त्रों से तत्तद्देवताओं का न्यास करना चाहिए ।

पुनः मध्य में - अं अनन्ताय नमः, पं पद्माय नमः, आं आनन्दमयकन्दकाय नमः, सं संविन्नालाय नमः, विं विकारमयकेसरेभ्यो नमः, प्रं प्रकृत्यात्मकपत्रेभ्यो नमः, पं पञ्चाशद्वर्ण - कर्णिकायै नमः, सं सूर्यमण्डलाय नमः, चं चन्द्रमण्डलाय नमः, अं अग्निमण्डलाय नमः, सं सत्त्वाय नमः, रं रजसे नमः, तं तमसे नमः, आं आत्मने नमः, अं अन्तरात्मने नमः, पं परमात्मने नमः, मां मायातत्त्वाय नमः, कं कलातत्त्वाय नमः, विं विद्यातत्त्वाय नमः, पं परं तत्त्वाय नमः - इन मन्त्रों द्वारा तत्तद्देवताओं का न्यास करना चाहिए ॥ ५०-५५ ॥

सभी देवताओं के पूजन में पीठ पर उपर्युक्त देवताओं का पूजन करना चाहिए । बाह्यपूजा में शरीर में इन देवताओं का न्यास स्थान पूजा तरङ्ग (२१) में आगे कहेंगे ॥ ५६-५७॥

तदनन्तर हृदयकमल में देवताओं के नामों को सानुस्वार आद्यवर्ण से युक्त आठ दलों पर, आठ पीठ की शक्तियों का पूजन करना चाहिए । इसी प्रकार कर्णिका में नवीं महाशक्ति का पूजन करना चाहिए । १. जया, २. विजया, ३. अजिता, ४. अपराजिता, ५. नित्या, ६. विलासिनी, ७. दोग्ध्री, ८. अघोरा एवं ९. मङ्गला - ये नौ पीठ की शक्तियाँ हैं । तदनन्तर पाशादि तीन बीजाक्षर (आं ह्रीं क्रौं) पीठाय नमः - इस मन्त्र से पीठ की पूजा कर देहमय पीठ पर, नवयौवन के गर्व से इठलाती हुई, पुष्टस्तन से सुशोभित प्राणशक्ति का ध्यान करना चाहिए ॥ ५७-६० ॥

विमर्श - यथा - हृदयकमल में १. जं जयायै नमः, २. विं विजयायै नमः, ३. अं अजितायै नमः, ४. अं अपराजितायै नमः, ५. निं नित्यायै नमः, ६. विं विलासिन्यै नमः, ७. दों दोग्ध्यै नमः, ८. अं अघोरायै नमः - इन मन्त्रों से पीठ की आठ शक्तियों

हृदयाम्भोजपत्रेषु नवमीत्वधिकर्णिकम् ।
जयाख्या विजया पश्चादजिता चाऽपराजिता ॥ ५८ ॥
नित्या विलासिनी दोग्ध्री त्वघोरा मङ्गलान्तिमा ।
पाशादिबीजत्रितयं प्रोच्य पीठं दिशेत्ततः ॥ ५९ ॥
एवं देहमये पीठे ध्यायेद् देवीमसुप्रदाम् ।
नवयौवनगर्वाढ्यां पीवरस्तनशोभिनीम् ॥ ६० ॥

प्राणशक्तिध्यानकथनम्

पाशं चापासृक्कपाले सृणीषू-
ञ्छूलं हस्तैर्बिभ्रतीं रक्तवर्णाम्।
रक्तोदन्वत्पोतरक्ताम्बुजस्थां
देवीं ध्यायेत् प्राणशक्तिं त्रिनेत्राम् ॥ ६१ ॥
अष्टपत्रस्थषट्कोणे ध्यात्वैवं पूजयेत्तु तान् ।

हृदयपद्मपत्रेष्वष्टौ । नवमी कर्णिकायाम् । ता एवाह – **जयेति** ॥ ५८ ॥ **पाशादीति** । आं क्लीं क्रौमिति पीठमन्त्रः ॥ ५९–६०॥ ध्यानामाह – **पाशमिति** । षड्हस्तादेवीपाशधनुःशूलानि वामहस्तेषु रक्तकपालाङ्कुशबाणान् दक्षेषु रक्तमयो य उदन्वान् समुद्रस्तत्र पोतो नौस्तत्र रक्तपद्मं तत्र स्थिताम् ॥ ६१॥

का पूजन कर कर्णिका में 'मं मङ्गलायै नमः' से पूजन करना चाहिए तदनन्तर 'आं ह्रीं क्रौं पीठाय नमः' - इस मन्त्र से पीठ का पूजन कर देहमय पीठ पर प्राणशक्ति का ध्यान करना चाहिए ॥ ५७-६० ॥

अब **ध्यान के लिये प्राणशक्ति का स्वरूप** कहते हैं -

रक्तमय समुद्र में नौका पर लाल कमल के ऊपर बैठी हुई बायें हाथ में पाश, धनुष, एवं शूलधारण किये हुये तथा दाहिने हाथ में कपाल, अंकुश एवं बाण धारण किये हुये तीन नेत्रों वाली तथा छः भुजाओं वाली प्राणशक्ति का ध्यान करना चाहिए ॥ ६१ ॥

अष्टदल के भीतर षट्कोण में स्थित प्राणशक्ति का इस प्रकार ध्यान कर पूर्व, नैऋत्य एवं वायुकोण में क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव का तथा आग्नेय, पश्चिम एवं ईशान में क्रमशः वाणी, लक्ष्मी एवं पार्वती का पूजन करना चाहिए । केशरों में - सं संविन्नालाय नमः, विं विकारमयकेसरेभ्यो नमः, सं सूर्यमण्डलाय नमः, चं चन्द्रमण्डलाय नमः, अं अग्निमण्डलाय नमः, मां मायातत्त्वाय नमः, कं कलातत्त्वाय नमः (देखिये श्लोक ५) का पूजन कर पत्रों में अष्टमातृकाओं का पूजन करना चाहिए । १. ब्राह्मी, २. माहेश्वरी, ३. कौमारी, ४. वैष्णवी, ५. वाराही, ६. इन्द्राणी, ७. चामुण्डा एवं ८. महालक्ष्मी ये आठ विश्व की मातायें कही गई हैं । देवपूजा के कार्य में पूज्य एवं पूजक के मध्य में पूर्व दिशा होती है ॥ ६२-६५ ॥

विमर्श - षट्कोण एवं अष्टदल में निर्दिष्ट दिशा में उनके अधिपति तत्तद्देवताओं के नाम के मन्त्रों से उनका पूजन करना चाहिए ॥ ६२-६५ ॥

प्राग्रक्षोन्वायुकोणेषु ब्रह्मविष्णुशिवान् यजेत् ॥ ६२ ॥
अग्निवारुणशैवेषु वाणीलक्ष्मीहिमाद्रिजाः ।
केसरेषु षडङ्गानि[1] पत्रेष्वष्टौ तु मातरः ॥ ६३ ॥
ब्राह्मी माहेश्वरी चापि कौमारी वैष्णवी तथा ।
वाराही च तथेन्द्राणी चामुण्डा सप्तमी मता ॥ ६४ ॥
अष्टमी तु महालक्ष्मीः प्रोक्ता विश्वस्य मातरः ।
देवतापूजने प्राची मध्ये पूजकपूज्ययोः ॥ ६५ ॥
इन्द्रादयः स्वदिक्ष्वेवं पूजनीया दिगीश्वराः ।
इन्द्रः[2] कृशानुः कीनाशो निर्ऋतिर्वरुणोऽनिलः ॥ ६६ ॥
सोमईशाननामाधोऽनन्त ऊर्ध्वं चतुर्मुखः ।
तत इन्द्रादिकाष्ठासु पूज्या दिक्पालहेतयः ॥ ६७ ॥
वज्रं शक्तिर्दण्डखड्गौ पाशोऽङ्कुशगदे अपि ।
त्रिशूलचक्रपद्मानि दशदिक्पालहेतयः ॥ ६८ ॥
एवमिष्ट्वा प्राणशक्तिं पञ्चावरणसंयुताम् ।
ध्यायन् हृदि करं धृत्वा त्रिर्ज्जपेत्तन्मनुं सुधीः ॥ ६९ ॥

*॥ ६२–६५ ॥ इन्द्रादयः प्रसिद्धदिक्ष्वेवार्च्याः । अन्यावरणे पूज्यपूजकयोर्मध्ये प्राची ॥ ६६–६७ ॥ मन्त्रमुद्धरति – **पाशमिति** । आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सं तारान्वितं नभः हों सप्तार्णो वक्ष्यमाणः । अजपा हंसः ॥ ६८–७१ ॥ * ॥ ७४–७५ ॥

तदनन्तर अपनी अपनी दिशाओं में इन्द्र आदि दिक्पालों का पूजन करना चाहिए । १. इन्द्र, २. अग्नि, ३. यम, ४. निर्ऋति, ५. वरुण, ६. वायु, ७. सोम, ८. ईशान, ९. अनन्त एवं १०. ब्रह्मा - ये दस दिक्पाल हैं । १. वज्र, २. शक्ति, ३. दण्ड, ४. खड्ग, ५. पाश, ६. अंकुश, ७. गदा, ८. त्रिशूल, ९. चक्र एवं १०. पद्म - इन दिक्पालों के क्रमशः दश आयुध हैं । अतः दशों दिशाओं में इन्द्रादि एवं दश दिक्पालों का तथा उनके आयुधों का भी पूजन करना चाहिए । इस प्रकार पाँच आवरणों वाली (द्र. ६१-६८) प्राण शक्ति का पूजन कर हृदय पर हाथ रख कर वक्ष्यमाण मन्त्र का तीन बार जप करना चाहिए ॥ ६६-६९ ॥

विमर्श - प्रयोग - पूर्वे ईं इन्द्राय नमः, आग्नेयाम् आं अग्नये नमः, दक्षिणस्यां यं यमाय नमः, आदि क्रमपूर्वक पूर्व आदि दिशाओं के दस दिक्पालों का पूजन कर पुनः उसी क्रम से वं वज्राय नमः, शं शक्तये नमः, दं दण्डाय नमः इत्यादि मन्त्रों से उन उन दिक्पालों के आयुधों का भी पूजन करना चाहिए ॥ ६६-६९ ॥

प्राणप्रतिष्ठा मन्त्रोद्धार -

अब ग्रन्थकार प्राणप्रतिष्ठा मन्त्र का उद्धार कह रहे हैं, - जिसका ज्ञान साधक को सुख देने वाला है । सर्वप्रथम पाश (आं), माया (ह्रीम्), सृणि (क्रौम्), इन

१. अग्नीशासुरवायव्यमध्यदिक्ष्वंगपूजनमिति वक्ष्यमाणप्रकारणेति भावः ।
२. पूर्वे इन्द्राय नमः इति बोध्यम् । अग्नये नमः, वायवे नमः ।

सप्तार्णमन्त्रोद्धारः

वक्ष्येऽधुना मनोस्तस्योद्धारं[1] ध्यातृसुखावहम् ।
पाशं मायां सृणिं प्रोच्य यादीन्सप्तेन्दुसंयुतान् ॥ ७० ॥
तारान्वितं नभः सप्तवर्णं मन्त्रं ततोऽजपाम् ।
मम प्राणा इह प्राणा मम जीव इह स्थितः ॥ ७१ ॥
मम सर्वेन्द्रियाण्युक्त्वा मम वाङ्मन ईरयेत् ।
चक्षुः श्रोत्रघ्राणपदात् प्राणा इह समीर्य्य च ॥ ७२ ॥
आगत्य सुखमुच्चार्य्य चिरं तिष्ठन्त्विदं पठेत् ।
वह्निजायां च सप्तार्णमन्त्रमन्ते पुनर्वदेत् ॥ ७३ ॥
प्राणप्रतिष्ठामन्त्रोऽयं स्मृतः प्राणनिधापने ।
ममेत्यस्य पदस्यादौ पाशादीनि समुच्चरेत् ॥ ७४ ॥
यन्त्रेषु प्रतिमादौ वा प्राणस्थापनमाचरन् ।
मम स्थाने तस्य तस्य षष्ठ्यन्तामभिधां वदेत् ॥ ७५ ॥

बीजाक्षरों का उच्चारण कर सप्ताक्षर मन्त्र - ॐ क्षं सं हं सः ह्रीम् तथा अन्त में अजपा (हंसः) का उच्चारण करना चाहिए । तदनन्तर 'मम प्राणाः इह प्राणाः मम जीव इह स्थितः मम सर्वेन्द्रियाणि इह स्थितानि मम वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रघ्राणप्राणाः इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा' का उच्चारण कर अन्त में सप्ताक्षर मन्त्र - ॐ क्षं सं हंसः ह्रीं ॐ - का पुनः उच्चारण करना चाहिए । प्राणप्रतिष्ठा के लिये यही मन्त्र कहा गया है। 'मम' इत्यादि पद के पहले पाशादि (आं ह्रीं क्रौं) का उच्चारण करना चाहिए । यन्त्र एवं प्रतिमा आदि में प्राणप्रतिष्ठा करते समय मम के स्थान में यन्त्र अथवा प्रतिमा के देवता का नाम ले कर उस के आगे देवतायाः ऐसा षष्ठ्यन्त पद का प्रयोग करना चाहिए । जैसे - शिवदेवतायाः, दुर्गादेवतायाः आदि ॥ ७०-७५ ॥

विमर्श - यहाँ मम पद के साथ **प्राणप्रतिष्ठा का मन्त्र** उद्धृत करते हैं - 'ॐ आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सं हों ॐ क्षं सं हंसः ह्रीं ॐ हंसः' पूर्वोक्त रीति (द्र. १.६०-६१.) से प्राण शक्ति का ध्यान करे । 'ॐ आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सं हों ॐ क्षं सं हंसः ह्रीं ॐ हंसः मम प्राणाः इह प्राणाः' - मन्त्र का उच्चारण कर प्राण की प्रतिष्ठा करे ।

इसी प्रकार 'ॐ आं' से ले कर 'ह्रीं ॐ हंसः' पर्यन्त मन्त्र पढ़ कर 'मम जीव इह स्थितः' पढ़ कर जीवात्मा की हृदय में प्रतिष्ठा करे । पुनः 'ॐ आं' से लेकर 'ह्रीं ॐ हंसः' पर्यन्त मन्त्र पढ़ कर 'मम सर्वेन्द्रियाणि इह स्थितानि' से समस्त इन्द्रियों की स्थापना करे । इसी प्रकार पूर्वोक्त मन्त्र के उच्चारण के पश्चात् 'मम वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रघ्राणप्राणाः

---

१. मन्त्रोद्धारः - आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सं हों ॐ क्षं सं हं सः ह्रीं ॐ हंसः महाप्राणा इहप्राणाः । आं० मम जीव इह स्थितः । आं० मम सर्वेन्द्रियाणीह स्थितानि । आं० मम वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रघ्राणप्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा ॐ क्षं सं हंसः ह्रीं ॐ ।

सबिन्दवो मेरुहंसाकाशाः सर्गीभृगुः पुनः ।
मायेति ताररुद्धोऽयं मन्त्रः सप्ताक्षरो मतः ॥ ७६ ॥
एवं प्राणान् प्रतिष्ठाप्य मातृकान्यासमाचारेत् ।
अकाराद्याः क्षकारान्ता वर्णाः प्रोक्ता तु मातृका ॥ ७७ ॥
प्रजापतिर्मुनिस्तस्या गायत्रीछन्द ईरितम् ।
सरस्वतीदेवतोक्ता विनियोगोऽखिलाप्तये ।
हलो बीजानि चोक्तानि स्वराः शक्तय ईरिताः[1] ॥ ७८ ॥

सप्तार्णमुद्धरति – **सबिन्दव इति** । मेरुः क्षः हंसः सः आकाशो हः भृगुः सः माया ह्रीं ताररुद्धः प्रणवपुटितः तेन ॐ क्षं सं हंसः ह्रीं ओमिति सप्तार्णः ॥ ७६ ॥ मातृकामाह – **अकाराद्या इति** प्रसिद्धा इत्यर्थः ॥ ७७ ॥ षडङ्गमाह – **पञ्चेति** । क्लीबा ऋ ॠ लृ लॄ तद्धीनाः – सानुस्वारा ये ह्रस्वदीर्घास्तदन्तरस्थितैः सबिन्दुभिः जातयो हृदयाय नम इत्यादयस्तद्युक्तैः षड्वर्गैः षडङ्गं अं कं खं गं घं ङं आं

इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा ॐ क्षं सं हंसः ह्रीं ॐ' इतना उच्चारण कर समस्त ज्ञानेन्द्रियों, मन एवं प्राण की भी प्रतिष्ठा करे । यह क्रिया तीन बार करनी चाहिए ॥ ७०-७५ ॥

प्राण प्रतिष्ठा के **सप्ताक्षर मन्त्र का उद्धार** कहते हैं - सानुस्वार मेरु (क्षं) हंस (सं) आकाश (हं) के साथ भृगु (सः) एवं माया बीज (ह्रीं) इन सबको ॐ से सम्पुटित करने पर सप्ताक्षर मन्त्र बन जाता है ॥ ७६ ॥

विमर्श - मन्त्र का उद्धार इस प्रकार है - ॐ क्षं सं हंसः ह्रीं ॐ ॥ ७६ ॥

पूर्वोक्त विधि से प्राणप्रतिष्ठा के पश्चात् अब **मातृकान्यास** कहते हैं - अकार से ले कर क्षकार पर्यन्त समस्त वर्णों की 'मातृका' संज्ञा है । इस मातृका न्यास मन्त्र के प्रजापति ऋषि, गायत्री छन्द, सरस्वती देवता और हल वर्ण बीज कहे गए हैं तथा स्वर शक्ति कही गई है । स्वाभीष्ट प्राप्ति के लिए इसके विनियोग का विधान कहा गया है ॥ ७७-७८ ॥

साधक शिर, मुख एवं हृदयादि में क्रमशः ऋषि, छन्द तथा देवतादि के द्वारा ऋष्यादि न्यास करे । यह न्यास क्लीव वर्णों (ऋ ॠ लृ लॄ) को छोड़कर मात्र ह्रस्व एवं दीर्घ वर्णों से संपुटित होना चाहिए । इसी प्रकार ह्रस्व एवं दीर्घ वर्णों से संपुटित सानुस्वार कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, यवर्ग से करन्यास एवं षडङ्गन्यास करे । पश्चात् सरस्वती के वक्ष्यमाण रूप का ध्यान हृदयकमल में करना चाहिए ॥ ७९-८० ॥

विमर्श - मातृका न्यास का विनियोग इस प्रकार है - ॐ अस्य श्रीमातृकान्याससमन्त्रस्य ब्रह्माऋषिः गायत्रीछन्दः सरस्वतीदेवता हलो बीजानि स्वराः शक्तयः (क्षं कीलकं) अखिलाप्तये मातृकान्यासे विनियोगः ।

---

१. अव्यक्तं कीलम् ।

मूर्ध्नि[1] वक्त्रे हृदि न्यस्येदृष्यादीन् साधकोत्तमः ।
[2]पञ्चवर्गैर्यादिभिश्च षडङ्गानि समाचरेत् ॥ ७९ ॥
क्लीबहीनशशाङ्काढ्य ह्रस्वदीर्घान्तरस्थितैः ।
सानुस्वारैर्जातियुक्तैर्ध्यायेद् देवीं हृदम्बुजे ॥ ८० ॥
पञ्चाशदर्णैरचिताङ्गभागां
धृतेन्दुखण्डां कुमुदावदाताम् ।
वराभये पुस्तकमक्षसूत्रं
भजे गिरं संदधतीं त्रिनेत्राम् ॥ ८१ ॥

हृदयाय नम इत्यादि ॥ ७८–८० ॥ ध्यानमाह – **पञ्चाशदिति** । वर्णैरङ्गरचना न्यासाद् बोध्या। वराक्षस्रजौ दक्षयोः। पुस्तकाभये वामयोः । गिरं सरस्वतीम् ॥ ८१ ॥

ऋष्यादि न्यास का प्रकार -

१. ॐ अं प्रजापतये नमः आं शिरसि, २. ॐ इं गायत्रीछन्दसे नमः ईं मुखे,
३. ॐ उं सरस्वतीदेवतायै नमः ऊं हृदि, ४. ॐ एं हल्बीजेभ्यो नमः ऐं गुह्ये,
५. ॐ ओं स्वरशक्तिभ्यो नमः औं पादयोः, ६. ॐ अं क्षं कीलकाय नमः अः सर्वाङ्गे,

करन्यास एवं अङ्गन्यास -

१. ॐ अं कं खं गं घं ङं आं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ।
२. ॐ इं चं छं जं झं ञं ईं तर्जनीभ्यां नमः ।
३. ॐ उं टं ठं डं ढं णं ऊं मध्यमाभ्यां नमः ।
४. ॐ एं तं थं दं धं नं ऐं अनामिकाभ्यां नमः ।
५. ॐ ओं पं फं बं भं मं औं कनिष्ठिकाभ्यां नमः ।
६. ॐ क्षं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं अः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

इसी प्रकार उपरोक्त मन्त्रों से क्रमशः हृदय, शिर, शिखा, कवच, नेत्र का स्पर्श करे । फिर अन्तिम मन्त्र के आगे 'अस्त्राय फट्' कह कर ताली बजावे ॥ ७७-८०॥

अब **सरस्वती का ध्यान** कहते हैं -

सोलह स्वरों एवं चौंतीस हलों इस प्रकार कुल पचास वर्णो से जिनके शरीर की रचना है, जो मस्तक पर चन्द्रकला धारण की हैं, जो कुमुद के समान अत्यन्त शुभ्र हैं, जिनके दाहिने हाथों में १. वरदमुद्रा, २. अक्षमाला तथा बायें हाथों में ३. अभयमुद्रा एवं ४. पुस्तक सुशोभित है, ऐसे समस्त वाणी को धारण करने वाली तीन नेत्रों वाली सरस्वती देवी का मैं ध्यान करता हूँ ॥ ८१ ॥

---

१. मूर्ध्नीत्यादि । शक्तिबीजयोरपि पूर्वोक्तस्थानोपलक्षणम् । ओं क्षं सं हंसः ह्रीं ओं ब्रह्मऋषये मूर्ध्नि, गायत्रीछन्दसे नमः वक्त्रे, सरस्वतीदेवतायै नमो हृदि, हं बीजेभ्यो नमः गुह्ये, स्वरशक्तिभ्यो नमः पादयोः, । एवमृष्यादि ।

२. प्रयोगस्तु – अं कं गं घं ङं आं अंगुष्ठाभ्यां नमः । इं चं ५ ईं तर्ज० इत्यादि । अं कं ५ आं हृदयाय नमः । नमः स्वाहा वषट् चैव हुं वौषट् फट् क्रमेण तु ।

ध्यात्वैवं पूजयेत् पीठे देवताः पूर्वमीरिताः ।
पीठशक्तीस्तदुपरि सरस्वत्यानवार्च्चयेत् ॥ ८२ ॥
मेधाप्रज्ञाप्रभाविद्याश्रीधृतिस्मृतिबुद्धयः ।
विद्येश्वरीति संप्रोक्ता मातृका पीठशक्तयः ॥ ८३ ॥
वियद्भृगुस्थमनुयुग्विसर्गाढ्यं च मातृका ।
योगपीठायनत्यन्तो[1] मनुरासनदेशने ॥ ८४ ॥
मूर्तिसंकल्प्य मूलेन तस्यां वाणीं प्रपूजयेत् ।
आदावङ्गानि संपूज्य द्वितीये पूजयेत् स्वरौ ॥ ८५ ॥
द्वौ द्वौ तृतीये वर्गांश्च वर्गशक्तिश्चतुर्थके ।
व्यापिनी पालिनी चापि पावनी क्लेदिनी पुनः ॥ ८६ ॥
धारिणी मालिनी पश्चाद्धंसिनी शङ्खिनी तथा ।
वर्गशक्तय इत्युक्ताः पञ्चमे त्वष्टमातरः ॥ ८७ ॥
षष्ठे शक्रादयो देवाः सप्तमे वज्रपूर्वकाः ।
इत्थं सम्पूज्य देवेशीं न्यसेद्वर्णान्निजाङ्गके ॥ ८८ ॥

पूर्वमीरिता मण्डूकाद्याः ॥ ८२ ॥ आसनमन्त्रमाह – वियत् हः । भृगुः सः मनुरौ तेन हसौः मातृकायोगपीठाय नम इति ॥ ८४ ॥ * ॥ ८५–९१ ॥

पीठशक्त्यर्चन, पीठपूजा एवं आवरण पूजा - इस प्रकार सरस्वती देवी के ध्यान के पश्चात् पूर्वोक्त पीठ देवताओं (द्र० १. ५०-५५) का एवं नौ पीठ शक्तियों का पूजन करना चाहिए । तदनन्तर सरस्वती का पूजन करना चाहिए । १. मेधा, २. प्रज्ञा, ३. प्रभा, ४. विद्या, ५. श्री, ६. धृति, ७. स्मृति, ८. बुद्धि, एवं ९. विद्येश्वरी - ये मातृकापीठ की नौ शक्तियाँ कही गई हैं ॥ ८२-८३ ॥

अब **आसनपूजा का मन्त्र** कहते हैं - वियत् (ह) भृगु (स) के आगे मनु (औ), पश्चात् विसर्ग लगा कर तदनन्तर 'मातृकायोगपीठाय नमः' लगा कर उस मन्त्र से आसन का पूजन करना चाहिए । (इसका **स्वरूप** इस प्रकार है - हसौः मातृकायोगपीठाय नमः ।) तदनन्तर मूल मन्त्र से मूर्ति की कल्पना कर वाणी देवी (सरस्वती) की पूजा करनी चाहिए । **प्रथमावरण** में अङ्गों का, **द्वितीयावरण** में दो दो स्वरों का, **तृतीय आवरण** में कवर्गादि अष्टवर्गों का, एवं **चतुर्थ आवरण** में वर्गशक्तियों का पूजन करना चाहिए । व्यापनी, पालिनी, पावनी, क्लेदिनी, धारिणी, मालिनी, हंसिनी तथा शंखिनी - ये वर्ग की शक्तियों के नाम हैं । इसके बाद में **पञ्चम आवरण** में ब्राह्मी आदि अष्टमातृकायें, **षष्ठावरण** में इन्द्रादिदेवगण **सप्तमावरण** में उनके वज्र आदि आयुधों के पूजन कर देवेशी का पूजन करना चाहिए, तदनन्तर अपने शरीर में वर्णों का न्यास करना चाहिए ॥ ८४-८८ ॥

---

१. हसौः मातृकायोगपीठाय नमः ।

सृष्ट्यादिन्यासवर्णनम्

ललाटे मुखवृत्तेक्षिश्रवोनासासु गण्डयोः।
ओष्ठयोर्दन्तपङ्क्त्योश्च मूर्ध्निवक्त्रे न्यसेत्स्वरान्॥ ८६॥
बाह्वोः सन्धिषु साग्रेषु कचवर्गौ न्यसेत् सुधीः।
टतवर्गौ पदोस्तद्वत् पार्श्वयोः पृष्ठदेशतः॥ ९०॥
नाभौ कुक्षौ पवर्गं च हृदंसं ककुदं ततः।
न्यस्य यादिचतुर्वर्णाञ्छादिषट्कं ततो न्यसेत्॥ ९१॥

अब शरीर में **मातृका न्यास की विधि** कहते हैं - ललाट, मुखवृत्त, दोंनों नेत्र, दोंनों कान, दोंनों नासापुट, दोंनों गण्डस्थल, दोंनों होठ, दोंनों दन्तपङ्क्ति, शिर एवं मुख में स्वरों का न्यास करना चाहिए । दोंनों बाहुओं के मूल, कूर्पर, मणिबन्ध अङ्गुलि मूल एवं अङ्गुल्यग्रभाग में क्रमशः कवर्ग एवं चवर्ग का न्यास करना चाहिए । टवर्ग एवं तवर्ग का न्यास दोंनों पैरों के मूल, जानु, गुल्फ, पादाङ्गुलिमूल तथा पादाङ्गुलि के अग्रभाग में, पवर्ग का न्यास दोंनों पार्श्व, पीठ, नाभि एवं उदर में, यवर्ग के चार वर्ण य र ल व का न्यास हृदय, दोंनों कन्धे, एवं ककुद में तथा श, ष, स, ह का न्यास दोंनों हाथ एवं दोंनों पैरों में, ल और क्ष का न्यास उदर एवं मुख में करना चाहिए ॥ ८६-९१ ॥

विमर्श - न्यास प्रयोग विधि - 'तत्र प्रणवपूर्वकाः माया लक्ष्मी वाग्भवाद्यो नमः इत्यन्ते न्यस्तव्याः' इस नियम के अनुसार सानुस्वार वर्णों के आदि में प्रणव, माया बीज, लक्ष्मीबीज एवं वाग्बीज लगा कर तथा अन्त में नमः लगा कर शरीर में समस्त वर्णों का न्यास करना चाहिए । यहाँ मूलार्थानुसार न्यासविधि इस प्रकार है -

ॐ अं नमः ललाटे, ॐ आं नमः मुखवृत्ते,
ॐ इं नमः दक्षनेत्रे, ॐ ईं नमः वामनेत्रे,
ॐ उं नमः दक्षकर्णे, ॐ ऊं नमः वामकर्णे,
ॐ ऋं नमः दक्षनासापुटे, ॐ ॠं नमः वामनासापुटे,
ॐ लृं नमः दक्षगण्डे, ॐ ॡं नमः वामगण्डे,
ॐ एं नमः ऊर्ध्वोष्ठे, ॐ ऐं नमः अधरोष्ठे,
ॐ ओं नमः ऊर्ध्वदन्तपङ्क्तौ, ॐ औं नमः अधःदन्तपङ्क्तौ,
ॐ अं नमः मूर्ध्नि, ॐ अः नमः मुखे ।

यहाँ तक स्वरों का न्यास कहा गया । अब हल वर्णों का न्यास कहते हैं

ॐ कं नमः दक्षबाहुमूले, ॐ खं नमः दक्षबाहुकूर्परे
ॐ गं नमः दक्षबाहुमणिबन्धे, ॐ घं नमः दक्षबाहुहस्ताङ्गुलिमूले,
ॐ ङं नमः दक्षबाह्वङ्गुल्यग्रे, ॐ चं नमः वामबाहुमूले,
ॐ छं नमः वामबाहुकूर्परे, ॐ जं नमः वामबाहुमणिबन्धे,
ॐ झं नमः वामबाह्वङ्गुलिमूले, ॐ ञं नमः वामबाह्वङ्गुल्यग्रे,

[1]हृदादिकरयोरङ्घ्योर्ज्जठरे वदने तथा ।
सृष्टिन्यासं विधायैवं स्थितिन्यासं[2] समाचरेत् ॥ ६२ ॥
ऋषिश्छन्दश्च पूर्वोक्तो देवता विश्वपालिनी ।
उपविष्टां वल्लभाङ्के ध्यायेद् देवीमनन्यधीः ॥ ६३ ॥
मृगबालं वरं विद्यामक्षसूत्रं दधत् करैः ।
मालाविद्यालसद्धस्तां वहन् ध्येयः शिवोगिरम् ॥ ६४ ॥

हृदादीनि करपादोदरमुखेषु सम्बध्यन्ते ॥ ६२–६३ ॥ स्थितिन्यासे ध्यानमाह – **मृगेति** । मृगविद्ये वामयोः । वराक्षसूत्रे दक्षयोः । देव्यामालाविद्ये दक्षवामयोः ॥ ६४ ॥

ॐ टं नमः दक्षिणपादमूले, ॐ ठं नमः दक्षिणपादजानूनि,
ॐ डं नमः दक्षिणगुल्फे, ॐ ढं नमः दक्षिणपादाङ्गुलिमूले,
ॐ णं नमः दक्षिण पादाङ्गुल्यग्रे, ॐ तं नमः वामपादगुल्फे,
ॐ थं नमः वामपादजानूनि, ॐ दं नमः वामपादगुल्फे,
ॐ धं नमः वामपादाङ्गुलिमूले, ॐ नं नमः वामपादाङ्गुल्यग्रे,
ॐ पं नमः दक्षिणपार्श्वे, ॐ फं नमः वामपार्श्वे,
ॐ बं नमः पृष्ठे, ॐ भं नमः नाभौ,
ॐ मं नमः उदरे, ॐ यं त्वगात्मने नमः हृदि,
ॐ रं असृगात्मने नमः दक्षांसे, ॐ लं मांसात्मने नमः ककुदि,
ॐ वं मेदसात्मने नमः वामांसे,
ॐ शं अस्थ्यात्मने नमः हृदयादि दक्षहस्तान्तम्,
ॐ षं मज्जात्मने नमः हृदयादि वामहस्तान्तम्,
ॐ सं शुक्रात्मने नमः हृदयादि दक्षपादान्तम्,
ॐ हं आत्मने नमः हृदयादिवामपादान्तम्,
ॐ ळं परमात्मने नमः जठरे, ॐ क्षं प्राणात्मने नमः मुखे,
यहाँ तक सृष्टि न्यास कहा गया ॥ ८६-६१ ॥

इस प्रकार हृदय से ले कर दोंनों हाथ दोंनों पैर जठर एवं मुख में सृष्टि न्यास कर स्थिति न्यास करना चाहिए ॥ ६२ ॥

अब **स्थिति न्यास की विधि** कहते हैं – स्थिति न्यास के ऋषि, छन्द आदि (द्र० १.७) पूर्वोक्त हैं । विश्वपालिनी देवता हैं, साधक को एकाग्रचित्त से अपने प्रियतम के गोद में बैठी हुई इस देवता का ध्यान करना चाहिए । इनके दाहिने हाथों में वरमुद्रा, अक्षसूत्र, दिव्यमाला तथा बायें हाथों में मृगशावक, विद्या, वर्णमाला है, इस प्रकार की विश्वपालिनी सरस्वती देवी का ध्यान करना चाहिए ॥ ६३-६४ ॥

---

१. नमः स्वाहेत्यादि० । शं पं करयोः । संह अंघ्योः । लं क्षं वदने जठरे च । हृदयादाविव जठरवदनयोर्न्यसेदित्यर्थः ।

२. दक्षिणगुल्फादिक्रमेण पूर्वोक्तस्थाने स्थितिन्यासः ।

एवं ध्यात्वा डकाराद्यान्वर्णानङ्गेषु विन्यसेत्।
गुल्फादिजानुपर्य्यन्तं स्थितिन्यासोऽयमीरितः ॥ ९५॥
न्यासे संहारसंज्ञे तु ऋषिश्छन्दश्च पूर्ववत्।
संहारिणीसपत्नानां शारदा देवता स्मृता ॥ ९६॥
अक्षस्रक्टङ्कसारङ्गविद्याहस्तां त्रिलोचनाम्।
चन्द्रमौलिं कुचानम्रां रक्ताब्जस्थां गिरं भजे ॥ ९७॥
ध्यात्वैवं विन्यसेद्वर्णान् क्षाद्यानन्तान् विलोमतः।
सृष्टिन्यासे तु सर्गान्ताः सर्गबिन्द्वन्तिकाः स्थितौ ॥ ९८॥
बिन्द्वन्ताः संहृतो चैषा पूर्ववच्चाङ्गपूजने।
न्यस्याः सर्वत्र नत्यन्ता वर्णा वा तारसम्पुटाः ॥ ९९॥

॥ * ॥ ९५–९६ ॥ संहारन्यासे ध्यानमाह – **अक्षेति** । मृगविद्ये वामयोः । अक्षस्रक्टंकौ दक्षयोः। टंकः परशुः ॥ ९७ ॥ * ॥ ९८ ॥ नत्यन्ता । अं नमः । तारसंपुटाः ॐ इत्यादि ॥ ९९ ॥ * ॥ १००–१०३ ॥

विमर्श - **स्थिति न्यास** के विनियोग की विधि इस प्रकार है - 'ॐ अस्य स्थितिमातृका-न्यासस्य प्रजापतिऋषिः गायत्रीछन्दः विश्वपालिनी देवता हलो बीजानि स्वरा शक्तयः क्षं कीलकम् अभीष्टप्राप्तये स्थितिमातृकान्यासे विनियोगः' ॥ ९३-९४ ॥

ध्यान करने के पश्चात् डकारादिवर्णों से दक्षिणगुल्फ से वामजानुपर्यन्त अङ्गों में न्यास करना चाहिए । इसी को स्थिति न्यास कहते हैं ॥ ९५ ॥

विमर्श - यथा - ॐ डं नमः दक्षिण गुल्फे, ॐ ढं नमः दक्षपादाङ्गुलिमूले, ॐ णं नमः दक्षिणपादाङ्गुल्यग्रे, ॐ तं नमः वामपादपूले, ॐ थं नमः वामपादजानूनि, इस क्रम से दक्षिण गुल्फ से लेकर वामजानुपर्यन्त स्थिति न्यास कहलाता है ॥ ९५ ॥

उक्त प्रकार से सृष्टि न्यास करने के पश्चात् संहार न्यास करना चाहिए । इस संहार न्यास के ऋषि एवं छन्द (द्र० १.७८) पूर्वोक्त हैं तथा शत्रुप्रणाशिनी शारदा देवी इसकी देवता मानी गई हैं ॥ ९६ ॥

इनके **ध्यान** का प्रकार इस प्रकार है - जो रक्त कमल पर विराजमान हैं, जिनके दाहिने हाथों में अक्षमाला, परशु एवं बायें हाथों में मृगशावक तथा विद्या हैं, चन्द्रकला से सुशोभित स्तनभार से झुकी हुई तथा तीन नेत्रों वाली उन शारदा का मैं ध्यान करता हूँ ॥ ९७ ॥

विमर्श - **संहारन्यास के विनियोग की विधि** -

अस्य श्रीसंहारमातृकान्यासस्य प्रजापतिर्ऋषिः गायत्रीछन्दः शत्रुसंहारिणी शारदा देवता हलो बीजानि स्वरा शक्तयः क्षं कीलकं ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे न्यासे विनियोगः ॥ ९७ ॥

विनियोग तथा ध्यान के अनन्तर क्षकारादि वर्णों से अकार पर्यन्त वर्णों का विलोम रीति से ललाटादि स्थानों में न्यास करना चाहिए ॥ ९८ ॥

सृष्टिन्यास में विसर्गयुक्त वर्णों से, स्थितिन्यास में विसर्ग और अनुस्वार युक्त

सृष्टिन्यासं स्थितिन्यासं पुनः कुर्यात् प्रयत्नतः ।
अन्ये तु मातृका न्यासाः कथ्याः पूजातरङ्गके ॥ १०० ॥
मन्त्रस्नानादिविधयो गद्यास्तत्रैव ते मया ।
भारतीमेवमाराध्य भजेदिष्टान् मनून् सुधीः ॥ १०१ ॥
विष्णुः शिवो गणेशोर्को दुर्गा पञ्चैव देवताः ।
आराध्याः सिद्धिकामेन तत्तन्मन्त्रैर्यथोदितम् ॥ १०२ ॥
आदौ देवं वशीकर्तुं पुरश्चरणमाचरेत् ।
तीर्थादौ निर्जने स्थाने भूमिग्रहणपूर्वकम् ॥ १०३ ॥
नवधा तां धरां कृत्वा पूर्वादिषु समालिखेत् ।
कोष्ठेषु सप्तवर्गांश्च[1] लक्षौ मध्ये तथा स्वरान् ॥ १०४ ॥

दीपस्थानमाह – **नवधेति** । जपस्थानभूमिं नवधा कृत्वा । पूर्वादिकोष्ठेषु कचटतपयशवर्गान् लक्ष इत्यष्टमे विलिख्य मध्य कोष्ठकमपि नवधा विधाय तत्र पूर्वादिषु स्वरद्वन्द्वं क्षेत्रनामादिवर्णो यत्र कोष्ठे तदेव जपस्थानं सिद्धिदम् ॥ १०४–१०५ ॥

दोंनों प्रकार के वर्णों से तथा संहारन्यास में मात्र अनुस्वार युक्त वर्णों से ही न्यास करना चाहिए । अङ्ग पूजन की प्रक्रिया में वर्ण के आदि में प्रणव तथा अन्त में नमः लगा कर न्यास करने की विधि है॥ ६८-६६ ॥

विमर्श - यथा ॐ अं नमः, ॐ आं नमः इत्यादि ॥ ६८-६६ ॥

संहार न्यास के पश्चात् पुनः प्रयत्नपूर्वक सृष्टिन्यास तथा स्थितिन्यास करना चाहिए । मातृका न्यास का विशेष विवरण पूजा तरङ्ग (द्रष्टव्य २१वाँ तरङ्ग) में कहा जायगा ॥ १०० ॥

वहीं पर हम मन्त्रस्नान आदि की विधि का भी दिग्दर्शन कराएँगे । इस प्रकार बुद्धिमान् पुरुष सरस्वती की आराधना करने के पश्चात् ही अपने इष्टदेव के मन्त्रों की आराधना करे । विष्णु, शिव, गणेश, सूर्य एवं दुर्गा - पञ्चायतन के यही पाँच देवता हैं । सिद्धि चाहने वाले पुरुष को उन उन मन्त्रों से शास्त्र में कही गई विधि के अनुसार इनकी आराधना करनी चाहिए ॥ १०१-१०२ ॥

पुरश्चरण के योग्य भूमि -

प्रारम्भ में इष्टदेव को अपने वश में करने के लिए किसी तीर्थ या निर्जन वन में किसी पवित्र भूमि का निश्चय कर पुरश्चरण की क्रिया प्रारम्भ करनी चाहिए । पुरश्चरण के लिए अभीष्टभूमि को नव भागों में विभक्त करना चाहिए । पूर्व से ले कर उत्तर तक सात दिशाओं में सात वर्ग, ईशान कोण में ल क्ष वर्ण तथा मध्य में स्वरों को लिखना चाहिए । पुरश्चरण स्थान के नाम का आद्य अक्षर जिस कोष्ठक में

---

१. क्षकारादिकाकारान्तानिति नवस्थानादारभ्य विलोमक्रमेण संहारन्यासः । माला दक्षे। विद्याभावे ।

क्षेत्रनामादिमो वर्णस्तत्र कोष्ठे[1] भवेत्ततः ।
उपविश्य जपं कुर्य्यान्नान्यस्मिन् दुःखदे स्थले ॥ १०५ ॥

पुरश्चरणधर्मकथनम्

आमध्याह्नं जपं कुर्यादुपांशुत्वथ मानसम् ।
हविष्यं निशि भुञ्जीत [2]त्रिःस्नाय्यभ्यङ्गवर्जितः ॥ १०६ ॥
व्यग्रताऽलस्यनिष्ठीवक्रोधपादप्रसारणम् ।
अन्यभाषां परेक्षां च जपकाले त्यजेत् सुधीः ॥ १०७ ॥

पुरश्चरणधर्मानाह – **आमध्याह्नमिति** । उपांशु शनैर्वर्णोच्चारणं मानसं मनसैव त्रिःस्नायी त्रिषवणस्नानशीलः ॥ १०६ ॥ अन्यैः संभाषणमन्यभाषाम् । अन्त्यजानामीक्षां दर्शनं त्यजेत् ॥ १०७ ॥ * ॥ १०८–११० ॥

हो, स्थान के उसी भाग में बैठ कर मन्त्र का जप करना चाहिए, अन्यत्र दुःखदायक स्थान पर नहीं ॥ १०३-१०५ ॥

विमर्श – सुविधा के लिए उसका स्वरूप प्रदर्शित करते हैं –

पूर्व

ईशान	ल क्ष	क, ख, ग, घ, ङ,	च, छ, ज, झ,	आग्नेय
उत्तर	श, ष, स, ह,	मध्य अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः	ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण,	दक्षिण
वायव	य, र, ल, व,	प, फ, ब, भ, म,	त, थ, द, ध, न,	नैर्ऋत्य

पश्चिम

मान लीजिये किसी साधक को पुरश्चरण के लिए काशी में किसी निर्जन स्थान को चुनना है । तब उपर्युक्त विधि से बनाये गये नौ भाग वाले कोष्ठक में काशी का आद्य अक्षर 'क' पूर्वभाग में पड़ता है । अतः काशी के पूर्वभाग में किसी निर्जन स्थान को चुन कर मन्त्र का जप करना चाहिए ॥ १०३-१०५ ॥

पुरश्चरण धर्मों का कथन –

अब पुरश्चरण क्रिया में ग्रन्थकार **जप का विधान** कहते हैं – बुद्धिमान् साधक प्रातःकाल से ले कर मध्याह्नपर्यन्त उपांशु अथवा मानस जप करे । तीनों काल स्नान करे । तेल उबटन आदि न लगावे । व्यग्रता, आलस्य, थूकना, क्रोध, पैर फैलाना,

---

१. लक्षाधीश इति शेषः । मध्ये मध्यकोष्ठे तथा पूर्वोक्तप्रकारेण नवधा विभज्य पूर्वादिक्रमेण द्वौ द्वौ स्वरौ लिखेत् ।

२. त्रिकालस्नायी ।

[1]स्त्रीशूद्रभाषणं निन्दां ताम्बूलं शयनं दिवा।
प्रतिग्रहं नृत्यगीते कौटिल्यं वर्जयेत् सदा॥ १०८॥
भूशय्यां ब्रह्मचर्यं च त्रिकालं देवतार्चनम्।
नैमित्तिकार्चनं देवस्तुतिं विश्वासमाश्रयेत्॥ १०९॥
प्रत्यहं प्रत्यहं तावन्नैव न्यूनाधिकं क्वचित्।
एवं जपं समाप्यान्ते दशांशं होममाचरेत्॥ ११०॥
तत्तत्कल्पोदितैर्द्रव्यैस् तद्विधानमुदीर्यते।
प्राणायामं षडङ्गं च कृत्वा मूलेन मन्त्रवित्॥ १११॥
कुण्डे वा स्थण्डिले कुर्यात्संस्काराणां चतुष्टयम्।
मूलेनेक्षणमस्त्रेण प्रोक्षणं ताडनं कुशैः॥ ११२॥

होमविधिमाह – **प्राणायाममिति** ॥ १११ ॥ अस्त्रं फट् वर्मणा हुंकारेण । भूमन्दिरं चतुष्कोणम् ॥ ११२–११३ ॥ * ॥ ११४–११७ ॥

अन्यों से संभाषण एवं अन्य स्त्रियों का तथा चाण्डालादि का दर्शन जप काल में वर्जित करे । दूसरे की निन्दा, ताम्बूल चर्वण, दिन में शयन, प्रतिग्रह, नृत्य, गीत एवं कुटिलता न करें । पृथ्वी में शयन करे । ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करे । त्रिकाल देवार्चन करे । नैमित्तिक कार्यों में देवार्चन एवं देवस्तुति करे और अपने इष्टदेवता में विश्वास रख्खे । प्रतिदिन एक समान संख्या में जप करे । न्यूनाधिक संख्या में नहीं । इस प्रकार निश्चित जप की संख्या समाप्त करने के पश्चात् ही दशांश से हवन करे ॥ १०६-११० ॥

विमर्श - उपांशु जप - जिह्वा और ओष्ठ का संचालन पूर्वक स्वयं सुनाई पड़ने वाले शब्दों के उच्चारण पूर्वक जो जप किया जाता है वह 'उपांशु' है । जिसमें ओठ और जीभ का भी संचालन न हो मात्र मन्त्र, मन्त्रार्थ तथा देवता का स्मरण कर जो जप किया जाता है वह 'मानस जप' है । इसके अतिरिक्त वाचिक जप भी होता है जिसका पुरश्चरण में निषेध है ।

हविष्यान्न - जौ, मूंग, चावल, गौ का दूध, दही, घी, मक्खन, शक्कर, तिल, खोआ, नारियल, केला, फल, मेवा, आँवला, सेन्धा नमक आदि हविष्यान्न कहे गये हैं । साधक को इन्हीं का भोजन मात्र एक वार करना चाहिए । भोजन दोष से मन्त्रसिद्धि में बाधा होती है ॥ १०६-११० ॥

तत्तत्कल्पोक्त ग्रन्थों में कहे गये हविष्य द्रव्यों से दशांश हवन का विधान कहा गया है । मन्त्रवेत्ता को सर्वप्रथम मूल मन्त्र से प्राणायाम एवं षडङ्गन्यास कर कुण्ड या स्थण्डिल (वेदी) पर चारों संस्कार करना चाहिए । प्रथम मूलमन्त्र पढ़ कर देखे,

---

१. स्त्रीत्यादि अन्यभावेऽन्यस्यैव प्रपञ्च इति न पौनरुक्त्यम् ।

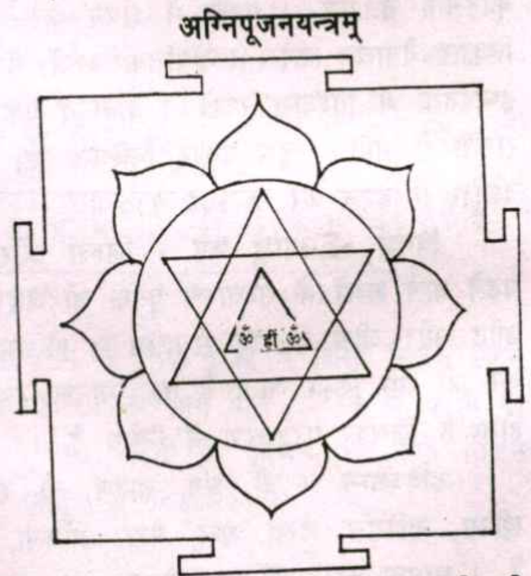
वर्म्मणा मुष्टिनासिच्य लिखेद्यन्त्रं तदन्तरे ।
वह्निकोणषडस्राष्टदलभूमन्दिरात्मकम् ॥ ११३ ॥
मध्ये तारपुटां [1] मायां लिखित्वा पीठमर्चयेत् ।
मण्डूकात् परतत्त्वान्तं पीठशक्तीर्जयादिकाः ॥ ११४ ॥
[2]वागीशीवागीश्वरयोर्योगपीठात्मने नमः ।
मायादिकः पीठमन्त्रस्तयोस्तेनासनं दिशेत् ॥ ११५ ॥
यजेत्तौ तारमायाभ्यां गन्धाद्यैरुपचारकैः ।
[3]लक्ष्मीनारायणौ त्वर्च्चेद् वैष्णवे होमकर्मणि ॥ ११६ ॥
सूर्यकान्तादरणितः श्रोत्रियागारतोऽपि वा ।
पात्रेण पिहिते पात्रे वह्निमानाययेत्ततः ॥ ११७ ॥

फिर 'अस्त्राय फट्' इस मन्त्र से प्रोक्षण करे । तदनन्तर कुशों से ताड़न कर 'हुम्' इस मन्त्र से मुष्टिका द्वारा उसका सेचन करे ॥ १११-११२ ॥

विमर्श - ईक्षण, प्रोक्षण, ताडन एवं सेचन - ये चारों कुण्ड के या स्थण्डिल के चार संस्कार होते हैं ॥ १११-११२ ॥

तदनन्तर वेदी पर यन्त्र का लेखन इस प्रकार करे - त्रिकोण, उसके बाद षट्कोण, अष्टदल एवं चतुष्कोण यन्त्र बना कर उसके मध्य में 'ॐ ह्रीं ॐ' लिख कर पीठ पूजन करना चाहिए । फिर मण्डूक से ले कर परतत्त्व पर्यन्त तथा जया आदि पीठशक्तियों (द्र० १.५०-६०) का पूजन करना चाहिए ॥ ११३-११४ ॥

अग्निपूजनयन्त्रम्



फिर 'ॐ ह्रीं वागीशीवागीश्वरयोर्योगपीठात्मने नमः' इस मन्त्र से उन्हें आसन देना चाहिए । फिर तार (ॐ), माया (ह्रीम्) अर्थात् ॐ ह्रीं इस मन्त्र से गन्धादि उपचारों द्वारा उनका पूजन करना चाहिए । यदि विष्णु देवता का होम करना हो तो 'ॐ ह्रीं लक्ष्मी नारायणाभ्यां नमः' इस मन्त्र द्वारा लक्ष्मीनारायण का पूजन करना चाहिए ॥ ११५-११६ ॥

---

१. ॐ ह्रीं ॐ ।
२ ॐ ह्रीं वागीशीवागीस्वरयोर्योगपीठात्मने नमः ।
३. ॐ ह्रीं लक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः ।

अस्त्रेणादाय तत्पात्रं वर्मणोद्धाटयेत्तु तम् ।
अस्त्रमन्त्रेण नैर्ऋत्ये क्रव्यादांशं ततस्त्यजेत् ॥ ११८ ॥
मूलेन पुरतो धृत्वा संस्कारांश्च ततश्चरेत् ।
वीक्षणाद्यान् पुरा प्रोक्तानल्पं प्रोक्षणमाचरन् ॥ ११९ ॥
परमात्मानलेनाथ जाठरेणापि वह्निना ।
स्मरन्नैक्यं वह्निबीजाच्चैतन्यं योजयेत्ततः ॥ १२० ॥
तारेण चाभिमन्त्र्याग्निं सुधया धेनुमुद्रया ।
अमृतीकृत्य संरक्षेदस्त्रं मन्त्रेण मन्त्रवित् ॥ १२१ ॥
मुद्रया त्ववगुड्ठिन्या कवचेनावगुञ्ठयेत् ।
कुण्डोपरि ततो वह्निं भ्रामयेत् त्रिध्रुवं पठन् ॥ १२२ ॥

क्रव्यादांशं मांसाशिनो वह्नेर्यस्तत्र भागस्तमस्त्रेण त्यजेत् ॥ ११८ ॥ * ॥ ११९ ॥ वह्निबीजात् रमिति बीजात् ॥ १२० ॥ सुधया वबीजेन । धेनुमुद्रालक्षणं वक्ष्यते ॥ १२१ ॥ अवगुण्ठिन्या अपि वक्ष्यते । कवचेन हुंबीजेन । त्रिध्रुवं प्रणवम् ॥ १२२ ॥ * ॥ २३–१२४ ॥

विमर्श - १. गन्ध, २. पुष्प, ३. धूप, ४. दीप एवं ५. नैवेद्य - इन पाँच उपचारों को गन्धादि उपचार कहा जाता है ॥ ११५-११६ ॥

अब **अग्निस्थापन** का प्रकार कहते हैं - सूर्यकान्तमणि द्वारा, अरणिमन्थन द्वारा अथवा श्रोत्रिय के घर (अग्निशाला) से अग्नि को किसी पात्र में रख कर और उसे दूसरे पात्र से ढ़क कर लाना चाहिए ॥ ११७ ॥

'अस्त्राय फट्' मन्त्र का उच्चारण कर अग्नि पात्र ग्रहण करे । 'हुम्' मन्त्र का उच्चारण कर उस पात्र को खोले । पुनः अस्त्र मन्त्र (अस्त्राय फट्) का उच्चारण कर उसका कुछ अंश मांसभोजी अग्नि के लिए नैर्ऋत्यकोण में फेंक देना चाहिए ॥ ११८ ॥

पुनः मूलमन्त्र का उच्चारण कर उस अग्निपात्र को अपने सामने रक्खे, तथा उसे स्वल्प रूप से सिञ्चित करके उसका ईक्षण आदि पूर्वोक्त चार संस्कार (द्र० १. ११२) संपन्न करना चाहिए ॥ ११९ ॥

फिर परमात्मा रूप अनल (अग्निर्वै रुद्रः) तथा जाठराग्नि एवं संमुख रक्खी अग्नि में एकरूपता की भावना करते हुए 'रम्' बीज से उसमें चेतनता लानी चाहिए ॥ १२० ॥

फिर मन्त्रवेत्ता ब्राह्मण तार मन्त्र (ॐ) से अग्नि को अभिमन्त्रित कर सुधाबीज (वँ) से धेनु मुद्रा प्रदर्शित करते हुए उसका अमृतीकरण करे तथा अस्त्राय फट् मन्त्र से उसे संरक्षित रखे ॥ १२१ ॥

तदनन्तर कवच (हुम्) मन्त्र पढ़ते हुए अवगुण्ठन मुद्रा प्रदर्शित कर उसे अवगुण्ठित कर प्रणव का तीन बार उच्चारण करते हुए उस अग्नि को कुण्ड अथवा वेदी पर तीन बार घुमाना चाहिए ॥ १२२ ॥

शय्यागतामृतुस्नातां नीलेन्दीवरधारिणीम् ।
देवेन भुज्यमानां तां स्मृत्वा तद्योनि मण्डले ॥ १२३ ॥
ईशरेतोधिया वह्निं स्थापयेदात्मसम्मुखम् ।
मूलं नवार्णं च पठञ्जानुस्पृष्टधरातलः ॥ १२४ ॥

वह्निनवार्णमन्त्रोद्धारः

[1]रेफार्घेशेन्दुसंयुक्तं गगनं वह्निचै ततः ।
तन्यायहृदयान्तोऽयं नवार्णोऽग्निनिधापने ॥ १२५ ॥
विश्राण्याचमनं देवीदेवयोर्ज्वालयेद्वसुम्[2] ।
चतुर्विंशतिवर्णेन मन्त्रेण श्रपणादिभिः[3] ॥ १२६ ॥

नवार्णमुद्धरति । अर्घेशेन्दुः ऊः । गगनं हः । शेषं स्वरूपम् । हृदयान्तो नमोन्तः। हूं वह्निचैतन्याय नम इत्यग्निस्थापने नवाक्षरो मन्त्रः ॥ १२५ ॥ विश्राण्य दत्त्वा ॥ १२६ ॥

तत्पश्चात् घुटनों के बल पृथ्वी पर बैठ कर वक्ष्यमाण नवार्ण मन्त्र का उच्चारण कर शय्या पर स्थित ऋतुस्नाता, नीलकमलधारिणी अग्निदेव के द्वारा संभोग की जाती हुई अग्नि - पत्नी स्वाहा का स्मरण कर उसके योनिमण्डल स्थान में शिव के वीर्य की भावना करते हुए उस अग्नि को अपने सम्मुख स्थापित करना चाहिए ॥ १२३-१२४ ॥

विमर्श - धेनुमुद्रा - अन्योन्याभिमुखौ श्लिष्टौ कनिष्ठानामिका पुनः ।
तथा तु तर्जनीमध्या धेनुमुद्रा प्रकीर्तिता ॥

दोंनों हाथों की कनिष्ठा एवं अनामिका अङ्गुलियों को उसी प्रकार तर्जनी और मध्यमा अङ्गुलियों को परस्पर मिला देने से 'धेनुमुद्रा' होती है ।

अवगुण्ठन मुद्रा - सव्यहस्तकृता मुष्टिः दीर्घाधोमुखतर्जनी ।
अवगुण्ठनमुद्रेयमभितो भ्रामिता भवेत् ॥

दाहिने हाथ की मुट्ठी बाँध कर तर्जनी एवं मध्यमा को अधोमुख चारों ओर घुमाने से अवगुण्ठन मुद्रा होती है ॥ १२३-१२४ ॥

अग्निस्थापन मन्त्र - रेफ, अर्घेश = ऊ, इन्दु = अनुस्वार से युक्त गगन (ह) अर्थात् हूँ, तदनन्तर वह्नि 'चै', तदनन्तर 'तन्याय', तदनन्तर हृदय = 'नमः' का उच्चारण करने से नवार्ण मन्त्र होता है । यह मन्त्र अग्निस्थापन में प्रयुक्त होता है ॥ १२५ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - हूं वह्निचैतन्याय नमः ॥ १२५ ॥

तदनन्तर उक्त दोंनों देव एवं देवियों को आचमन दे कर वक्ष्यमाण चौबीस अक्षरात्मक मन्त्र का जप करते हुये कण्डा, समिधा आदि से अग्नि को प्रज्वलित करना चाहिए ॥ १२६ ॥

---

१. हूं वह्निचैतन्याय नमः । २. अग्निम् ।
३. काण्डादिभिः ।

वह्निचतुर्विंशत्यक्षरमन्त्रोद्धारः

चित्पिङ्गलहनद्वन्द्वं दहयुग्मं पचद्वयम् ।
सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा मन्त्रो वेदभुजाक्षरः ॥ १२७ ॥
प्रदर्श्य ज्वालिनीं मुद्रामुत्थाय विहिताञ्जलिः ।
श्लोकरूपेण मन्त्रेण ह्युपतिष्ठेद्धुताशनम् ॥ १२८ ॥

श्लोकमन्त्राग्निमन्त्रोद्धारः

अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम् ।
सुवर्णवर्णममलं समिद्धं विश्वतोमुखम् ॥ १२९ ॥
अथाग्निमन्त्रं विन्यस्येत्तद्विधानमुदीर्यते ।
वैश्वानरान्ते जातेति वेदान्ते स्यादिहावह ॥ १३० ॥

चतुर्विंशति वर्णमुद्धरति – **चिदिति** । चित्पिङ्गल हन हन दह दह पच पच सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा । वेद ४ भुजा २ अक्षरश्चतुर्विंशति वर्णः ॥ १२७ ॥

ज्वालिनीमुद्रालक्षणम् – मणिबन्धयुतौ कृत्वा प्रसृताङ्गुलिकौ करौ ।
कनिष्ठाङ्गुष्ठयुगले मिलित्वान्तः प्रसारिते ।
ज्वालिनीनाम मुद्रेयं वैश्वानरप्रियङ्करी ॥ इति ॥ १२८ ॥

श्लोकरूपं मन्त्रमाह ॥ १२९ ॥ अग्निमन्त्रमाह – वैश्वानरजातवेद इहावह

अब **चतुर्विंशत्यक्षर मन्त्र का स्वरूप** कहते हैं –

सर्वप्रथम 'चित्पिङ्गल' शब्द, तदनन्तर दो बार 'हन' शब्द, तत्पश्चात् दो बार 'दह' शब्द, फिर दो बार 'पच' शब्द और अन्त में 'सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा' लगाने से चतुर्विंशति अक्षर का मन्त्र बन जाता है ॥ १२७ ॥

विमर्श - इस मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'चित्पिङ्गल हन हन दह दह पच पच सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा' ॥ १२७ ॥

तदनन्तर आसन से उठकर हाथ जोड़कर ज्वालिनी मुद्रा प्रदर्शित कर आगे कहे जाने वाले श्लोक रूप मन्त्र से अग्नि का उपस्थापन करें ॥ १२८ ॥

विमर्श - दोनों हाथ के मणिबन्ध स्थान को एक में मिलाकर अङ्गुलियों को दोनों हाथ की कनिष्ठा तथा अङ्गुष्ठों को परस्पर एक में मिलाने से ज्वालिनीमुद्रा हो जाती है ॥ १२८ ॥

अब अग्निं प्रज्वलितं ... विश्वतोमुखम् आदि श्लोक रूप मन्त्र से अग्नि का उपस्थापन कहते हैं । सुवर्ण वर्ण के समान अमल एवं देदीप्यमान, विश्वतोमुख, जातवेद तथा हुताशन नाम वाले प्रज्वलित अग्नि की मैं वन्दना करता हूँ ॥ १२९ ॥

इसके अनन्तर अग्निमन्त्र का न्यास करना चाहिए । उसकी विधि कह रहे हैं - सर्वप्रथम वैश्वानर, इसके बाद जातवेद, फिर इहावह तत्पश्चात् लोहिताक्ष फिर

लोहिताक्षपदात् सर्वकर्माण्यन्ते तु साधय ।
वह्निप्रियान्तो मन्त्रोऽयं षड्विंशत्यक्षरान्वितः ॥ १३१ ॥
ऋषिश्छन्दो देवतास्य भृगुर्गायत्रपावकाः ।
रंबीजं ठद्वयं शक्तिर्हवने विनियोजनम् ॥ १३२ ॥
लिङ्गे पायौ मूर्ध्नि वक्त्रे नसि नेत्रे खिलाङ्गके ।

जिह्वाबीजोद्धारः

वह्नेर्जिह्वाःस्वबीजाढ्या न्यसेन्ङेन्तानमोन्विताः ॥ १३३ ॥
हिरण्या[1] गगना रक्ता कृष्णासुप्रभयान्विता ।
बहुरूपातिरक्तेति जिह्वा दमुनसो मताः ॥ १३४ ॥
दीपिकानलवायुस्थाः साद्या वर्णाविलोमतः ।
सेन्दवः सप्तजिह्वानां सप्तानां बीजतां[2] गताः ॥ १३५ ॥

लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहेति ॥ १३०–१३१ ॥ ठद्वयं स्वाहा ॥ १३२ ॥ ङेन्ताश्चतुर्थ्यन्ताः ॥ १३३ ॥ जिह्वाबीजान्युद्धरति – **दीपिकेति** । दीपिका उ । अनलो रः । वायुर्यः । एतेषु स्थिताः सकाराद्या विलोमवर्णाः सषशवलरयेति सेन्दवोऽनुस्वाराद्या इमे सप्त हिरण्यादिजिह्वानां बीजानीत्यर्थः । ततश्च स्रूं हिरण्यायै नमः । ष्रूं गगनायै नमः । श्रूं रक्तायै नमः । व्रूं कृष्णायै नमः । ल्रूं सुप्रभायै नमः । र्रूं बहुरूपायै नमः । य्रूं अतिरक्तायै नमः ॥ १३४–१३५ ॥

सर्वकर्माणि तदनन्तर साधय और अन्त में स्वाहा लगाने से २६ अक्षरों का अग्निमन्त्र बनता है ॥ १३०-१३१ ॥

विमर्श - इस मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - वैश्वानरजातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा ॥ १३०-१३१ ॥

अब अग्निमन्त्र का विनियोग कहते हैं - इस मन्त्र के भृगु ऋषि हैं, गायत्री छन्द है तथा पावक इसके देवता हैं, रं बीज है और स्वाहा शक्ति है । इसका विनियोग हवन कार्य में किया जाता है ॥ १३२ ॥

अब सप्तजिह्वामन्त्र एवं उनका न्यास कहते हैं - लिङ्ग, गुदा, शिर, मुख, नासिका, आँख एवं सर्वाङ्ग में अपने अपने बीजमन्त्रों के साथ नमः लगाकर प्रत्येक अग्नि जिह्वा नाम के आगे चतुर्थी एक वचन से न्यास करना चाहिए । हिरण्या, गगना, रक्ता, कृष्णा, सुप्रभा, बहुरूपा एवं अति रक्ता - ये सात अग्नि जिह्वाओं के नाम हैं ॥ १३३-१३४ ॥

दीपिका (ऊ) अनल (र) वायु (य) इन तीनों को एक में मिलाकर अर्थात् 'य्रूं' के आदि में सकरादि सात वर्णो को विलोम रूप से (स् ष् श् व् ल् र् य्) एक एक में मिलाने से अग्निजिह्वा के बीज मन्त्र बन जाते हैं ॥ १३५ ॥

---

१. अग्नेः सप्तजिह्वानामानि । २. स्र्यूँ ष्र्यूँ श्र्यूँ व्र्यूँ ल्र्यूँ र्र्यूँ य्र्यूँ अग्नेर्जिह्वाबीजानि ।

[1]गीर्वाणपितृगन्धर्वयक्षनागपिशाचकाः ।
राक्षसाश्चेति जिह्वानां देवतास्तत्स्थले न्यसेत् ॥ १३६ ॥
न्यासेर्चने[2] व्युत्क्रमः स्याद् बहुरूपाति रक्तयोः ।
नेत्रेतिरिक्ता न्यस्तव्या सर्वाङ्गेबहुरूपिका ॥ १३७ ॥
सहस्रार्चिषे हृदयं स्वस्तिपूर्णाय मस्तकम् ।
उत्तिष्ठ पुरुषायेति शिखामन्त्रोऽयमीरितः ॥ १३८ ॥

गीर्वाणादयो जिह्वाधिदेवा जिह्वास्थानेषु न्यस्याः । सुरेभ्यो नमः लिङ्गे इत्यादिप्रयोगः ॥ १३६ ॥ *॥ ३७ ॥ मस्तकं शिरो मन्त्रः ॥ १३८ ॥ *॥ ३६–१४० ॥

विमर्श - जैसे - स्प्रूं, ष्प्रूं, श्म्रूं, व्म्रूं, ल्म्रूं, र्य्रूं, य्म्रूं ये सप्त जिह्वाओं के क्रमशः बीज मन्त्र हैं ।

प्रयोग विधि - ॐ स्म्रूँ हिरण्यायै नमः लिङ्गे, ॐ ष्म्रूं गगनायै नमः पायौ,
ॐ श्म्रूँ रक्तायै नमः शिरसि, ॐ व्म्रूं कृष्णायै नमः वक्त्रे,
ॐ ल्म्रूँ सुप्रभायै नमः नासिकायाम्, ॐ र्य्रूं अति रक्तायै नमः नेत्रे,
ॐ य्म्रूँ बहुरूपायै नमः सर्वाङ्गे ।

टिप्पणी - इस न्यास के क्रम में बहुरूपा एवं अतिरिक्ता में व्युत्क्रम हुआ है, जो वक्ष्यमाण १३७ श्लोक के अनुरूप है । वहाँ नेत्र में अति रक्ता का तथा सर्वाङ्ग में बहुरूपा का न्यास कहा गया है ॥ १३५ ॥

अब उपर्युक्त सात जिह्वाओं के देवाताओं द्वारा न्यास कहते हैं - सुर, पितर, गन्धर्व, यक्ष, नाग, पिशाच एवं राक्षस इन जिह्वाओं के अधिदेवता कहे गये हैं । उनका भी क्रमशः उक्त अङ्गों में न्यास करना चाहिए । पूजा काल में बहुरूपा एवं अति रक्ता का जो क्रम बतलाया गया है न्यास में वह व्युत्क्रम हो जाता है । इसीलिए नेत्र में प्रथम अति रक्ता का न्यास, तदनन्तर सर्वाङ्ग में बहुरूपा का न्यास प्रदर्शित किया गया है (द्र १.१३४) ॥ १३६-१३७ ॥

विमर्श - **प्रयोग विधि** - ॐ सुरेभ्यो नमः लिङ्गे, ॐ पितृभ्यो नमः पायौ,
ॐ गन्धर्वेभ्यो नमः, मूर्ध्नि, ॐ यक्षेभ्यो नमः मुखे,
ॐ नागेभ्यो नमः नासिकायाम्, ॐ पिशाचेभ्यो नमः, नेत्रे,
ॐ राक्षसेभ्यो नमः, सर्वाङ्गे ॥ १३६-१३७ ॥

अब **षडङ्गन्यास** कहते हैं -
ॐ सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः, ॐ स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा,
ॐ उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै वषट्, ॐ धूमव्यापिने कवचाय हुम्,

---

१. जिह्वाधिदेवतानामानि ।

२. प्रयोगस्तु – स्म्रूँ ष्म्रूँ श्म्रूँ व्म्रूँ ल्म्रूँ र्य्रूँ य्म्रूँ हिरण्यायै नमो लिङ्गे. ष्म्रूँ गगनायै नमः पायौ इत्यादि ।

धूमान्ते[1] व्यापिने वर्म सप्तजिह्वाय नेत्रकम् ।
अस्त्रं धनुर्धरायेति षडङ्गानि समाचरेत् ॥ १३६ ॥
मूर्ध्नि[2] वामेंसके पार्श्वे कटौ लिङ्गे कटौ पुनः ।
दक्षे पार्श्वेंसके न्यस्येन्मूर्तीरष्टौ विभावसोः ॥ १४० ॥
ताराग्नये पदाद्यास्ताश्चतुर्थीनमसान्विताः ।
जातवेदाः सप्तजिह्वो हव्यवाहन इत्यपि ॥ १४१ ॥
अश्वोदरजसंज्ञोन्यस्तथा वैश्वानराह्वयः ।
कौमारतेजाः स्याद्विश्वमुखो देवमुखस्तथा ॥ १४२ ॥
ततो न्यसेन्निजे देहे पीठं हाटकरेतसः ।
वह्निमण्डलपर्यन्तं मण्डूकादि यथोदितम् ॥ १४३ ॥
पीता श्वेतारुणा कृष्णा धूम्रा तीव्रा स्फुलिङ्गिनी ।
रुचिरा ज्वालिनी चेति कृशानोः पीठशक्तयः ॥ १४४ ॥

तारेति । प्रणवाग्नये पदपूर्वा । ङे नमोन्ताः । ॐ अग्नये जातवेदसे नमो मूर्ध्नीत्यादि ॥ १४१–१४२ ॥ हाटकरेतसो वह्नेः । मण्डलपर्यन्तमेव पीठदेवताः पूज्याः । ततः पीताद्याः पीठशक्तयः ॥ १४३–१४४ ॥

ॐ सप्तजिह्वाय नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ धनुर्धराय अस्त्राय फट् इस प्रकार षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ १३८-१३६ ॥

शिर, वामस्कन्ध, वाम पार्श्व, वाम कटि, लिङ्ग पुनः दक्षिण कटि, दक्षिणपार्श्व - दक्षिण स्कन्ध इन अङ्गों में अग्नि की आठ मूर्तियों से न्यास करना चाहिए ॥ १४०॥

प्रथम प्रणव (ॐ), इसके अनन्तर 'अग्नये', इसके बाद प्रत्येक मूर्ति नाम में चतुर्थी, तदनन्तर 'नमः' पद से उक्त स्थानों (द्र० १. १४०) में न्यास करना चाहिए। १. जातवेदाः, २. सप्तजिह्व, ३. हव्यवाहन, ४. अश्वोदरज, ५. वैश्वानर, ६. कौमार- तेजस्, ७. विश्वमुख तथा ८. देवमुख - ये अग्नि की आठ मूर्तियों के नाम हैं ॥ १४१-१४२ ॥

विमर्श - प्रयोगविधि - यथा - ॐ अग्नये जातवेदसे नमः मूर्ध्नि
ॐ अग्नये सप्तजिह्वाय नमः वामांसे, ॐ अग्नये हव्यवाहनाय नमः वामपार्श्वे,
ॐ अग्नये अश्वोदरजाय नमः वामकटौ, ॐ अग्नये वैश्वानराय नमः लिङ्गे,
ॐ अग्नये कौमारतेजसे नमः दक्षकटौ, ॐ अग्नये विश्वमुखाय नमः दक्षपार्श्वे,
ॐ अग्नये देवमुखाय नमः दक्षांसे ॥ १४१-१४२ ॥

पीठ देवता एवं शक्तियों का न्यास - इसके बाद अपने शरीर में मण्डूक से लेकर अग्निमण्डल पर्यन्त अग्निपीठ के देवताओं को (द्र० १.५०-५६) न्यास करना

---

१. धूमव्यापिने कवचाय हुम् ।
२. अग्नये जातवेदसे मूर्ध्नि इत्यादि ।

बीजं वह्न्यासनायेति हृदन्तः पीठमन्त्रकः ।
एवं विन्यस्य पीठान्तं पावकं चिन्तयेत्तनौ ॥ १४५ ॥

अग्निध्यानम्

त्रिनेत्रमारक्ततनुं सुशुक्ल –
वस्त्रं सुवर्णस्रजमग्निमीडे ।
वराभयस्वस्तिकशक्तिहस्तं
पद्मस्थमाकल्पसमूहयुक्तम् ॥ १४६ ॥

अग्न्यर्चनादिवर्णनम्

एवं ध्यात्वार्चनं कुर्यान्मानसं विधिवद्वसोः ।
परिषिञ्चेत्ततस्तोयैः कुण्डं स्थण्डिलमेव वा ॥ १४७ ॥
दर्भैः परिस्तरेदग्निं प्रागग्रैरुदगग्रकैः ।
प्रत्यग्दक्षिणसौम्यासु न्यसेत्त्रीन्परिधीन्क्रमात् ॥ १४८ ॥
पालाशान्बिल्वजांस्तेषु ब्रह्मविष्णुशिवान्यजेत् ।
वह्नौ तत्पीठमभ्यर्च्यावाहयेत्स्वहृदोऽनलम् ॥ १४९ ॥

बीजमिति । रं वह्न्यासनाय नमः इति पीठमन्त्रः ॥ १४५ ॥ ध्यानमाह – **त्रिनेत्रमिति** । वरस्वस्तिका दक्षयोः । अभीतिशक्ती वामयोः । आकल्पा आभरणानि तत्संघयुतम् ॥ १४६ ॥ * ॥ १४७–१५३ ॥

चाहिए । पीता, श्वेता, अरुणा, कृष्णा, धूम्रा, तीव्रा, स्फुलिङ्गनी, रुचिरा एवं ज्वालिनी ये अग्निपीठ की शक्तियाँ हैं ॥ १४३-१४४ ॥

'ॐ रं वह्न्यासनाय नमः' यह पीठ का मन्त्र है इस प्रकार पीठ पर्यन्त समस्त न्यास कर अपने शरीर में अग्नि का ध्यान करना चाहिए ॥ १४५ ॥

अग्नि का ध्यान - तीन नेत्रों वाले, रक्तवर्ण शरीर वाले, शुभ्र वस्त्र से युक्त, सुवर्ण माला धारण किए हुये, दाहिने हाथों में वरदमुद्रा एवं स्वस्तिक, तथा बायें हाथों में अभयमुद्रा एवं शक्ति धारण किए हुये, आभूषणों से सुशोभित कमलासन पर बैठे हुये अग्निदेव का मैं ध्यान करता हूँ ॥ १४६ ॥

इस प्रकार अग्निदेव का ध्यान कर विधिवत् सर्वोपचारों से मानस पूजन करना चाहिए । फिर जल से कुण्ड अथवा स्थण्डिल का परिषिञ्चन करना चाहिए ॥ १४७॥

तदनन्तर पूर्व एवं उत्तराग्रभाग वाले कुशाओं से उसका पूर्व दिशा के क्रम से परिस्तरण करना चाहिए । पुनः पलाश एवं विल्ववृक्ष की शाखाओं से पश्चिम, दक्षिण एवं उत्तर में क्रमशः तीन परिधि बनाकर उस पर ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव का पूजन करना चाहिए । अग्नि में उनके पीठस्थ देवताओं का पूजन कर अपने हृदय में अग्निदेव का आवाहन करना चाहिए ॥ १४८-१४९ ॥

गन्धादिभिः समभ्यर्च्य पूजयेत् पावकं व्रती ।
षट्सु कोणेषु मध्ये च जिह्वास्तद्देवता यजेत् ॥ १५० ॥
ईशानादिषु वायवन्तकोणेषु षट् समर्चयेत् ।
हिरण्याद्यतिरक्तान्ता मध्ये तु बहुरूपिणीम् ॥ १५१ ॥
केसरेष्वङ्गपूजास्याद्दलेष्वष्टसु मूर्तयः ।
मातरोऽष्टौ दलान्तेषु भैरवाः स्युस्तदग्रतः ॥ १५२ ॥
धरापुरे तु शक्राद्या वज्राद्यायुधसंयुताः ।
एवमावरणैर्युक्तं सप्तभिः पावकं यजेत् ॥ १५३ ॥

अष्टभैरवनामकथनम्

असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोध उन्मत्तसंज्ञकः ।
कपाली भीषणश्चापि संहारश्चाष्टभैरवः ॥ १५४ ॥
वामे कुशानथास्तीर्य तत्र वस्तूनि निःक्षिपेत् ।
प्रणीताप्रोक्षणीपात्रे आज्यस्थालीं स्रुवं स्रुचम् ॥ १५५ ॥
अधोमुखानि चैतानि होमद्रव्यं घृतं कुशान् ।
समिधः पञ्चपालाशीरन्यदप्युपयोगि यत् ॥ १५६ ॥

भैरवानाह – असिताङ्ग इति ॥ १५४ ॥ * ॥ १५५–१५७ ॥

फिर व्रती पुरश्चरणकर्ता गन्धादि पूजनोपचारों से अग्निदेव का पूजन करें । षट्कोण में एवं मध्य में अग्नि की सप्तजिह्वा (द्र० १.१३४) का पूजन करना चाहिए । उसकी विधि इस प्रकार है - ईशान से लेकर ऊर्ध्वाधः वायव्य पर्यन्त षट्कोणों में हिरण्या से लेकर अतिरक्ता तक ६ अग्निजिह्वाओं का तथा मध्य में बहुरूपिणी नामक अग्नि जिह्वा का पूजन करना चाहिए ॥ १५०-१५१ ॥

केसरों में अङ्गपूजा, अष्टदलों में अष्टमूर्तियों की पूजा (द्र० १. १४१ - १४२) तथा दलों के अन्त में अष्टमातृकाओं की पूजा (द्र० ५. ३९-४०) और दलान्त के आगे अष्ट भैरवों की पूजा करनी चाहिए ॥ १५२ ॥

भूपुर में इन्द्रादि देवों की तथा उनके वज्रादि आयुधों की पूजा करनी चाहिए । इस प्रकार सप्तावरण के देवताओं के साथ-साथ अग्निदेव का यजन करना चाहिए ॥ १५३ ॥

१. असिताङ्ग, २. रुद्र, ३. चण्ड, ४. क्रोध, ५. उन्मत्त, ६. कपाली, ७. भीषण और ८. संहार - ये अष्ट भैरवों के नाम हैं ॥ १५४ ॥

अब **पात्रासादन की विधि** कहते हैं - अग्नि के वाम भाग में कुशाओं को फैला कर उस पर प्रणीता एवं प्रोक्षणीपात्र, आज्यपात्र, स्रुवा एवं स्रुची आदि यज्ञ पात्र अधोमुख स्थापित करना चाहिए । उसी के साथ होमार्थ द्रव्य घृत, कुशा, पलाश की पञ्च समिधायें एवं अन्य उपयोगी वस्तुयें भी रखनी चाहिए ॥ १५५-१५६ ॥

कृत्वा पवित्रे मूलेन प्रोक्षेत्तानि शुभाम्भसा।
उत्तानानि विधायाथ प्रणीतां पूरयेज्जलैः ॥ १५७ ॥
तीर्थमन्त्रेण तीर्थानि सृण्या तत्राह्वयेत् सुधीः।
पवित्रे ह्यक्षतांस्तत्र निःक्षिप्योत्पवनं चरेत् ॥ १५८ ॥
अथोदीच्यां निधायैतां प्रोक्षण्यां तज्जलं क्षिपेत्।
हवनीयं द्रव्यजातमुक्षेत्तोयैः पवित्रगैः ॥ १५९ ॥
मूलेन मूलगायत्र्या यद्वा हृदयमन्त्रतः।
दक्षिणे पीठमासाद्य तत्र ब्रह्माणमाह्वयेत् ॥ १६० ॥
अणिमाद्याः सिद्धयोष्टौ ब्रह्मणः पीठदेवताः।

ब्रह्ममन्त्रोद्धारः

तारहृत्पूर्वको ङेन्तो ब्रह्मा मन्त्रोऽस्य[1] पूजने ॥ १६१ ॥

तीर्थमन्त्रेण – गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिन्धुकावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥

इत्यनेन । सृण्या अंकुशमुद्रया -
ऋज्वीं मध्यमिकां कृत्वा तर्जनीमध्यपर्वणि ।
संयोज्याकुञ्चयेत् किञ्चिन्मुद्रैषांकुशसंज्ञिका ॥

इति लक्षणम् ॥ १५८–१६० ॥ अणिमाद्या अष्टमे वक्ष्यन्ते । ब्रह्ममन्त्र–मुद्धरति – **तारेति** । ॐ नमो ब्रह्मणे इति ॥ १६१ ॥

तदनन्तर पवित्री का निर्माण कर मूलमन्त्र द्वारा पवित्र जल से उन वस्तुओं का प्रोक्षण करना चाहिए । तदनन्तर सभी पात्रों को सीधे रख कर प्रणीता पात्र में जल भरना चाहिए । फिर तीर्थ मन्त्र -

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥

इस मन्त्र को पढ़ते हुए अंकुश मुद्रा द्वारा उस जल में विद्वान् साधक को तीर्थों का आवाहन करना चाहिए । दो अक्षत (सम्पूर्ण रूप वाले) कुशाओं को उसमें छोड़कर जल का उत्पवन करना चाहिए । तदनन्तर प्रणीतापात्र को अग्नि के उत्तर भाग में रख कर उसका जल प्रोक्षणी पात्र में डालना चाहिए । फिर उस प्रोक्षणी के पवित्र जल से समस्त हवनीय पदार्थो का प्रोक्षण करना चाहिए ॥ १५७-१५९ ॥

अब **ब्रह्मदेव के आवाहन एवं पूजन की विधि** कहते हैं - अग्नि के दक्षिण में पीठ निर्माण कर उस पर मूलमन्त्र से, गायत्रीमन्त्र से अथवा हृदय मन्त्र (ॐ नमः) से उस पर ब्रह्मदेव का आवाहन करना चाहिए ॥ १६० ॥

---

१. ॐ नमो ब्रह्मणे ।

स्रुक्स्रुवसंस्कारः

हस्ताभ्यां स्रुक्स्रुवौ धृत्वा तापयेत्त्रिरधोमुखौ।
वामहस्तेन तौ धृत्वा दर्भैर्दक्षेण मार्जयेत् ॥ १६२ ॥
संप्रोक्ष्य प्रोक्षणीतोयैः प्रतर्प्य पूर्ववत् पुनः।
न्यस्याग्नौ मार्जनान्दर्भांस्तयोः शक्तित्रयं न्यसेत् ॥ १६३ ॥

शक्तित्रयम्

इच्छा ज्ञान क्रिया संज्ञा चतुर्थीनमसान्विता।
दीर्घत्रयेन्दुयुग्व्योमपूर्वकं स्थानकत्रये ॥ १६४ ॥
हृदास्रुचिन्यसेच्छक्तिं[1] स्रुवे शम्भुं ततस्तु तौ।
सूत्रत्रयेण संवेष्ट्य सम्पूज्य कुसुमादिभिः ॥ १६५ ॥

स्रुक्स्रुवसंस्कारमाह – **हस्ताभ्यामिति** ॥ १६२–१६३ ॥ शक्तित्रयमाह – **इच्छेति** । दीर्घत्रयम् – आ ई ऊ । व्योम हः । तत्पूर्वकां हां इच्छाशक्त्यै नमो मूले । हीं ज्ञानशक्त्यै नमः मध्ये । हूं क्रियाशक्त्यै नमः अन्ते ॥ १६४–१६६ ॥

अणिमादि आठ सिद्धियाँ ब्रह्मपीठ की देवता हैं । तार (ॐ) और हृद् (नमः), तदनन्तर ब्रह्मपद में चतुर्थी लगाकर 'ॐ नमो ब्रह्मणे' इस मन्त्र से उनकी पूजा करनी चाहिए ॥ १६१ ॥

विमर्श - **प्रयोग विधि** - अणिमायै नमः इत्यादि सिद्धियों के नाम मन्त्र से आठों सिद्धियों का आवाहन पूजन कर पीठ निर्माण करें । फिर 'ॐ नमो ब्रह्मणे' इस मन्त्र से उनकी पूजा करे ॥ १६०-१६१ ॥

स्रुव एवं स्रुचि के संस्कार की विधि कहते हैं - दोनों हाथों में स्रुवा स्रुचि लेकर अधोमुख कर तीन बार उन्हें अग्नि पर तपाना चाहिए । फिर उन दोनों को बायें हाथ में रखकर दाहिने हाथ से कुशा लेकर उनका मार्जन करना चाहिए । तदनन्तर प्रणीता के जल से सिञ्चन कर पुनः उन्हें पूर्ववत् तीन बार तपाकर, अग्नि के दाहिनी ओर स्थापित करना चाहिए । मार्जन कुशाओं को अग्नि में डाल देना चाहिए । तदनन्तर उन पर तीन-तीन शक्तियों का न्यास करे ॥ १६२-१६३ ॥

इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया रूपा शक्तियों के आगे चतुर्थ्यन्त विभक्ति लगाकर उसमें नमः जोड़े । आदि में क्रमशः आ ई ऊ के सहित सानुस्वार आकाश (ह) लगा कर शक्तियों से स्रुव एवं सुचि के मूल, मध्य एवं अन्त में इस प्रकार न्यास करे ॥ १६४ ॥

विमर्श - तद् यथा - १. ॐ हां इच्छात्मने नमः स्रुवमूले न्यसामि, २. ॐ हीं ज्ञानात्मने नमः स्रुवमध्ये न्यसामि, ३. ॐ हूं क्रियात्मने नमः स्रुवाग्रे न्यसामि । इसी प्रकार स्रुचि में भी उपर्युक्त तीनों शक्तियों द्वारा न्यास करना चाहिए ॥ १६४ ॥

---

१. नमः शक्त्यै, नमः शम्भवे ।

कुशोपरि न्यसेद्दक्षे तयोः संस्कार ईरितः ।
अस्त्रोक्षितायामाज्यस्य स्थाल्यामाज्यं विनिःक्षिपेत् ॥ १६६ ॥
वीक्षणादिकसंस्कारसंस्कृतं मूलमन्त्रतः ।
गोमुद्रयामृतीकृत्य षट् संस्कारांस्ततश्चरेत् ॥ १६७ ॥
कुण्डोद्धृते वायुकोणे स्थितेङ्गारे विनिःक्षिपेत् ।
हृदेति तापनं प्रोक्तं दर्भयुग्मं प्रदीपितम् ॥ १६८ ॥
आज्ये क्षिप्त्वा हृदावह्नौ पवित्रीकरणं क्षिपेत् ॥ १६९ ॥
आज्यं नीराजयेद् दीप्तदर्भयुग्मेन वर्मणा ।
अभिद्योतनमुक्तं तद्दीप्तं दर्भत्रयं घृते ॥ १७० ॥
दर्शयेदस्त्रेणोद्द्योते गृहीत्वा घृतपात्रकम् ।
संयोज्याग्नौ तदङ्गारान् सलिलं संस्पृशेत् सुधीः ॥ १७१ ॥

गोमुद्रा धेनुमुद्रा ॥ १६७ ॥ * ॥ १६८–१७३ ॥

पुनः सुचि के हृदय में शक्ति तथा सुव में शिव का न्यास कर तीन रक्षा सूत्रों से उन्हें बाँधकर पुष्पादि से पूजाकर उन्हें कुशाओं पर अग्नि के दाहिनी ओर स्थापित करना चाहिए ॥ १६५ ॥

विमर्श - न्यासविधि - सुचि हृदये शक्तिं न्यसामि, स्रुवोपरि शम्भुं न्यसामि ।
यहाँ तक स्रुवा तथा स्रुचि का संस्कार कहा गया है ॥ १६६ ॥

अब **आज्य एवं आज्यस्थाली के संस्कार की विधि** कहते हैं -

'अस्त्राय फट्' इस मन्त्र से प्रोक्षित आज्यस्थाली में आज्य को उड़ेलना चाहिए। फिर ईक्षण, प्रोक्षण, ताडन एवं सेचन आदि चार संस्कार से सुसंस्कृत कर धेनुमुद्रा प्रदर्शित करते हुये मूलमन्त्र से उसका अमृतीकरण करे । तदनन्तर वक्ष्यमाण छः संस्कार करना चाहिए ॥ १६६-१६७ ॥

विमर्श - १. अग्नि संस्थापन, २. तापन, ३. अभिद्योतन, ४. सेचन, ५. उत्पवन तथा ६. संप्लवन - ये छः संस्कार आज्य स्थाली के होते हैं जिसका क्रमशः वर्णन आगे (द्र० १. १६८-१७३) करेगें ॥ १६६-१६७ ॥

कुण्ड से निकाली गई अग्नि पर उस आज्य युक्त स्थाली को स्थापित करे - इसे **अग्नि संस्थापन** कहते हैं । फिर 'ॐ नमः' मन्त्र से उसे तपावे - इसे **तापन** कहते हैं । फिर दो कुशाओं को जला कर उसे घी में डाल देवें और तदनन्तर 'ॐ नमः' मन्त्र से अग्नि में उन दोनों कुशाओं को डाल देना चाहिए ॥ १६८-१६९ ॥

फिर जलती हुई उन कुशाओं को 'हुम्' मन्त्र पढ़ कर घी के चारों ओर घुमा देना चाहिए - इसे **अभिद्योतन** कहते हैं । पुनः घी में तीन कुशा डुबोकर 'अस्त्राय फट्' इस मन्त्र से जलाकर आज्यस्थाली में डाल देनी चाहिए । पुनः अङ्गार को उसी कुण्ड में डाल देना चाहिए । तदनन्तर साधक को जल का स्पर्श करना चाहिए ॥ १७०-१७१ ॥

अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां तु दर्भावादाय निःक्षिपेत्।
त्रिरग्निसंमुखेत्वाज्यमस्त्रेणोत्पवनं त्विदम् ॥ १७२ ॥
हृदात्मसम्मुखं तद्वदाज्यक्षेपस्तु संप्लवः।
नीराजनादिसंस्कारेष्वग्नौ दर्भान् विनिःक्षिपेत् ॥ १७३ ॥
दर्भद्वयं ग्रन्थियुतं घृतमध्ये विनिःक्षिपेत्।
वामदक्षिणयोः पक्षौ स्मृत्वा नाडीत्रयं स्मरेत्।
दक्षिणाद्वामतो मध्याद्धृदादाय घृतं सुधीः ॥ १७४ ॥
अग्नयेग्निप्रियासोमायस्वाहेत्यग्निनेत्रयोः।
जुहुयादग्नीषोमाभ्यां स्वाहेत्यक्षिणतृतीयके ॥ १७५ ॥
पातयेदाहुतेः शेषमाहुतिग्रहणस्थले।
भूयो हृदादक्षभागादादायाज्यं मुखे यजेत् ॥ १७६ ॥
अग्नये स्विष्टकृते तन्नेत्रास्योद्घाटनं मतम्।
नरसिंहं विना विष्णुं मन्त्रनेत्रद्वयं यजेत् ॥ १७७ ॥
नरसिंहान्य देवेषु वह्नेर्नेत्रत्रयं स्मृतम्।
[1]महाव्याहृतिभिर्व्यस्तसमस्ताभिश्चतुष्टयम् ॥ १७८ ॥

नाडीत्रयमिति । इडापिङ्गला सुषुम्णाख्या । तृतीया मध्ये चिन्त्या । हृदा नम इति मन्त्रेण ॥ १७४ ॥ अग्नये स्वाहेति दक्षनेत्रे । सोमाय स्वाहेति वामे तदाहुतिचतुष्टयेनाग्नेर्नेत्रमुखप्रकाशो भवतीत्यर्थः ॥ १७५ ॥ * ॥ ७६–१७६ ॥

पुनः अनामिका और अंगुष्ठ इन दो अंगुलियों से दो कुशा लेकर 'अस्त्राय फट्' इस मन्त्र से घी को ३ बार ऊपर की ओर उछालना चाहिए - इसे **उत्पवन** कहते हैं ॥ १७२ ॥

'ॐ नमः' इस मन्त्र से उस आज्य को तीन बार अपने सम्मुख उछालने का नाम **संप्लवन** है । नीराजनादि संस्कारों में अग्नि में दर्भ को डाल देना चाहिए ॥ १७३ ॥

ग्रन्थि युक्त दो कुशाओं को घी में डाल देना चाहिए । फिर वाम एवं दक्षिण दोनों प्रकार के स्वरों का ध्यान कर ईडा, पिङ्गला तथा सुषुम्ना इन तीनों नाड़ियों का ध्यान करे । साधक दक्षिण, वाम एवं मध्य भाग में 'ॐ नमः' मन्त्र से घी लेकर 'ॐ अग्नये स्वाहा' 'ॐ सोमाय स्वाहा' इन दो मन्त्रों से अग्नि के दोनों नेत्रों में तथा 'ॐ अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा' इस मन्त्र से उनके तृतीय नेत्र में आहुति देवे ॥ १७४-१७५ ॥

आहुति से शेष भाग को प्रणीता में डाल देना चाहिए, फिर 'ॐ नमः' मन्त्र से दाहिनी ओर से घी लेकर 'ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' मन्त्र से एक आहुति अग्निदेव के मुख में देवे । ऐसा करने से उनके नेत्र का उद्घाटन हो जाता है ॥ १७६-१७७ ॥

नृसिंह को छोड़कर विष्णु के मन्त्रों से दोनों नेत्रों में दो आहुति देनी चाहिए

---

१. भूः स्वाहा भुवः स्वाहा स्वः स्वाहा भूर्भुवः स्वः स्वाहा ।

आहुतीनां त्रयं वह्निमन्त्रेणैव ततश्चरेत्[1]।
घृताहुतिभिरष्टाभिरेकैकां संस्कृतिं चरेत् ॥ १७९ ॥

अग्निषट्संस्कारकरणम्

ओमस्याग्नेरमुं संस्कारं करोम्यग्निवल्लभा ।
इत्थं मनुं जपन् गर्भाधानं पुंसवनं ततः ॥ १८० ॥
सीमन्तोन्नयनं जातकर्म कृत्वा ततश्चरेत् ।
वह्नौ पञ्चसमिद्धोमान्नालापनयनं वसोः ॥ १८१ ॥
कुर्याद् देवाभिधानेन पूर्ववन्नामशुष्मणः ।
नामानन्तरमेतस्य पितरौ स्वेर्पयेद्धृदि ॥ १८२ ॥
अन्नप्राशं तथा चौलोपनयौ दारयोजनम् ।
संस्काराः स्युर्विवाहान्तामृत्यन्ता क्रूरकर्मणि ॥ १८३ ॥

ॐ अस्याग्नेर्गर्भाधानसंस्कारं करोमि स्वाहेत्यादि ॥ १८० ॥ पञ्चसमिधां होमाद्वसोरग्नेः नालापनयनाख्यः संस्कारः॥ १८१ ॥ देवाभिधानेन देवनाम्ना शुष्मणोग्नेर्नाम पूर्ववत् । घृताहुत्यष्टकेन कुर्यात्–रामाग्निकृष्णाग्निरित्यादि । एतस्याग्नेः पितरौ वागीशी वागीशौ कुण्डात् स्वहृदि न्यसेत् ॥ १८२ ॥ उपनयमुपवीतम् । दारयोजनं विवाहः ॥ १८३ ॥ * ॥ १८४–१८५ ॥

तथा नृसिंह एवं अन्य देवताओं के मन्त्र के दशांश हवन में अग्नि के तीनों नेत्रों में आहुतियाँ देनी चाहिए ॥ १७७-१७८ ॥

महाव्याहृतियों से पृथक् पृथक् (यथा ॐ भूः स्वाहा, ॐ भुवः स्वाहा, ॐ स्वः स्वाहा तदनन्तर ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा) ये चार आहुतियाँ देनी चाहिए । फिर अग्निमन्त्र (ॐ वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा) से तीन आहुति प्रदान करे । फिर घी की आठ आहुतियों से क्रमशः एक-एक आहुति से अग्नि का एक-एक संस्कार करना चाहिए ॥ १७८-१७९ ॥

अब **अग्नि के छह संस्कार** कहते हैं - सर्वप्रथम ' ॐ अस्याग्नेः गर्भाधानं संस्कारं करोमि स्वाहा' इस प्रकार मन्त्र से १. गर्भाधान संस्कार करे । इसी प्रकार २. पुंसवन, ३. सीमान्तोन्नयन, ४. जातकर्म तथा ५. नालच्छेदन में क्रमशः उक्त अग्निमन्त्र पढ़कर पाँच पलाश की समिधाओं की एक-एक के क्रम से अग्नि में आहुति देवें ॥ १८०-१८१ ॥

तदनन्तर अग्निदेवता का ६. नामकरण इस प्रकार करें । यदि गणेश मन्त्र की आहुति देनी हो तो गणेशाग्नि, राम और कृष्ण की आहुति देनी हो तो रामाग्नि एवं 'कृष्णाग्नि' ऐसा नामकरण करें । इस प्रकार अग्नि के नामकरण के पश्चात् इनके माता पिता वागीशी एवं वागीश को अपने हृदय में स्थापित करे ॥ १८२ ॥

---

१. वैश्वानरजातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा ।

एकैकामाहुतिं कुर्याद् वह्नेर्जिह्वाङ्गमूर्तिभिः[1] ।
इन्द्रादिभिश्च वज्राद्यैर्द्विठान्तैर्जुहुयात्ततः ॥ १८४ ॥
स्रुवेणाज्यं चतुर्वारं निधाय स्रुचितां सुधीः ।
अपिधाय स्रुवेणैतौ गृह्णीयात् करयुग्मतः ॥ १८५ ॥
तिष्ठन्मूलं तयोर्नाभौ कृत्वाग्रे कुसुमं क्षिपेत् ।
वामस्तनान्तं तन्मूलं कृत्वाग्निमनुना सुधीः ॥ १८६ ॥
जुहुयाद्वौषडन्तेन संपत्त्यर्थमतन्द्रितः ।
महागणेशमन्त्रेण व्यस्तेन दशधा ततः ॥ १८७ ॥
जुहुयाच्च समस्तेन चतुर्वारं घृताहुतीः ।
पूर्वपूर्वयुतं बीजषट्कं बाणाश्च सायकाः ॥ १८८ ॥
मुनयो मार्गणाश्चेति विभागस्तन्मनोः स्मृतः ।
तारो लक्ष्मीर्गिरिसुता कामो भूर्गणनायकः ॥ १८९ ॥

कुसुमं पुष्पम् ॥ १८६॥ दशधा व्यस्तेन विभक्तेन ॥ १८७॥ तमेव विभागमाह – **पूर्वेति** । बीजषट्कम् । बाणाः पञ्चवर्गाः । सायकाः पञ्चैव । मुनयः सप्त ।

तदनन्तर अन्नप्राशन, चौल, उपनयन एवं विवाह संस्कार भी उक्त प्रकार के संकल्प से एक-एक आहुति देते हुये सम्पन्न करना चाहिए । शुभ कार्यो में विवाह पर्यन्त ही संस्कार किए जाते हैं, किन्तु क्रूर कर्मों में मृत्यु पर्यन्त संस्कार करने की विधि है ॥ १८३ ॥

तदनन्तर अग्नि की जिव्हाओं (द्र० १.१३४) एवं अग्नि की ही मूर्तियों को पूर्वोक्त (द्र० १.१४२) मन्त्रों से प्रत्येक में चतुर्थी विभक्ति लगाकर अन्त में स्वाहा पद का उच्चारण कर एक-एक आहुति प्रदान करें । (यथा - हिरण्यायै स्वाहा, गगनायै स्वाहा आदि ।) फिर इन्द्रादि देवों के लिए तथा उनके आयुधों के लिए चतुर्थ्यन्त नाम मन्त्रों के आगे स्वाहा लगाकर आहुति प्रदान करें । (यथा - इन्द्राय स्वाहा, वज्राय स्वाहा आदि) ॥ १८४ ॥

तदनन्तर स्रुवा से स्रुचि में चार बार घी डालकर स्रुवा से स्रचि को ढककर खड़े हो कर उन्हें दोनों हाथों से पकड़कर नाभि के आगे कर उस पर पुष्प चढ़ाना चाहिए । फिर उनका मूल अपने बायें स्तन के पास लाकर अग्निमन्त्र से (यथा - वैश्वानर जातवेद इहा वह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा वौषट्) संपत्ति प्राप्ति के लिए साधक जागरूक होकर एक आहुति प्रदान करे ॥ १८५-१८७ ॥

तदनन्तर महागणपति मन्त्र के दस विभाग कर प्रत्येक भाग से एक-एक आहुति देनी चाहिए । तदनन्तर गणपति के समस्त मन्त्र को चार बार पढ़कर चार घृत की

---

१. जिह्वेति । स्वदेवतानामप्युपलक्षणम् ।

चतुर्थ्यन्तो गणपतिर्वरान्ते वरदेति च।
सर्वान्ते जनमित्युक्त्वा मे वशान्ते तु मानय॥ १६०॥
स्वाहान्तो वसुयुग्मार्णो महागणपतेर्मनुः[1]।
एवं कृत्वाग्निसंस्कारं पीठं देवस्य पूजयेत्॥ १६१॥

मार्गणाः पञ्च । गणेशमन्त्रमाह – **तार इति** ॥ तारः ॐ । लक्ष्मीः श्रीं । गिरिसुता ह्रीं । कामः क्लीं । भूः ग्लौं । गणनायकः गं - इति बीजषट्कम् । गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहेति विभागाः पूर्वयुताः कार्याः । ॐ ॐ श्रीं ॐ श्रीं ह्रीं ॐ इत्यादि ॥ १८८–१६१ ॥

आहुतियाँ प्रदान करनी चाहिए । महागणपति मन्त्र के सर्वप्रथम छः बीजों से छः आहुति तदनन्तर ५, ५, ७ एवं ५ अक्षरों के मन्त्रों से एक-एक आहुति देने का विधान है ॥ १८७-१८९ ॥

महागणपति मन्त्र इस प्रकार है - तारा (ॐ), लक्ष्मी (श्रीं), गिरि सुता (ह्रीं), काम (क्लीं), भू (ग्लौं), गणनायक (गं) इसके बाद गणपति का चतुर्थ्यन्त (गणपतये) फिर 'वर' और 'वरद' (वर वरद), तदनन्तर 'सर्वजन' फिर 'मे वश' तदनन्तर 'मानय', तदनन्तर 'स्वाहा' लगाने से अठाइस अक्षर का मन्त्र बन जाता है। इस प्रकार अग्नि का संस्कार कर देव - पीठ की पूजा करनी चाहिए ॥ १८९-१६१ ॥

विमर्श - महागणपति का मन्त्र इस प्रकार है - 'ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वर वरद सर्वजनं मे वश मानय स्वाहा' ।

हवन विधि - साधक को दस भागों में इस प्रकार हवन करना चाहिए - यथा -

१ - ॐ स्वाहा,
२ - ॐ श्रीं स्वाहा,
३ - ॐ श्रीं ह्रीं स्वाहा,
४ - ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं स्वाहा,
५ - ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं स्वाहा,
६ - ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं स्वाहा,
७ - ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये स्वाहा,
८ - ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वर वरद स्वाहा,
९ - ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वर वरद सर्वजनं मे वश स्वाहा,
१० - ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वर वरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा,

इन दस मन्त्रों से एक - एक आहुति प्रदान करनी चाहिए । फिर सम्पूर्ण उपर्युक्त २८ मन्त्राक्षरों से घी की चार आहुति देनी चाहिए ॥ १८७-१६१ ॥

---

१. श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौ गं गणपतये वर वरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा । प्रयोगस्तु – ॐ स्वाहा , ओ३म् श्रीं स्वाहा , ओ३म् श्री ह्रीं स्वाहेत्यादि ।

तत्रेष्टदेवमावाह्य मुद्रा आवाहनादिकाः ।
प्रदर्श्य वह्निरूपस्य देवस्य वदने पुनः ॥ १६२ ॥
मूलेन जुहुयात् पञ्चनेत्रसंख्या घृताहुतीः ।
वक्त्रैकीकरणं त्वग्निर्देवयोस्तेन जायते ॥ १६३ ॥

आवाहनादिका अग्नेर्वक्तव्याः ॥ १६२ ॥ पञ्चनेत्रसंख्या पञ्चविंशतिः ॥ १६३ ॥

सर्वप्रथम आवाहनादि मुद्रा प्रदर्शित कर पीठ पर इष्टदेव का आवाहन करना चाहिए । तदनन्तर अग्नि एवं इष्टदेव के मुख में मूल मन्त्र से पच्चिस संख्यक घी की आहुती प्रदान करनी चाहिए । ऐसा करने से अग्नि के मुख का एवं देवता के मुख का एकीकरण हो जाता है ॥ १६२-१६३ ॥

विमर्श - इष्ट देव के आवाहन में साधक निम्न मुद्राओं का प्रदर्शन करे - १. आवाहनी, २. स्थापनी, ३. सन्निधान, ४. सन्निरोध, ५. सम्मुखीकरण, ६. सकलीकरण, ७. अवगुण्ठन, ८. अमृतीकरण और ९. परमीकरण । इनका स्वरूप इस प्रकार है -

१. आवाहनी मुद्रा - "सम्यक् सम्पूजितैः पुष्पैः कराभ्यां कल्पिताञ्जलिः । आवाहनी समाख्याता मुद्रादेशिक सत्तमैः । अनामामूलं संलग्नाङ्गुष्ठग्राञ्जलिरीरिता ॥ "

'ॐ पुष्पे पुष्पे महापुष्पे सुपुष्पे पुष्पसम्भवे पुष्पं च यवकीर्ण हुं फट् स्वाहा' - इस मन्त्र से संशोधित पुष्पों को लेकर दोनों हाथों की अञ्जलि बनाने को आवाहनी मुद्रा कहते हैं ।

२. स्थापनी मुद्रा - "अधोमुखी कृता सैव स्थापनीति निगद्यते ।"

आवाहनी मुद्रा को अधोमुख करने से स्थापनी मुद्रा बन जाती है ।

३. सन्निधान मुद्रा - "आश्लिष्टमुष्टियुगला प्रोन्नताङ्गुष्ठयुग्मका ।

सन्निधाने समुच्छिष्टा मुद्रेयं तन्त्रवेदिभिः ॥ " अंगूठों को ऊपर उठाकर दोनों मुट्ठियों को परस्पर मिलाने से सन्निधान मुद्रा बनती है ।

४. सन्निरोध मुद्रा - "अङ्गुष्ठगर्भिणी सैव सन्निरोधे समीरिता । अङ्गूठों को भीतर कर दोनों मुट्ठियों को परस्पर मिलाने से सन्निरोध मुद्रा बनती है ।

५. सम्मुखीकरण मुद्रा - "बद्धाञ्जलि हृदि प्रोक्ता सम्मुखीकरणे बुधैः ।"

हृदय प्रदेश में अञ्जलि बनाने को सम्मुखीकरण मुद्रा कहते हैं ।

६. सकलीकरण मुद्रा - "देवाङ्गेषु षडङ्गानां न्यासः स्यात्सकलीकृतिः ।"

देवता के अङ्गों पर षडङ्गन्यास करना सकलीकरण कहलाता है ।

७. अवगुण्ठन मुद्रा - "सव्यहस्तकृता मुष्टिः दीर्घाधोमुख तर्जनी ।

अवगुण्ठनमुद्रेयमभितो भ्रामिता भवेत् ॥ दाहिने हाथ की मुट्ठी बनाकर मध्यमा एवं तर्जनी को अधोमुख कर चारों ओर घुमाने से अवगुण्ठन मुद्रा बनती है ।

८. अमृतीकरण के लिए धेनुमुद्रा -

"अन्योन्याभिमुखौ श्लिष्टौ कनिष्ठानामिका पुनः ।

नाडीसन्धानसिद्ध्यर्थं वह्निदेवतयोस्ततः।
जुहुयान्मूलमन्त्रेण रुद्रसंख्या घृताहुतीः॥ १६४॥
इष्टदेवस्यावृतीनामेकैकामाहुतिं चरेत्।
ततस्तु मूलमन्त्रेण दशधा जुहुयाद् घृतम्॥ १६५॥
ततः कल्पोक्तद्रव्येण दशांशं जुहुयाज्जपात्।
होमं समाप्य कुर्वीत पूर्णाहुतिमनन्यधीः॥ १६६॥
होमावशिष्टेनाज्येन पूरयित्वा स्रुचं सुधीः।
पुष्पं फलं निधायाग्रे स्रुवेणाच्छाद्य तां पुनः॥ १६७॥
उत्थितौ वौषडन्तेन मूलेन जुहुयाद् वसौ।
तद्द्रव्येणावृतीनां च जुहुयादाहुतिं पृथक्॥ १६८॥
देवं विसृज्य स्वहृदि वह्नेर्जिह्वाङ्गमूर्तिभिः।
जुहुयाद् व्याहृतीर्हुत्वा प्रोक्षेत्तं प्रोक्षणीजलैः॥ १६९॥

तथा तु तर्जनीमध्या धेनुमुद्रा प्रकीर्तिता ॥ "

दोनों हाथों की कनिष्ठा एवं अनामिका को तथा मध्यमा को एक दूसरे से मिलाने पर धेनु मुद्रा बनती है ।

९. परमीकरण के लिए महामुद्रा -

अन्योन्य ग्रथिताङ्गुष्ठौ प्रसारितकराङ्गुलिः । महामुद्रेयमुदिता परमीकरणे बुधैः ॥

अंगूठों को परस्पर ग्रथित कर अङ्गुलियां फैलाने से महामुद्रा बनती है । इसे परमीकरण मुद्रा कहते हैं ॥ १६२-१६३ ॥

पश्चात् अग्नि एवं इष्टदेव के नाड़ीसंधान के लिए मूलमन्त्र से ग्यारह आहुति प्रदान करनी चाहिए ॥ १६४ ॥

पुनः इष्टदेव के आवरण देवताओं को १-१ आहुति देनी चाहिए (आवरण देवता द्र० १. ५०-५५) फिर मूलमन्त्र से १० संख्यक घृत की आहुति देनी चाहिए ॥ १६५ ॥

तदनन्तर तत्तत् कल्पों में प्रतिपादित तत्तद्देव विशेषों के हवि से जप का दशांश होम कर होम का समापन करें । तदनन्तर एकाग्रचित्त से पूर्णाहुति करें ॥ १६६ ॥

अब **पूर्णाहुति** का प्रकार प्रस्तुत करते हैं -

विद्वान् साधक होमावशिष्ट घृत से स्रुचि को भर कर उसमें पुष्प एवं फल रखकर स्रुवा से ढ़क कर खड़ा हो मूलमन्त्र के अन्त में वौषट् लगाकर अग्नि में पूर्णाहुति करें, तथा शेष होमद्रव्य से आवरण देवताओं को पृथक्-पृथक् आहुति प्रदान करें ॥ १६७-१६८ ॥

फिर अपने हृदय में इष्टदेव का विसर्जन कर अग्नि की सात जिस्वाओं एवं आठ मूर्तियों को आहुतियाँ प्रदान करे । तदनन्तर महाव्याहृतियों से हवन कर प्रोक्षणी के जल से अग्नि का प्रोक्षण (सिञ्चन) करे ॥ १६९ ॥

चतुर्थ्यन्तो गणपतिर्वरान्ते वरदेति च।
सर्वान्ते जनमित्युक्त्वा मे वशान्ते तु मानय॥ १९०॥
स्वाहान्तो वसुयुग्मार्णो महागणपतेर्मनुः[1]।
एवं कृत्वाग्निसंस्कारं पीठं देवस्य पूजयेत्॥ १९१॥

मार्गणाः पञ्च । गणेशमन्त्रमाह – **तार इति** ॥ तारः ॐ । लक्ष्मीः श्रीं । गिरिसुता ह्रीं । कामः क्लीं । भूः ग्लौं । गणनायकः गं - इति बीजषट्कम् । गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहेति विभागाः पूर्वयुताः कार्याः । ॐ ॐ श्रीं ॐ श्रीं ह्रीं ॐ इत्यादि ॥ १८८–१९१ ॥

आहुतियाँ प्रदान करनी चाहिए । महागणपति मन्त्र के सर्वप्रथम छः बीजों से छः आहुति तदनन्तर ५, ५, ७ एवं ५ अक्षरों के मन्त्रों से एक-एक आहुति देने का विधान है ॥ १८७-१८९ ॥

महागणपति मन्त्र इस प्रकार है - तारा (ॐ), लक्ष्मी (श्रीं), गिरि सुता (ह्रीं), काम (क्लीं), भू (ग्लौं), गणनायक (गं) इसके बाद गणपति का चतुर्थ्यन्त (गणपतये) फिर 'वर' और 'वरद' (वर वरद), तदनन्तर 'सर्वजन' फिर 'मे वश' तदनन्तर 'मानय', तदनन्तर 'स्वाहा' लगाने से अठाइस अक्षर का मन्त्र बन जाता है। इस प्रकार अग्नि का संस्कार कर देव - पीठ की पूजा करनी चाहिए॥ १८९-१९१ ॥

विमर्श - महागणपति का मन्त्र इस प्रकार है - 'ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वर वरद सर्वजनं मे वश मानय स्वाहा' ।

हवन विधि - साधक को दस भागों में इस प्रकार हवन करना चाहिए - यथा -

१ - ॐ स्वाहा,
२ - ॐ श्रीं स्वाहा,
३ - ॐ श्रीं ह्रीं स्वाहा,
४ - ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं स्वाहा,
५ - ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं स्वाहा,
६ - ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं स्वाहा,
७ - ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये स्वाहा,
८ - ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वर वरद स्वाहा,
९ - ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वर वरद सर्वजनं मे वश स्वाहा,
१० - ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वर वरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा,

इन दस मन्त्रों से एक - एक आहुति प्रदान करनी चाहिए । फिर सम्पूर्ण उपर्युक्त २८ मन्त्राक्षरों से घी की चार आहुति देनी चाहिए ॥ १८७-१९१ ॥

१. श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौ गं गणपतये वर वरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा । प्रयोगस्तु – ॐ स्वाहा , ओ३म् श्रीं स्वाहा , ओ३म् श्री ह्रीं स्वाहेत्यादि ।

सम्प्रार्थ्यानेन मनुना नत्वा तं विसृजेद्धृदि ।
भो भो वह्ने महाशक्ते सर्वकर्मप्रसाधक ॥ २०० ॥
कर्मान्तरेऽपि सम्प्राप्ते सान्निध्यं कुरु सादरम् ।

पवित्रप्रतिपत्तिः

वह्नौ पवित्रे निःक्षिप्य प्रणीताम्बु भुवि क्षिपेत् ॥ २०१ ॥
विधिं विसृज्य सकुशान् परिधीन्विन्यसेद्वसौ ।
एवं होमं समाप्याथ तर्पयेद् देवतां जले ॥ २०२ ॥

तर्पणादिकथनम्

आवाह्य तद्दशांशेन तर्पणादभिषेचनम् ।
तर्पयामि नमश्चेति द्वितीयान्तेष्टपूर्वकम् ॥ २०३ ॥
मूलान्ते तु पदं देयं सिञ्चामीत्यभिषेचने ।
ततो नानाविधैरन्नैस्तर्पयेद् द्विजसत्तमान् ॥ २०४ ॥

॥ * ॥ १९४–२०० ॥ पवित्रादिप्रतिपत्तिमाह – **वह्नाविति** । विधिं ब्रह्माणं विसृज्य दक्षिणां दत्त्वेति शेषः । सकुशान् परिस्तरणसहितान् वसौ वह्नौ ॥ २०१–२०२ ॥ तर्पणमन्त्रमाह – मूलमन्त्रान्ते कृष्णं तर्पयामि नम इति तर्पणे । कृष्णमभि- षिञ्चामीत्यभिषेके ॥ २०३ ॥ जपाद्दशांशाद्धोमः तद्दशांशेन तर्पणं तद्दशांशेनाभिषेकः

तदनन्तर - 'भो भो वह्ने महाशक्ते सर्वकर्मप्रसाधक ।
कर्मान्तरेऽपि संप्राप्ते सान्निध्यं कुरु सादरम्'॥

इस मन्त्र से अग्निदेव की प्रार्थना कर प्रणाम करने के पश्चात् अपने हृदय में उनका विसर्जन करें ॥ २००-२०१ ॥

पवित्री बनाये गये कुशाओं को अग्नि में प्रक्षिप्त कर प्रणीता का जल पृथ्वी पर गिरा देवें । तदनन्तर ब्रह्मदेव का विसर्जन कर परिधि बनाये गये कुशाओं को भी अग्नि में प्रक्षिप्त कर देना चाहिए । इस प्रकार होम समाप्त कर जल में इष्ट देवता का तपर्ण करें ॥ २०१-२०२ ॥

अब **तर्पण अभिषेक एवं ब्राह्मण भोजन की विधि** कहते हैं - जल में देवता का आवाहन कर होम संख्या का दशांश तर्पण तथा तर्पण का दशांश मार्जन (अभिषेक) करना चाहिए । मूलमन्त्र के बाद द्वितीयान्त देव नाम, तदनन्तर 'तर्पयामि नमः' लगाकर तर्पण करना चाहिए । इसी प्रकार अभिषेक में मूलमन्त्र के बाद द्वितीयान्त देव नाम लगाकर अन्त में 'ऋषि सिञ्चामि' लगाकर अभिषेक करना चाहिए ॥ २०३-२०४ ॥

विमर्श - किसी भी अनुष्ठान में साधक को चाहिए कि वह मन्त्र की जप संख्या जितनी हो उसके दसवें हिस्से से अर्थात् दस माला का दसवाँ हिस्सा एक माला से हवन करे और हवन के दसवें हिस्से से तर्पण करे तथा उसके दसवें हिस्से

इष्टरूपान्समाराध्य तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम् ।
न्यूनं सम्पूर्णतामेति ब्राह्मणाराधनान्नृणाम् ॥ २०५ ॥
देवताश्च प्रसीदन्ति सम्पद्यन्ते मनोरथाः ॥ २०६ ॥

॥ इति श्रीमन्ममहीधरविरचिते मन्त्रमहोदधौ भूतशुद्ध्यादि–कथनं नाम प्रथमस्तरङ्गः ॥ १ ॥



तद्दशांशेन विप्रभोजनमिति पञ्चाङ्गपुरश्चरणमिति उत्तमः पक्षः । अभिषेकवर्जो मध्यमः । तर्पणाभिषेकवर्जस्त्र्यङ्गः कनीयान् पक्षः । होमाद्दशांशं द्विजभोजनमिति । किंबहुना । बहुब्राह्मणभोजने देवताप्रसादो न भवति किमिति ॥ २०४–२०६ ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचितायां मन्त्रमहोदधेः व्याख्यायां नौकायां भूतशुद्ध्यादिकथनं नाम प्रथमस्तरङ्गः ॥ १ ॥



से मार्जन (अभिषेक) करे और उसके दसवें हिस्से से ब्राह्मण भोजन की संख्या निश्चित करे । जैसे गणपति मन्त्र के एक लाख जप के पुरश्चरण में हवन की संख्या दस हजार और तर्पण की संख्या एक हजार एवं अभिषेक की संख्या एक सौ तथा ब्राह्मण भोजन की संख्या दस होनी चाहिए ।

तर्पण विधि - तर्पण करते समय साधक मूलमन्त्र के बाद देवता का द्वितीयान्त नाम तथा अन्त में 'तर्पयामि नमः' कहते हुए तर्पण करे । जैसे उच्छिष्ट गणपति के मन्त्र में तर्पण इस प्रकार होगा - 'ॐ हस्ति पिशाचि लिखे स्वाहा उच्छिष्टगणपतिं तर्पयामि नमः ।'

अभिषेक विधि - अभिषेक करते समय साधक मूलमन्त्र के बाद देवता का द्वितीयान्त नाम तथा अन्त में 'अभिषिञ्चामि' कहते हुए अभिषेक करे । जैसे - उच्छिष्ट गणपति मन्त्र के पुरश्चरण में अभिषेक इस प्रकार होगा - 'ॐ हस्ति पिशाचि लिखे स्वाहा उच्छिष्ट गणपतिमभिषिञ्चामि' ॥ २०३-२०४ ॥

तदनन्तर विविध प्रकार के पक्वान्नों आदि से श्रेष्ठ ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए । अपने इष्टदेव के रूप में आगत उन ब्राह्मणों का पूजन कर उन्हें दक्षिणा देनी चाहिए क्योंकि ब्राह्मणों की आराधना से अनुष्ठान में होने वाली न्यूनता दूर हो जाती है । इससे देवता प्रसन्न हो जाते हैं तथा अपने सभी मनोरथों की सिद्धि हो जाती है ॥ २०४-२०६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमन्महीधर विरचित मन्त्रमहोदधि के प्रथम तरङ्ग की महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत 'अरित्र' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ १ ॥



अथ द्वितीयः तरङ्गः

गणेशस्य मनून् वक्ष्ये सर्वाभीष्टप्रदायकान् ।

गणेशमन्त्रकथनम्

जलं चक्री वह्नियुतः कर्णेन्द्वाढ्या च कामिका ॥ १ ॥
दारको दीर्घसंयुक्तो वायुः कवचपश्चिमः ।
षडक्षरो[1] मन्त्रराजो भजतामिष्टसिद्धिदः ॥ २ ॥

गणेशषडक्षरमन्त्रसाधनकथनम्

भार्गवो [2]मुनिरस्योक्तश्छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतः ।
विघ्नेशो देवता बीजं वं शक्तिर्यमितीरितम् ॥ ३ ॥

---

* नौका *

आदौ सकलविघ्ननिवर्तकस्य श्रीगणेशस्य मन्त्रान् वक्तुं प्रतिजानीते – **गणेशस्येति** । मनून् मन्त्रान् । मन्यते सर्वैर्यरिति । मन्त्रमुद्धरति - जलं वः । चक्री कः वह्निः रः तेन युतः तेन युक्तः । कामिका त। कर्णेन्द्वाढ्या उ बिन्दु युता । तेन तुं । दीर्घ आ । तेन युतो दारको डः । वायुर्यः । कवचपश्चिममन्ते यस्य स तथा ।

---

* अरित्र *

अब **गणेश जी के सर्वाभीष्ट प्रदायक मन्त्रों** को कहता हूँ - जल (व) तदनन्तर वह्नि (र) के सहित चक्री (क) (अर्थात् क्र), कर्णेन्दु के साथ कामिका (तुं), दीर्घ से युक्तदारक (ड) एवं वायु (य) तथा अन्त में कवच (हुम्) इस प्रकार ६ अक्षरों वाला यह गणपति मन्त्र साधकों को सिद्धि प्रदान करता है ॥ १-२ ॥

विमर्श - इस षडक्षर मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'वक्रतुण्डाय हुम्' ॥ १-२ ॥

अब इस मन्त्र का **विनियोग** कहते हैं - इस मन्त्र के भार्गव ऋषि हैं, अनुष्टुप् छन्द है, विघ्नेश देवता हैं, वं बीज है तथा यं शक्ति है ॥ ३ ॥

विमर्श - विनियोग का स्वरूप इस प्रकार है - अस्य श्रीगणेशमन्त्रस्य भार्गव ऋषि-

---

१. वक्रतुण्डाय हुम् ।

२. ॐ अस्य श्रीगणेशमन्त्रस्य भार्गवऋषिरनुष्टुप् छन्दः विघ्नेशो देवता वं बीजं यंशक्तिर्ममाभीष्टसिद्धये जपे विनियोगः ।

षडक्षरैः सविधुभिः प्रणवाद्यैर्नमोन्तकैः।
प्रकुर्याज्जातिसंयुक्तैः षडङ्गविधिमु त्तमम्॥ ४॥
भ्रूमध्यकण्ठहृदयनाभिलिङ्गपदेषु च।
मनो वर्णान् क्रमान्न्यस्य व्यापय्याथो स्मरेत् प्रभुम्॥ ५॥

गणेशध्यानम्

उद्यद्दिनेश्वररुचिं निजहस्तपद्मैः
पाशांकुशाभयवरान् दधतं गजास्यम्।
रक्ताम्बरं सकलदुःखहरं गणेशं
ध्यायेत् प्रसन्नमखिलाभरणाभिरामम्॥ ६॥

वक्रतुण्डाय हुमिति सविधुभिः सानुस्वारैः। ॐ वं नमः हृदयाय नमः इत्यादि। व्यापय्य सर्वमन्त्रं सर्वशरीरे न्यस्येत्यर्थः॥ १–५॥ ध्यानमाह – **उद्यदिति**। पाशाभये वामयोः। वरांकुशावन्ययोः॥ ६॥

रनुष्टुप् छन्दः विघ्नेशो देवता वं बीजं यं शक्तिरात्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः॥ ३॥

अब इस मन्त्र के **षडङ्गन्यास की विधि** कहते हैं -

उपर्युक्त षडक्षर मन्त्रों के ऊपर अनुस्वार लगा कर प्रथम प्रणव तथा अन्त में नमः पद लगा कर षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ ४॥

विमर्श - कराङ्गन्यास एवं षडङ्गन्यास की विधि -

ॐ वं नमः अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ क्रं नमः तर्जनीभ्यां नमः,
ॐ तुं नमः मध्यमाभ्यां नमः, ॐ डां नमः अनामिकाभ्यां नमः,
ॐ यं नमः कनिष्ठिकाभ्यां नमः, ॐ हुं नमः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः,

इसी प्रकार उपर्युक्त विधि से हृदय, शिर, शिखा, कवच, नेत्रत्रय एवं 'अस्त्राय फट्' से षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ ४॥

अब इसी मन्त्र से **सर्वाङ्गन्यास** कहते हैं - भ्रूमध्य, कण्ठ, हृदय, नाभि, लिङ्ग एवं पैरों में भी क्रमशः इन्हीं मन्त्राक्षरों का न्यास कर संपूर्ण मन्त्र का पूरे शरीर में न्यास करना चाहिए, तदनन्तर गणेश प्रभु का ध्यान करना चाहिए ॥ ५॥

विमर्श - प्रयोग विधि इस प्रकार है -

ॐ वं नमः भ्रूमध्ये, ॐ क्रं नमः कण्ठे, ॐ तुं नमः हृदये, ॐ डां नमः नाभौ, ॐ यं नमः लिङ्गे, ॐ हुम् नमः पादयोः, ॐ वक्रतुण्डाय हुम् सर्वाङ्गे ॥ ५॥

अब **महाप्रभु गणेश का ध्यान** कहते हैं -

जिनका अङ्ग प्रत्यङ्ग उदीयमान सूर्य के समान रक्त वर्ण का है, जो अपने बायें हाथों में पाश एवं अभयमुद्रा तथा दाहिने हाथों में वरदमुद्रा एवं अंकुश धारण किये हुये हैं, समस्त दुःखों को दूर करने वाले, रक्तवस्त्र धारी, प्रसन्न मुख तथा समस्त भूषणों से भूषित होने

गणेशमन्त्रसिद्धिविधानम्

ऋतुलक्षं जपेन्मन्त्रमष्टद्रव्यैर्दशांशतः ।
जुहुयान्मन्त्रसंसिद्ध्यै वाडवान् भोजयेच्छुचीन् ॥ ७ ॥
इक्षवः सक्तवो रम्भाफलानि चिपिटास्तिलाः ।
मोदका नारिकेलानि लाजाद्रव्याष्टकैर्स्मृतम् ॥ ८ ॥

पीठपूजाविधानम्

पीठमाधारशक्त्यादिपरतत्त्वान्तमर्चयेत् ।
तत्राष्टदिक्षु मध्ये च सम्पूज्या नवशक्तयः ॥ ९ ॥
तीव्रा च चालिनी नन्दा भोगदा कामरूपिणी ।
उग्रा तेजोवती सत्या नवमी विघ्ननाशिनी ॥ १० ॥
विनायकस्य मन्त्राणामेताः स्युः पीठशक्तयः ।
सर्वशक्तिकमान्ते तु लासनाय हृदन्तिकः ॥ ११ ॥
पीठमन्त्रस्तदीयेन बीजेनादौ समन्वितः ।
प्रदायासनमेतेन मूर्तिं मूलेन कल्पयेत् ॥ १२ ॥

वाडवान् विप्रान् ॥ ७ ॥ द्रव्याष्टकमाह – **इक्षव इति** ॥ ८–९ ॥ पीठमन्त्रमाह – गं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः । एतेनासनं दत्वा तद्देशे मूलेन मूर्तिं कल्पयेत् ॥ १०–१२ ॥ *॥ १३–१८ ॥

के कारण मनोहर प्रतीत होने वाले गजानन गणेश का ध्यान करना चाहिए ॥ ६ ॥

अब इस मन्त्र से **पुरश्चरण विधि** कहते हैं -

पुरश्चरण कार्य में इस मन्त्र का ६ लाख जप करना चाहिए । इस (छः लाख) की दशांश संख्या (साठ हजार) से अष्टद्रव्यों का होम करना चाहिए । तदनन्तर मन्त्र के फल प्राप्ति के लिए संस्कार-शुद्ध ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये ॥ ७ ॥

१. ईख, २. सत्तू, ३. केला, ४. चपेटान्न (चिउड़ा), ५. तिल, ६. मोदक, ७. नारिकेल और ८. धान का लावा - ये आठ अष्टद्रव्य कहे गये हैं ॥ ८ ॥

अब पीठपूजाविधान करते हैं -

आधारशक्ति से आरम्भ कर परतत्त्व पर्यन्त पीठ की पूजा करनी चाहिए । उस पर आठ दिशाओं में एवं मध्य में नौ शक्तियों की पूजा करनी चाहिए ॥ ९ ॥

१. तीव्रा, २. चालिनी, ३. नन्दा, ४. भोगदा, ५. कामरूपिणी, ६. उग्रा, ७. तेजोवती, ८. सत्या एवं ९. विघ्ननाशिनी - ये गणेश मन्त्र की नव शक्तियों के नाम हैं ॥ १०-११ ॥

प्रारम्भ में गणपति का बीज (गं) लगा कर 'सर्वशक्तिकम' तदनन्तर 'लासनाय' और अन्त में हृत् (नमः) लगाने से पीठ मन्त्र बनता है । इस मन्त्र से आसन देकर मूलमन्त्र से गणेशमूर्ति की कल्पना करनी चाहिए ॥ ११-१२ ॥

तस्यां गणेशमावाह्य पूजयेदासनादिभिः ।
अभ्यर्च्य कुसुमैरीशं कुर्यादावरणार्चनम् ॥ १३ ॥

गणेशस्य पञ्चावरणपूजाविधिः

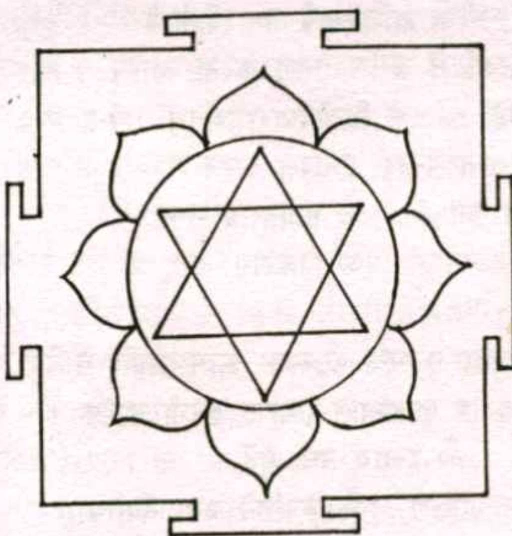
आग्नेयादिषु कोणेषु हृदयं च शिरःशिखाम् ।
वर्माभ्यर्च्याग्रतो नेत्रं दिक्ष्वस्त्रं पूजयेत् सुधीः ॥ १४ ॥
द्वितीयावरणे पूज्याः प्रागाद्यष्टैवशक्तयः ।
विद्यादिमां विधात्री च भोगदा विघ्नघातिनी ॥ १५ ॥
निधिप्रदीपा पापघ्नी पुण्या पश्चाच्छशिप्रभा ।
दलाग्रेषु वक्रतुण्ड एकदंष्ट्रो महोदरः ॥ १६ ॥
गजास्यलम्बोदरकौ विकटो विघ्नराजकः ।
धूम्रवर्णस्तदग्रेषु शक्राद्या आयुधैर्युताः ॥ १७ ॥
एवमावरणैः पूज्यः पञ्चभिर्गणनायकः ।
पूर्वोक्ता च पुरश्चर्या कार्या मन्त्रस्य सिद्धये ॥ १८ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - **'गं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः'** ॥ ११-१२ ॥

उस मूर्ति में गणेश जी का आवाहन कर आसनादि प्रदान कर पुष्पादि से उनका पूजन कर आवरण देवताओं की पूजा करनी चाहिए ॥ १३ ॥

गणेश का पञ्चावरण पूजा विधान - प्रथमावरण की पूजा में विद्वान् साधक आग्नेय कोणों (आग्नेय, नैर्ऋत्य, वायव्य, ईशान) में 'गां हृदयाय नमः', 'गीं शिरसे स्वाहा', 'गूं शिखायै वषट्', 'गैं कवचाय हुम्' तदनन्तर मध्य में 'गौं नेत्रत्रयाय वौषट्' तथा चारों दिशाओं में 'अस्त्राय फट्' इन मन्त्रों से षडङ्गपूजा करे ॥ १४ ॥

गणेशपूजनयन्त्रम्



द्वितीयावरण में पूर्व आदि दिशाओं में आठ शक्तियों का पूजन करना चाहिए । विद्या, विधात्री, भोगदा, विघ्नघातिनी, निधिप्रदीपा, पापघ्नी, पुण्या एवं शशिप्रभा - ये गणपति की आठ शक्तियाँ हैं ॥ १५-१६ ॥

तृतीयावरण में अष्टदल के अग्रभाग में वक्रतुण्ड, एकदंष्ट्र, महोदर, गजास्य, लम्बोदर, विकट, विघ्नराज एवं धूम्रवर्ण का पूजन करना चाहिए । फिर **चतुर्थावरण में** अष्टदल के अग्रभाग में इन्द्रादि देव तथा **पञ्चावरण में** उनके वज्र आदि

वर्गाद्यानन्तझिण्टीशा अयषा मारुता मताः ।
वर्गान्तिमाः कपोलौशोहोबिन्दुश्चेति नाभसाः ॥ ८२ ॥
विसर्गस्तु प्रकृत्यात्मा सर्वभूतमयो यतः ।
प्राणेरितो विनिर्याति कण्ठादिस्थानमस्पृशन् ॥ ८३ ॥

वर्णानां स्वकुलान्यकुलत्वम्

पार्थिवादिकवर्णानां स्वकीयाः स्वकुलाभिधाः ।
पार्थिवस्य च वर्णस्य मित्रं वारुणमक्षरम् ॥ ८४ ॥
तैजसं शत्रुभूतं स्यादुदासीनं तु मारुतम् ।
जलोद्भवस्य वर्णस्य पार्थिवं मित्रमीरितम् ॥ ८५ ॥

वर्गाद्या – इति । अ आ ए कचटतप य षा – एते वायवीयाः । **वर्गान्तिमा** इति । ङ ञ ण न म लृ लॄ श ह अं एते नाभसाः ॥ ८२ ॥ विसर्गस्य पञ्चभूतमयत्वमाह – **विसर्ग इति** । अन्ये वर्णाः कण्ठादिस्थानानि स्पृशन्तो निर्यान्ति विसर्गस्तु न तथेति सर्वभूतमयत्वम् ॥ ८३ ॥ एषां स्वकुलान्यकुलत्वमाह – **पार्थिवेति** ॥ ८४ ॥ * ॥ ८५–८६ ॥

छ, ठ, थ, फ), ए, र एवं क्ष - ये वर्ण अग्निसंज्ञक हैं ॥ ७६-८१ ॥

वर्गों के प्रथम अक्षर (क, च, ट, त, प), अनन्त अ झिण्टीश ए और आ ये वर्ण वायवीय माने गये हैं । वर्ग के अन्तिम ड ञ, ण, न म और लृ लॄ श ह एवं बिन्दु अं, ये वर्ण आकाशात्मक है यतः विसर्ग प्रकृति की आत्मा है अतः सर्वभूतात्मक है । प्राण (विसर्ग) को छोड़कर अन्य वर्ण कण्ठ आदि स्थानों को स्पर्श करते हुये ध्वनि के रूप निकलते हैं ॥ ८२-८३ ॥

कुलाकुल चक्रम्

भूमि	जल	अग्नि	वायु	आकाश
उ	ऋ	इ	अ	लृ
ऊ	ॠ	ई	आ	लॄ
ओ	औ	ए	ऐ	अं
ग	घ	ख	क	ङ
ज	झ	छ	च	ञ
ड	ढ	ठ	ट	ण
द	ध	थ	त	न
ब	भ	फ	प	म
ल	व	र	य	श
ळ	स	क्ष	ष	ह

पृथ्वी आदि तत्त्वों के अपने अपने वर्ण स्वकुल संज्ञक कहे गये हैं । पृथ्वी तत्त्व वाले वर्णों के लिए जल तत्त्व वाले वर्ण मित्र हैं । अग्नितत्त्व वाले वर्ण शत्रु तथा वायुतत्त्व वाले वर्ण उदासीन कहे गये हैं । जल तत्त्व वाले वर्णों के पृथ्वी तत्त्व वाले वर्ण मित्र, अग्नितत्त्व वाले वर्ण शत्रु तथा वायुतत्त्व

सपत्नं वह्निसम्भूतमुदासीनं तु वायवम्।
तैजसस्याऽथ वर्णस्य वायवं मित्रमुच्यते॥ ८६॥
विद्वेषी वारुणो वर्णउदासीनस्तु पार्थिवः।
पवनोत्थितवर्णस्य मित्रं वह्निसमुद्भवम्॥ ८७॥
शत्रुः पार्थिववर्णः स्यादुदासीनस्तु पार्थजः।
चतुर्णां पार्थिवादीनामाकाशार्णः सखा सदा॥ ८८॥
मनोः साधकनाम्नोऽपि यौवर्णावादिमौ तयोः।
स्वकुलादिकभेदस्तु शोध्यो मन्त्रप्रदित्सुना॥ ८६॥
स्वकुलेभीप्सितासिद्धिः सिद्धिर्मित्रेऽपि कीर्तिता।
अमित्रे मरणं रोग उदासीने न किञ्चन॥ ६०॥
उदासीनममित्रं च मन्त्रं दूरेण वर्जयेत्।
स्वकुलं मित्रभूतं च गृह्णीयादिष्टकामुकः॥ ६१॥
नक्षत्रैक्येऽपि सम्प्रोक्तं स्वकुलं नाममन्त्रयोः।

पुनर्मन्त्रत्रैविध्यकथनम्

पुंस्त्रीनपुंसकाः प्रोक्ता मनवस्त्रिविधा बुधैः॥ ६२॥

फलमाह – स्वेति । स्वकुलेऽभीप्सितासिद्धिरित्यर्थः ॥ ६०–६१ ॥
पुनर्मन्त्रत्रैविध्यमाह – पुंस्त्रीति ॥ ६२–६३ ॥

वाले वर्ण उदासीन कहे गये हैं ॥ ८४-८५ ॥

तेज तत्त्व वाले वर्णों के वायुतत्त्व वाले वर्ण मित्र, जल तत्त्व वाले वर्ण शत्रु तथा पृथ्वी तत्त्व वाले वर्ण उदासीन हैं । वायुतत्त्व वाले वर्णों के तेज तत्त्व वाले वर्ण मित्र, पृथ्वी तत्त्व वाले वर्ण शत्रु तथा जल तत्त्व वाले वर्ण उदासीन कहे गये हैं । पृथ्वी आदि चारों तत्त्वो के आकाश तत्त्व वाले वर्ण सदैव मित्र होते हैं । मन्त्र एवं साधक के नाम के जो आद्य अक्षर हों उनसे स्वकुल आदि का विचार दीक्षा देने वाले गुरु को करना चाहिए ॥ ८६-८६ ॥

अपने कुल का मन्त्र ग्रहण करने से अभीष्ट सिद्धि होती है और मित्र कुल के मन्त्र लेने से भी सिद्धि होती है । शत्रुकुल का मन्त्र लेने से रोग एवं मृत्यु होती है । किन्तु उदासीन कुल का मन्त्र लेने से कुछ भी नहीं होता । अतः उदासीन एवं शत्रु कुल के मन्त्रों को दूर से ही परित्यक्त कर देना चाहिए ॥ ६०-६१ ॥

इष्ट सिद्धि चाहने वाले व्यक्ति को स्वकुल एवं मित्रकुल के ही मन्त्र ग्रहण करना चाहिए । इस सम्बन्ध में विशेष यह है कि नाम एवं मन्त्र का एक नक्षत्र होने पर भी स्वकुल मन्त्र कहा जाता है ॥ ६१-६२ ॥

वषडन्ताः फडन्ताश्च पुमांसो मनवः स्मृता।
वौषट् स्वाहान्तगा नार्यो हुं नमोन्ता नपुंसकाः॥ ६३॥
वश्योच्चाटनरोधेषु पुमांसः सिद्धिदायकाः।
क्षुद्रकर्मरुजां नाशे स्त्रीमन्त्राः शीघ्रसिद्धिदाः॥ ६४॥
अभिचारे स्मृता क्लीबा एवं ते मनवस्त्रिधा।
नक्षत्रशोधने जन्मनक्षत्रमितरत्र तु॥ ६५॥
शोधने मन्त्रिभिर्ग्राह्यं प्रसिद्धं जन्मना मता।
दत्तः संशोधितो मन्त्रो भवेच्छिष्येष्टसिद्धये॥ ६६॥

मन्त्रदोषशांत्यर्थ मन्त्रस्य संस्कारदशककथनम्

छिन्नत्वादिकदोषाऽयं पञ्चाशन्मन्त्रसंस्थिताः।
तैर्दोषैः सकला व्याप्ता मनवः सप्तकोटयः॥ ६७॥
अतस्तद्दोषशान्त्यर्थं संस्कारदशकं चरेत्।
भूर्जपत्रे लिखेत् सम्यक्त्रिकोणं रोचनादिभिः॥ ६८॥

तेषां विनियोगमाह – **वश्योच्चाटनेति** ॥ ६४ ॥ * ॥ ६५–६६ ॥ **छिन्नत्वादीति** छिन्नो रुद्धः शक्तिहीन इत्यादयः । पञ्चाशद् दोषास्तल्लक्षणानि च शारदातिलके द्वितीयपटले उक्तानि ग्रन्थ गौरवभयान्न लिख्यन्ते । सप्तकोटिमिता मन्त्राः सन्ति । ते सर्वेऽपि तद्दोषाक्रान्ता एव ॥ ६७ ॥ जननाख्यं **संस्कारमाह** – भूर्जपत्रे रोचनाकुंकुमचन्दनैरात्माभिमुखं त्रिकोणं कृत्वा

अब **पुरुष, स्त्री, और नपुंसक मन्त्रों** को कहते हैं -

विद्वानों ने पुरुष, स्त्री, और नपुंसक भेद से ३ प्रकार के मन्त्र कहे हैं । जिन मन्त्रों के अन्त में 'वषट्' अथवा 'फट्' हों वे पुरुष मन्त्र हैं । 'वौषट्' और 'स्वाहा' अन्त वाले मन्त्र स्त्री, तथा 'हुं' एवं 'नमः' वाले मन्त्र नपुंसक मन्त्र कहे गये हैं ॥ ६३-६४ ॥

वश्य, उच्चाटन एवं स्तम्भन में पुरुष मन्त्र, क्षुद्रकर्म एवं रोग विनाश में स्त्री मन्त्र शीघ्र सिद्धि प्रदान करते है और अभिचार प्रयोग में नपुंसक मन्त्र सिद्धिदायक कहे गये हैं । इस प्रकार मन्त्र के तीन ही भेद होते है ॥ ६४-६५ ॥

नक्षत्र शोधन में जन्म नक्षत्र का तथा अन्य शोधनों मे जन्म काल से पुकारे जाने वाले प्रसिद्ध नाम के नक्षत्र लेना चाहिए । इसी प्रकार अच्छे प्रकारों से संशोधित मन्त्र शिष्य को अभीष्ट सिद्धि प्रदान करते हैं ॥ ६५-६६ ॥

मन्त्रों के छिन्न, रुद्ध शक्तिहीनता आदि ५० दोष ('शारदातिलक' के द्वितीय पटल में) कहे गये हैं । इन दोषों से सातों करोड़ मन्त्र व्याप्त है । अतः इन

वारुणं कोणमारभ्य सप्तधा विभजेत्समम् ।
एवमीशाग्निकोणाभ्यां जायन्ते तत्र योनयः ॥ ६६ ॥
नववेदमितास्तत्र विलिखेन्मातृकां क्रमात् ।
अकारादिहकारान्तामीशादिवरुणावधि ॥ १०० ॥

मन्त्रस्य जननम्

देवीं तत्र समावाह्य पूजयेच्चन्दनादिभिः ।
ततः समुद्धरेन्मन्त्रजननं तदुदीरितम् ॥ १०१ ॥

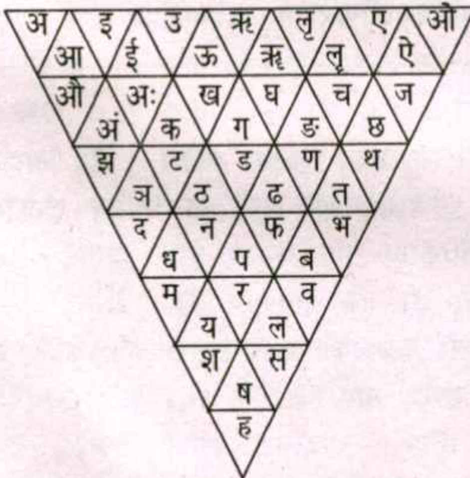
त्रिभ्योऽपि कोणेभ्यो मध्ये कृताभिः षट्षड्रेखाभिः समाभिर्मध्ये नववेदमिता । एकोनपञ्चाशत्त्रिकोणाः कोष्ठा जायन्ते । तत्रेशानादि पश्चिमकोणान्तर्मन्त्र-मातृकां लिखित्वाऽऽवाह्य सम्पूज्य तत एकैक मन्त्रार्णमुद्धरेत् । ततः सम्मार्ज्य पत्रान्तरे लिखेदित्यर्थः । **एतज्जननम्** ॥ ६८–१०१ ॥

दोषों की शान्ति के लिए वक्ष्यमाण दश संस्कार करना चाहिए ॥ ६७-६८ ॥

विमर्श - द्रष्टव्य शारदा तिलक पटल २ ॥ ६७ ॥

(**i**) **जनन संस्कार** - भोजपत्र पर गोरोचन आदि से समत्रिभुज बनाना चाहिए । फिर पश्चिम के (वारुण) कोण से प्रारम्भ कर उसे ७ समान भागों में प्रविभक्त करना चाहिए । इसी प्रकार ईशान एवं आग्नेय कोणों से भी सात सात समान भाग करना चाहिए । इस प्रकार उनके मध्य में छः छः रेखाओं के खींचने पर ४६ योनियाँ बनती है ॥ ६८-६६ ॥

जनन यन्त्रम्



इस चक्र में ईशान कोण से प्रारम्भ कर पश्चिम तक अकार से हकार तक समस्त ४६ वर्णों को क्रमशः लिखकर उस पर मातृका देवी का आवाहन कर, चन्दनादि से उनकी पूजा करनी चाहिए । फिर उसी से मन्त्र के एक एक वर्णों का उद्धार करना चाहिए अर्थात् वहाँ से अन्य पत्र पर लिखे । इसे मन्त्र का जनन संस्कार कहते हैं ।

(**ii**) हंस मन्त्र से संपुटित मूल मन्त्र का एक हजार जप करना 'दीपन संस्कार' कहा जाता है । यथा - 'हंसः रामाय नमः सोहम्' ॥ १००-१०१ ॥

दीपनबोधनताडनाभिषेकविमलीकरणानि

जपो हंसपुटस्यास्य सहस्रं दीपनं स्मृतम्।
नभोवह्नीन्दुयुक्तार्घिसम्पुटस्य जपो मनोः॥ १०२॥
सहस्रपञ्चकमितो बोधनं तत्स्मृतं बुधैः।
सहस्रं प्रजपेदस्त्रपुटितं ताडनं हि तत्॥ १०३॥
वाग्घंसतारैर्जप्तेन सहस्रं पायसा मनुम्।
अभिषिञ्चेत वागाद्यैरभिषेकोऽयमीरितः॥ १०४॥
हरिर्वह्न्यन्वितस्तारोवषडन्तोध्रुवादिकः।
सहस्रं तत्पुटं जप्याद्विमलीकरणे मनुः॥ १०५॥

दीपनमाह – **जप** इति । हंसमन्त्रेण पुटितस्य मन्त्रस्य सहस्त्रञ्जपो – **दीपनम्** । हंसः रामाय नमः सोहं इति । बोधनमाह – **नभ** इति । नभो हः वह्नी रः इन्दुर्बिन्दुस्तैर्युक्तोऽर्घी ऊः । तेन हूं । एतत्संपुटितस्य मनोः पञ्चसहस्रजपो – **बोधनम्** । हूं रामाय नमः हूं इति । फट् रामाय नमः फडिति सहस्रजपस्तु – **ताडनम्** ॥ १०२–१०३ ॥ अभिषेकमाह – **वागिति** । ऐं हं सः ॐ इति मन्त्रेण सहस्राभिमन्त्रितैर्जलैस्तेनैव मन्त्रेण ताडपत्रोपरि लिखितमन्त्रेऽभिषेचनम् – **अभिषेकः** ॥ १०४ ॥ विमलीकरणमाह – **हरिरिति** । हरिस्तः वह्न्यन्वितो रयुतः तारो प्रणव युतः – त्रों । ॐ त्रों वषट् रामाय नमः वषट् त्रों आं इति **सहस्रजपो – विमलीकरणम्** ॥ १०५ ॥

(iii) बोधन संस्कार -

नभ (ह), वह्नि (र्) एवं इन्दु (अनुस्वार) सहित अर्घीश (ऊ) अर्थात् 'हूं' इस मन्त्र से संपुटित मूल मन्त्र का ५ हजार जप करने से **'बोधन संस्कार'** होता है । **यथा** - 'हूं रामाय नमः हूं ॥ १०२ ॥

(iv) ताड़न संस्कार -

अस्त्र मन्त्र (फट्) से संपुटित मूल मन्त्र का एक हजार जप करने से ताड़न संस्कार होता है । **यथा** - 'फट् रामाय नमः फट्' ॥ १०३ ॥

(v) अब **अभिषेक संस्कार** कहते हैं -

वाग् (ऐं), हंस (हं सः) तथा तार (ॐ) इस मन्त्र द्वारा १ हजार बार अभिमन्त्रित जल द्वारा पुनः इसी मन्त्र से मूल मन्त्र को अभिषिक्त करना अभिषेक संस्कार कहा जाता है ॥ १०४ ॥

विमर्श - 'ऐं हंसः ॐ' मन्त्र से १ हजार बार अभिमन्त्रित किये गये जल से ताड़पत्र पर उल्लिखित मूल को अश्वत्थ पत्र से पुनः 'ऐं हंसः ॐ' मन्त्र से अभिषिक्त करने को अभिषेक संस्कार कहते है ॥ १०४ ॥

जीवनतर्पणगोपनाप्यायनानि

स्वधावषट्पुटं जप्यात् सहस्रं जीवने मनुम्।
क्षीराज्ययुतपाथोभिस्तर्पणे तर्पयेन्मनुम्॥ १०६॥
जपेन्मायापुटं मन्त्रं सहस्रं गोपनं हि तत्।
बालातार्तीयबीजेन गगनाद्येन सम्पुटम्॥ १०७॥
सहस्रं प्रजपेन्मन्त्रमेतदाप्यायनं मतम्।
संस्कारदशकं प्रोक्तं मनूनां दोषनाशनम्॥ १०८॥

जीवनमाह – **स्वधेति** । स्वधा वषट् रामाय नमः वषट् स्वधेति सहस्रजपो – **जीवनम्** । तर्पणमाह – **क्षीरेति** । दुग्धघृतोदकैस्तेनैव मन्त्रेण तस्मिन्नेव शतं तर्पयेदिति – **तर्पणम्** ॥ १०६ ॥ गोपनमाह – **जपेदिति** । ह्रीं पुटस्य सहस्रंजपो – **गोपनम्** । आप्यायनमाह – **बालेति** । बालायास्तार्तीयंसौः गगनं हः तदाद्येन । तेन हंसोः इति बीजेन संपुटस्य सहस्रं जपः – **अप्यायनम्** । एकवर्णेन संपुटत्वम् – आदावन्ते चोच्चारणमेव। एकस्य विलोमत्वाशक्तेः ॥ १०७–१०८ ॥

(vi) विमलीकरण संस्कार -

वह्नि (र्), तार (ॐ) सहित हरि (त्) अर्थात् (त्रों) इसके अन्त में 'वषट्' तथा आदि में ध्रुव (ॐ) लगाने से निष्पन्न (ॐ त्रों वषट्) इस मन्त्र से संपुटित मूल मन्त्र का एक हजार बार जप करने से मन्त्र का विमलीकरण संस्कार हो जाता है । यथा - ॐ त्रों वषट् रामाय नमः वषट् त्रों आं ॥ १०५ ॥

(vii) जीवन संस्कार के लिए स्वधा सहित वषट् मन्त्र से संपुटित मूल मन्त्र का एक हजार बार जप करने से मन्त्र का जीवन संस्कार हो जाता है । यथा - स्वधा वषट् रामाय नमः वषट् स्वधा ।

(viii) दूध घी एवं जल से मूल मन्त्र द्वारा एक सौ बार तर्पण करने से मन्त्र का **तर्पण संस्कार** हो जाता है । तर्पण संस्कार के लिए गोरोचन आदि से ताड़पत्र पर मूल मन्त्र लिखकर पश्चात् तर्पण करने का विधान है ।

(ix) गोपन संस्कार - माया बीज (ह्रीं) से संपुटित मूल मन्त्र का एक हजार बार जप करने से मन्त्र का गोपन संस्कार हो जाता है । यथा - ह्रीं रामाय नमः ह्रीं ॥ १०५-१०७ ॥

(x) बाला के तृतीय बीज मन्त्र सौ के प्रारम्भ में गगन (ह्) अर्थात् ह् सौः से संपुटित मूलमन्त्र का एक हजार बार जप करने से मन्त्र का **आप्यायन संस्कार** हो जाता है । यहाँ तक मन्त्र के छिन्नत्वादि ५० दोषों को दूर करने के लिए १० संस्कार कहे गये ॥ १०७-१०८ ॥

कलौ ये सिद्धिप्रदा मन्त्रास्तेषां कथनम्

सिद्धिप्रदा कलियुगे ये मन्त्रास्तान् वदाम्यतः।
त्र्यर्ण एकाक्षरोऽनुष्टुप् त्रिविधो नरकेसरी॥ १०६॥
एकाक्षरोऽर्जुनोऽनुष्टुब्द्विविधस्तुरगाननः ।
चिन्तामणिः क्षेत्रपालो भैरवो यक्षनायकः॥ ११०॥
गोपालो गजवक्त्रश्च चेटका यक्षिणी तथा।
मातङ्गी सुन्दरी श्यामा तारा कर्णपिशाचिनी॥ १११॥
शबर्येकजटा वामा काली नीलसरस्वती।
त्रिपुरा कालरात्रिश्च कलाविष्टप्रदा इमे॥ ११२॥

विप्रादित्रिवर्णेभ्यो देया मन्त्राः

अघोरा दक्षिणामूर्तिरुमामहेश्वरो मनुः।
हयग्रीवो वराहश्च लक्ष्मीनारायणस्तथा॥ ११३॥

सिद्धमन्त्रानाह – **त्र्यर्ण** इति । एकवर्णादिस्त्रिविधो नरसिंहः ॥ १०६ ॥ एकार्णे द्विविधो हयग्रीवः । चिन्तामणिः क्ष्म्र्यों इति ॥ ११०–११२ ॥ विप्रक्षत्रियविड्भ्यो देयान्मन्त्रानाह – **अघोरेति** । उमामहेश्वरः ॐ ह्रीं ह्रौं नमः शिवायेत्यादि ॥ ११३–११४ ॥

अब **कलियुग में सिद्धिप्रद मन्त्रों का आख्यान** करते हैं -

नृसिंह का त्र्यक्षर, एकाक्षर, एवं अनुष्टुप् मन्त्र, (कार्तवीर्य) अर्जुन के एकाक्षर और अनुष्टुप् दो मन्त्र, हयग्रीव मन्त्र, चिन्तामणि मन्त्र, क्षेत्रपाल, भैरव यक्षराज (कुबेर), गोपाल, गणपति, चेटकायक्षिणी, मातंगी सुन्दरी, श्यामा, तारा, कर्ण पिशाचिनी, शबरी, एकजटा, वामाकाली, नीलसरस्वती, त्रिपुरा और कालरात्रि के मन्त्र कलियुग में अभीष्टफलदायक माने गये है ॥ ११०-११२ ॥

विमर्श - नृसिंह का एकाक्षर मन्त्र - क्ष्रौं । **अक्षर मन्त्र** - ह्रीं क्ष्रौं ह्रीं । **नृसिंह का अनुष्टुप् मन्त्र** - उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम् । नृसिंह भीषणं भद्रं मृत्युं मृत्युं नमाम्यहम् । **कार्तवीर्यार्जुन का एकाक्षर मन्त्र** - फ्रों । **कार्तवीर्यार्जुन का अनुष्टप् मन्त्र** - कार्तवीर्यार्जुनो नाम राजा बाहुसहस्रवान् । तस्य स्मरणमात्रेण गतं नष्टं च लभ्यते । **हयग्रीव का एकाक्षर मन्त्र** - स्हूं । **हयग्रीव का अनुष्टुप् मन्त्र** - उद्‌गिरद् प्रणवोद्‌गीथ सर्ववागीश्वरेश्वर । सर्ववेदमयाचिन्तय सर्वं बोधय बोधय । **चिन्तामणि मन्त्र** - क्ष्म्र्यों ॥ ११०-११२ ॥

विप्रादि त्रिवर्णों का दीक्षोचित मन्त्र - अघोर, दक्षिणामूर्ति, उमामहेश्वर, (ॐ ह्रीं ह्रौं नमः शिवाय) हयग्रीव, वराह, लक्ष्मीनारायण मन्त्र, प्रणवादि ४ वर्ण वाले

प्रणवाद्याश्चतुर्वर्णा वह्नेर्मन्त्रास्तथा रवेः।
प्रणवाद्यो गणपतिर्हरिद्रागणनायकः ॥ ११४ ॥
सौरोष्टाक्षरमन्त्रश्च तथा रामषडक्षरः।
मन्त्रराजो ध्रुवादिश्च प्रणवो वैदिको मनुः ॥ ११५ ॥
वर्णत्रयाय दातव्या एते शूद्रायनो बुधैः।

विप्रक्षत्रियेभ्यो देया मन्त्राः

सुदर्शनं पाशुपतमाग्नेयास्त्रं नृकेसरी ॥ ११६ ॥
वर्णद्वयाय दातव्या नान्यवर्णे कदाचन।

वर्णचतुष्टयाय देया मन्त्राः

छिन्नमस्ता च मातङ्गी त्रिपुरा कालिका शिवः ॥ ११७ ॥
लघुश्यामा कालरात्रिर्गोपालो जानकीपतिः।
उग्रतारा भैरवश्च देया वर्णचतुष्टये ॥ ११८ ॥
मृगीदृशां विशेषेण मन्त्रा एते सुसिद्धिदाः।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा नार्योधिकारिणः ॥ ११९ ॥
श्रद्धावन्तो देवगुरुद्विजपूजासु सर्वथा।

मन्त्रराजो नरसिंहः ॥ ११५ ॥ विप्रक्षत्रदेयानाह – **सुदर्शनमिति** ॥ ११६ ॥ वर्णचतुष्टयदेयान् मन्त्रानाह – **छिन्नमस्तेति** ॥ ११७ ॥ * ॥ ११८–११९ ॥ बीजेषु विशेषमाह – **मायामिति** । मायाकामश्रीवाग्बीजानि मुखजन्मने विप्राय ॥ १२० ॥

अग्नि मन्त्र, सूर्य के मन्त्र, प्रणव सहित गणपति एवं हरिद्रा गणपति, अष्टाक्षर सूर्य मन्त्र, षडक्षर राम मन्त्र, प्रणवादि मन्त्रराज नृसिंह मन्त्र, प्रणव तथा वैदिक मन्त्र ये सभी मन्त्र ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन त्रैवर्णिकों को ही देना चाहिए शूद्रों को नहीं ॥ ११३-११५ ॥

सुदर्शन, पाशुपत, आग्नेयास्त्र और नृसिंह के मन्त्र ब्राह्मण और क्षत्रिय केवल दो वर्णों को ही देना चाहिए । अन्य वर्णों को कभी नहीं देना चाहिए ॥ ११६-११७ ॥

चारों वर्णों के लिए देय मन्त्र -

छिन्नमस्ता, मातंगी, त्रिपुरा, कालिका, शिव, लघुश्यामा, कालरात्रि, गोपाज, जानकीपति राम, उग्रतारा और भैरव के मन्त्र चारों वर्णों को देना चाहिए । स्त्रियों के लिए ये मन्त्र विशेषरूपेण सिद्धिदायक कहे गये हैं ॥ ११७-११८ ॥

देवता, गुरु तथा द्विजपूजा में श्रद्धावान् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और

वर्णानुक्रमेण बीजाक्षरदानकथनम्

मायां कामं श्रियं वाचं प्रदद्यान्मुखजन्मने ॥ १२० ॥
मायामृतेबाहुजेभ्य ऊरुजेभ्यः श्रियं गिरम्।
वाणीबीजं तु शूद्रेभ्योऽन्येभ्यो वर्मवषण्नमः ॥ १२१ ॥

अथ साधारणहोमद्रव्यकथनम्

सर्वसाधारणमथ होमद्रव्यमिहोच्यते।
फलैर्हुतैः सुखावाप्तिः पालाशैरिष्टसिद्धये ॥ १२२ ॥
हयमारैः स्त्रियो वश्या गुडूच्या रोमसंक्षयः।
दूर्वया बुद्धिवृद्धिः स्याद् गुडेन जनवश्यता ॥ १२३ ॥
बिल्वपत्रैर्घृतैः पद्मैः पाटलैश्चम्पकैः श्रियः।
सिद्धार्थैर्मल्लिकाभिश्च कीर्तयेज्जातिभिर्गिरः ॥ १२४ ॥

कामश्री वाचो बाहुजेभ्यः क्षत्रियेभ्यः । श्रीवाचौ ऊरुजेभ्यो विड्भ्यः । वाक् शूद्राय । अन्येभ्यः प्रतिलोमानुलोमजेभ्यो वर्मादयः ॥ १२१–१२३ ॥ हयमारैः करवीरैः ॥ १२३ ॥

जातिभिर्जातिपुष्पैर्होमेन गिरो वाचःसिद्धिः ॥ १२४ ॥

स्त्रियाँ ये सभी अधिकारिणी है ॥ ११६-१२० ॥

अब **विविध वर्णों के लिए देय बीज मन्त्र** कहते हैं -

माया (ह्रीं), काम (क्लीं), श्री (श्रीं) तथा वाक् (ऐं) बीज ब्राह्मणों को ही देने का विधान है । माया बीज (ह्रीं) को छोड़कर शेष तीन बीज (क्लीं, श्रीं और ऐं) - ये क्षत्रियों को तथा श्रीं एवं ऐं बीज वैश्यों को, वाग् बीज (ऐं) शूद्रों को तथा वर्म (हुं), वषट् और 'नमः' अन्यों (प्रतिलोमज अनुलोमज वर्णों) को देना चाहिए ॥ १२०-१२१ ॥

अब **सर्वसाधारण कार्यों में विहित होम द्रव्यों** को कहता हूँ -

फलों के होम से सुख प्राप्ति, पलाश के होम से इष्टसिद्धि तथा कनेर के होम से स्त्रियाँ वशीभूत हो जाती हैं । गुडूची (गुरूच) के होम से रोगों का नाश, दूर्वा के होम से बुद्धि की वृद्धि तथा गुड़ के होम से सामान्य जन वश में हो जाते है ॥ १२२-१२३ ॥

बिल्वपत्र, घृत, कमल, गुलाब तथा चम्पा के फूलों का होम करने से लक्ष्मी मिलती है । सिद्धार्थ (सफेद सरसों) तथा चमेली के होम से कीर्ति बढ़ती है । जाति के पुष्पों के होम से वाक्सिद्धि प्राप्त होती है ॥ १२४ ॥

व्रीहिभिश्च यवैः प्लक्षोदुम्बराश्वत्थजैधसा।
तिलैस्त्रिमधुरैरिष्टाः सम्पदः स्युर्नृणा हुतैः॥ १२५॥
किंशुकैः कासमर्दैश्च कृतमालैश्च पाटलैः।
विप्रादयः क्रमाद्वश्याः सौभाग्यं गन्धवस्तुभिः॥ १२६॥
कोद्रवैर्व्याधयोरीणामुन्मत्तत्वं बिभीतकैः।
कलापैः साध्वसोत्पत्तिर्माषैस्तेषां तु मूकता॥ १२७॥
समिद्भिः शाल्मलैर्नाशो रिपूणामचिराद् भवेत्।
किं भूरिणा ददातीष्टं देवता समुपासिता॥ १२८॥
पुरश्चरण एकस्मिन्कृते जन्मान्तराघतः।
मन्त्रो यदि न सिद्धः स्यात्तदा तत्पुनराचरेत्॥ १२६॥

ग्रहणादौ संक्षेपपुरश्चरणप्रकारः

यद्वा समुद्रगामिन्यां नद्यामिन्दुरविग्रहे।

प्लक्षादिजातेन एधसा समिद्भिः ॥ १२५ ॥ किंशुकादिभिर्हुतैः क्रमाद्विप्रादयो वश्याः । कृतमालो राजवृक्षः । गन्धवस्तुभिः कर्पूरादिभिः ॥ १२६ ॥ कलापैर्मयूरपिच्छस्तेषामरीणां भयोत्पत्तिः ॥ १२७–१२८ ॥

जन्मान्तरोपार्जित पापबाहुल्यादेकपुरश्चरणे कृते यदीष्टसिद्धिर्न भवेत्तर्हि पुनः पुरश्चरणं कुर्यात् ॥ १२६ ॥

व्रीहि (धान), जौ, प्लक्ष (पाकर), उदुम्बर (गूलर) और पीपल की समिधा तथा त्रिमधु (शर्करा, घृत, मधु) सहित तिलों के होम से अभीष्ट संपत्ति प्राप्त होती है ॥ १२५ ॥

पलाश, कालमर्द, (लिसोड़ा), कृतमाल, (राजवृक्ष) तथा गुलाब के होम से क्रमशः ब्राह्मण आदि वर्ण वशीभूत हो जाते हैं । कर्पूर आदि सुगन्धित द्रव्यों के होम से सौभाग्य समृद्धि होती है ॥ १२६ ॥

कोदों के होम से शत्रुओं को व्याधि तथा बहेड़ा के होम से शत्रुओं को पागलपन का रोग, मोर के पंखों के होम से शत्रुओं को भय, उड़द के होम से शत्रुओं को मूकता, शाल्मली समिधाओं के होम से शत्रुओं का शीघ्र विनाश होता है ॥ १२७-१२८ ॥

विशेष क्या कहें विधि पूर्वक उपासना से इष्टदेव अभीष्ट फल प्रदान करते हैं ॥ १२८ ॥

यदि पूर्व जन्म के प्रतिबन्धक पापों से एक बार पुरश्चरण करने पर मन्त्र सिद्ध न हों तो दूसरी बार भी पुरश्चरण करना चाहिए ॥ १२६ ॥

स्पर्शान्मोक्षान्तमाजप्य जुहुयात्तद्दशांशतः ॥ १३० ॥
विप्रान्सम्भोज्य नानान्नैर्मन्त्राणां सिद्धिमाप्नुयात् ।
शश्वज्जपपरस्यापि सिध्यन्ति मनवोऽचिरात् ॥ १३१ ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचिते मन्त्रमहोदधौ मन्त्रशोधनं नाम चतुर्विंशस्तरङ्गः ॥ २४ ॥



संक्षेपपुरश्चरणप्रकारमाह – **यद्वेति**। समुद्रगामिन्यां गङ्गादिकायाम् । विप्रान् संभोज्य होमसमानसंख्यानेवेत्यर्थः । तद्दशांशत इत्युभयत्रापि संबन्धात्। तद्दशांशतो जपदशांशेन च जुहुयात् । विप्रान् संभोज्य च सिद्धिमवाप्नुयादिति सम्बन्धः ॥ १३०–१३१ ॥

॥ इति श्री मन्ममहीधरविरचितायां मन्त्रमहोदधिव्याख्यायां 'नौकायां' मन्त्रशोधनं नाम चतुर्विंशस्तरङ्गः ॥ २४ ॥



अब **संक्षिप्त पुरश्चरण विधि** कहते हैं -

चन्द्रग्रहण अथवा सूर्यग्रहण के समय समुद्रगामिनी गंगा आदि नदियों के जल में खड़ा होकर स्पर्शकाल से मोक्षकाल पर्यन्त जप कर उसके दशांश का होम तथा होम के दशांश संख्या में ब्राह्मणों को विविध प्रकार का भोजन कराने से मन्त्र सिद्धि हो जाती है । निरन्तर जप करने वाले साधकों को शीघ्रातिशीघ्र मन्त्र सिद्ध हो जाते है ॥ १३०-१३१ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमन्महीधर विरचित मन्त्रमहोदधि के चतुर्विंश तरङ्ग की महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत 'अरित्र' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ २४ ॥



अथ पञ्चविंशः तरङ्गः

शान्त्यादिषट्कर्मणामुपक्रमः

कर्माणि षडथो वक्ष्ये सिद्धिदानि प्रयोगतः ।
शान्तिर्वश्यं स्तम्भनं च द्वेषमुच्चाटमारणे ॥ १ ॥
उक्तानीमानि कर्माणि शान्तीरोगादिनाशनम् ।
वश्यं वचनकारित्वं स्तम्भो वृत्तिनिरोधनम् ॥ २ ॥
द्वेषोऽप्रीतिः प्रीतिमतोरुच्चाटः स्थानतच्युतिः ।
मारणं प्राणहरणमिति षट्कर्मलक्षणम् ॥ ३ ॥

कर्मणां देवताद्येकोनविंशतिपदार्थकथनम्

देवतादेवतावर्णा ऋतुदिग्दिवसासनम् ।
विन्यासामण्डलं मुद्राक्षरं भूतोदयः समित् ॥ ४ ॥

---

* नौका *

षट्कर्माणि वक्तुमुपक्रमते – **कर्माणीति** । तान्याह – **शान्तिरिति** ॥ १ ॥ लक्षणमाह – **शान्ति रोगादिनाशनमिति** । देवताद्येकोनविंशतिपदार्थान् । प्रतिकर्मभिन्नान् यथा – स्वं ज्ञात्वा षट्कर्मणि कुर्यादित्याह – **देवतादेवता– वर्णा** इत्यादिना ॥ २–५ ॥

---

* अरित्र *

अब **प्रयोग द्वारा सिद्धि प्रदान करने वाले षट्कर्मों** को कहता हूँ -

१. शान्ति, २. वश्य, ३. स्तम्भन, ४. विद्वेषण ५. उच्चाटन और ६. मारण - ये तन्त्र शास्त्र में **षट्कर्म** कहे गए हैं ॥ १ ॥

रोगादिनाश के उपाय को **शान्ति** कहते हैं । आज्ञाकारिता **वश्यकर्म** हैं । वृत्तियों का सर्वथा निरोध **स्तम्भन** है । परस्पर प्रीतिकारी मित्रों में विरोध उत्पन्न करना **विद्वेषण** है । स्थान से नीचे गिरा देना **उच्चाटन** है, तथा प्राणवियोगानुकूल कर्म **मारण** है । षट्कर्मों के यही लक्षण है ॥ २ -३ ॥

अब **षट्कर्मों में ज्ञेय १९ पदार्थों को** कहते हैं -

१. देवता, २. देवताओं के वर्ण, ३. ऋतु, ४. दिशा, ५. दिन, ६.

मालाग्निर्लेखनं द्रव्यं कुण्डस्रुक्स्रुवलेखनीः ।
षट्कर्माणि प्रयुञ्जीत ज्ञात्वैतानि यथायथम् ॥ ५ ॥

देवतास्तासां वर्णा ऋतवो दिशश्च

रतिर्वाणीरमाज्येष्ठादुर्गाकाली च देवता ।
सितारुणहरिद्राभमिश्रश्यामलधूसराः ॥ ६ ॥
प्रपूजयेत कर्मादौ स्ववर्णैः कुसुमैः क्रमात् ।
ऋतुषट्कं वसन्ताद्यमहोरात्रं भवेत् क्रमात् ॥ ७ ॥
एकैकस्य ऋतोर्मानं घटिकादशकं मतम् ।
हेमन्तं च वसन्ताख्यं शिशिरं ग्रीष्मतो यदो ॥ ८ ॥
शरदं कर्मणां षट्के योजयेत् क्रमतः सुधीः ।
शिवसोमेन्द्रनिर्ऋतिपवनाग्निदिशः क्रमात् ॥ ९ ॥

उद्देशक्रमेणादौ देवता आह – **रतिरिति** । शान्त्यादिकर्मारम्भे क्रमाद्रत्यादिपूजा । देवतावर्णानाह – **सितेति** । रतिः सिता वाणी अरुणेत्यादि० ॥ ६ ॥ स्ववर्णैः सितादिवर्णैः । ऋतूनाह – **ऋतुषट्कमिति**। शान्त्यादौ वसन्तादीन्युञ्जीत। प्रत्यहं सूर्योदयान्नाडीदशकं वसन्तः तदग्रिमं नाडी–दशकं शिशिर इत्यादि० ॥ ७–८ ॥ दिश आह – **शिवेति**। शिवादिगैशानी ॥ ९ ॥

आसन, ७. विन्यास, ८. मण्डल, ९. मुद्रा, १०. अक्षर, ११. भूतोदय १२. समिधायें १३. माला, १४. अग्नि, १५. लेखनद्रव्य, १६. कुण्ड, १७. स्रुक्, १८. स्रुवा, तथा १९. लेखनी इन पदार्थों को भलीभाँति जानकारी कर षट्कर्मों में इनका प्रयोग करना चाहिए ॥ ४-५ ॥

अब क्रम प्राप्त (i) **देवताओं** और उनके (ii) **वर्णों** को कहते हैं -

१. रति, २. वाणी, ३. रमा, ४. ज्येष्ठा, ५. दुर्गा, एवं ६. काली यथाक्रम शान्ति आदि षट्कर्मों के देवता कहे गए हैं । १. श्वेत, २. अरुण, ३. हल्दी जैसा पीला, ४. मिश्रित, ५. श्याम (काला) एवं ६. धूसरित ये उक्त देवताओं के वर्ण हैं । प्रत्येक कर्म के आरम्भ में कर्म के देवता के अनुकूल पुष्पों से उनका पूजन करना चाहिए ॥ ६-७ ॥

(iii) एक अहोरात्र में प्रतिदिन वसन्तादि ६ **ऋतुयें** होती हैं । इनमें एक - एक ऋतु का मान १० - १० घटी माना गया है । १. हेमन्त, २. वसन्त, ३. शिशिर, ४. ग्रीष्म, ५. वर्षा और ६. शरद् इन छः ऋतुओं का साधक को शान्ति आदि षट्कर्मों में उपयोग करना चाहिए । प्रतिदिन सूर्योदय से १० घटी (४ घण्टे) वसन्त, उसके आगे दश घटी शिशिर

तत्तत्कर्माणि कुर्वीत जपन्स्तत्तद्दिशामुखः ।

कर्मानुरूपदिनासनादिकथनम्

शुक्लपक्षे द्वितीया च सप्तमी पञ्चमी तथा ॥ १० ॥
तृतीयाबुधजीवाभ्यां युता शान्तिविधौ मता ।
चतुर्थीनवमीषष्ठीत्रयोदशीतिथिस्तथा ॥ ११ ॥
जीवसोमयुता शस्ता वशीकरणकर्मणि ।
एकादशी च दशमी नवमी चाष्टमी पुनः ॥ १२ ॥
शनैश्चरसितोपेता प्रोक्ता विद्वेषकर्मणि ।
कृष्णे चतुर्दश्यष्टम्यौ भानुसूनुयुते यदि ॥ १३ ॥
उच्चाटनाख्यं कर्मात्र कर्तव्यं फलसिद्धये ।
भूताष्टम्यौ कृष्णगते अमावास्या तदन्तगा ॥ १४ ॥
भानुमन्दकुजोपेताः स्तम्भमारणयोः शुभाः ।

दिवसानाह – **शुक्लपक्षेति** ॥ १०–१३ ॥ तदन्तगाशुक्लप्रतिपत् ॥ १४ ॥ आसनान्याह – **पद्ममिति** । पद्मस्वस्तिको उक्ते । विकटलक्षण यथा – (जानुजंघान्तराले तु भुजयुग्मं प्रकल्पयेत् । विकटायसनमेतत् स्यात्) इति । कुक्कुटासन यथा – उपविश्योत्केटासने ।

इत्यादि क्रम समझना चाहिए ॥ ७-९ ॥

(iv) **दिशाएं** - ईशान-उत्तर-पूर्व-निर्ऋति वायव्य और आग्नेय ये शान्ति आदि कर्मों के लिए दिशायें कही गई हैं । अतः शान्ति आदि कर्मों के लिए उन उन दिशाओं की ओर मुख कर जपादि कार्य करना चाहिए ॥ ९-१० ॥

(v) अब **षट्कर्मों में क्रियमाण तिथि एवं वार का निर्देश** करते हैं

शुक्ल पक्ष की द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी एवं सप्तमी तिथि को बुधवार बृहस्पतिवार आये तो **शान्तिकर्म** करना चाहिए । शुक्लपक्ष की चतुर्थी, षष्ठी, नवमी एवं त्रयोदशी को सोमवार बृहस्पतिवार आने पर **वशीकरण** कर्म प्रशस्त होता है ॥ १०-१२ ॥

विद्वेषण में एकादशी, दशमी, नवमी और अष्टमी तिथि को शुक्र या शनिवार का दिन हो तो शुभावह कहा गया है ॥ १२-१३ ॥

यदि कृष्णपक्ष की अष्टमी एवं चतुर्दशी को शनिवार हो तो फल सिद्धि के लिए **उच्चाटन** कर्म करना चाहिए । कृष्णपक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी एवं अमावस्या तथा शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को रवि, मङ्गल, शनिवार, का दिन हो तो **स्तम्भन** और **मारण** कर्म सिद्ध हो जाता है ॥ १३-१५ ॥

पद्मं स्वस्तिकविकटे कुक्कुटं वज्रभद्रके ॥ १५ ॥
शान्त्यादिषु प्रकुर्वीत क्रमादासनमुत्तमम् ।
गोखड्गजफेरूणां मेषीमहिषयोस्तथा ॥ १६ ॥
कृत्तौ निवेश्य कुर्वीत जपं शान्त्यादिकर्मणि ।
आसनान्येव संकीर्त्य दिन्यासः प्रोच्यतेऽधुना ॥ १७ ॥

कृत्वोत्कटासनं पूर्वं समपादद्वयं ततः ।
अन्तर्जानुकरं द्वंद्वं कुक्कुटासनमीरितम् ॥ इति ॥
ऊर्वोः पादौ क्रमान्न्यस्येज्जान्वोः प्रत्यङ्मुखांगुली ॥
करौ निदध्यादाख्यातं वज्रासनमनुत्तमम् ॥ इति ॥
सीवन्याः पार्श्वयोर्न्यस्येद् गुल्फयुग्मं सुनिश्चलम् ॥
वृषणाधः पादपार्ष्णी पाणिभ्यां परिबन्धयेत् ॥
भद्रासनं समुद्दिष्टं योगिभिः पूजितं परम् ॥ इतिचान्ये बोध्ये ॥ १५ ॥

शारीरमासनमुक्त्वोपवेशातार्थमासनमाह – **गोखड्गेति** । फेरुः सृगालः । गवादीनां कृत्तौ चर्मण्युपविश्य शान्त्यादि विधेयम् ॥ १६–१७ ॥

(vi) शान्ति आदि षट्कर्मों में क्रमशः पद्मासन, स्वस्तिकासन, विकटासन, कुक्कुटासन, वज्रासन एवं भद्रासन का उपयोग करना चाहिए । गाय, गैंडा, हाथी, सियार, भेड़ एवं भैंसे के चमड़े के आसन पर बैठ कर शान्ति आदि षट्कर्मों में जपादि कार्य करना चाहिए ॥ १५-१७ ॥

विमर्श - पद्मासन का लक्षण - दोनों ऊरू के ऊपर दोनों पादतल को स्थापित कर व्युत्क्रम पूर्वक (हाथों को उलट कर) दोनों हाथों से दोनों हाथ के अंगूठे को बींध लेने का नाम पद्मासन कहा गया है ।

स्वस्तिकासन का लक्षण - पैर के दोनों जानु और दोनों ऊरू के बीच दोनों पादतल को अर्थात् दक्षिण पाद के जानु और ऊरू के मध्य वाम पादतल एवं वामपाद के जानु और ऊरू के मध्य दक्षिण पादतल को स्थापित कर शरीर को सीधे कर बैठने का नाम स्वस्तिकासन है ।

विकटासन का लक्षण -जानु और जंघाओं के बीच में दोनों हाथों को जब लाया जाए तो अभिचार प्रयोग में इसे विकटासन कहते हैं ।

कुक्कुटासन का लक्षण - पहले उत्कटासन करके फिर दोनों पैरों को एक साथ मिलावे । दोनों घुटनों के मध्य दोनों भुजाओं को रखना कुक्कुटासन कहा गया है ।

वज्रासन का लक्षण - पैर के परस्पर जानु प्रदेश पर एक दूसरे को

विन्यासकथनम्

ग्रन्थनं च विदर्भाख्यः सम्पुटो रोधनं तथा।
योगः पल्लव एते षड्विन्यासाः कर्मसु स्मृताः ॥ १८ ॥
प्रत्येकमेषां षण्णां तु लक्षणं प्रणिगद्यते।
एको मन्त्रस्य वर्णः स्यात्ततो नामाक्षरं पुनः ॥ १९ ॥
मन्त्रार्णो नामवर्णश्चेत्येवं ग्रन्थनमीरितम्।
आदौ मन्त्राक्षरद्वन्द्वमेकं नामाक्षरं ततः ॥ २० ॥
एवं पुनः पुनः प्रोक्तो विदर्भो मन्त्रवित्तमैः।
मन्त्रमादौ समुच्चार्य ततो नामाखिलं पठेत् ॥ २१ ॥

विन्यासानाह – **ग्रन्थनमिति** ॥ १८ ॥ ग्रन्थनलक्षणमाह – **एक** इति ॥ १९ ॥ विदर्भलक्षणमाह – **आदाविति** । ग्रन्थनविदर्भयोर्मन्त्रनामवर्णलेखनेऽन्यतर–समाप्तौ पुनर्लेखनम् ॥ २०॥ सम्पुटलक्षणमाह – **मन्त्रमिति** ॥ २१॥

स्थापित् करे तथा हाथ की अंगुलियों को सीधे ऊपर की ओर उठाए रखे तो इस प्रकार के आसन को वज्रासन कहते हैं ।

भद्रासन का लक्षण - सीवनी (गुदा और लिंग के बीचोबीच ऊपर जाने वाली एक रेखा जैसी पतली नाड़ी है) के दोनों तरफ दोनों पैर के गुल्फों को अर्थात् वामपार्श्व में दक्षिणपाद के गुल्फ को एवं दक्षिण पार्श्व में वामपाद के गुल्फ को निश्चल रूप से स्थापित कर वृषण (अण्डकोश) के नीचे दोनों पैर की घुट्टी अर्थात् वृषण के नीचे दाहिनी ओर वामपाद की घुट्टी तथा बाँई ओर दक्षिण पाद की घुट्टी स्थापित कर पूर्ववत् दोनों हाथों से बींध लेने से भद्रासन हो जाता है ॥ १५-१७ ॥

(vii) इस प्रकार आसनों को कह कर अब **विन्यास** कहता हूँ -

शान्ति आदि ६ कर्मों में क्रमशः १. ग्रन्थन, २. विदर्भ, ३. सम्पुट, ४. रोधन, ५. योग और ६. पल्लव ये ६ विन्यास कहे गए हैं । इन छहों को क्रमशः कहता हूँ ॥ १७-१९ ॥

१. मन्त्र का एक अक्षर उसके बाद नाम का एक अक्षर फिर मन्त्र का एक अक्षर तदनन्तर नाम का एक अक्षर इस प्रकार मन्त्र और नाम के अक्षरों का ग्रन्थन करना '**ग्रन्थन विन्यास**' है ।

२. प्रारम्भ में मन्त्र के दो अक्षर उसके बाद नाम का एक अक्षर इस प्रकार मन्त्र और नाम के अक्षरों के बारम्बार विन्यास को मन्त्र शास्त्रों को जानने वाले '**विदर्भ विन्यास**' कहते हैं ॥ १९-२१ ॥

३. पहले समग्र मन्त्र का उच्चारण, तदनन्तर समग्र नामाक्षरों का उच्चारण

अन्ते व्युत्क्रमतो मन्त्रमेष सम्पुटईरितः।
आदिमध्यावसानेषु नाम्नो मन्त्रस्तु रोधनम्॥ २२॥
नामान्ते तु मनुर्योगो मन्त्रान्ते नामपल्लवः।

जलादिमण्डलकथनम्

अर्द्धचन्द्रनिभं पार्श्वद्वये पद्मद्वयाङ्कितम्॥ २३॥
जलस्य मण्डलं प्रोक्तं प्रशस्तं शान्तिकर्मणि।
त्रिकोणं स्वस्तिकोपेतं वश्ये वह्नेस्तु मण्डलम्॥ २४॥
चतुरस्रं वज्रयुक्तं स्तम्भे भूमेस्तु मण्डलम्।

रोधनमाह – **आदीति**॥ २२॥ योगमाह – **नामान्त** इति । पल्लवमाह – **मन्त्रान्त** इति । मण्डलमाह – **अर्द्धचन्द्रेति** ॥ २३–२४ ॥ तद्वृतं बिन्दु षट्कांकितं वायुमण्डलम् । मुद्रा आह – **सरोरुहमिति** ।

सरोरुहं **पद्ममुद्रा** । सा यथा –

करौ द्वौ संमुखौ कृत्वा संहतावुन्नतौ पुनः ।
अंगुलीःप्रसृतामध्येऽङ्गुष्ठौ पद्मस्य मुद्रिका॥ इति ।

पाशमुद्रा यथा – तर्जनीमध्यमे वामे ऊर्ध्वमुख्यौ विधाय च ।
दक्षिणे द्वे अधोमुख्यौ संमुख्यौ च परस्परम् ।
पाशमुद्राभवेदेषा मिथः संपीडने तयोः ॥ इति ।

गदामुद्रा यथा – अन्योन्याभिमुखौ कृत्वा हस्तौ तु ग्रथितावुभौ ।
अंगुष्ठौ मध्यमे तद्वत्सयुंक्तसुप्रसारिते ।

करना, फिर इसके बाद विलोम क्रम से मन्त्र बोलना '**संपुट विन्यास**' कहा जाता है ।

४. नाम के आदि, मध्य और अन्त में मन्त्र का उच्चारण करना '**रोधन विन्यास**' कहा जाता है ॥ २१-२२ ॥

५. नाम के अन्त में मन्त्र बोलना '**योग विन्यास**' होता है ।

६. मन्त्र के अन्त में नामोच्चारण को '**पल्लवविन्यास**' कहते हैं ॥ २३॥

(viii) अब मन्त्र के आठवें प्रकार, **मण्डल का लक्षण** कहते हैं -

दोनों ओर दो दो कमलों से युक्त अर्द्धचन्द्राकार चिन्ह को **जल का मण्डल** कहा गया है, यह **शान्तिकर्म** में प्रशस्त कहा गया है । त्रिकोण के भीतर स्वस्तिक का चिन्ह रखना **अग्नि का मण्डल** माना गया है, **वश्यकर्म** में इसका उपयोग प्रशस्त कहा गया है । वज्र चिन्ह से युक्त चौकोर **भूमि का मण्डल** कहा गया है जो **स्तम्भन** कार्य के लिए प्रशस्त कहा गया है ॥ २३-२५ ॥

वृत्तं दिवस्तद्विद्वेषे बिन्दुषट्काङ्कितं तु तत् ॥ २५ ॥
वायुमण्डलमुच्चाटे मारणे वह्निमण्डलम् ।

पद्मादिषण्मुद्राकथनम

सरोरुहं पाशगदे मुसलं कुलिशं त्वसिः ॥ २६ ॥
षण्मुद्राः कर्मषट्के स्युरथहोमे निगद्यते ।

गदामुद्रेयमुदितादर्शिताविघ्नहारिणी ॥ इति ।

मुसलमुद्रोक्ता । कुलिशं वज्रमुद्रा । सा यथा –

'कनिष्ठाङ्गुष्ठयुङ्मुद्रा त्रिकोणात्वशनेर्मता' ॥ इति ।

अशनेर्वज्रस्य कनिष्ठांगुष्ठयोगादन्यासां प्रसारणात् त्रिकोणेत्यर्थः ॥

असिः **खड्गमुद्रा** । सा यथा –

ऊर्ध्वस्य वामहस्तस्य तर्जन्याद्यंगुलित्रयम् ॥
प्रसार्य योजयेदन्ये मिथोङ्गुष्ठकनिष्ठिके ।
खड्गमुद्रेयमुदिता स शत्रुनिकृन्तनी । इति ॥ २५–२६ ॥

होममुद्रा आह – **मृगीति** ॥ २७ ॥

आकाश मण्डल वृत्ताकार होता है । यह **विद्वेषण** कार्य में प्रशस्त है, छह बिन्दुओं से अंकित वृत्त वायु मण्डल कहा गया है, जो **उच्चाटन** क्रिया में प्रशस्त है । **मारण** में पूर्वोक्त वह्निमण्डल का उपयोग करना चाहिए ॥ २५-२६ ॥

(ix) अब मण्डल का लक्षण कह कर **मुद्रा के विषय में** कहते हैं -

शान्ति आदि षट्कर्मों में पद्म, पाश, गदा, मुशल, वज्र एवं खड्ग मुद्राओं का प्रदर्शन करना चाहिए । अब आगे होम की मुद्रायें कहेगें ॥ २६-२७ ॥

विमर्श - (१) पद्ममुद्रा - दोनों हाथों को सम्मुख करके हथेलियां ऊपर करे, अंगुलियों को बन्द कर मुट्ठी बॉधे । अब दोनों ॲगूठों को अंगुलियों के ऊपर से परस्पर स्पर्श कराये । यह पद्म मुद्रा है ।

(२) **पाशमुद्रा** - दोनों हाथ की मुट्ठियां बांधकर बाईं तर्जनी को दाहिनी तर्जनी से बांधे । फिर दोनों तर्जनियों को अपने-अपने अंगूठों से दबाये । इसके बाद दाहिनी तर्जनी के अग्रभाग को कुछ अलग करने से पाश मुद्रा निष्पन्न होती है।

(३) **गदामुद्रा** - दोनों हाथों की हथेलियों को मिला कर, फिर दोनों हाथ की अंगुलियां परस्पर एक दूसरे से ग्रथित करे । इसी स्थिति में मध्यमा उॅगलियों को मिलाकर सामने की ओर फैला दे । तब यह विष्णु को सन्तुष्ट करने वाली 'गदा मुद्रा' होती है ।

मृग्यादिहोममुद्राकथनम्

मृगी हंसी सूकरीति होमे मुद्रात्रयं मतम् ॥ २७ ॥
मध्यमानामिकाङ्गुष्ठयोगे मुद्रा मृगी मता ।
हंसीकनिष्ठाहीनानां सर्वासां योजने मता ॥ २८ ॥
सूकरीकरसङ्कोचे मुद्रा लक्षणमीरितम् ।
शान्तो वश्ये मृगी हंसी स्तम्भनादिषु सूकरी ॥ २९ ॥

कर्मानुरूपवर्णानां कथनम्

चन्द्रतोयधराकाशपवनानलवर्णकाः ।
षट्सु कर्मसु यन्त्रस्य बीजान्युक्तानि मन्त्रिभिः ॥ ३० ॥
स्वराः सठौ चन्द्रवर्णा भूतवर्णा उदीरिताः ।
चन्द्रार्णहीनास्ते ग्राह्या वशीकृत्यादिकर्मणि ॥ ३१ ॥

तासां लक्षणमाह – **मध्यमेति** ॥ २८–२९ ॥ वर्णानाह – **चन्द्रेति** । शान्तौ चन्द्रवर्णा यन्त्रे बीजत्वेन लेख्याः । वशीकरणादौ जलादिवर्णः ॥ ३० ॥ चन्द्रवर्णानाह – **स्वरा** इति । षोडशस्वराः सठावेतेऽष्टादशचन्द्रवर्णाः सन्ति । तथापि वश्यादौ

---

(४) **मुशलमुद्रा** - दोनों हाथों की मुट्ठी बांधे फिर दाहिनी मुट्ठी को बायें पर रखने से मुशल मुद्रा बनती है ।

(५) **वज्रमुद्रा** - कनिष्ठा और अंगूठे को मिलाकर त्रिकोण बनाने को अशनि (वज्रमुद्रा) कहते हैं अर्थात् कनिष्ठा और अंगूठे को मिलाकर प्रसारित कर त्रिक् बनाना वज्रमुद्रा है ।

(६) **खड्गमुद्रा** - कनिष्ठिका और अनामिका उंगलियों को एक दूसरे के साथ बांधकर अंगूठों को उनसे मिलाए । शेष उंगलियों को एक साथ मिला कर फैला देने से खड्गमुद्रा निष्पन्न होती है ॥ २६-२७ ॥

मृगी, हंसी एवं सूकरी ये तीन होम की मुद्रायें हैं । मध्यमा अनामिका और अंगूठे के योग से **मृगी मुद्रा**, कनिष्ठा को छोड़ कर शेष सभी अङ्गुलियों का योग करने से **हंसी मुद्रा** और हाथ को संकुचित कर लेने से **सूकरी मुद्रा** बनती है । इस प्रकार इन तीन मुद्राओं का लक्षण कहा गया है । शान्ति कार्य में मृगी वश्य में हंसी तथा शेष स्तम्भनादि कार्यों में सूकरी मुद्रा का प्रयोग किया जाता है ॥ २७-२९ ॥

(X) **अक्षर** - शान्ति आदि षट्कर्मों में यन्त्र पर चन्द्र, जल, धरा, आकाश, पवन, और अनल वर्णो के बीजाक्षरों का क्रमशः लेखन करना चाहिए - ऐसा मन्त्र शास्त्र के विद्वानों ने कहा है ॥ ३० ॥

केचित् सवलहान्यं रमाहुश्चन्द्रादिवर्णकान् ।

जातिरूपवर्णकथनम्

शान्त्यादिकर्मसु ज्ञेया जातयः षडभूः क्रमात् ॥ ३२ ॥
नमः स्वाहा वषड् वौषट् हुं फट् षण्मन्त्रवित्तमैः ।

भूतोदयकथनम्

नासापुटद्वयाधस्ताद्यदाप्राणगतिर्भवेत् ॥ ३३ ॥
तोयोदयस्तथा ज्ञेयः शान्तिकर्मणि सिद्धिदः ।
नासादण्डाश्रितगतौ प्राणे स्तम्भे धरोदयः ॥ ३४ ॥
पुटमध्यगतौ तस्मिन्द्वेषे व्योमोदयः शुभः ।
पुटोपरिष्टादगमने प्राणे स्यात्पावकोदयः ॥ ३५ ॥

पञ्चभूतवर्णास्तु प्राक्तरंगे स्वकुलान्यकुलभेद उक्ताः । तत्र यद्यपि चन्द्रवर्णा अपि सन्ति । तथापि वश्यादौ तोयादिवर्णलेखने चन्द्रवर्णरहितानामेव जलादिवर्णानां लेखनम् ॥ ३१ ॥ केषांचिन्मते सवलीहयराः क्रमाच्चन्द्राम्बुभूनभोनिलानलवर्णाः ॥ ३२ ॥ जातिरूपान् वर्णानाह – **नम** इति । भूतोदयमाह – **नासेति** । नासाविवरयोरधस्तात् प्राणगतो जलोदयः । नासामध्यदण्डाश्रयेण गमने धरोदयः। सस्तम्भने ज्ञेयः ॥ ३३–३४ ॥ नासाविवरमध्ये प्राणगतौ व्योमोदयः । उपरि-प्राणगतौ वन्ह्युदयः ॥ ३५ ॥ तिर्यक्प्राणगतौ वायूदयः ॥ ३६ ॥

सोलह स्वर, स एवं ठ ये अठारह चन्द्र वर्ण के बीजाक्षर हैं, चन्द्रवर्ण से हीन पञ्चभूतों के अक्षर जलादि तत्वों के बीजाक्षर वश्यादि कर्मों के लिए उपयुक्त है । कुछ आचार्यो ने स व ल ह य एवं र. को क्रमशः चन्द्र जल, भूमि, आकाश और वायु एवं वह्नि का बीजाक्षर कहा है ॥ ३१ ॥

शान्ति आदि षट्कर्मों में मन्त्रशास्त्रज्ञों ने क्रमशः नमः, स्वाहा, वषट्, वौषट्, हुम् एवं फट् इन छः को जातित्वेन स्वीकार किया है ॥ ३२ ॥

(xi) अब मन्त्र के ग्यारहवें प्रकार, **भूतों का उदय** कहते हैं - जब दोनों नासापुटों के नीचे तक श्वास चलता हो तब **जलतत्व** का उदय समझना चाहिए, जो शान्ति कर्म में सिद्धिदायक होता है । नाक के मध्य में सीधे दण्ड की तरह श्वास गति होने पर **पृथ्वीतत्व** का उदय समझना चाहिए, यह स्तम्भन कार्म में सिद्धिदायक होता है । नासा छिद्रों के मध्य में श्वास की गति होने पर **आकाशतत्व** का उदय समझना चाहिए, जो विद्वेषण में सिद्धिदायक है । नासापुटों के ऊपर श्वास की गति होने पर **अग्नितत्व** का उदय समझना चाहिए ॥ ३३-३५ ॥

तदा कर्मद्वये सिद्धिर्मारणे च वशीकृतौ।
प्राणेतिर्यग्गतौ ज्ञेय उच्चाटे मारुतोदयः॥ ३६॥

समित्कथनम्

दूर्वायाः समिधः शान्तौ गोघृतेन समन्विताः।
दाडिमप्रसुवो होमे वश्येजाघृतसंयुताः॥ ३७॥
मेषीघृताक्ताः समिधः स्तम्भे राजतरूद्भवाः।
धत्तूरसमिधो द्वेषे अतसीतैलसंयुतः॥ ३८॥
चूतजाः कटुतैलाक्ता उच्चाटनविधौ मताः।
कटुतैलयुताः शस्ता मारणे खदिरोद्भवाः॥ ३९॥

मालाकथनम्

शंखजा पद्मबीजोत्था निम्बारिष्टफलोद्भवा।
प्रेतदन्तभवा वाहरदोत्था खरदन्तजा॥ ४०॥

समिध आह – **दूर्वाया** इति । दाडिमेति । वश्यार्थहोमे अजाघृताक्ता दाडिमसमिधः ॥ ३७ ॥ स्तम्भने मेषीघृताक्ता राजवृक्षसमिधः ॥ ३८॥ उच्चाटे सर्षपतैलाक्ता आम्रसमिधः ॥ ३९ ॥ मालामाह – **शंखजेति** । स्तम्भने निम्बफलजा। अरिष्टः फेनिलस्तत्फलजा वा माला विधेया । उच्चाटने वा हरदोत्था अश्वदन्तजा॥ ४०॥

ऐसे समय में मारण एवं वशीकरण दोनों कार्यो में सफलता मिलती है । श्वास की गति तिर्यक् (तिरछी) होने पर **वायुतत्त्व** का उदय समझना चाहिए जो उच्चाटन क्रिया में शुभावह होता है ॥ ३९ ॥

(xii) अब मन्त्र के बारहवें प्रकार, **विभिन्न समिधाओं को** कहते हैं - शान्ति कार्य में गोघृत मिश्रित दूर्वा से, वश्य में बकरी के घी से मिश्रित अनार की समिधा से, स्तम्भन में भेंड़ी का घी मिला कर अमलतास वृक्ष की समिधा से, विद्वेषण में अतसी के तेल से मिश्रित धतूरे की समिधा से, उच्चाटन में सरसों के तेल से मिश्रित आम की वृक्ष की समिधा से तथा मारण में कटुतैल मिश्रित खैर की लकड़ी की समिधा से होम करना चाहिए ॥ ३७-३९ ॥

(xiii) अब तेरहवें प्रकार में **माला की विधि** कहते हैं - शान्ति आदि षट्कर्मों में शंख की शान्ति में, कवलगद्दा की वश्य में, नीबूं की स्तम्भन में, नीम की विद्वेषण में, घोड़े के दाँत उच्चाटन में तथा गदहे के दाँत की जप माला मारण कर्म में उपयोग करना चाहिए ॥ ४० ॥

जपमालाः क्रमाज्ज्ञेयाः शान्तिमुख्येषु कर्मसु ।

मालागणनाप्रकारः

मध्यमायां स्थितां मालां ज्येष्ठेनावर्तयेत्सुधीः ॥ ४१ ॥
शान्तौ वश्ये तथा पुष्टौ भोगमोक्षार्थके जपे ।
अनामांगुष्ठयोगेन स्तम्भनादौ जपेत्सुधीः ॥ ४२ ॥
तर्ज्जन्यङ्गुष्ठयोगेन द्वेषोच्चाटनयोः पुनः ।
कनिष्ठाङ्गुष्ठसंयोगान्मारणे प्रजपेत्सुधीः ॥ ४३ ॥

मणिसंख्याकथनम्

अष्टोत्तरशतं संख्यातदर्द्धं च तदर्द्धकम् ।
मणीनां शुभकार्ये स्यात्तिथिसंख्याभिचारके ॥ ४४ ॥

शान्त्यादिकर्मणि अग्निकथनम्

शान्तिर्वश्यं लौकिकाग्नौ स्तम्भनं वटजेऽनले ।
द्वेषः कलितरूत्पन्ने शेषे पितृवनस्थिते ॥ ४५ ॥

मालायां गणनाप्रकारमाह – **मध्यमायामिति** । ज्येष्ठेनाङ्गुष्ठेनावर्तयेत् भ्रामयेत् ॥ ४१–४३ ॥ मालामणिसंख्यामाह – **अष्टोत्तरशतमिति** । तदर्धं चतुष्पञ्चाशत् । तदर्धकं सप्तविंशतिः । एषा त्रिविधा माला शुभे कार्या । अभिचारे स्तम्भनादौ पञ्चदशमणियुक्ता माला ॥ ४४ ॥ अग्निमाह – **शान्तिरिति** । वटजे वटकाष्ठान् मथनोत्पादिते । कलितरूद्भवे बिभीतकजाते । शेषे उच्चाटन–मारणकर्मणि श्मशानवह्नौ होमः ॥ ४५ ॥

शान्ति, वश्य, पूष्टि, भोग एवं मोक्ष के कर्मों में मध्यमा में स्थित माला को अंगूठे से घुमाना चाहिए । स्तम्भनादि कार्यों के लिए बुद्धिमान साधक को अनामिका एवं अंगूठे से जप करना चाहिए । विद्वेषण एवं उच्चाटन में तर्जनी एवं अंगूठे से जप करना चाहिए तथा मारण में कनिष्ठिका एवं अंगूठे से जप करने का विधान है ॥ ४१-४३ ॥

अब प्रसङ्ग प्राप्त **माला की मणियों की गणना** कहते हैं - शुभकार्य के लिए माला में मणियों की संख्या १०८, ५४ या २७ कही गई है, किन्तु अभिचार (मारण) कर्म में मणियों की संख्या १५ कही गई है ॥ ४४ ॥

(xiv) अब **चौदहवें प्रकार वाले अग्नि के विषय में** कहते हैं -

शान्ति और वशीकरण कर्म में लौकिक अग्नि में, स्तम्भन में बरगद के काठ की बनी अग्नि में, विद्वेषण में बहेड़े की लकड़ी की अग्नि में तथा

प्रसंगात् काष्ठकथनम्

शुभे कर्मणि बिल्वार्कपलाशक्षीरवृक्षजैः।
अशुभे विषवृक्षाक्षैर्निम्बधत्तूरशेलुजैः ॥ ४६ ॥
काष्ठैः प्रदीपयेदग्निं होमकर्मणि मन्त्रवित्।

अग्निजिह्वापूजनम्

वह्नेर्जिह्वां सुप्रभाख्यां शान्तिकर्मणि पूजयेत् ॥ ४७ ॥
वश्य कार्ये हि रक्ताख्यां स्तम्भने कनकाभिधाम्।
विद्वेषे गगनां जिह्वामुच्चाटेप्यतिरक्तिकाम् ॥ ४८ ॥
कृष्णां तु मारणे चार्चेद् बहुरूपां तु सर्वतः।

विप्रभोजनसंख्याकथनम्

भोज्ये संख्याविशेषोऽपि ज्ञेयः शान्त्यादिकर्मसु ॥ ४९ ॥
शान्तौ वश्ये भोजयेत होमाद्विप्रान् दशांशतः।
उत्तमं तद्भवेत्कर्म तत्त्वांशेन तु मध्यमम् ॥ ५० ॥

वह्निप्रसंगात् काष्ठान्यप्याह – **शुभ इति** । शुभे शान्तिपुष्ट्यादौ कर्मणि बिल्वादिकाष्ठैरग्निं प्रज्वालयेत् । अशुभे स्तम्भनादौ विषवृक्षादिकाष्ठैः । विषवृक्षः कुचिला इतिप्रसिद्धः । अक्षो बिभितकः । शेलुः श्लेष्मातकः ॥ ४६ ॥ अग्निप्रसंगादेव कर्मविशेषे वह्निजिह्वापूजामाह – **वह्नेरिति** ॥ ४७ ॥ कनकाभिधा हिरण्या ॥ ४८ ॥ होमप्रसंगात् विप्रभोजनसंख्यामाह – **भोज्ये इति** ॥ ४९ ॥ शान्तिवश्ययोर्होमाद्दशांशेन द्विजानां भोजनमुत्तमम् । होमात् पञ्चविंशांशेन तन्मध्यमम् ॥ ५० ॥

उच्चाटन एवं मारण के प्रयोगों में श्मशानाग्नि में होम का विधान है ॥ ४५ ॥

अग्नि प्रज्वलित करने के लिए समिधाओं के विषय में कहते हैं - शुभ कार्यों में वेल, आक, पलाश एवं दुधारु वृक्षों की समिधाओं से तथा अशुभ कर्मों में विषकृत कुचिला, बहेड़ा, नीबू, धतूरा एवं लिसोड़े की समिधाओं से मान्त्रिक को अग्नि प्रज्वलित करनी चाहिए ॥ ४६ ॥

अब **अग्नि जिह्वाओं का तत्तत्कर्मों में पूजन का विधान** कहते हैं - शान्ति कर्म में अग्नि की सुप्रभा संज्ञक जिह्वा का, वश्य में रक्तानामक जिह्वा का, स्तम्भन में हिरण्या नामक जिह्वा का, विद्वेषण में गगना नामक जिह्वा का, उच्चाटन में अतिरक्तिका जिह्वा का तथा मारण में कृष्णा नामक अग्नि जिह्वा और सभी जगह बहुरूपा नामक अग्निजिह्वा का पूजन करना चाहिए ॥ ४७-४९ ॥

शान्त्यादि कर्मों में ब्राह्मण भोजन के विषय में कुछ विशेषतायें हैं । शान्ति एवं

होमाच्छतांशतो विप्रभोजनं त्वधमं तु तत् ।
शान्तेर्द्विगुणितं विप्रभोजनं स्तम्भने मतम् ॥ ५१ ॥
त्रिगुणं द्वेषणोच्चाटे मारणे होमसम्मितम् ।

विप्रलक्षणम्

अतिशुद्धकुलोत्पन्नाः साङ्गवेदविदोऽमलाः ॥ ५२ ॥
सदाचाररता विप्रा भोज्या भोज्यैर्मनोहरैः ।
पूज्यास्ते देवताबुद्ध्या नमस्कार्याः पुनः पुनः ॥ ५३ ॥
सन्तोष्या मधुरैर्वाक्यैर्हिरण्यादिप्रदानतः ।
अचिराल्लभतेऽभीष्टं गृहीतायां तदाशिषि ॥ ५४ ॥
एनोभिचारकर्मोत्थं नश्यतिद्विजवाक्यतः ।

लेखनद्रव्यकथनम्

चन्दनं रोचनारात्रिर्गृहधूमश्चिताभवः ॥ ५५ ॥

शतांशेनाधमम् ॥ ५१ ॥ विप्रस्वरूपमाह – **अतिशुद्धेति** ॥ ५२ ॥ उक्तब्राह्मणभोजने अभिचारोत्थमेनः पापं नश्यति । तस्मादुत्तमा द्विजा भोज्याः ॥ ५३–५४ ॥ लेखनद्रव्यमाह–**चन्दनमिति** । रात्रिर्हरिद्रा सा स्तम्भने लेखनद्रव्यम् । अष्टविषाणि मारणे । पूर्वोक्तं (२०) यन्त्रतरंगोक्तं लेखनद्रव्यम् ।

वश्य में होम के दशांश संख्या में ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए, यह उत्तम पक्ष माना गया है ॥ ४९-५० ॥

होम की संख्या के पच्चीसवें अंश की संख्या में ब्राह्मण भोजन मध्यम तथा शतांश संख्या में ब्राह्मण भोजन अधम पक्ष कहा गया है । स्तम्भन कार्य में शान्ति की संख्या से दूने ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए । इसी प्रकार विद्वेषण एवं उच्चाटन में शान्ति संख्या से तीन गुने ब्राह्मणों को तथा मारण में संख्या के तुल्य ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए ॥ ५०-५१ ॥

अब **भोजनार्ह ब्राह्मणों का स्वरूप** कहते हैं -

अत्यन्त विशुद्ध कुलों में उत्पन्न साङ्गवेद के विद्वान पवित्र निर्मल अन्तःकरण वाले सदाचार परायण ब्राह्मणों को विविध प्रकार के मनोहर भोज्य पदार्थों से भोजन कराना चाहिए । उनमें देवबुद्धि रखकर पूजन करना चाहिए तथा बारम्बार उन्हे प्रणाम करना चाहिए । मधुर वाणी से तथा सुर्वणादि के दान से उन्हे सन्तुष्ट करना चाहिए । इस प्रकार के ब्राह्मणों द्वारा दिए गए आशीर्वाद के प्राप्त करने से साधक के समस्त अभिचारादि पाप नष्ट हो जाते हैं, तथा

अङ्गारोऽष्टविषाणीति शान्त्यादौ यन्त्रलेखने ।
पूर्वोक्तं लेखनद्रव्यं गृह्णीयात्तदपि ध्रुवम् ॥ ५६ ॥

विषष्टककथनम्

पिप्पलीमरिचं शुण्ठी श्येनविष्ठा च चित्रकः ।
गृहधूमोन्मत्तरसो लवणं च विषाष्टकम् ॥ ५७ ॥

भूर्जपत्रादिलेखनाधारकम्

शान्तौ वश्ये लिखेद् भूर्जे स्तम्भने द्वीपिचर्मणि ।
खरचर्मणि विद्वेषे उच्चाटे ध्वजवाससि ॥ ५८ ॥
नरास्थिनि लिखेद्यन्त्रं मारणे मन्त्रवित्तमः ।
ये त्वाधाराः स्मृता यन्त्रतरङ्गे तेऽपि सम्मताः ॥ ५९ ॥

कुण्डकथनम्

वृत्तं पद्मं चतुष्कोणं त्रिषट्कोणं दलेन्दुवत् ।
तोयेशसोमशक्राणां या तु वाय्वोर्यमस्य च ॥ ६० ॥

तदपि तत्तत्कामनया ग्राह्यम् ॥ ५५–५६ ॥ अष्टविषाण्याह – **पिप्पलीति** ॥ ५७ ॥ लेखनद्रव्यप्रसंगाल्लेखनाधारमाह – **शान्ताविति** ॥ ५८ ॥ * ॥ ५९ ॥ कुण्डान्याह – **वृत्तमिति** । शान्तौ वृत्तकुण्डं पश्चिमे । पद्माकारं वश्ये उत्तरे । स्तम्भने चतुरस्रं पूर्वे । द्वेषे त्रिकोणं नैर्ऋत्ये । उच्चाटे षट्कोणं वायव्ये । मारणेऽर्द्धचन्द्राकारं दक्षिण इत्यर्थः ॥ ६० ॥

शीघ्र ही उसे मनोऽभिलषित पदार्थों की प्राप्ति हो जाती है ॥ ५२-५५ ॥

(XV) अब **लेखन द्रव्य के विषय में** कहते हैं -

चन्दन, गोरोचन, हल्दी, गृहधूम, चिता का अङ्गार तथा विषाष्टक यन्त्र लेखन के द्रव्य कहे गए हैं । यन्त्र तरङ्ग (२०) में पूर्वोक्त द्रव्यादि भी तत्तत्कामनाओं में लेखन द्रव्य कहे गए हैं, वे भी ग्राह्य हैं । १. पिप्पली, २. मिर्च, ३. सोंठ, ४. बाज पक्षी की विष्टा, ५. चित्रक (अण्डी), ६. गृहधूम, ७. धतूरे का रस तथा ८. लवण - ये ८ वस्तुयें विषाष्टक कही गई हैं ॥ ५५-५७ ॥

शान्ति और वश्य कर्म में भोज पत्र पर, स्तम्भन में व्याघ्र चर्म पर, विद्वेष में गदहे की खाल पर, उच्चाटन में ध्वज वस्त्र पर, और मारण में मनुष्य की हड्डी पर, मान्त्रिक को मन्त्र लिखना चाहिए । यन्त्र तरङ्ग (२०) में विविध प्रयोगों में यन्त्र लिखने के जो जो आधार कहे गए हैं वे भी यन्त्राधार में ग्राह्य हैं ॥ ५८-५९ ॥

आशासु क्रमतः कुण्डं शान्तिमुख्येषु कर्मसु ।

स्रुकस्रुवादिकथनम्

सौवर्णौ यज्ञवृक्षोत्थौ स्रुक्स्रुबौ शान्तिवश्ययोः ॥ ६१ ॥
स्तम्भनादिषु कार्येषु स्मृतौ लोहमयौ हि तौ ।

लेखनीकथनम्

हेमजा रूप्यजा जाती सम्भवा लेखनी शुभे ॥ ६२ ॥
वश्ये दूर्वाङ्कुरोत्पन्नास्तम्भनेऽगस्त्यवृक्षजा ।
राजवृक्षभवा वा स्याद्विद्वेषे तु करञ्जजा ॥ ६३ ॥
शुभे कर्मणि रम्याहे लेखनीं रचयेत्सुधीः ।
बिभीतकोत्थितोच्चाटे मारणे तु पुमस्थिजा ॥ ६४ ॥
रिक्तातिथौ कुजदिने विष्टौ तामशुभे पुनः ।

शान्त्यादौ भक्ष्यान्नादिकथनम्

भक्ष्यं च तर्पणं द्रव्यं तत्पात्रमथ कीर्त्यते ॥ ६५ ॥

स्रुक्स्रुवावाह – **सौवर्णाविति** ॥ ६१ ॥ लेखनीमाह – **शुमे शान्तौ** ॥ ६२–६४ ॥ देवताद्येकोनविंशति वस्तूनि शान्त्यादौ निरूप्य पुनरधिकं वक्तुं प्रतिजानीते – **भक्ष्यमिति** ॥ ६५ ॥

(xvi) अब मन्त्र के १६वें प्रकार, **कुण्ड के विषय में** कहते हैं -

शान्ति आदि षट्कर्मों में क्रमशः वृत्ताकार, पद्माकार, चतुरस्त्र, त्रिकोण, षट्कोण और अर्द्धचन्द्राकार कुण्ड का निर्माण पश्चिम उत्तर-पूर्व नैर्ऋत्य वायव्य और दक्षिण दिशा में करना चाहिए ॥ ६० ॥

(xvii-xviii) **स्त्रुवा और स्त्रुची** - शान्ति में सुवर्ण की एवं वश्य में यज्ञवृक्ष की स्त्रुवा और स्त्रुची बनानी चाहिए । शेष स्तम्भनादि कार्यों में लौह की स्त्रुवा और स्त्रुची बनानी चाहिए ॥ ६१ ॥

(xix) अब मन्त्र के उन्नीसवें प्रकार, **लेखनी के विषय में** कहते हैं -

शान्ति कर्म में सोने, चांदी, अथवा चमेली की, वश्य कर्म में दूर्वा की, स्तम्भन में अगस्त्य वृक्ष की अथवा अमलतास की, विद्वेषण में करञ्ज की, उच्चाटन में बहेड़े की तथा मारण में मनुष्य की हड्डी की लेखनी से यन्त्र लिखना चाहिए । शुभ कर्म में साधक को शुभमुहूर्त में अशुभ कार्य में रिक्ता (चौथ, नवमी, चतुर्दशी) तिथियों में मङ्गलवार के दिन तथा विष्टी (भद्रा) में लेखनी का निर्माण करना चाहिए ॥ ६२-६५ ॥

शान्तौ वश्ये हविष्यान्नं स्तम्भने परमान्नकम्।
माषामुद्गाश्च विद्वेषे गोधूमाभ्रंशने स्थलात्॥ ६६॥
मसूरान्नं तथा श्यामा अजादुग्धोत्थपायसम्।
मारणे प्रोदितं भक्ष्यं मन्त्रिणां कर्मकुर्वताम्॥ ६७॥

शान्त्यादौ तर्पणजलपात्रकथनम्

शान्तौ वश्ये हरिद्राक्तं जलं तर्पण ईरितम्।
मरिचाद्यं कवोष्णं तत्स्तम्भने मारणे तथा॥ ६८॥
मेषरक्तान्वितं तोयं विद्वेषोच्चाटयोर्मतम्।
स्वर्णपात्रं तर्पणेस्याच्छान्तौ वश्ये च कर्मणि॥ ६९॥
स्तम्भने मृत्तिकापात्रं विद्वेषे खदिरोद्भवम्।
लोहनिर्मितमुच्चाटे कुक्कुडाण्डं तु मारणे॥ ७०॥

आसनप्रकारः

मृद्वासने समासीनः शान्तौ वश्ये प्रतर्पयेत्।
जानुभ्यामुत्थितः स्तम्भे द्वेषादावेकपात्स्थितः॥ ७१॥

परमान्नकं पायसम् । स्थलाद् भ्रंशने उच्चाटने॥ ६६–७२॥

अब उक्तकर्मों में **भक्ष्यपदार्थों** को, **तर्पण द्रव्यों** को तथा उपयोग में लाये जाने **योग्य पात्रों के विषय में** कहता हूँ -

शान्ति और वश्य कर्म करते समय हविष्यान्न, स्तम्भन करते समय खीर, विद्वेषण करते समय उड़द एवं मूँग, उच्चाटन करते समय गेहूँ तथा मारण करते समय मान्त्रिक को मसूर एवं काली बकरी के दूध में बने खीर का भोजन करना चाहिए ॥ ६५-६७ ॥

शान्ति कर्म में तथा वश्य कर्म में हल्दी मिला जल, स्तम्भन और मारण कर्म में मिर्च मिला कुछ गुनगुना जल तथा विद्वेषण एवं उच्चाटन में भेड के खून से कमकश्रत जल तर्पण द्रव्य कहा गया है ॥ ६८ ॥

शान्ति एवं वश्य कर्म में सोने के पात्र में, स्तम्भन में मिट्टी के पात्र में, विद्वेषण में खैर के पात्र में, उच्चाटन में लोहे के पात्र में तथा मारण में मुर्गी के अण्डे में तर्पण करना चाहिए ॥ ६९-७१ ॥

शान्ति एवं वश्य कर्म में मृदु आसन पर बैठकर तर्पण करना चाहिए । स्तम्भन में घुटनों से उठकर तथा विद्वेषण आदि में एक पैर से खड़े हो कर तर्पण करना चाहिए ॥ ७१ ॥

षट्कर्मणां विधिः प्रोक्त एवं मन्त्रज्ञतुष्टये ।
सम्यक्कृत्वा न्यासजातमात्मरक्षां विधाय च ॥ ७२ ॥

काम्यकर्मोपसंहारकथनम्

काम्यं कर्मप्रकर्तव्यमन्यथाभिभवो भवेत् ।
शुभं वाप्यशुभं वापि काम्यं कर्म करोति यः ॥ ७३ ॥
तस्यारित्वं व्रजेन्मन्त्रो न तस्मात्तत्परो भवेत् ।

काम्यकर्महेतुकथनम्

विषयासक्तचित्तानां सन्तोषाय प्रकाशितम् ॥ ७४ ॥
पूर्वाचार्योदितं काम्यं कर्मनैतद्धितावहम् ।
काम्यकर्मप्रसक्तानां तावन्मात्रं भवेत्फलम् ॥ ७५ ॥

निष्कामभजने फलकथनम्

निष्कामं भजतां देवमखिलाभीष्टसिद्धयः ।
प्रतिमन्त्रं समुदिता ये प्रयोगाः सुखाप्तये ।
तदा शक्तिं विहायैव निष्कामो देवतां भजेत् ॥ ७६ ॥

एवं काम्यं कर्म निरूप्य तत्प्रसक्तिं वारयति – **शुभं वेति** ॥ ७३ ॥ एवं चेत् किमित्युक्तं तदित्यत आह – **विषयेति** ॥ ७४ ॥ पूर्वाचार्योक्तमुक्तम् । तद्वस्तुगत्याहितं न भवति । तत्र हेतुमाह – **काम्येति** ॥ ७५ ॥ * ॥ ७६ ॥

हमने मन्त्र साधकों के सन्तोष के लिए षट्कर्मों (शान्ति, वश्य, स्तम्भन, विद्वेषण उच्चाटन और मारण) की विधि बताई है । सर्वप्रथम विधिवत् न्यास द्वारा आत्मरक्षा करने के बाद ही काम्य कर्मों का अनुष्ठान करना चाहिए । अन्यथा हानि और असफलता ही प्राप्त होती है ॥ ७२ ॥

जो व्यक्ति शुभ अथवा अशुभ किसी भी प्रकार का काम्य कर्म करता है मन्त्र उसका शत्रु बन जाता है । इसलिए काम्यकर्म न करे । यही उत्तम है ॥ ७३-७४ ॥

अब प्रश्न होता है कि यदि काम्य कर्म करने का निषेध है तो इतनी बड़ी विधियुक्त पुस्तक के निर्माण का क्या हेतु है ? इसका उत्तर देते हैं - विषयासक्त चित्त वालों के सन्तोष के लिए प्राचीन आचार्यों ने काम्य कम की विधि का प्रतिपादन किया है **किन्तु यह हितकारी नहीं है** । काम्य कर्म वालों के लिए केवल कामना सिद्धि मात्र फल की प्राप्ति होती है ॥ ७४-७५ ॥

किन्तु निष्काम भाव से देवताओं की उपासना करने वालों को सारी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती है । केवल सुख प्राप्ति के लिए प्रत्येक मन्त्रों के जितने

वेदोक्तकर्मकरणस्योत्कृष्टता

वेदे काण्डत्रयं प्रोक्तं कर्मोपासनबोधनम्।
साधनं काण्डयुग्मोक्तं तृतीये साध्यमीरितम्॥ ७७॥
तस्माद्वेदोदितं कुर्यादुपासीत च देवताः।
शुद्धान्तःकरणस्तेन लभते ज्ञानमुत्तमम्॥ ७८॥
कार्यकारणसङ्घातं प्रविष्टश्चेतनात्मकः।
जीवो ब्रह्मैव सम्पूर्णमिति ज्ञात्वा विमुच्यते॥ ७९॥
मनुष्यदेहं सम्प्राप्य उपासीत च देवताः।
यो न मुच्येत संसारान्महापापयुतो हि सः॥ ८०॥

निष्कामभजने फलमाह – **वेदेति** । कर्मोपासनबोधनं कर्मकाण्डं – ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेतेत्यादि । उपासनाकाण्डं – सूर्यो ब्रह्मेत्युपासीत यो ह वै ज्येष्ठं च वेदेत्यादि । इदं काण्डद्वयं साधनं ज्ञानस्य । तृतीयं ज्ञानकाण्डं–अयमात्मा ब्रह्मेत्यादि तस्मात्साध्यं फलभूतम् । तस्माज्ज्ञानप्राप्तये प्रयतितव्यमित्यर्थः ॥ ७७ ॥ तत्रोपायमाह – **तस्मादिति** । निष्कारणवेदोक्त चरणे देवतोपासने चान्तःकरणशुद्धिस्ततो न प्राप्तिरित्यर्थः ॥ ७८ ॥ ज्ञानस्वरूपमाह – **कार्येति** । कार्याणि कारणानि भूतानि च तत्संघातः शरीरम् । तच्चालकश्चेतना जीवो वस्तुतो ब्रह्मैवेति । साक्षात्कारो ज्ञानं तस्मान्मुक्तिः। तत्त्वमसि श्वेतकेतो अहं ब्रह्मास्मीत्यादि श्रुतेः ॥ ७९ ॥ ज्ञानायाप्रयतमानं निन्दति – **मनुष्येति** ॥ ८० ॥

भी प्रयोग बतलाये गए हैं उनकी आसक्ति का त्याग कर निष्काम रूप से देवता की पूजा करनी चाहिए ॥ ७६ ॥

वेदों में कर्मकाण्ड, उपासना और ज्ञान तीन काण्ड बतलाये गए हैं । 'ज्योतिष्टोमेन यजेत' यह कर्मकाण्ड है, 'सूर्यो ब्रह्मेत्युपासीत' यह उपासना है, ये दोनों काण्ड ज्ञान के साधन हैं 'अयमात्मा ब्रह्म' यह ज्ञान है जो स्वयं में साध्य है । यही उक्त दोनों का फल भी है । इसलिए ज्ञान प्राप्ति के लिए वेदोदित कर्म और उपासना दोनों में ही वेदोक्त मार्ग के अनुसार प्रवृत्त होना चाहिए । देवता की उपासना से अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है । जिससे उत्तम ज्ञान की प्राप्ति होती है । कार्यकारणसंघात शरीर में प्रविष्ट हुआ जीव ही परब्रह्म है । इसी ज्ञान से साधक मुक्त हो जाता है । अतः मनुष्य देह प्राप्त कर देवताओं की उपासना से मुक्ति प्राप्त कर लेनी चाहिए । जो मनुष्य देह प्राप्त कर संसार बन्धन से मुक्त नही होता, वही महापापी है ॥ ८० ॥

आत्मज्ञानाप्तये तस्माद्यतितव्यं नरोत्तमैः ।
कर्मभिर्देवसेवाभिः कामाद्यरिगणक्षयात् ॥ ८१ ॥

देवतोपास्तिं कुर्वता भविष्यद्विचार्य प्रवर्तितव्यम्--

चिकीर्षुर्देवतोपास्तिमादौ भावि विचारयेत् ।
स्नानदानादिकं कृत्वा स्मृत्वा हरिपदाम्बुजम् ॥ ८२ ॥

शिवं मनसि ध्यात्वा निद्रां कुर्वतो स्वप्नप्रकारः

शयीत कुशशय्यायां प्रार्थयेद्वृषभध्वजम् ।
भगवन् देवदेवेश शूलभृद् वृषवाहन ॥ ८३ ॥
इष्टानिष्टे समाचक्ष्व मम सुप्तस्य शाश्वत ।
नमोऽजाय त्रिनेत्राय पिङ्गलाय महात्मने ॥ ८४ ॥
वामाय विश्वरूपाय स्वप्नाधिपतये नमः ।
स्वप्ने कथय मे तथ्यं सर्वकार्येष्वशेषतः ॥ ८५ ॥
क्रियासिद्धि विधास्यामि त्वत्प्रसादान्महेश्वर ।
एभिर्मन्त्रैः शिवं प्रार्थ्य निद्रां कुर्यान्निराकुलः ॥ ८६ ॥
स्वप्नं दृष्टं निशि प्रातर्गुरवे विनिवेदयेत् ।
तमन्तरेण मन्त्रज्ञः स्वयं स्वप्नं विचारयेत् ॥ ८७ ॥

फलिनमाह – **आत्मज्ञानेति** । कामक्रोधलोभा अरयस्तेषां क्षयं कृत्वा कृतैः कर्मभिर्वैदिकैर्देवोपासनादिभिश्चान्तः– करणशुद्धिद्वारा ज्ञानाप्तिरित्यर्थः ॥ ८१ ॥ देवोपास्तिं कुर्वता भविष्यद्विचार्यप्रवर्तिव्यमित्याह – **चिकीर्षुरिति** । विचारप्रकारमाह – **स्नानसंध्यादिकं कृत्वेत्यादिना** ॥ ८२ ॥ शिवप्रार्थनामन्त्रमाह – **भगवन्निति** ॥ ८३–८६ ॥ तमन्तरेण गुरुं विना शुभाशुभं स्वप्नं स्वयमेव विचारयेत् ॥ ८७ ॥

इसलिए उपासना और कर्म से काम-क्रोधादि शत्रुओं का नाश कर आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए सत्पुरुषों को सतत् प्रयत्न करते रहना चाहिए ॥ ७७-८१ ॥

देवता की उपासना करने वाले को अपना भविष्य विचार कर उसमें प्रवृत्त होना चाहिए । उसकी विधि इस प्रकार है -

स्नान और दान आदि करने के बाद भगवान् विष्णु के चरण कमलों का ध्यान कर कुश की शय्या पर सोना चाहिए । तथा भगवान शिव से **'भगवन् देवदेवेश .... त्वत्प्रसादान्महेश्वर'** पर्यन्त तीन श्लोकों से (द्र० २५. ८३-८६) से प्रार्थना कर निश्चिन्त हो सो जाना चाहिए ॥ ८२-८६ ॥

प्रातःकाल उठने पर देखा हुआ स्वप्न अपने गुरुदेव से बतला देना

शुभस्वप्नकथनम्

लिङ्गं चन्द्रार्कयोर्बिम्बं भारतीं जान्हवीं गुरुम् ।
रक्ताब्धितरणं युद्धे जयोऽनलसमर्चनम् ॥ ८८ ॥
शिखिहंसरथांगाढ्ये रथे स्नानं च मोहनम् ।
आरोहणं सारसस्य धरालाभश्च निम्नगा ॥ ८९ ॥
प्रासादः स्यन्दनः पद्मं छत्रं कन्या द्रुमःफली ।
नागो दीपो हयः पुष्पं वृषभोश्वश्च पर्वतः ॥ ९० ॥
सुराघटो ग्रहास्तारा नारी सूर्योदयोप्सराः ।
हर्म्यशैलविमानानामारोहो गगने गमः ॥ ९१ ॥
मद्यमांसादनं विष्ठालेपो रुधिरसेचनम् ।
दध्योदनादनं राज्याभिषेको गोवृषध्वजाः ॥ ९२ ॥
सिंहसिंहासनं शङ्खो वादित्रं रोचनादधि ।
चन्दनं दर्पणश्चैषां स्वप्ने संदर्शनं शुभम् ॥ ९३ ॥

तत्र शुभस्वप्नानाह – **लिंगमिति** । शिखीति । मयूरयुक्ते हंसयुक्ते चक्रयुक्ते वा रथे स्थितिः । मोहनं सुरतम् । निम्नगा नदीमात्रम् ॥ ८९ ॥ स्यन्दनो रथः। निम्नगाद्यप्सरोन्तानां दर्शनमेव शुभम् ॥ ९० ॥ हर्म्यादीनामारोहणम् ॥ ९१ ॥ मद्यमांसयोर्भक्षणम् । विष्ठया शरीरे लेपः रुधिरेण स्नानम् । दधिभक्त भक्षः। राज्यप्राप्तिः । एतानि शुभानि । गवादीनां दर्शनमेव शुभम् ॥ ९२–९३ ॥

चाहिए । उनके न होने पर स्वयं साधक को अपने स्वप्न के भविष्य के विषय में विचार कर लेना चाहिए ॥ ८७ ॥

अब **शुभाशुभ स्वप्न के विषय में** कहते हैं -

लिङ्ग, चन्द्र और सूर्यकर बिम्ब, सरस्वती, गङ्गा, गुरु, लालवर्ण वाले समुद्र में तैरना, युद्ध में विजय, अग्नि का अर्चन, मयूरयुक्त, हंसयुक्त अथवा चक्रयुक्त रथ पर बैठना, स्नान, संभोग, सारस की सवारी, भूमिलाभ, नदी, ऊँचे ऊँचे महल, रथ, कमल, छत्र, कन्या, फलवान् वृक्ष, सर्प अथवा हाथी, दीया, घोड़ा, पुष्प, वृषभ और अश्व, पर्वत, शराब का घड़ा, ग्रह नक्षत्र, स्त्री, उदीयमान सूर्य अप्सराओं का दर्शन, लिपे पोते स्वच्छ मकान पर, पहाड पर तथा विमान पर चढना, आकाश यात्रा, मद्य पीना, मांस ख़ाना, विष्टा का लेप, खून से स्नान, दही भात का भोजन, राज्याभिषेक होना (राज्य प्राप्ति), गाय, बैल और ध्वजा का दर्शन, सिंह और सिंहासन, शंख, बाजा, गोरोचन, दधि, चन्दन तथा दर्पण इनका स्वप्न में दिखलायी पड़ना शुभावह कहा गया है ॥ ८८-९३ ॥

अशुभस्वप्नकथनम्

तैलाभ्यक्तः कृष्णवर्णो नग्नो ना गर्तवायसौ ।
शुष्ककण्टकिवृक्षश्च चाण्डालो दीर्घकन्धरः ॥ ६४ ॥
प्रासादस्तलहीनश्च नैते स्वप्ने शुभावहाः ।
शान्तिं कुर्वीत दुःस्वप्ने जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ॥ ६५ ॥
अब्दत्रिकं जपं तस्य कुर्वतो विघ्नसम्भवः ।
विघ्नसङ्घमनादृत्य तदा जपपरो भवेत् ॥ ६६ ॥
सिद्धौ विश्वस्तचित्तः संस्तुरीयेऽब्दे ससिद्धिभाक् ।

मन्त्रसिद्धेर्लक्षणम्

मनःप्रसादः सन्तोषः श्रवणं दुन्दुभिध्वनेः ॥ ६७ ॥
गीतस्य तालशब्दस्य गन्धर्वाणां समीक्षणम् ।
स्वतेजसः सूर्यसाम्येक्षणं निद्राक्षुधाजपः ॥ ६८ ॥
रम्यतारोग्यगाम्भीर्यमभावक्रोधलोभयोः ।
एवमादीनि चिह्नानि यदा पश्यति मन्त्रवित् ॥ ६६ ॥
सिद्धिं मन्त्रस्य जानीयाद् देवतायाः प्रसन्नताम् ।

अशुभस्वप्नानाह – **तैलेति** । तैलाभ्यक्तो ना पुरुषः । नग्नादीना दर्शनमशुभम् ॥ ६४–६६ ॥ मन्त्रसिद्धेर्लक्षणमाह – **मनः प्रसाद इति** ॥ ६७–१०० ॥

तैल की मालिश किए पुरुष का, काला अथवा नग्न व्यक्ति का, गड्ढा, कौआ, सूखा वृक्ष, काँटेदार वृक्ष, चाण्डाल, बड़े कन्धे वाला पुरुष, तल (छत) रहित पक्का महल इनका स्वप्न में दिखलाई पड़ना अशुभ है ॥ ६४-६५ ॥

दुःस्वप्न की शान्ति के उपाय - दुःस्वप्न दिखई पड़ने पर उसकी शान्ति करानी चाहिए । तदनन्तर एकाग्रमन से इष्टदेव के मन्त्र का जप करना चाहिए। ३ वर्ष तक जप करने वाले को विघ्न की संभावना रहती है, अतः विघ्नसमूह की परवाह न कर अपने जप में तत्पर रहना चाहिए । अपने चित्त में विश्वस्त रहने वाला सिद्धपुरुष चौथे वर्ष में अवश्य ही सिद्धि प्राप्त कर लेता है ॥ ६५-६७ ॥

अब **मन्त्र सिद्धि का लक्षण** कहते हैं -

मन में प्रसन्नता आत्मसन्तोष, नगाड़े की ध्वनि, गाने की ध्वनि, ताल की ध्वनि, गन्धर्वों का दर्शन, अपने तेज को सूर्य के समान देखना, निद्रा, क्षुधा, जप करना, शरीर का सौन्दर्य बढना, आरोग्य होना, गाम्भीर्य, क्रोध और लोभ का अपने में सर्वथा अभाव, इत्यादि चिन्ह जब साधक को दिखाई पड़े तो मन्त्र की सिद्धि तथा देवता की प्रसन्नता समझनी चाहिए ॥ ६७-१०० ॥

लब्धज्ञानिनः कृतार्थताकथनम्

ततो जपेधिकं यत्नं प्रकुर्याज्ज्ञानलब्धये ॥ १०० ॥
लब्धज्ञानः कृतार्थः स्यात्संसारात्प्रतिमुच्यते ।
ज्ञात्वात्मानं परं ब्रह्मवेदान्तैः प्रतिपादितम् ॥ १०१ ॥

ग्रन्थसमाप्तौ मङ्गलाचरणम्

तं वन्दे परमात्मानं सर्वव्यापिनमीश्वरम् ।
यो नानादेवतारूपो नृणामिष्टं प्रयच्छति ॥ १०२ ॥
विलोक्य नानातन्त्राणि प्रार्थितो द्विजसत्तमैः ।
स्वमतेरनुसारेण कृतो मन्त्रमहोदधिः ॥ १०३ ॥

ग्रन्थकर्तुस्तरंगानुक्रमणिकाकथनम्

बाणनेत्रमितास्तस्मिंस्तरङ्गाः सन्ति निर्मिताः ।
तत्रानुक्रमणीं वक्ष्ये मन्त्रिणां सुखवृद्धये ॥ १०४ ॥

आत्मसाक्षात्कारपर्यन्तमेव मन्त्रोपास्तिरित्याह – **लब्धज्ञान इति** । अहं ब्रह्मेति साक्षात्कारो ज्ञानमित्यर्थः ॥ १०१ ॥ ग्रन्थसमाप्तौ मंगलमाचरति – **तं वन्दे** इति । ब्रह्मैव नानादेवतारूपेण जनैः सेव्यत इत्यर्थः । 'यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति । तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् । स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते । लभते च ततः कामान् मयैव विहितान्हितान्' इति भगवद्वचनात् ॥ १०२ ॥ ग्रन्थकरणे हेतुमाह – **विलोक्येति** । ब्राह्मणप्रार्थनमेव हेतुः ॥ १०३ ॥ वाणनेत्रमिताः पञ्चविंशतिः ॥ १०४ ॥

अब **मन्त्र सिद्धि के बाद के कर्त्तव्य** का निर्देश करते हैं - मन्त्र सिद्धि प्राप्त कर लेने वाले साधक को ज्ञान प्राप्ति के लिए जप की संख्या में निरन्तर वृद्धि का यत्न करते रहना चाहिए । जब वेदान्त प्रतिपादित (अयमात्माब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि श्वेतोकेतो इत्यादि) तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त हो जाय तब साधक कृतार्थ हो जाता है और संसार बन्धन से छूट जाता है ॥ १००-१०१ ॥

अब **ग्रन्थ समाप्ति में पुनः मङ्गलाचरण** करते हैं - सर्वव्यापी ईश्वर परमात्मा की मैं वन्दना करता हूँ, जो अनेक देवताओं का स्वरूप ग्रहण कर मनुष्यों के अभीष्टों को पूरा करते हैं ॥ १०२ ॥

ग्रन्थ रचना का हेतु - श्रेष्ठ विद्वान् ब्राह्मणों द्वारा प्रार्थना किये जाने पर अनेक तन्त्र ग्रन्थों का अवलोकन कर अपनी बुद्धि के अनुसार मैंने इस मन्त्र महोदधि नामक ग्रन्थ की रचना की है । यही इस ग्रन्थ की रचना का हेतु है ॥ १०३ ॥

भूतशुद्धिस्तथा प्राणप्रतिष्ठान्यसनं लिपेः ।
पुरश्चर्याहोमविधिस्तर्पणाद्याद्य ईरितम् ॥ १०५ ॥
द्वितीयोर्मौ गणेशस्य मन्त्राः सम्यक्समीरिताः ।
कालीकाल्यभिधानानां सुमुख्याश्च तृतीयके ॥ १०६ ॥
तारातुरीये सम्प्रोक्ता ताराभेदास्तु पञ्चमे ।
षष्ठे तरङ्गे गदिता छिन्नमस्ताशबर्यपि ॥ १०७ ॥
स्वयंवरामधुमती प्रमदा च प्रमोदया ।
बन्दीबन्धनहारीति सप्तमे वटयक्षिणी ॥ १०८ ॥
तस्या भेदाश्च वाराही ज्येष्ठा कर्णपिशाचिनी ।
स्वप्नेश्वरी च मातङ्गी बाणेशी मदनेश्वरी ॥ १०९ ॥
अष्टमे विस्तरात्प्रोक्ता बाला बालाभिदा अपि ।
नवमे त्वन्नपूर्णोक्ता तद्भेदामोहनाद्रिजा ॥ ११० ॥

अनुक्रमणीमाह – **भूतशुद्धिरिति** । लिपेर्मातृकायान्यसनं न्यासः । आद्ये प्रथमतरंगे एतदीरितम् ॥ १०५ ॥ द्वितीयोर्मौ द्वितीयतरंगे गणेशमन्त्राः । काल्यादितृतीये ॥ १०६ ॥ बन्धनहारीति । बन्दीविशेषणम् । छिन्नमस्तादिशबर्यन्तंषष्ठे ॥ १०७–१०८ ॥ वाराहीवार्तालीवटयक्षिण्यादिकामेश्वर्यन्तं सप्तमे ॥ १०९ ॥

अब प्रसङ्ग प्राप्त **मन्त्रमहोदधि की अनुक्रमणिका** कहते हैं -

इस मन्त्रमहोदधि में पच्चीस तरङ्ग हैं । मान्त्रिकों की सुविधा के लिए अब उनकी अनुक्रमणिका कहता हूँ ॥ १०४ ॥

प्रथम तरङ्ग में भूतशुद्धि, प्राणप्रतिष्ठा, मातृकान्यास, पुरश्चरण और होम की विधि तथा तर्पण का विषय प्रतिपादन किया गया है ॥ १०५ ॥

द्वितीय तरङ्ग में गणेश के विविध मन्त्र और उनकी सिद्धि के प्रकार कहे गए हैं ।

तृतीय तरङ्ग में काली तथा काली नाम से अभिहित दक्षिणाकाली आदि के अनेक मन्त्र एवं सुमुखी के मन्त्र का प्रतिपादन एवं काम्यप्रयोग कहा गया है ॥ १०६ ॥

चतुर्थ तरङ्ग में तारा की उपासना तथा **पञ्चम तरङ्ग** में तारा के भेद कहे गए हैं ।

छठे तरङ्ग में छिन्नमस्ता, शबरी, स्वयम्बरा, मधुमती, प्रमदा, प्रमोदा, बन्दी जो बन्धन से मुक्त करती हैं - उनके मन्त्रों को बताया गया है ॥ १०७-१०८ ॥

सप्तम तरङ्ग में वटयक्षिणी, वटयक्षिणी के भेद, वाराही, ज्येष्ठा, कर्णपिशाचिनी, स्वप्नेश्वरी, मातङ्गी, बाणेशी एवं कामेशी के मन्त्रों को प्रतिपादित किया गया है ॥ १०८-१०९ ॥

ज्येष्ठालक्ष्मीरत्र मन्त्रा उक्ता प्रत्यङ्गिरारिहा।
दशमे बगलावक्त्रावाराहीद्वितयं तथा ॥ १११ ॥
श्रीविद्यैकादशे प्रोक्ता द्वादशे तु तदावृतिः।
त्रयोदशे तु हनुमान्विस्तरात् प्रतिपादितः ॥ ११२ ॥
चतुर्दशे नारसिंहो गोपालो गरुडोऽपि च।
अथ पञ्चदशे सूर्यो भौमो जीवः सितो मुनिः ॥ ११३ ॥
षोडशोर्मौ महामृत्युञ्जयो रुद्रो धनेश्वरः।
जाह्नवीमणिकर्णी च प्रोक्ता सप्तदशेऽर्जुनः ॥ ११४ ॥
अष्टादशे कालरात्रिश्चण्डिकाया नवाक्षरः।
एकोनविंशे चरणयुधः शास्तृसमन्वितः ॥ ११५ ॥
पार्थिवार्चनकीनाशचित्रगुप्तासुरीविधिः ।

मोहनाद्रिजा मोहनगौरी ॥ ११० ॥ अरिहा शत्रुनाशकः षोडशार्णः । बगला–वक्त्रा बगलामुखी ॥ १११॥ तदावृत्तिः श्रीविद्याया आवरणपूजा ॥ ११२॥ मुनिर्वेदव्यासः ॥ ११३–११४ ॥ चरणायुधः कुक्कुटमन्त्रः ॥ ११५ ॥ कीनाशोऽयम् ॥ ११६ ॥

अष्टम तरङ्ग में त्रिपुराबाला तथा उनके भेदों का विवेचन विस्तार से किया गया है । **नवम तरङ्ग** में अन्नपूर्णा, उनके भेद त्रैलोक्यमोहन गौरी एवं ज्येष्ठालक्ष्मी तथा उनके साथ ही प्रत्यंगिरा के भी मन्त्रों का निर्देश किया गया है ॥ ११०-१११ ॥

दशम तरङ्ग में बगलामुखी तथा वाराही को भी बतलाया गया है ॥ १११ ॥

एकादश तरङ्ग में श्रीविद्या तथा **द्वादश तरङ्ग** में उनके आवरण पूजा की विधि बताई गई है ।

त्रयोदश तरङ्ग में हनुमान् के मन्त्रों एवं प्रयोगों का विशद् रूप से प्रतिपादन किया गया है ॥ ११२ ॥

चतुर्दश तरङ्ग में नृसिंह, गोपाल एवं गरुड मन्त्रों का प्रतिपादन है ।

पञ्चदश तरङ्ग में सूर्य, भौम, बृहस्पति, शुक्र एवं वेदव्यास के मन्त्रों को बताया गया है ॥ ११३ ॥

षोडश तरङ्ग में महामृत्युञ्जय, रुद्र एवं गङ्गा तथा मणिकर्णिका के मन्त्र कहे गए हैं।

सप्तदश तरङ्ग में कार्त्तवीर्यार्जुन के मन्त्र, दीपदान विधि आदि का वर्णन है ।

अष्टादश तरङ्ग में कालरात्रि के मन्त्र, नवार्णमन्त्र, शतचण्डी और सहस्रचण्डी विधान का सविस्तार वर्णन किया गया है ॥ ११४-११५ ॥

उन्नीसवें तरङ्ग में चरणायुध मन्त्र, शास्ता मन्त्र, पार्थिवार्चन, धर्मराज, चित्रगुप्त के मन्त्रों का प्रतिपादन करते हुये आसुरी (दुर्गा) विधि का प्रतिपादन किया गया है ॥ ११५-११६ ॥

विंशे तरङ्गे यन्त्राणि स्वर्णाकर्षणभैरवः ॥ ११६ ॥
स्नानादिरन्तर्यागान्त एकविंशेर्चनाविधिः ।
द्वाविंशेऽर्घ्यं समारभ्य पूजनं तद्भिदा अपि ॥ ११७ ॥
त्रयोविंशे तु दमनैः पवित्रैश्च सर्मचनम् ।
चतुर्विंशे च भेदेन मन्त्राणां परिशेधनम् ॥ ११८ ॥
तरङ्गे चरमे प्रोक्तं कर्मषट्कमनुक्रमात् ।
एवं मन्त्रोदधावस्मिन् पञ्चविंशतिरूर्मयः ॥ ११९ ॥
विशोधनीया विद्वद्भिः क्षन्तव्यं साहसं मम ।
चापलं निजबालानां क्षमते जनको यथा ॥ १२० ॥

ग्रन्थकर्तुः स्ववंशकथनम्

अहिच्छत्रद्विजच्छत्रवत्सगोत्रसमुद्भवः ।
आसीद्रत्नाकरो नाम विद्वान्ख्यातो धरातले ॥ १२१ ॥

तद्भिदाः पूजाभेदाः ॥ ११७–११८ ॥ चरमे पञ्चविंशे तरंगे । शान्त्यादिकर्म–षट्कमनुक्रमणी चेति ॥ ११९–१२० ॥ स्ववंशमाह – **अहिच्छत्रेति** ॥ १२१–१२५ ॥

बीसवें तरङ्ग में विविध यन्त्र, स्वर्णाकर्षण भैरव की उपासना विधि तथा अनेक यन्त्रों का वर्णन है ।

इक्कीसवें तरङ्ग में स्नान से लेकर अर्न्तयाग तथा नित्यकर्म का वर्णन है ।

बाइसवें तरङ्ग में अर्घ्यस्थापन से लेकर पूजन पर्यन्त के कृत्य तथा पूजा के भेद बतलाये गए हैं ॥ ११६-११७ ॥

त्रयोविंशति तरङ्ग में दमनक तथा पवित्रक से इष्टदेव के सर्मचन का विधान कहा गया है ।

चौबीसवें तरङ्ग में मन्त्र शोधन की नाना प्रकार की प्रक्रिया कही गई है ।

पच्चीसवें तरङ्ग में षट्कर्मों के समस्त विधान का निर्देश है ॥ ११८-११९ ॥

इस प्रकार मन्त्रमहोदधि के पच्चीस तरङ्गों में उक्त समस्त विषयों का वर्णन किया गया है ॥ ११६-११९ ॥

अब ग्रन्थकार ग्रन्थ का उपसंहार कर विशेषज्ञों से प्रार्थना करते हैं कि आवश्यकता पड़ने पर विशेषज्ञों को इसमें संशोधन कर लेना चाहिए, जिस प्रकार पिता अपने बालकों की चपलता क्षमा करता है, उसी प्रकार मन्त्र के विषय में किए गए साहस को भी विज्ञजन क्षमा करेंगें ॥ १२० ॥

अब ग्रन्थकार अपना **स्ववंश परिचय** देते हैं - अहिच्छत्र देश में द्विजों के छत्र के समान वत्स गोत्र में उत्पन्न, धरातल में अपनी विद्वत्ता से विख्यात रत्नाकर नाम

तत्तनूजो रामभक्तः फनूभट्टाभिधोऽभवत् ।
महीधरस्तदुत्पन्नः संसारासारतां विदन् ॥ १२२ ॥
निजदेशं परित्यज्य गतो वाराणसीं पुरीम् ।
सेवमानो नरहरिं तन्त्र ग्रन्थमिमं व्यधात् ॥ १२३ ॥
कल्याणभिधपुत्रेण तथान्यैर्द्विजसत्तमैः ।
अनेकानागमग्रन्थान् विलोक्य तु मुनीश्वरैः ॥ १२४ ॥
एकग्रन्थे स्थितं सर्वं मन्त्राणां सारमिच्छुभिः ।
सम्प्रार्थितः स्वमत्यासौ नाम्ना मन्त्रमहोदधिः ॥ १२५ ॥

ग्रन्थान्ते आशीः कथनम्

अविच्छिन्नान्वयाः सन्तु निजधर्मपरायणाः ।
मङ्गलानि प्रपश्यं तु सर्वे द्रोहपराङ्मुखाः ॥ १२६ ॥
हरिः करोतु कल्याणं सर्वेषां जगदीश्वरः ।
प्रवर्तयन्त्विमं ग्रन्थं यावद्वेदो रविः शशी ॥ १२७ ॥

ग्रन्थान्ते आशिषन्नाह – **अविच्छिन्नेति** ॥ १२६–१२७ ॥

के ब्राह्मण हुये ॥ १२१ ॥

उनके लड़के फनूभट्ट हुये, जो भगवान् श्री राम के प्रकाण्ड भक्त थे । उनके पुत्र **श्रीमहीधर** हुये, जिन्होने संसार की असारता को जान कर अपना देश छोड़ कर काशी नगरी में आकर भगवान् नृसिंह की सेवा करते हुये **मन्त्रमहोदधि** नामक इस तन्त्र ग्रन्थ की रचना की ॥ १२२-१२३ ॥

अनेक ग्रन्थों में लिखे गए नाना प्रकार के मन्त्रों के सार को किसी एक ग्रन्थ में निबद्ध करने की इच्छा रखने वाले तथा आगम ग्रन्थों के मर्मज्ञ महामुनियों, श्रेष्ठ ब्राह्मणों एवं **कल्याण** नामक स्वकीय पुत्र के द्वारा प्रार्थना किए जाने पर मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार इस **मन्त्रमहोदधि** नामक ग्रन्थ की रचना की है ॥ १२४-१२५ ॥

अब ग्रन्थकार ग्रन्थ के अन्त में **आशीर्वचन** कहते हैं -

इस ग्रन्थ का अभ्यास करने वाले समस्त पाठकगण अपने धर्म में परायण रहें । सर्वदा कल्याण का दर्शन करें । द्रोह से सर्वथा पराङ्मुख रहें और उनकी वंशपरम्परा अविच्छिन्न रूप से चलती रहे ॥ १२६ ॥

अब **जगदीश्वर से प्रार्थना** करते हुये ग्रन्थ की समाप्ति करते हैं -

जगदीश्वर श्रीहरि सभी का कल्याण करें और जब तक वेद, सूर्य तथा चन्द्रमा रहें तब तक इस ग्रन्थ का प्रचार प्रसार करते रहें ॥ १२७ ॥

श्लोकत्रयेण देवप्रार्थना

नरसिंहो महादेवो महादेवार्तिनाशनः।
मुदे परो महालक्ष्म्या देवावर नतोऽस्तु मे॥ १२८॥
नृसिंहउत्सङ्गसमुद्रजायां
समुद्रजद्वीपगृहे निषण्णः।
समुद्रजोहीनमतिः सदाव्यात्
समुद्रभक्ताखिलसिद्धिदायी॥ १२६॥
राजा लक्ष्मीनृसिंहो जयति सुखकरं श्रीनृसिंहं भजे यं
दैत्याधीशामहान्तोऽहसतनृहरिणा श्रीनृसिंहाय नौमि।
सेव्यो लक्ष्मीनृसिंहादपर इह नहि श्रीनृसिंहस्य पादौ
सेवे लक्ष्मीनृसिंहे वसतु मम मनः श्रीनृसिंहाव भक्तम्॥ १३०॥
विश्वेशो गिरिजाबिन्दुमाधवो मणिकर्णिका।
भैरवो जाह्नवीदण्डपाणिर्मे तन्वतां शिवम्॥ १३१॥

श्लोकत्रयेण देवं प्रर्थयते । **नरसिंह** इति । नृसिंहो मे मुदे हर्षायास्तु । देवानामावरेण समूहेन नतः । नृसिंह इति – नृसिंहो मांसदाऽव्यात् । कीदृशः । उत्संगे समुद्रजा लक्ष्मीर्यस्य सः । समुद्रे जातं यच्छ्वेतद्वीपं तत्र यद्गृहं तत्रोपविष्टः समुत्सहर्षः । रजोहीनमतिविरजाः । समुद्रा अञ्जल्यादिमुद्राविदो ये भक्तास्तेषां सर्वसिद्धिदाता॥ १२६॥ **राजा लक्ष्मीनृसिंह** इति । विभक्तिसप्तकेन हरिं स्तौति । नृहरिणा महान्तो दैत्याधीशा अहसत हताः । हन्तेर्लुङ्गि कर्मणि चिण्वदिड्भावे रूपम्। श्रीनृसिंहाव श्रीनृसिंहभक्तम् अव रक्ष॥ १३०॥ देवान् स्मरति – **विश्वेश**

समस्त देवगणों की विपत्ति को दूर करने वाले, देवगणों से वन्दित **लक्ष्मी सहित श्रीनृसिंह देव** हमें निरन्तर हर्ष प्रदान करते रहें॥ १२८॥

क्षीर सागर के मध्य में स्थित श्वेत द्वीप के मण्डप में अपनी गोद में स्थित लक्ष्मी के साथ विराजमान, प्रसन्नता से पूर्ण भगवान् श्री नृसिंह मेरी रक्षा करें, जो अञ्जलि आदि मुद्राओं से पूजा करने वाले अपने भक्तों को समस्त सिद्धियाँ प्रदान करते हैं वह **भगवान् श्रीनृसिंह** मुझे रजोगुण रहित सद्बुद्धि दें॥ १२७-१२६॥

भगवान् श्री **लक्ष्मीनृसिंह** की जय हो । मैं परमकल्याणकारी श्री नृसिंह की वन्दना करता हूँ, जिन नृसिंह ने महाबलवान् बड़े बड़े दैत्यों का वध किया उन नरहरि को मैं प्रणाम करता हूँ ।

लक्ष्मीनृसिंह से बढ़ कर और कोई देवता नही है। इसलिए श्री नृसिंह के चरण कमलों की सेवा करनी चाहिए । यही सोंच कर श्रीनृसिंह मेरे मन में निवास

ग्रन्थनिर्मितिकालकथनम्

अब्दे विक्रमतो जाते बाणवेदनृपैर्मिते ।
ज्येष्ठाष्टम्यां शिवस्याग्रे पूर्णो मन्त्रमहोदधिः ॥ १३२ ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचिते मन्त्रमहोदधौ षट्कर्मादिनिरूपणं नाम पञ्चविंशस्तरङ्गः ॥ २५ ॥



इति । ग्रन्थनिष्पत्तिस्थानं काशीस्थानम् ॥ १३१ ॥

ग्रन्थनिर्मितिकालमाह – अब्दे विक्रमत इति । बाणवेदनृपैर्मिते वर्षे पञ्चचत्वारिंशदुत्तरषोडशशततमे विक्रमनृपादन्ते सति शिवस्य रामेश्वरस्याग्रे मन्त्रमहोदधिः समाप्तिमगमत् ॥ १३२ ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचितायां मन्त्रमहोदधिव्याख्यायां नौकायां षट्कर्मादिनिरूपणं नाम पञ्चविंशस्तरङ्गः ॥ २५ ॥



करें । यह मेरा मन कभी भी नृसिंह से अलग न हो ॥ १३० ॥

बाबा विश्वनाथ, भवानी अन्नपूर्णा, बिन्दुमाधव, मणिकर्णिका, भैरव, भागीरथी तथा दण्डपाणी मेरा सतत् कल्याण करें ॥ १३१ ॥

विक्रम संवत् १६४५ में ज्येष्ठ शुक्ला अष्टमी को बाबा विश्वनाथ के सान्निध्य में यह मन्त्रमहोदधि नामक ग्रन्थ पूर्ण हुआ ॥ १३२ ॥

शून्यं बाणे खयुग्मान्दे वैक्रमीये व्यये शुभे ।
ऊर्जे मासि सिते पक्षे पूर्णेन्दौ चन्द्रवासरे ॥ १ ॥
समाप्तिमगमद्टीका सैषा सागरगामिनी ।
सुधाकरेण विहिता मन्त्रशास्त्रमहोदधेः ॥ २ ॥
प्रीयेतामनया देवी पार्वतीपरमश्वरी ।
शान्तिं विधत्तां मे गेहे ददेतामाशिषं शुभाम् ॥ ३ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमन्महीधर विरचित मन्त्रमहोदधि के पञ्चविंश तरङ्ग की महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत 'अरित्र' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ २५ ॥



॥ श्रीः ॥

परिशिष्ट १

अथ मातृकाकोशः

श्रीगणेशं महेशानं भारतीमीश्वरं शिवम् ।
नत्वा वक्ष्ये मातृकाणां निघण्टुं बालबुद्धये ॥ १ ॥
(ॐ) ध्रुवस्तारस्त्रिवृद्ब्रह्म वेदादिस्तारको ऽव्ययः ।
प्रणवश्च त्रिमात्रोऽपि ॐकारो ज्योतिरादितः ॥ २ ॥
(अ) श्रीकण्ठः केशवश्चापि निवृत्तिश्च स्वरादिकः ।
अकारो मातृकाद्यश्च वात इत्यभिधीयते ॥ ३ ॥
(आ) नारायणस्तथाऽनन्तो मुरवृत्तो गुरुस्तथा ।
विष्णुशय्या तथा शेषो दीर्घआकार एव च ॥ ४ ॥
(इ) माधवस्सूक्ष्मसंज्ञश्च विद्यादक्षिणलोचनम् ।
गन्धर्वः पाञ्चजन्य इकारश्च मुकांकुरः ॥ ५ ॥
(ई) गोविन्दाश्च त्रिमूर्तीशः शान्तिः स्याद्वामलोचनम् ।
नृसिंहास्त्रं तथा माया ईकारोऽपि सुरेश्वरः ॥ ६ ॥
(उ) अमरेशस्तथा विष्णुरिन्धिका च गजांकुशः ।
दक्षकर्णश्च विजयी उकारो मन्मथाधिपः ॥ ७ ॥
(ऊ) अर्वाशो दीपिका वाम श्रवणं मधुसूदनः ।
इन्द्रचापषण्मुखश्च ऊकारो रक्षणाधिपः ॥ ८ ॥
(ऋ) देविका दक्षनासा च भारभूतिस्त्रिविक्रमः ।
देवमातारिपुघ्नश्च ऋकारस्तपनस्तथा ॥ ९ ॥
(ॠ) अतिथीशो वामनश्च मोचिका वामनासिका ।
दैत्यमाता च दैवज्ञ ॠकारस्त्रिपुरान्तकः ॥ १० ॥
(ऌ) श्रीधरश्च परास्थाणुर्दक्षगण्डस्त्रिवेदकः ।
एकाङ्घ्रिर्वज्रदण्डश्च व्योमर्द्धिर्ऌ स्वरस्स्मृतः ॥ ११ ॥
(ॡ) हृषीकेशो हरस्सूक्ष्मो वामगण्डः कुबेरदृक् ।
अर्द्धर्चो नीलचरणो ॡकारश्च त्रिकूटकः ॥ १२ ॥
(ए) झिण्टीशः पद्मनाभश्च शक्तिस्सूक्ष्मा स्मृता भगः ।
ऊर्द्धोष्ठगः कामरूप एकारश्च त्रिकोणकः ॥ १३ ॥
(ऐ) ज्ञानामृतो भौतिकश्चाऽधरो दामोदरस्तथा ।
वागीशोवर्मभयद ऐकारस्त्रिपुरस्तथा ॥ १४ ॥

(ओ) सद्योजातो वासुदेव ऊर्ध्वदन्तस्त्रिमात्रकः ।
आप्यायनीमन्त्रनाथ ओकारोनागसंज्ञकः ॥ १५ ॥
(औ) संकर्षणोऽनुग्रहेशो मुरारिर्व्यापिनी तथा ।
अथोदन्तगतो मायी नृसिंहाङ्गस्तथौरसः ॥ १६ ॥
(अं) अक्रूरो व्योमरूपश्च प्रद्युम्नश्चन्द्रसंज्ञकः ।
अनुस्वारस्तथा बिन्दुरंकारश्च शिरोऽव्ययः ॥ १७ ॥
(अः) अनन्तश्च महासेनोऽनिरुद्धो रसवर्णकः ।
कन्यास्तननिभस्सर्गो विसर्गश्चान्तिमस्स्वरः ॥ १८ ॥
(क) क्रोधीशो धातृसंज्ञश्चक्रीसृष्टिश्च करादिगः ।
वर्गादिगः पादवेषः ककारः कामगस्स्मृतः ॥ १९ ॥
(ख) क्रुधार्द्धिगदिचण्डीशाः खेटो दक्षिणकूर्परः ।
कैटभारिश्च मातङ्गः संहारः खार्णकः स्मृतः ॥ २० ॥
(ग) स्मृतिः पञ्चान्तकश्शाङ्र्गी गणेशो मणिबन्धगः ।
गोमुखो गजकुम्भश्च गकारः सिंहसंज्ञकः ॥ २१ ॥
(घ) खड्गी शिवोत्तमो मेधा दक्षिणाङ्गुलिमूलगः ।
घनो घनस्वरश्चैव घकारो ङादिमस्मृतः ॥ २२ ॥
(ङ) संज्ञाको रुद्रकान्तिश्च दक्षाङ्गुल्यग्रसंस्थितः ।
क्लीबवक्त्रश्च भद्रेशो ङकारश्चानुनासिकः ॥ २३ ॥
(च) हलीकूर्मेश्वरो लक्ष्मीर्वावबाह्वादिगस्तथा ।
चित्रधारी चञ्चलश्च चकारस्संस्मृतो बुधैः ॥ २४ ॥
(छ) एकनेत्रश्च मुसली वामकूर्परगो द्युतिः ।
त्रिबिन्दुकस्तथा चारी छकारः श्लेष्मकाभिधः ॥ २५ ॥
(ज) स्थिराजपन्नौजपजश्शूली च चतुराननः ।
मणिबन्धगतो वामे जकाराञ्जनकोत्तमः ॥ २६ ॥
(झ) स्थितिः पाशी तथाजेशो वामाङ्गुलितलस्थितः ।
स्वस्तिकस्स्थाणुसंज्ञश्च झकारो जान्तसंज्ञकः ॥ २७ ॥
(ञ) वामाङ्गुल्याग्रतः सिद्धिरंकुशीसर्वसंज्ञकः ।
मातङ्गो ह्यनुगानश्च ञकारश्च निरञ्जनः ॥ २८ ॥
(ट) जरामुकुन्दस्सोमेशो दक्षपादादिगोमुखः ।
गजांकुशश्च बालेन्दुरमृताद्यष्टकस्स्मृतः ॥ २९ ॥
(ठ) लाङ्गलीशो नन्दजश्च पालिनी च कमण्डलुः ।
दक्षजानुगतस्स्थायी ठकारस्स्थविरस्मृतः ॥ ३० ॥
(ड) नन्दीक्षान्तिर्दारकश्च डामरो दक्षगुल्फगः ।

व्याघ्रपादश्शुभाङ्घ्रिश्च डकारस्तोमरो मतः ॥ ३१ ॥

(ढ) ऐश्वरी चार्द्धनारीशो नरश्शाखान्तराकृतिः ।
दक्षपादाङ्गुलीमूलो ढलो ढक्को ढकारकः ॥ ३२ ॥

(ण) उमाकान्तो नरकजिद् रतिर्दक्षपदाग्रगः ।
निर्वाणास्त्रिगुणाकारस्त्रिरेखोणस्समीरितः ॥ ३३ ॥

(त) वामोरुमूलनिलय आषाढी कामिका हरिः ।
तीव्रश्च तरलो नीलस्तकारः कीर्तितो बुधैः ॥ ३४ ॥

(थ) दण्डीशो वरदः कृष्णो वामजानुगतस्मरः ।
शौरी चापि विशालाक्षस्थकारः परिकीर्तितः ॥ ३५ ॥

(द) सत्योत्रीशो ह्लादिनी च वामगुल्फगतस्तथा ।
शूली कुबेरो दाता च दकारो धादिमः स्मृतः ॥ ३६ ॥

(ध) मीनेशस्सात्वत प्रीतिर्वामपादाङ्गुलीगतः ।
धनेशो धरणीशश्च धकारो दान्तिमः स्मृतः ॥ ३७ ॥

(न) शौरीमेषेश्वरीदीर्घा वामपादाग्रसंस्थितः ।
नरो न दीनो नादी च नकारश्चानुनासिकः ॥ ३८ ॥

(प) तीक्ष्णा च लोहितश्शूरो दक्षपार्श्वश्च पार्थिवः ।
पद्मेशो नान्तिमः फादिः पकारोऽपि प्रकीर्तितः ॥ ३९ ॥

(फ) जनार्दनः शिखी रौद्री वामपार्श्वकृतालयः ।
फट्कारः प्रोच्यते सद्भिः फकारः पान्तिमस्स्मृतः ॥ ४० ॥

(ब) छलगण्डो भूधरश्च भयापृष्ठगतस्तथा ।
सुरसो वज्रमुष्टिश्च बकारो भादिमो मतः ॥ ४१ ॥

(भ) विश्वमूर्तिर्द्विरण्डेशो निद्रा नाभिगतोऽपि च ।
भ्रुकुटी च भरद्वाजो भकारश्च जयापहः ॥ ४२ ॥

(म) वैकुण्ठश्च महाकालस्तन्द्री जठरसंस्थितः ।
मन्त्रेशो मण्डलो मानीं विषस्सूर्योमकारकः ॥ ४३ ॥

(य) क्षुधा बाला च वायुस्त्वग्धृतश्च पुरुषोत्तमः ।
यमुनो यामुनेयश्च यकारो मान्तिमः स्मृतः ॥ ४४ ॥

(र) क्रोधिनी च भुञ्जगेशी ज्वाली रुधिरपावकौ ।
रोचिष्मान्दक्षिणांशश्च रुचिरो रेफ ईरितः ॥ ४५ ॥

(ल) क्रियाककुद्गतो मांसं पिनाकीभूर्बलानुजः ।
लम्पटः शक्रसंज्ञश्च वाद्यो रान्तो लकारकः ॥ ४६ ॥

(व) बालो वामांसनिलयो मेदो वारिदवारुणौ ।
उत्कारी जलसंज्ञश्च खड्गीशोऽपि वकारकः ॥ ४७ ॥

(श) मृत्युर्बको वृषघ्नश्च हृदो दक्षकरस्थितः ।
शंकुकर्णोऽस्थिसंज्ञश्च शकारो विद्वद्भिरीरितः ॥ ४८ ॥
(ष) वृषः श्वेतेश्वरः पीतमज्जाहृद्वामबाहुगः ।
षडाननः षकारश्च कीर्तितश्च बुधैः खरः ॥ ४६ ॥
(स) भृगुः श्वेतस्तथा हंसो हृदो दक्षिणपादगः ।
समयस्सामगश्शुक्रस्सङ्गतिस्सार्णकश्शशी ॥ ५० ॥
(ह) नभो वराहो नकुलो हृदो वामपदस्थितः ।
सदाशिवोऽरुणः प्राणो हकारश्च हयाननः ॥ ५१ ॥
(ळ) हृदयान्नाभिसंस्थानशिवेशो विमलोऽसितः ।
लघुप्रयत्नश्चोपान्त्यो ळकारः प्रोच्यते बुधैः ॥ ५२ ॥
(क्ष) संवर्त्तको नृसिंहश्च हृदयान्मुखसंस्थितः ।
अनन्तः परमात्मा च वज्रकायोऽन्तिमाक्षरः ॥ ५३ ॥

॥ इति हादिमते मातृकाकोशः समाप्तः ॥



परिशिष्ट २

श्लोकानुक्रमणिका

इ

झ

ट

ड

ढ

त

भ

य

ल

व



डॉ॰ सुधाकर मालवीय का जन्म (१९४४ ई॰) कड़ा, शैनी, इलाहाबाद में हुआ। आपके पिता स्व॰ प्रो॰ पं॰ रामकुबेर मालवीय (भूतपूर्व साहित्य विभागाध्यक्ष, का॰ हि॰ वि॰ वि॰ और वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय) थे जो आपके आद्यगुरू भी हैं। डॉ॰ सुधाकर मालवीय ने काशी हिन्दु विश्वविद्यालय से एम॰ ए॰ संस्कृत, तथा पी॰ एच्॰ डी॰ की उपाधी प्राप्त की और सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी से साहित्याचार्य की उपाधि प्राप्त की।

आपकी वैदिक कृतियों में - १. ऐतरेय ब्राह्मण, सायण भाष्य एवं हिन्दी व्याख्या सहित, दो भागों में (उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी द्वारा पुरस्कृत), २. पारस्कर गृह्यसूत्र, हरिहर गदाहर भाष्य एवं हिन्दी व्याख्या सहित, ३. ऋग्वेद : (प्रथमाष्टक), अन्वितार्थप्रकाशिका हिन्दी व्याख्या सहित, सहलेखक (उत्तरप्रदेश संस्कृत अकादमी द्वारा पुरस्कृत) ४. गोभिलगृह्यसूत्रम्, संस्कृत हिन्दी टीका सहित।

आपके साहित्यक ग्रन्थों में - १. कर्णभार, भास कृत, (उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी द्वारा पुरस्कृत), २. स्वप्नवासदत्तम्, ३. मधयमव्यायोग, ४. दूतवाक्य, ५. यज्ञफलम्, भास कृत, ६. दशकरूपकम्, धनिक कृत अवलोक एवं हिन्दी व्याख्या सहित (उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी द्वारा पुरस्कृत), ७. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, कालिदास कृत, ८. पञ्चतन्त्रम्, विष्णु शर्मा कृत, संस्कृत-हिन्दी व्याख्या सहित, ९. अमरकोश (प्रथम काण्ड) हिन्दी टीका सहित, १०. उदारराघवम्, कल्याणमल्ल कृत, अज्ञात कर्तृक संस्कृत टीका सहित (सम्पादित)। ११. नाट्यशास्त्रम्, भरतमुनि कृत (बड़ौदानुसारी मूल एवं श्लोकार्धानुक्रमणी सहित)।

आपके तन्त्र ग्रन्थों में - १. क्रमदीपिका, केशव काश्मीरिक कृत, गोविन्द कृत संस्कृत टीका एवं हिन्दी सहित, (उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी द्वारा पुरस्कृत) २. माहेश्वरतन्त्रम्, हिन्दी टीका सहित, ४. रुद्रयामलम् (उत्तरतन्त्रम्), हिन्दी व्याख्या सहित, ५. कर्पूरस्तव, महाकाल कृत, हिन्दी व्याख्या सहित।

इसके अतिरिक्त आपकी निबन्ध रचनाओं में - १.डिफरेन्ट इन्टरप्रेटेशन्स आफ दि ऋ॰ मंत्र 'चत्वारि शृंगा:' और २. हंसः शुचिषत्, मन्त्र की विभिन्न व्याख्याएँ हैं।

डॉ० सुधाकर मालवीय

मन्त्रमहोदधिः

नौका संस्कृत टीका अरित्र हिन्दी व्याख्या सहितः



चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

दिल्ली

तन्त्रशास्त्र के महत्वपूर्ण प्रकाशन :

आयुधों का पूजन करना चाहिए । इस प्रकार पाँच आवरणों के साथ गणेश जी का पूजन करना चाहिए । मन्त्र सिद्धि के लिए पुरश्चरण के पूर्व पूर्वोक्त पञ्चावरण की पूजा आवश्यक है ॥ १५-१८ ॥

विमर्श - प्रयोग विधि - पीठपूजा करने के बाद उस पर निम्नलिखित मन्त्रों से गणेशमन्त्र की नौ शक्तियों का पूजन करना चाहिए ।

पूर्व आदि आठ दिशाओं में यथा -

ॐ तीव्रायै नमः, ॐ चालिन्यै नमः, ॐ नन्दायै नमः,
ॐ भोगदायै नमः, ॐ कामरूपिण्यै नमः, ॐ उग्रायै नमः,
ॐ तेजोवत्यै नमः, ॐ सत्यायै नमः,

इस प्रकार आठ दिशाओं में पूजन कर मध्य में 'विघ्ननाशिन्यै नमः' फिर 'ॐ सर्वशक्तिकमलासनाय नमः' मन्त्र से आसन देकर मूल मन्त्र से गणेशजी की मूर्ति की कल्पना कर तथा उसमें गणेशजी का आवाहन कर पाद्य एवं अर्घ्य आदि समस्त उपचारों से उनका पूजन कर आवरण पूजा करनी चाहिए ।

ॐ गां हृदयाय नमः आग्नेये, ॐ गीं शिरसे स्वाहा नैर्ऋत्ये,
ॐ गूं शिखायै वषट् वायव्ये, ॐ गैं कवचाय हुम् ऐशान्ये,
ॐ गौं नेत्रत्रयाय वौषट् अग्रे, ॐ गः अस्त्राय फट् चतुर्दिक्षु ।

इन मन्त्रों से षडङ्गपूजा कर पुष्पाञ्जलि लेकर मूल मन्त्र का उच्चारण कर 'अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले । भक्तया समर्पये तुभ्यं **प्रथमावरणार्चनम्**' कह कर पुष्पाञ्जलि समर्पित करे । फिर -

ॐ विद्यायै नमः पूर्वे, ॐ विधात्र्यै नमः आग्नेये,
ॐ भोगदायै नमः दक्षिणे, ॐ विघ्नघातिन्यै नमः नैर्ऋत्यै,
ॐ निधि प्रदीपायै नमः पश्चिमे, ॐ पापघ्न्यै नमः वायव्ये,
ॐ पुण्यायै नमः सौम्ये, ॐ शशिप्रभायै नमः ऐशान्ये

इन शक्तियों का पूर्वादि आठ दिशाओं में क्रमेण पूजन करना चाहिए । फिर पूर्वोक्त मूल मन्त्र के साथ 'अभीष्टसिद्धिं मे देहि ... से **द्वितीयावरणार्चनम्**' पर्यन्त मन्त्र बोल कर पुष्पाञ्जलि समर्पित करनी चाहिए । तदनन्तर अष्टदल कमल में -

ॐ वक्रतुण्डाय नमः, ॐ एकदंष्ट्राय नमः, ॐ महोदराय नमः,
ॐ गजास्याय नमः, ॐ लम्बोदराय नमः, ॐ विकटाय नमः,
ॐ विघ्नराजाय नमः, ॐ धूम्रवर्णाय नमः

इन मन्त्रों से वक्रतुण्ड आदि का पूजन कर मूलमन्त्र के साथ 'अभिष्टसिद्धिं मे देहि ... से **तृतीयावरणार्चनम्**' पर्यन्त मन्त्र पढ़ कर तृतीय पुष्पाञ्जलि समर्पित करनी चाहिए ।

तत्पश्चात् अष्टदल के अग्रभाग में - ॐ इन्द्राय नमः पूर्वे,
ॐ अग्नये नमः आग्नये, ॐ यमाय नमः दक्षिणे, ॐ निर्ऋतये नमः नैर्ऋत्ये,
ॐ वरुणाय नमः पश्चिमे, ॐ वायवे नमः वायव्ये, ॐ सोमाय नमः उत्तरे,
ॐ ईशानाय नमः ऐशान्ये, ॐ ब्रह्मणे नमः आकाशे, ॐ अनन्ताय नमः पाताले

काम्यप्रयोगसाधनम्

ततः सिद्धे मनौ काम्यान् प्रयोगान् साधयेन्निजान्।
ब्रह्मचर्यरतो मन्त्री जपेद् रविसहस्त्रकम् ॥ १६ ॥
षण्मासमध्याद्दारिद्र्यं नाशयत्येव निश्चितम्।
चतुर्थ्यादिचतुर्थ्यन्तं जपेद्दशसहस्त्रकम् ॥ २० ॥
प्रत्यहं जुहुयादष्टोत्तरं शतमतन्द्रितः।
पूर्वोक्तं फलमाप्नोति षण्मासाद्भक्तितत्परः ॥ २१ ॥
आज्याक्तान्नस्य होमेन भवेद्धनसमृद्धिमान्।
पृथुकैर्नारिकेलैर्वा मरिचैर्वा सहस्त्रकम् ॥ २२ ॥
प्रत्यहं जुह्वतो मासाज्जायते धनसञ्चयः।
जीरसिन्धुमरीचाक्तैरष्टद्रव्यैः सहस्त्रकम् ॥ २३ ॥

प्रयोगानाह – **ब्रह्मेति** ॥ १६–२४ ॥

इन मन्त्रों से दश दिक्पालों की पूजा कर मूल मन्त्र पढते हुए 'अभिष्टसिद्धिं ... से **चतुर्थावरणार्चनम्**' पर्यन्त मन्त्र पढ कर चतुर्थपुष्पाञ्जलि समर्पित करे ।

तदनन्तर अष्टदल के अग्रभाग के अन्त में

ॐ वज्राय नमः, ॐ शक्तये नमः, ॐ दण्डाय नमः,
ॐ खड्गाय नमः, ॐ पाशााय नमः,ॐ अंकुशाय नमः,
ॐ गदायै नमः, ॐ त्रिशूलाय नमः, ॐ चक्राय नमः, ॐ पद्माय नमः

इन मन्त्रों से दशदिक्पालों के वज्रादि आयुधों की पूजा कर मूलमन्त्र के साथ 'अभीष्टसिद्धिं... से ले कर **पञ्चमावरणार्चनम्**' पर्यन्त मन्त्र पढ कर पञ्चम पुष्पाञ्जलि समर्पित करनी चाहिए । इसके पश्चात् २.७ श्लोक में कही गई विधि के अनुसार ६ लाख जप, दशांश हवन, दशांश अभिषेक, दशांश ब्राह्मण भोजन कराने से पुरश्चरण पूर्ण होता है और मन्त्र की सिद्धि हो जाती है ॥ १५-१८ ॥

इसके बाद मन्त्र सिद्धि हो जाने पर काम्य प्रयोग करना चाहिए - यदि साधक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुये प्रतिदिन १२ हजार मन्त्रों का जप करे तो ६ महीने के भीतर निश्चितरूप से उसकी दरिद्रता विनष्ट हो सकती है । एक चतुर्थी से दूसरी चतुर्थी तक प्रतिदिन दश हजार जप करे और एकाग्रचित्त हो प्रतिदिन एक सौ आठ आहुति देता रहे तो भक्तिपूर्वक ऐसा करते रहने से ६ मास के भीतर पूर्वोक्त फल (दरिद्रता का विनाश) प्राप्त हो जाता है ॥ १९-२१ ॥

घृत मिश्रित अन्न की आहुतियाँ देने से मनुष्य धन धान्य से समृद्ध हो जाता है । चिउड़ा अथवा नारिकेल अथवा मरिच से प्रतिदिन एक हजार आहुति देने से एक महीने के भीतर बहुत बड़ी सम्पत्ति प्राप्त होती है । जीरा, सेंधा नमक एवं काली मिर्च से मिश्रित

जुह्वन्प्रतिदिनं पक्षात् स्यात् कुबेर इवार्थवान् ।
चतुःशतं चतुश्चत्वारिंशदाढ्यं दिनेदिने ॥ २४ ॥
तर्पयेन् मूलमन्त्रेण मण्डलादिष्टमाप्नुयात् ।

मन्त्रान्तरकथनम्

अथ मन्त्रान्तरं वक्ष्ये साधकानां निधिप्रदम् ॥ २५ ॥
रायस्पोषभृगुर्याढ्यो ददितामेषसात्वतौ ।
सदृशौ दोरत्नधातुमान् रक्षो गगनं रतिः ॥ २६ ॥
ससद्या बलशार्ङ्गी खं नोषडक्षरसंयुतः ।

अभीष्टप्रदायकएकत्रिंशद्वर्णात्मको मन्त्रः

[1]एकत्रिंशद्वर्णयुक्तो मन्त्रोऽभीष्टप्रदायकः ॥ २७ ॥
सायकैस्त्रिभिरष्टाभिश्चतुर्भिः पञ्चभी रसैः ।
मन्त्रोत्थितैः क्रमाद्वर्णैः षडङ्गं समुदीरितम् ॥ २८ ॥

मण्डलादेकोनपञ्चाशद्दिनमध्ये इष्टं प्राप्नुयात् ॥ २५ ॥ मन्त्रान्तरमाह – **रायस्पोषेति** । स्वरूपं भृगुः सः । याढ्यो यकारयुतः । मेषो न् सात्वतो ध् । तौ सदृशौ इयुतौ । गगनं हः । रतिर्णः । ससद्या ओयुताः । शार्ङ्गी गः । खं हः अन्यत्स्वरूपम् । षडक्षरः पूर्वोक्तः यथा – 'रायस्पोषस्य ददिता निधि दोरत्नधातुमान् **रक्षोहणो बलगहनो वक्रतुण्डाय हुम्**' इत्येकत्रिंशद्वर्णः ॥ २६–२७ ॥ *॥ २८ ॥

अष्टद्रव्यों से प्रतिदिन एक हजार आहुति देने से व्यक्ति एक ही पक्ष (१५ दिनों) में कुबेर के समान धनवान् हो जाता है । इतना ही नहीं प्रतिदिन मूलमन्त्र से ४४४ बार तर्पण करने से मनुष्यों को मनो वाञ्छित फल की प्राप्ति हो जाती है ॥ २२-२५ ॥

अब साधकों के लिए **निधिप्रदान करने वाले अन्य मन्त्र** को बतला रहा हूँ ॥ २५ ॥

'रायस्पोष' शब्द के आगे भृगु (स) जो 'य' से युक्त हो (अर्थात् स्य), फिर 'ददिता', पश्चात् इकार युक्त मेष (नि) तथा इकार युक्त ध (धि) (निधि), तत्पश्चात् 'दो रत्नधातुमान् रक्षो' तदनन्तर गगन (ह), सद्य (ओ) से युक्त रति (ण) (अर्थात् हणो), फिर 'बल' तथा शार्ङ्गी (ग) खं (ह), तदनन्तर 'नो' फिर अन्त में षडक्षर मन्त्र (वक्रतुण्डाय हुम्) लगाने से ३१ अक्षरों का मन्त्र बन जाता है, जो मनोवाञ्छित फल प्रदान करता है ॥ २६-२७ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'रायस्पोषस्य ददिता निधिदो रत्नधातुमान् रक्षोहणो बलगहनो वक्रतुण्डाय हुम्' ॥ २६-२७ ॥

इस मन्त्र के क्रमशः ५, ३, ८, ४, ५, एवं षडक्षरों से षडङ्गन्यास कहा गया है । इसके ऋषि,

---

१. रायस्पोषस्य ददिता निधिदो रत्नधातुमान् रक्षोहणो वलगहनो वक्रतुण्डाय हुम्।

ऋष्याद्यर्चाप्रयोगाः स्युः पूर्ववन्निधिदो ह्ययम् ।

षडक्षरोऽपरोमन्त्रः

पद्मनाभयुतो [1]भानुर्मेघासद्यसमन्विता ॥ २६ ॥
लकावनन्तमारूढौ वायुः पावकमोहिनी ।
षडक्षरोऽयमादिष्टो भजतामिष्टदो मनुः ॥ ३० ॥
पूर्ववत् सर्वमेतस्य समाराधनमीरितम् ।

नवाक्षरो मन्त्रः

लकुलीदृशमारूढौ भृगुतौ लोहितः सदृक् ॥ ३१ ॥

पूर्ववत् षड्वर्णवत् ॥ २६ ॥ मन्त्रान्तरमाह – **पद्मेति** । भानुर्मः । पद्मनाभ ए । तद्युतः मे घाघः । सद्य ओ । तद्युतालकौ लकारककारौ । अनन्तमाकारमारूढौ । वायुर्यः । पावकगेहिनी स्वाहा । मेघोल्काय स्वाहेति षड्वर्णः ॥ ३० ॥ मन्त्रान्तरमाह – **लकुलीति** । लकुली हकारः । भृगुतौ सकारतकारौ दृशमारूढौ इकारयुतौ तेनस्ति । लोहितः पः सदृक्इयुतः । वकः शः। सदीर्घः आयुतः । च स्वरूपम् । साक्षी इयुतः । लिखे स्वरूपं शिरोन्तिमः स्वाहान्तः। हस्तिपिशाचि लिखे स्वाहेति नवार्णः ॥ ३१–३२ ॥

छन्द, देवता, तथा पूजन का प्रकार पूर्ववत् है; यह मन्त्र निधि प्रदान करता है ॥ २८-२६ ॥

विमर्श - विनियोग की विधि - अस्य श्रीगणेशमन्त्रस्य भार्गवऋषिः अनुष्टुप्छन्दः गणेशो देवता वं बीजं यं शक्तिः अभीष्टसिद्धये जपे विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यास की विधि - भार्गवऋषये नमः शिरसि, अनुष्टुप्छन्दसे नमः मुखे, गणेशदेवतायै नमः हृदि, वं बीजाय नमः गुह्ये, यं शक्तये नमः पादयोः ।

करन्यास एवं षडङ्गन्यास की विधि - रायस्पोषस्य अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ददिता तर्जनीभ्यां नमः, निधिदो रत्नधातुमान् मध्यमाभ्यां नमः, रक्षोहणो अनामिकाभ्यां नमः, बलगहनो कनिष्ठिकाभ्यां नमः, वक्रतुण्डाय हुं करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः, इसी प्रकार हृदयादि स्थानों में षडङ्गन्यास करना चाहिए ।

तदनन्तर पूर्वोक्त - २. ६ श्लोक द्वारा ध्यान करना चाहिए ।

इस मन्त्र की भी जपसंख्या ६ लाख है । नित्यार्चन एवं हवन विधि पूर्ववत् (२. ७-१६) विधि से करना चाहिए ॥ २८-२६ ॥

गणेश जी का अन्य **षडक्षर मन्त्र** इस प्रकार है -

पद्मनाभ (ए) से युक्त भानु म (मे), सद्य (ओ) के सहित घ (घो), दीर्घ आकार के सहित ल् और ककार (ल्का) फिर वायु (य) और अन्त में पावकगेहिनी (स्वाहा)

---

१. मेघोल्काय स्वाहा ।

वकः सदीर्घश्चः साक्षिर्लिखेन्मन्त्रः शिरोन्तिमः ।
नवाक्षरो[1] मनुश्चास्य कङ्कोलः परिकीर्तितः ॥ ३२ ॥
विराट्छन्दो देवता तु स्याद्वै चोच्छिष्टनायकः ।

पञ्चाङ्गन्यासकथनम्

द्वाभ्यां त्रिभिर्द्वयेनाथ द्वाभ्यां सकलमन्त्रतः ॥ ३३ ॥
पञ्चाङ्गान्यस्य कुर्वीत ध्यायेत्तं [2]शशिशेखरम् ।

उच्छिष्टविनायकध्यानम्

चतुर्भुजं रक्ततनुं त्रिनेत्रं
पाशांकुशौ मोदकपात्रदन्तौ ।
करैर्दधानं सरसीरुहस्थ-
मुन्मत्तमुच्छिष्टगणेशमीडे ॥ ३४ ॥

पञ्चाङ्गमाह – **द्वाभ्यामिति** । हस्तिहृदयाय नम इत्यादि ॥ ३३ ॥ ध्यानमाह – **चतुर्भुजमिति** । अंकुशमोदकपात्रे दक्षयोः अन्ययोरन्ये ॥ ३४–३६ ॥

लगाने से निष्पन्न होता है यह षडक्षर मन्त्र साधक के लिए सर्वाभीष्टप्रदाता कहा गया है । पुरश्चरण, अर्घ तथा होमादि का विधान पूर्ववत् (२. ७-२०) है ॥ २६-३१ ॥

विमर्श – इस षडक्षर **मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है – 'मेघोल्काय स्वाहा' ॥ ३१॥

अब **उच्छिष्ट गणपति मन्त्र** का उद्धार कहते हैं – लकुली (ह) 'इ' के साथ भृगु (स) एवं त अर्थात् 'स्ति' सदृक 'इ' के सहित लोहित 'प' अर्थात् पि, दीर्घ के सहित वक (श) अर्थात् 'शा' साक्षि 'इ' से युक्त च (चि), फिर लिखे अन्त में शिर (स्वाहा) लगाने से नवाक्षर मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ ३१-३२ ॥

विमर्श – मन्त्र का स्वरूप – 'ॐ हस्ति पिशाचि लिखे स्वाहा' ॥ ३१-३२ ॥

इस मन्त्र के कङ्कोल ऋषि विराट्छन्द उच्छिष्ट गणपति देवता कहे गये हैं । मन्त्र के दो, तीन, दो, दो अक्षरों से न्यास के पश्चात् सम्पूर्ण मन्त्र से पञ्चाङ्गन्यास करना चाहिए – तदनन्तर उच्छिष्ट गणपति की पूजा करनी चाहिए ॥ ३२-३४ ॥

विनियोग – अस्योच्छिष्टगणपतिमन्त्रस्य कङ्कोल ऋषिर्विराट्छन्दः उच्छिष्टगणपतिर्देवता सर्वाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः । **पञ्चाङ्गन्यास** – यथा – ॐ हस्ति हृदयाय नमः, ॐ पिशाचि शिरसे स्वाहा, ॐ लिखे शिखायै वौषट्, ॐ स्वाहा कवचाय हुम्, ॐ हस्ति पिशाचि लिखे स्वाहा अस्त्राय फट् ॥ ३१-३४ ॥

पञ्चाङ्गन्यास करने के बाद **उच्छिष्ट गणपति का ध्यान** इस प्रकार करना चाहिए – मस्तक पर चन्द्रमा को धारण करने वाले चार भुजाओं एवं तीन नेत्रों वाले महागणपति का मैं ध्यान करता हूँ । जिनके शरीर का वर्ण रक्त है, जो कमलदल पर विराजमान हैं,

---

१. हस्तिपिशाचि लिखे स्वाहा । २. गणेशम् ।

पुरश्चरणविधानम्

लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं दशांशं जुहुयात्तिलैः ।
पूर्वोक्ते पूजयेत्पीठे विधिनोच्छिष्टविघ्नपम् ॥ ३५ ॥
आदावङ्गानि सम्पूज्य ब्राह्म्याद्यान्दिक्षु पूजयेत् ।
ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी परा ॥ ३६ ॥
वाराही च तथेन्द्राणी चामुण्डारमया सह ।
ककुप्सु वक्रतुण्डाद्यान्दशसु प्रतिपूजयेत् ॥ ३७ ॥
वक्रतुण्डैकदंष्ट्रौ च तथा लम्बोदराभिधः ।
विकटो धूम्रवर्णश्च विघ्नश्चापि गजाननः ॥ ३८ ॥
विनायको गणपतिर्हस्तिदन्ताभिधोन्तिमः ।
इन्द्राद्यानपि वज्राद्यान्पूजयेदावृतिद्वये ॥ ३९ ॥
एवं सिद्धे मनौ मन्त्री प्रयोगान् कर्तुमर्हति ।

काम्यप्रयोगकथनम्

स्वाङ्गुष्ठप्रतिमां कृत्वा कपिना सितभानुना ॥ ४० ॥

प्रयोगनाह – स्वेति । कपिना रक्तचन्दनेन । सितभानुना श्वेतार्क्केण वा प्रतिमाकार्या ॥ ४०–४२ ॥

जिनके दाहिने हाथों में अङ्कुश एवं मोदक पात्र तथा बायें हाथ में पाश एवं दन्त शोभित हो रहे हैं, मैं इस प्रकार के उन्मत्त उच्छिष्ट गणपति भगवान् का ध्यान करता हूँ ॥ ३४ ॥

अब उच्छिष्ट गणपति मन्त्र की **पुरश्चरण विधि** कहते हैं - इस मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिए, तदनन्तर तिलों से उसका दशांश होम करना चाहिए । पूर्वोक्त (२. ६-२०) विधान से पीठ पर उच्छिष्ट गणपति का पूजन करना चाहिए ॥ ३५ ॥

सर्वप्रथम अङ्गों का पूजन कर आठों दिशाओं में ब्राह्मी से ले कर रमा पर्यन्त अष्टमातृकाओं का पूजन करना चाहिए । ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा एवं रमा ये आठ मातृकायें हैं । पुनः दशदिशाओं में वक्रतुण्ड, एकदंष्ट्र, लम्बोदर, विकट, धूम्रवर्ण, विघ्न, गजानन, विनायक, गणपति एवं हस्तिदन्त का पूजन करना चाहिए, तदनन्तर दो आवरणों में इन्द्रादि दश दिक्पालों का पूजन करना चाहिए। इस प्रकार पुरश्चरण द्वारा मन्त्र सिद्ध हो जाने पर साधक में काम्य - प्रयोग की योग्यता हो जाती है ॥ ३६-४० ॥

विमर्श - ३५ श्लोक में कहे गये पीठ पूजा के लिए आधारशक्ति पूजा, मूल मन्त्र से देवता की मूर्ति की कल्पना, ध्यान, तदनन्तर आवाहनादि पूजोपचारादि विधि २. ६ -१८ के अनुसार करनी चाहिए ।

पूर्व आदि आठ दिशाओं में अष्टमातृका पूजा विधि

ॐ ब्राह्म्यै नमः, ॐ माहेश्वर्य्यै नमः, ॐ कौमार्यै नमः,

गणेशप्रतिमां रम्यामुक्तलक्षणलक्षिताम् ।
प्रतिष्ठाप्य विधानेन मधुना स्नापयेच्च ताम् ॥ ४१ ॥
आरभ्य कृष्णभूतादि यावच्छुक्लाचतुर्दशी ।
सगुडं पायसं तस्मै निवेद्य प्रजपेन्मनुम् ॥ ४२ ॥
सहस्रं प्रत्यहं तावत् जुहुयात् सघृतैस्तिलैः ।
गणेशोऽहमिति ध्यायन्नुच्छिष्टोनावृतो रहः ॥ ४३ ॥
पक्षाद्राज्यमवाप्नोति नृपजोऽन्योऽपि वा नरः ।
कुलालमृत्स्ना प्रतिमा पूजितैवं सुराज्यदा ॥ ४४ ॥
वल्मीकमृत्कृता लाभमेवमिष्टान् प्रयच्छति ।
गौडी सौभग्यदा सैवं लावणी क्षोभयेदरीन् ॥ ४५ ॥

अनावृतो निर्वस्त्रः ॥ ४३-४४ ॥ वल्मीकमृत्तिकाप्रतिमैवं पूजितालाभमेवेति

ॐ वैष्णव्यै नमः, ॐ वाराह्यै नमः, ॐ इन्द्राण्यै नमः,
ॐ चमुण्डायै नमः, ॐ महालक्ष्म्यै नमः ।
पुनः पूर्वादि दश दिशाओं में - ॐ वक्रतुण्डाय नमः, ॐ एकदंष्ट्राय नमः,
ॐ लम्बोदराय नमः, ॐ विकटाय नमः, ॐ धूम्रवर्णाय नमः,
ॐ विघ्नाय नमः, ॐ गजाननाय नमः, ॐ विनायकाय नमः,
ॐ गणपतये नमः, ॐ हस्तिदन्ताय नमः

इन मन्त्रों से दश दिग्दलों में पुनः उसके बाहर इन्द्रादि दश दिक्पालों तथा उनके आयुधों का पूजन करना चाहिए (द्र० २. १७-१८) । इस प्रकार उक्त विधि से मन्त्र सिद्ध हो जाने पर साधक में विविध काम्य प्रयोग करने की क्षमता आ जाती है ॥ ३६-४० ॥

अब **काम्य प्रयोग का विधान** करते हैं - साधक कपि (रक्त चन्दन) अथवा सितभानु (श्वेत अर्क) की अपने अङ्गुष्ठ मात्र परिमाण वाली गणेश की प्रतिमा का निर्माण करे । जो मनोहर एवं उत्तम लक्षणों से युक्त हो तदनन्तर विधिपूर्वक उसकी प्राणप्रतिष्ठा कर उसे मधुसे स्नान करावे ॥ ४०-४१ ॥

कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी से शुक्लपक्ष की चतुर्दशी पर्यन्त गुड़ सहित पायस का नैवेद्य लगा कर इस मन्त्र का जप करे ॥ ४२ ॥

यह क्रिया प्रतिदिन एकान्त में उच्छिष्ट मुख एवं वस्त्र रहित हो कर, 'मैं स्वयं गणेश हूँ' इस भावना के साथ करे । घी एवं तिल की आहुति प्रतिदिन एक हजार की संख्या में देता रहे तो इस प्रयोग के प्रभाव से पन्द्रह दिन के भीतर प्रयोगकर्ता व्यक्ति अथवा राजकुल में उत्पन्न हुआ व्यक्ति राज्य प्राप्त कर लेता है । इसी प्रकार कुम्हार के चाक की मिट्टी की गणेश प्रतिमा बना कर पूजन तथा हवन करने से राज्य अथवा नाना प्रकार की संपत्ति की प्राप्ति होती है ॥ ४३-४४ ॥

बॉबी की मिट्टी की प्रतिमा में उक्त विधि से पूजन एवं होम करने से अभिलषित

निम्बजा नाशयेच्छत्रून्प्रतिमैवं समर्चिता ।
[1]मध्वक्तैर्होमतो लाजैर्वशयेदखिलं जगत् ॥ ४६ ॥
सुप्तोधिशय्यमुच्छिष्टो जपञ्छत्रून्वशं नयेत् ।
कटुतैलान्वितै राजीपुष्पैर्विद्वेषयेदरीन् ॥ ४७ ॥
द्यूते विवादे समरे जप्तोऽयं जयमावहेत् ।
कुबेरोऽस्य मनोर्जापान्निधीनां स्वामितामियात् ॥ ४८ ॥
लेभाते राज्यमनरिं वानरेशविभीषणौ ।
रक्तवस्त्राङ्गरागाढ्यस्ताम्बूलं निश्यदञ्जपेत् ॥ ४९ ॥
यद्वा निवेदितं तस्मै मोदकं भक्षयञ्जपेत् ।
पिशितं वा फलं वापि तेन तेन बलिं हरेत् ॥ ५० ॥

एकोनविंशतिवर्णात्मको बलिदानमन्त्रः

सेन्दुः स्मृतिस्तथाकाशं मन्विन्द्वाढ्यौ च सृष्टिलौ ।
पञ्चान्तकशिवौ तद्वदुच्छिष्टगभगान्वितः ॥ ५१ ॥

॥ ४५ ॥ *॥ ४६ ॥ अधिशय्यं शय्यायाम् । कटुतैलं सर्षपतैलम् ॥ ४७–४८ ॥ अनरि शत्रुहीनम् ॥ ४९॥ तेन ताम्बूलादिना ॥ ५० ॥ बलि मन्त्रमाह – स्मृतिर्गः । सेन्दुस्सानुस्वारः । आकाशं हः । तथासानुस्वारः । सृष्टिलौ ककारलकारौ ।

सिद्धि होती है; गौडी (गुड़ निर्मित) प्रतिमा में ऐसा करने से सौभाग्य की प्राप्ति होती है, तथा लावणी प्रतिमा शत्रुओं को विपत्ति से ग्रस्त करती है ॥ ४५ ॥

निम्बनिर्मित प्रतिमा में उक्त विधि से पूजन जप एवं होम करने से शत्रु का विनाश होता है, और मधुमिश्रित लाजा का होम सारे जगत् को वश में करने वाला होता है ॥ ४६ ॥

शय्या पर सोये हुये उच्छिष्टावस्था में जप करने से शत्रु वश में हो जाते हैं । कटुतैल में मिले राजी पुष्पों के हवन से शत्रुओं में विद्वेष होता है ॥ ४७ ॥

द्यूत, विवाद एवं युद्ध की स्थिति में इस मन्त्र का जप जयप्रद होता है । इस मन्त्र के जप के प्रभाव से कुबेर नौ निधियों के स्वामी हो गये । इतना ही नहीं, विभीषण और सुग्रीव को इस मन्त्र का जप करने से राज्य की प्राप्ति हो गई । लाल वस्त्र धारण कर लाल अङ्गराग लगा कर तथा ताम्बूल चर्वण करते हुए रात्रि के समय उक्त मन्त्र का जप करना चाहिए ॥ ४८-४९ ॥

अथवा गणेश जी को निवेदित लड्डू का भोजन करते हुए इस मन्त्र का जप करना चाहिए और मांस अथवा फलादि किसी वस्तु की बलि देनी चाहिए ॥ ५० ॥

अब **बलि के मन्त्र का उद्धार** कहते हैं - सानुस्वार स्मृति (गं), इन्दुसहित आकाश

---

१. घृतमधुशर्करात्तैः ।

उमाकान्तःशायमान्ते हायक्षायासबिन्दुयः ।
बलिरित्येष कथितो नवेन्द्वर्णो बलेर्मनुः ॥ ५२ ॥

द्वादशार्णोऽपरो मन्त्रः

ध्रुवो माया सेन्दुशार्ङ्गिगर्बीजाढ्यो नववर्णकः ।
द्वादशार्णो मनुः प्रोक्तः सर्वमस्य नवार्णवत् ॥ ५३ ॥

नवार्णमन्त्रस्य दशवर्णात्मकद्वैविध्यम्

ताराद्यश्च गणेशाद्यो नवार्णो दशवर्णकः ।
द्विविधोस्योपासनं तु प्रोक्तमन्यन्नवार्णवत् ॥ ५४ ॥

कीदृशौ मन्विन्द्वाढ्यौ औकारानुस्वारयुतौ । तेन क्लौं । पञ्चान्तकशिवौ गकारलकारौ तद्वन्मन्विन्द्वाढ्यौ ग्लौं । उच्छिष्टग स्वरूपम् । भगान्वितः उमाकान्तः । एकारयुतो णः णे ॥ सबिन्दुर्यः सानुस्वारो यकारः । अन्यत्स्वरूपम् । मन्त्रो यथा – गं हं क्लौं ग्लौं उच्छिष्टगणेशाय महायक्षायायं बलिः इत्येकोनविंश–त्यर्णो बलिमन्त्रः ॥ ५१–५२ ॥ मन्त्रान्तरमाह – **ध्रुव इति** । ध्रुव ॐ। माया ह्रीं । शार्ङ्गी गः सेन्दुः अनुस्वारसहितः । गं त्रिबीजाढ्यः । स्पष्टम् । यथा – ॐ ह्रीं गं हस्तिपिशाचि लिखे स्वाहेति द्वादशार्णः ॥ ५३ ॥ ताराद्यो यथा । ॐ हस्तिपिशाचि लिखे स्वाहा । गणेशाद्यो यथा - गं हस्तिपिशाचि लिखे स्वाहा ॥ ५४ ॥

(हं), अनुस्वार एवं औकार युक्त ककार लकार (क्लौं), उसी प्रकार गकार लकार (ग्लौं), तदनन्तर 'उच्छिष्टग' फिर एकार युक्त ण (णे), फिर 'शाय' पद, फिर 'महायक्षाया' तदनन्तर (यं) और अन्त में 'बलिः' लगाने से १९ अक्षरों का बलिदान मन्त्र बनता है ।

विमर्श – मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - गं हं क्लौं ग्लौं उच्छिष्टगणेशाय महायक्षायायं बलिः ॥ ५१-५२ ॥

अब **उच्छिष्ट गणपति का अन्य मन्त्र** कहते हैं - ध्रुव (ॐ), माया (ह्रीं) तथा अनुस्वार युक्त शार्ङ्गिः (गं) ये तीन बीजाक्षर नवार्णमन्त्र के पूर्व जोड़ देने से द्वादशाक्षर मन्त्र बन जाता है, इसका विनियोग न्यास ध्यान आदि नवार्णमन्त्र के समान ही समझना चाहिए (द्र० २. ३१-३६) ।

विमर्श – द्वादशाक्षर मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - ॐ ह्रीं गं हस्तिपिशाचि लिखे स्वाहा ॥ ५३ ॥

आदि में तार (ॐ) इसके पश्चात् नवार्णमन्त्र लगा देने से, अथवा गं इसके पश्चात् नवार्ण मन्त्र लगा देने से दो प्रकार का दशाक्षर गणपति का मन्त्र निष्पन्न होता है - उक्त दोनों मन्त्रों में भी नवार्ण मन्त्र की ही तरह विनियोग न्यास तथा ध्यान का विधान कहा गया है ॥ ५४ ॥

एकोनविंशतिवर्णात्मकउच्छिष्टविनायकमन्त्रः

ध्रुवो हृदुच्छिष्टगणेशाय ते तु नवाक्षरः ।
एकोनविंशत्यर्णाढ्यो मनुर्मुन्यादिपूर्ववत् ॥ ५५ ॥
त्रिभिः सप्तभिरक्षिभ्यां त्रिभिर्द्वाभ्यां द्वयेन च ।
मन्त्रोत्थितैः सुधीर्वर्णैः कुर्यादङ्गं पुरार्चनम् ॥ ५६ ॥

धनधान्याद्यतुलयशोदाता–सप्तत्रिंशदक्षरात्मकउच्छिष्टगणनाथमन्त्रः

तारो नमो भगवते झिण्टीशश्चतुराननः ।
दंष्ट्राय हस्तिमुच्चार्य खाय लम्बोदराय च ॥ ५७ ॥
उच्छिष्टमवियद्दीर्घात्मने पाशोंकुशः परा ।
सेन्दुः शार्ङ्गीः भगयुते द्वे मेधे वह्निकामिनी ॥ ५८ ॥

मन्त्रान्तरमाह – **ध्रुवेति** । ध्रुवः प्रणवः हृन्नमः स्वरूपमन्यत् । मन्त्रः – ॐ नम उच्छिष्टगणेशाय हस्तिपिशाचि लिखे स्वाहा इत्येकोनविंशतिवर्णः । मुन्यादीति। ऋषिश्छन्दो देवताः नवार्णवत् ॥ ५५ ॥ षडङ्गमाह – **त्रिभिरिति** । अर्चनं पुरा पूर्ववदित्यर्थः ॥ ५६ ॥ मन्त्रान्तरमाह – **तार इति** ॥ झिण्टीशः ए । चतुराननः कः । दीर्घं वियत् हा । पाश आं । अंकुशः क्रों परा ह्रीं । सेन्दुशार्ङ्गी गं । भगयुते द्वे

विमर्श - दशाक्षर मन्त्र - (१) ॐ हस्तिपिशचिलिखे स्वाहा
(२) गं हस्तिपिशाचिलिखे स्वाहा ॥ ५४ ॥

अव **एकोनविंशाक्षर मन्त्र का उद्धार** करते हैं - ध्रुव (ॐ), हृद् (नमः), फिर 'उच्छिष्ट गणेशाय' तदनन्तर नवार्णमन्त्र (२. ३१) लगा देने से उन्नीस अक्षरों का मन्त्र बनता है । इसके भी ऋषि, छन्द, देवता आदि पूर्वोक्त नवार्णमन्त्र के समान हैं ॥ ५५ ॥

विमर्श - इस **मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - 'ॐ नमः उच्छिष्टगणेशाय हस्तिपिशाचि लिखे स्वाहा' ॥ ५५ ॥

मन्त्र के ३, ७, २, ३, २ एवं २ अक्षरों से षडङ्गन्यास एवं अङ्गपूजा पूर्ववत् करनी चाहिए ॥ ५६ ॥

विमर्श - **विनियोग** - ॐ अस्योच्छिष्टगणपतिमन्त्रस्य कङ्कोलऋषिः विराट्छन्दः उच्छिष्टगणपतिर्देवता आत्मनः अभीष्टसिद्धयर्थे उच्छिष्टगणपति मन्त्र जपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यासः - ॐ नमः हृदयाय नमः, ॐ उच्छिष्टगणेशाय शिरसे स्वाहा,
ॐ हस्ति शिखायै वषट्, ॐ पिशाचि कवचाय हुम्,
ॐ लिखे नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ स्वाहा अस्त्राय फट् ।

ध्यान - चतुर्भुजं रक्ततनुमित्यादि .... (द्र० २. ३४) ॥ ५६ ॥

अब ३७ **अक्षरों का उच्छिष्ट गणपति का मन्त्र** कहते हैं - तार (ॐ),

उच्छिष्टगणनाथस्य मनुरद्रिगुणाक्षरः ।
गणको मुनिराख्यातो गायत्रीच्छन्द ईरितः ॥ ५६ ॥
उच्छिष्टगणपो देवो जपेदुच्छिष्ट एव तम् ।
सप्तदिग्बाणसप्ताब्धियुगार्णैरङ्गकं मनोः ॥ ६० ॥

ध्यानम्

शरान्धनुः पाशसृणीस्वहस्तै
र्दधानमारक्तसरोरुहस्थम् ।
विवस्त्रपत्न्यां सुरतप्रवृत्त
मुच्छिष्टमम्बासुतमाश्रयेऽहम् ॥ ६१ ॥

मेधे। एकारयुत घद्वयम् । वह्निकामिनी स्वाहा । अन्यत्स्वरूपम् । ॐ नमो भगवते एकदंष्ट्राय हस्तिमुखाय लम्बोदराय उच्छिष्टमहात्मने आँ क्रों ह्रीं गं घे घे स्वाहा । अद्रिगुणाक्षरः सप्तत्रिंशदक्षरः ॥ ५७–५६ ॥ षडङ्गमाह – **सप्तेति** ॥ ६० ॥ ध्यानमाह – **शरानिति** । धनुःपाशौ वामयोः । शरांकुशौ दक्षयोः ॥ ६१ ॥ *॥ ६२ ॥

तदनन्तर 'नमोभगवते', फिर झिण्टीश (ए), चतुरानन (क), फिर 'दंष्ट्राहस्तिमु' फिर 'खाय', 'लम्बोदराय', फिर 'उच्छिष्टम' तदनन्तर दीर्घवियत् (हा), फिर 'त्मने' पाश (आ), अङ्कुश (क्रौं), परा (ह्रीं) सेन्दुशाङ्गीं (गं) भगसहित द्विमेघ (घे घे) इसके अन्त में वह्निकामिनी (स्वाहा) लगाने से ३७ अक्षरों का मन्त्र निष्पन्न हो जाता है ॥ ५७-५६ ॥

इस मन्त्र के गणक ऋषिः गायत्री छन्द एवं उच्छिष्ट गणपति देवता हैं । उच्छिष्टमुख से ही इनके जप का विधान है । मन्त्र के यथाक्रम ७, १०, ५, ७, ४ एवं ४ अक्षरों से षडङ्गन्यास एवं अङ्गपूजा करनी चाहिए ॥ ५६-६० ॥

विमर्श - सैंतिस अक्षरों के **मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - ॐ नमो भगवते एकदंष्ट्राय हस्तिमुखाय लम्बोदराय उच्छिष्टमहात्मने आँ क्रौं ह्रीं गं घे घे स्वाहा ।

विनियोग - अस्योच्छिष्टगणपति मन्त्रस्य गणकऋषिर्गायत्रीच्छन्दः उच्छिष्टगणपतिर्देवता आत्मनोऽभीष्टसिद्धये उच्छिष्टगणपतिमन्त्रजपे विनियोगः ।

ध्यान - उच्छिष्टगणपति का ध्यान आगे के श्लोक २. ६१ में देखिए ।

षडङ्गन्यास - ॐ नमो भगवते हृदयाय नमः, ॐ एकदंष्ट्राय हस्तिमुखाय शिरसे स्वाहा,
ॐ लम्बोदराय शिखायै वषट्, ॐ उच्छिष्टमहात्मने कवचाय हुम्,
ॐ आँ ह्रीं क्रौं गं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ घे घे स्वाहा अस्त्राय फट् ॥ ५७-६० ॥

अब इस मन्त्र के **पुरश्चरण के लिए ध्यान** कह रहे हैं - बायें हाथों में धनुष एवं पाश, दाहिने हाथों में शर एवं अङ्कुश धारण किए हुए लाल कमल पर आसीन विवस्त्रा अपनी पत्नी से संभोग में निरत पार्वती पुत्र उच्छिष्टगणपति का मैं आश्रय लेता हूँ ॥ ६१ ॥

पुरश्चरणकथनम्

लक्षं जपेद्घृतैर्हुत्वाद्दशांशं प्रपूजयेत् ।
पूर्वोक्तपीठे स्वाभीष्टसिद्धये पूर्ववद्विभुम् ॥ ६२ ॥
कृष्णाष्टम्यादितद्भूतं यावत्तावज्जपेन्मनुम् ।
प्रत्यहं साष्टसाहस्रं जुहुयात्तद्दशांशतः ॥ ६३ ॥
तर्पयेदपि मन्त्रोऽयं सिद्धिमेवं प्रयच्छति ।
धनं धान्यं सुतान्पौत्रान् सौभाग्यमतुलं यशः ॥ ६४ ॥
मूर्तिं कुर्याद् गंणेशस्य शुभाहे निम्बदारुणा ।
प्राणप्रतिष्ठां कृत्वाथ तदग्रे मन्त्रमाजपेत् ॥ ६५ ॥
च ध्यात्वा दासवत्सोऽपिवश्यो भवति निश्चितम् ।
नदीजलं समादाय सप्तविंशतिसंख्यया ॥ ६६ ॥
मन्त्रयित्वा मुखं तेन प्रक्षाल्येशसभां व्रजेत् ।
पश्येद्यं दृश्यते येन स वश्यो जायते क्षणात् ॥ ६७ ॥
चतुःसहस्रं धत्तूरपुष्पाणि मनुनार्पयेत् ।
गणेशाय नृपादीनां जनानां वश्यताकृते ॥ ६८ ॥

तद्भूतं यावत्कृष्णचतुर्दशीपर्यन्तम् ॥ ६३ ॥ * ॥ ६४–६६ ॥

अब इस मन्त्र से **पुरश्चरणविधि** कहते हैं - साधक अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिए पूर्वोक्त पीठ पर उपर्युक्त विधि से पूजन कर उक्त मन्त्र का एक लाख जप करे । फिर घी द्वारा उसका दशांश हवन करे ॥ ६२ ॥

कृष्ण पक्ष की अष्टमी से ले कर चतुर्दशी पर्यन्त प्रतिदिन आठ हजार पॉच सौ की संख्या में जप, इसका दशांश (८५० की संख्या में) होम तथा उसका दशांश (८५ बार) से तर्पण करना चाहिए । ऐसा करने से यह मन्त्र सिद्धि प्रदान करता है, इतना ही नहीं धन धान्य, पुत्र, पौत्र, सौभग्य एवं सुयश भी प्राप्त होता है ॥ ६३-६४ ॥

शुभ मुहूर्त में नीम की लकड़ी से गणेश जी की मूर्ति का निर्माण करना चाहिए; तदनन्तर प्राण प्रतिष्ठित कर उसी मूर्ति के आगे जप करना चाहिए ॥ ६५ ॥

जिसका ध्यान कर जप किया जाता है वह भी निश्चित रूप से वश में हो जाता है । इतना ही नहीं, नदी का जल ले कर २७ बार इस मन्त्र से उसे अभिमन्त्रित कर उस जल से मुख प्रक्षालन कर राजसभा में जाने पर साधक इस मन्त्र के प्रभाव से जिसे देखता है या जो उसे देखता है वह तत्काल वश में हो जाता है ॥ ६६-६७ ॥

राजाओं को अथवा राजकर्मचारियों को अपने वश में करने के लिए उक्त मन्त्र के द्वारा चार हजार की संख्या में धतूरे का पुष्प श्री गणेश जी को समर्पित करना चाहिए ॥ ६८॥

सुन्दरीवामपादस्य रेणुमादाय तत्र तु ।
संस्थाप्य गणनाथस्य प्रतिमां प्रजपेन्मनुम् ॥ ६६ ॥
तां ध्यात्वा रविसाहस्रं सा समायाति दूरतः ।
श्वेतार्केणाथ निम्बेन कृत्वा मूर्तिं धृतासुकाम् ॥ ७० ॥
चतुर्थ्यां पूजयेद्रात्रौ रक्तैः कुसुमचन्दनैः ।
जप्त्वा सहस्रं तां मूर्तिं क्षिपेद्रात्रौ सरित्तटे ॥ ७१ ॥
स्वेष्टं कार्य्यं समाचष्टे स्वप्ने तस्य गणाधिपः ।
सहस्रं निम्बकाष्ठानां होमादुच्चाटयेदरीन् ॥ ७२ ॥
वज्रिणः समिधां होमाद्रिपुर्यमपुरं व्रजेत् ।
वानरस्यास्थिसंजप्तं क्षिप्तमुच्चाटयेद् गृहे ॥ ७३ ॥
जप्तं नरास्थिकन्याया गृहे क्षिप्तं तदाप्तिकृत् ।
कुलालस्य मृदा स्त्रीणां वामपादस्य रेणुना ॥ ७४ ॥
कृत्वा पुत्तलिकां तस्या हृदि स्त्रीनाम संलिखेत् ।
निखनेन्मन्त्रसंजप्तैर्निम्बकाष्ठैः क्षिताविमाम् ॥ ७५ ॥
सोन्मत्ता भवति क्षिप्रमुद्धृतायां सुखं भवेत् ।
शत्रोरेवं कृता सा तु लशुनेन समन्विता ॥ ७६ ॥

धृतासुकां कृतप्राणप्रतिष्ठाम् ॥ ७० ॥ * ॥ ७१–७२ ॥ वज्रीस्नुही ॥ ७३ ॥ * ॥ ७४–७७ ॥

सुन्दरी स्त्री के बाएँ पैर की धूलि ला कर उसे गणेश प्रतिमा के नीचे स्थापित करे, फिर उस स्त्री का ध्यान कर बारह हजार की संख्या में इस मन्त्र का जप करे तो वह दूर रहने पर भी सन्निकट आ जाती है । सफेद मन्दार की लकड़ी अथवा निम्ब की लकड़ी से गणेश जी की मूर्ति का निर्माण कर उसमें प्राणप्रतिष्ठा करे । तदनन्तर चतुर्थी तिथि को रात्रि में लालचन्दन एवं लाल पुष्पों से पूजन करे, तदनन्तर एक हजार उक्त मन्त्र का जप कर उसी रात्रि में उस प्रतिमा को किसी नदी के किनारे डाल दे तो गणपति स्वयं साधक के अभीष्ट कार्य को स्वप्न में बतला देते हैं । निम्बकाष्ठ की लकड़ियों की समिधा से एक हजार उक्त मन्त्र द्वारा आहुतियाँ देने से शत्रु का उच्चाटन हो जाता है ॥ ६६-७२ ॥

वज्री समिध द्वारा होम करने से शत्रु यमपुर चला जाता है वानर की हड्डी पर जप करने से उस हड्डी को जिसके घर में फेंक दिया जाता है उस घर में उच्चाटन हो जाता है ॥ ७३ ॥

यदि मनुष्य की हड्डी पर जप कर कन्या के घर में उसे फेंक देवे तो वह कन्या उसे सुलभ हो जाती है । कुम्हार के चाक की मिट्टी को स्त्री के बायें पैर की धूलि से मिला कर पुतला बनावे । फिर उसके हृदय पर प्राप्तव्य स्त्री का नाम लिखे । तदनन्तर

शरावान्तर्गता सम्यक्पूजिता द्वारि विद्विषः ।
निखाता पक्षमात्रेण शत्रूच्चाटनकृत्स्मृता ॥ ७७ ॥
विषमे समनुप्राप्ते सितार्कारिष्टदारुजम् ।
गणपं पूजितं सम्यक्कुसुमै रक्तचन्दनैः ॥ ७८ ॥
मद्यभाण्डस्थितं हस्तमात्रे तं निखनेत्स्थले ।
तत्रोपविश्य प्रजपेन्मन्त्री नक्तं दिवा मनुम् ॥ ७९ ॥
सप्ताहमध्ये नश्यन्ति सर्वे घोरा उपद्रवाः ।
शत्रवो वशमायान्ति वर्द्धन्ते धनसम्पदः ॥ ८० ॥
दुष्टस्त्री वामपादस्य रजसा निजदेहजैः ।
मलैर्मूत्रपुरीषाद्यैः कुम्भकारमृदापि च ॥ ८१ ॥
एतैः कृत्वा गणेशस्य प्रतिमां मद्यभाण्डगाम् ।
सम्पूज्य निखनेद् भूमौ हस्तार्द्धे पूरिते पुनः ॥ ८२ ॥
संस्थाप्य वह्निं जुहुयात्कुसुमैर्हयमारजैः ।
सहस्रं सा भवेद्दासी तन्वाचमनसाधनैः ॥ ८३ ॥
एवमादिप्रयोगांस्तु नवार्णेनापि साधयेत् ।

अरिष्टो निम्बः ॥ ७८ ॥ *॥ ७९–८२ ॥ हयमारजैः करवीरोत्थैः ॥ ८३ ॥

उक्त मन्त्र का जप कर उस पुतले को नीम की लकड़ी के साथ भूमि में गाड़ देवे तो वह स्त्री तत्काल उन्मत्त हो जाती है । फिर उस पुतले को जमीन से निकालने पर प्रकृतिस्थ हो स्वस्थ हो जाती है । इसी प्रकार शत्रु का पुतला बना कर उसे लशुन के साथ किसी मिट्टी के पात्र में स्थापित कर भली प्रकार से पूजन करे । फिर शत्रु के दरवाजे पर उसे गाड़ देवे तो पक्ष दिन (१५ दिन) में शत्रु का उच्चाटन हो जाता है ॥ ७४-७७ ॥

विषम परिस्थिति उत्पन्न होने पर सफेद मन्दार या नीम की लकड़ी की प्रतिमा बनावे । फिर लाल चन्दन एवं लाल फूलों से विधिवत् उसका पूजन करे, तदनन्तर उसे मद्य पात्र में रख कर जमीन में एक हाथ नीचे गाड़ कर उसके उपर बैठ कर दिन रात इस मन्त्र का जप करे तो एक सप्ताह के भीतर घोर से घोर उपद्रव नष्ट हो जाते हैं, शत्रु वश में हो जाते हैं तथा धन संपत्ति की अभिवृद्धि होती है ॥ ७८-८० ॥

दुष्ट स्त्री के बायें पैर की धूल अपने शरीर के मल मूत्र विष्टा आदि तथा कुम्हार के चाक की मिट्टी इन सबको मिला कर गणेश जी की प्रतिमा निर्माण करे । फिर उसे मद्य-पात्र में रख कर विधिवत पूजन करे । फिर जमीन में एक हाथ नीचे गाड़ कर गड्ढे को भर देवे । फिर उसके ऊपर अग्नि स्थपित कर कनेर की पुष्पों की एक हजार आहुति प्रदान करे तो वह दुष्ट स्त्री दासी के समान हो जाती है । उपरोक्त सारे प्रयोग नवार्ण मन्त्र से भी किए जा सकते हैं ॥ ८१-८४ ॥

द्वात्रिंशद् वर्णात्मकोऽपरो मन्त्रः

तारो हस्तिमुखायाथ ङेन्तो लम्बोदरस्तथा ॥ ८४ ॥
उच्छिष्टान्ते महात्माङे पाशांकुशशिवात्मभूः ।
माया वर्म्म च घे घे उच्छिष्टाय दहनाङ्गना ॥ ८५ ॥
द्वात्रिंशदक्षरो मन्त्रो यजनं पूर्ववन्मतम् ।
रसेषु सप्तषट्षट्क नेत्रार्णैरङ्गमीरितम् ॥ ८६ ॥
उच्छिष्टगजवक्त्रस्य मन्त्रेष्वेषु न शोधनम् ।
सिद्धादिचक्रं मासादेः प्राप्तास्ते सिद्धिदा गुरोः ॥ ८७ ॥

मन्त्रान्तरमाह – **तार इति** । तारः ॐ । महात्माङे महात्मने । पाशादियुक्तम् । आत्मभूः क्लीं । माया ह्रीं । वर्म हूं । दहनाङ्गना स्वाहा । स्वरूपमन्यत् । यथा – ॐ हस्तिमुखाय लम्बोदराय उच्छिष्टमहात्मने आं क्रों ह्रीं क्लीं ह्रीं हू घे घे उच्छिष्टाय स्वाहा ॥ ८४–८५ ॥ द्वात्रिंशदर्णः । षडङ्गमाह – **रस इति** ॥ ८६ ॥ *॥ ८७ ॥

अब २२ अक्षरों वाले **गणपति के मन्त्र का उद्धार** करते हैं -

तार (ॐ) उसके बाद 'हस्तिमुखाय' फिर क्रमशः चतुर्थ्यन्त लम्बोदर (लम्बोदराय) फिर 'उच्छिष्ट' के बाद चतुर्थ्यन्त 'महात्मा' पद (उच्छिष्टमहात्मने), फिर पाश (आं), अङ्कुश (क्रौं), शिवा (ह्रीं), आत्मभूः (क्लीं), माया (ह्रीं), वर्म (हुम्) फिर 'घे घे उच्छिष्टाय' तदनन्तर दहनाङ्गना (स्वाहा) लगाने से बत्तीस अक्षरों का मन्त्र निष्पन्न होता है ।

इस मन्त्र का पूजन आदि पूर्वोक्त विधि (द्र० २. ६०) से करना चाहिए । मन्त्र के ६, ५, ७, ६, ६, एवं दो अक्षरों से अङ्गन्यास कहा गया है ॥ ८४-८६ ॥

विमर्श - इस **मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - ॐ हस्तिमुखाय लम्बोदराय उच्छिष्टमहात्मने आं क्रौं ह्रीं क्लीं ह्रीं हूं घे घे उच्छिष्टाय स्वाहा ।

विनियोग - ॐ अस्योच्छिष्टगणपतिमन्त्रस्य गणकऋषिः गायत्रीछन्दः उच्छिष्ट गणपतिर्देवता आत्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः (द्र० २. ५९) ।

षडङ्गन्यास - ॐ हस्तिमुखाय हृदयाय नमः, ॐ लम्बोदराय शिरसे स्वाहा, ॐ उच्छिष्टमहात्मने शिखायै वषट्, ॐ आं क्रौं ह्रीं क्लीं ह्रीं हुम् कवचाय हुम् घे घे उच्छिष्टाय नेत्रत्रयाय वौषट्, स्वाहा अस्त्राय फट् । **ध्यान** - २. ६२ में देखिये ।

इस प्रकार न्यासादि कर पीठपूजा आवरण पूजा आदि पूर्वोक्त कार्य संपादन कर इस मन्त्र का एक लाख जप दशांश हवन, तद्दशांश तर्पण तद्दशांश मार्जन एवं तद्दशांश ब्राह्मण भोजन कराने से पुरश्चरण अर्थात मन्त्र की सिद्धि होती है ॥ ८४-८६ ॥

अब **उच्छिष्टगणपति मन्त्र की विशेषता** कहते हैं - उच्छिष्टगणपति के मन्त्रों की

मनवोऽमी सदा गोप्या न प्रकाश्या यतः कुतः ।
परीक्षिताय शिष्याय प्रदेया निजसूनवे ॥ ८८ ॥

चतुरक्षरः शक्तिविनायकमन्त्रः

माया त्रिमूर्तिचन्द्रस्थौ पञ्चान्तकहुताशनौ ।
तारादिशक्तिबीजान्तो मन्त्रोऽयं चतुरक्षरः ॥ ८९ ॥
भार्गवोऽस्य मुनिश्छन्दो विराट् शक्तिर्गणाधिप ।
देवो माया द्वितीये तु शक्तिबीजे प्रकीर्तिते ॥ ९० ॥
षड्दीर्घयुग्द्वितीयेन ताराद्येन षडङ्गकम् ।
विधाय सावधानेन मनसा संस्मरेत् प्रभुम् ॥ ९१ ॥

उच्छिष्टगणेशा उक्ताः ॥ ८८ ॥ शक्तिविनायकसंज्ञं मन्त्रान्तरमाह – **मायेति** । माया ह्रीं । पञ्चान्तकहुताशनौ गकाररेफौ । त्रिमूर्तिचन्द्रस्थौ इकारानुस्वारयुक्तौ । तेन ग्रीं तारादिशक्तिबीजान्तः । प्रणवादिर्मायाबीजान्तः । यथा – ॐ ह्रीं ग्रीं ह्रीं इति चतुर्वर्णः ॥ ८९ ॥ देव इति । पूर्वेण सम्बन्धः । माया शक्तिः । द्वितीयं बीजम् ॥ ९० ॥ षडङ्गमाह – **षडिति** । ॐ ग्रां हृत् । ॐ ग्रीं शिर इत्यादि ॥ ९१ ॥

सिद्धि के लिए किसी संशोधन की आवश्यकता नहीं है न तो सिद्धि के लिए सिद्धिदायक चक्र की आवश्यकता है, न किसी शुभ मासादि का विचार किया जाता है । ये मन्त्र गुरु से प्राप्त होते ही सिद्धिप्रद हो जाते हैं ॥ ८७ ॥

इन मन्त्रों को सदा गोपनीय रखना चाहिए, और जैसे तैसे जहाँ तहाँ कभी इसको प्रकाशित भी नहीं करना चाहिए । भलीभाँति परीक्षा करने के उपरान्त ही अपने शिष्य एवं पुत्र को इन मन्त्रों की दीक्षा देनी चाहिए ॥ ८८ ॥

अब **शक्ति विनायक मन्त्र का उद्धार** कहते हैं - प्रारम्भ में तार (ॐ) उसके बाद माया (ह्रीं), फिर त्रिमूर्ति ईकार चन्द्र (अनुस्वार) से युक्त पञ्चान्तक गकार हुताशन रकार (ग्रीं) और अन्त में शक्तिबीज (ह्रीं) लगाने से चार अक्षरों का शक्ति विनायक मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ ८९ ॥

विमर्श - इस **मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - ॐ ह्रीं ग्रीं ह्रीं ॥ ८९ ॥

इस मन्त्र के भार्गव ऋषि हैं, विराट् छन्द है, शक्ति से युक्त गणपति इसके देवता हैं। माया बीज (ह्रीं) शक्ति है तथा दूसरा ग्रीं बीज कहा गया है, प्रणव सहित द्वितीय ग्र में अनुस्वार सहित ६ दीर्घस्वरों को लगा कर षडङ्गन्यास करना चाहिए, फिर ध्यान कर एकाग्रचित्त हो कर प्रभु श्रीगणेश का जप करना चाहिए ॥ ९०-९१ ॥

विमर्श - विनियोग - अस्य श्रीशक्तिविनायकमन्त्रस्य भार्गवऋषिः विराट्छन्दः शक्ति गणाधिपो देवता ह्रीं शक्तिः ग्रीं बीजमात्मनोभीष्ट सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

[1]विषाणांकुशावक्षसूत्रं च पाशं
दधानं करैर्मोदकं पुष्करेण ।
स्वपत्न्या युतं हेमभूषाभराढ्यं
गणेशं समुद्यद्दिनेशाभमीडे ॥ ६२ ॥
एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षचतुष्कं तद्दशांशतः ।
अपूपैर्जुहुयाद् वह्नौ मध्वक्तैस्तर्पयेच्च तम् ॥ ६३ ॥
पूर्वोक्ते पूजयेत्पीठे केसरेष्वङ्गदेवताः ।
दलेषु वक्रतुण्डाद्यान्ब्राह्मीत्याद्यान्दलाग्रगान्[2] ॥ ६४ ॥
ककुप्पालांस्तदस्त्राणि सिद्ध एवं भवेन्मनुः ।
घृताक्तमन्नं जुहुयादावर्षादन्नवान्भवेत् ॥ ६५ ॥

ध्यानमाह – **विषाणेति** । कुशाक्षसूत्रे दक्षयोः । अन्ये वामयोः ॥ ६२–६४ ॥ ककुप्पालान् इन्द्रादीन् ॥ ६५ ॥

ऋष्यादिन्यास - ॐ भार्गवाय ऋषये नमः शिरसि, विराट्छन्दसे नमः मुखे, ॐ शक्तिगणाधिपदेवतायै नमः हृदये, ॐ ग्रीं बीजाय नमः गुह्ये, ॐ ह्रीं शक्तये नमः पादयोः ।

षडङ्गन्यास - ॐ ग्रां हृदयाय नमः, ॐ ग्रीं शिरसे स्वाहा, ॐ ग्रूँ शिखायै वषट्, ॐ ग्रैं कवचाय हुम, ॐ ग्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ ग्रः अस्त्राय फट् ॥ ६०-६१ ॥

अब इस **मन्त्र के पुरश्चरण के लिए ध्यान** कहते हैं - दाहिने हाथों में अङ्कुश एवं अक्षसूत्र बायें हाथों में विषाण (दन्त) एवं पाश धारण किए हुए तथा सूँड़ में मोदक लिए हुए, अपनी पत्नी के साथसुवर्णरचित अलङ्कारों से भूषित उदीयमान सूर्य जैसे आभा वाले गणेश की मैं वन्दना करता हूँ ॥ ६२ ॥

अब **पुरश्चरण का प्रकार** कहते हैं - इस प्रकार ध्यान कर उक्त मन्त्र का चार लाख जप करना चाहिए । तदनन्तर मधुयुक्त अपूपों से दशांश होम करना चाहिए । फिर उसका दशांश तर्पणादि करना चाहिए ॥ ६३ ॥

पूर्वोक्त पीठ पर तथा केसरों में अङ्गदेवताओं का पूजन करना चाहिए । दलों में वक्रतुण्ड आदि का तथा दल के अग्रभाग में ब्राह्मी आदि मातृकाओं का, फिर दशों दिशाओं में दश दिक्पालों का, तदनन्तर उनके आयुधों का पूजन करना चाहिए । इस प्रकार यन्त्र पर पूजन कर मन्त्र का पुरश्चरण करने से मन्त्र की सिद्धि होती है - (द्र० २. ८-१८) ॥ ६४-६५ ॥

अब गणेश प्रयोग में **विविध पदार्थों के होम का फल** कहते हैं - घृत सहित अन्न की आहुतियाँ देने से साधक अन्नवान हो जाता है, पायस के होम से लक्ष्मी प्राप्ति तथा

---

१. दन्त० ।
२. शुण्डाग्रेण ।

परमान्नैर्हुता लक्ष्मीरिक्षुदण्डैर्नृपश्रियः ।
रम्भाफलैर्नारिकेलैः पृथुकैर्वश्यता भवेत् ॥ ९६ ॥
घृतेन धनमाप्नोति लवणैर्मधुसंयुतैः ।
वामनेत्रां वशीकुर्यादपूपैः पृथिवीपतिम् ॥ ९७ ॥

अष्टाविंशत्यर्णात्मको लक्ष्मीगणेशमन्त्रः

तारो रमा चन्द्रयुक्तः खान्तः सौम्या समीरणः ।
ङेन्तो गणपतिस्तोयं रवरान्तेद सर्व च ॥ ९८ ॥
जनं मे वशमादीर्घो वायुः पावककामिनी ।
अष्टाविंशतिवर्णोऽयं मनुर्द्धनसमृद्धिदः ॥ ९९ ॥
[1]अन्तर्यामीमुनिश्छन्दो गायत्रीदेवता मनोः ।
लक्ष्मीविनायको बीजं रमा शक्तिर्वसुप्रिया ।
रमागणेशबीजाभ्यां दीर्घाढ्याभ्यां षडङ्गकम् ॥ १०० ॥

परमान्नं पायसम् ॥ ९६ ॥ वामनेत्रा नारी ॥ ९७ ॥ मन्त्रान्तरमाह – **तार इति**। तारः ॐ । रमा श्रीं चन्द्रयुक्तः खान्तः गं । समीरणो यः । तोयं वः । दीर्घो नः । वायुर्यः । पावककामिनी स्वाहा । अन्यत्स्वरूपम् ॐ श्रीं गं सौम्याय गणपतये वर वरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहेति अष्टाविंशत्यर्णो लक्ष्मीगणेशो मन्त्रः ॥ ९८–१०० ॥

गन्ने के होम से राज्यलक्ष्मी प्राप्त होती है । केला एवं नारिकेल द्वारा हवन करने से लोगों को वश में करने की शक्ति आती है । घी के हवन से धन प्राप्ति तथा मधु मिश्रित लवण के होम से स्त्री वश में हो जाती है । इतना ही नहीं अपूपों के होम से राजा वश में हो जाता है ॥ ९५-९७ ॥

अब **लक्ष्मी विनायक मन्त्र** कहते हैं - तार (ॐ), रमा (श्रीं) इसके बाद सानुस्वार ख के आगे वाला वर्ण (गं) फिर 'सौम्या' पद, तदनन्तर समीरण 'य', इसके बाद चतुर्थ्यन्त गणपति शब्द (गणपतये), फिर तोय (व), फिर र (वर), इसके बाद पुनः दान्त वरशब्द (वरद), तदनन्तर 'सर्वजनं मे वश' के बाद 'मा', दीर्घ (न), वायु (य) और अन्त में पावककामिनी (स्वाहा) लगाने से २८ अक्षरों का मन्त्र बनता है जो धन की समृद्धि करता है ॥ ९८-९९ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - ॐ श्रीं गं सौम्याय गणपतये वर वरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा ॥ ९८-९९ ॥

इस मन्त्र के अन्तर्यामी ऋषि हैं, गायत्री छन्द है, लक्ष्मीविनायक देवता हैं रमा (श्रीं) बीज है तथा स्वाहा शक्ति है । रमा (श्रीं) गणेश (गं) में ६ दीर्घ वर्णो को लगा कर षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ १०० ॥

विमर्श - विनियोग का स्वरूप - अस्य श्रीलक्ष्मीविनायकमन्त्रस्य अन्तर्यामीऋषिः

ध्यानकथनम्

दन्ताभये चक्रदरौ दधानं
कराग्रगस्वर्णघटं त्रिनेत्रम् ।
धृताब्जया लिङ्गितमब्धिपुत्र्या
लक्ष्मीगणेशं कनकाभमीडे ॥ १०१॥

पुरश्चरणकथनम्

चतुर्लक्षं जपेन्मन्त्रं समिद्भिर्बिल्वशाखिनः ।
दशांशं जुहुयात् पीठे पूर्वोक्ते तं प्रपूजयेत् ॥ १०२ ॥
आदावङ्गानि सम्पूज्य शक्तिरष्टविमा यजेत् ।
बलाका विमला पश्चात् कमला वनमालिका ॥ १०३ ॥
विभीषिका मालिका च शाङ्करी वसुबालिका ।
शंखपद्मनिधी पूज्यौ पार्श्वयोर्दक्षवामयोः ॥ १०४ ॥
लोकाधिपांस्तदस्त्राणि तद्बहिः परिपूजयेत् ।
एवं सिद्धे मनौ मन्त्री प्रयोगान्कर्त्तुमर्हति ॥ १०५ ॥

षडङ्गमाह – **रमेति** । श्रीं गां हृत्, श्रीं गीं शिरः, श्रीं गुं शिखेत्यादि । ध्यानमाह – **दन्तेति** । दन्तशङ्खौ दक्षयोः । अभयचक्रे वामयोः । शुण्डाग्रे स्वर्णकुम्भः ॥ १०१ ॥ *॥ १०२–१०५ ॥

गायत्रीछन्दः लक्ष्मीविनायको देवता श्रीं बीजं स्वाहा शक्तिः आत्मनोभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यास - ॐ अन्तर्यामीऋषये नमः शिरसि, गायत्रीछन्दसे नमः मुखे, लक्ष्मीविनायकदेवतायै नमः हृदि, श्री बीजाय नमः गुह्ये, स्वाहा शक्तये नमः पादयोः।

षडङ्गन्यास - ॐ श्रीं गां हृदयाय नमः, ॐ श्रीं गीं शिरसे स्वाहा,
ॐ श्रीं गूं शिखायै वषट्, ॐ श्रीं गैं कवचाय हुम,
ॐ श्रीं गौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ श्रीं गः अस्त्राय फट् ॥ १०० ॥

अब इस **मन्त्र का ध्यान** कहते हैं - अपने दाहिने हाथ में दन्त एवं शङ्ख तथा बायें हाथ में अभय एवं चक्र धारण किये हुये सूँड़ के अग्र भाग में सुवर्ण निर्मित घट लिए हुये हाथ में कमल धारण करने वाली महालक्ष्मी द्वारा आलिङ्गित, तीनों नेत्रों वाले सुवर्ण के समान आभा वाले लक्ष्मी गणेश की मैं वन्दना करता हूँ ॥ १०१ ॥

अब उक्त मन्त्र के **पुरश्चरण की विधि** कहते हैं - उपर्युक्त २८ अक्षरों वाले लक्ष्मीविनायक मन्त्र का चार लाख जप करना चाहिए । तदनन्तर बिल्ववृक्ष की लकड़ी में दशांश होम करना चाहिए । पूर्वोक्त पीठ पर लक्ष्मीविनायक का पूजन करना चाहिए ।

प्रयोगकथनम्

उरो मात्रे जले स्थित्वा मन्त्री ध्यात्वार्कमण्डले ।
एवं त्रिलक्षं जपतो धनवृद्धिः प्रजायते ॥ १०६ ॥
विल्वमूलं समास्थाय तावज्जप्ते फलं हि तत् ।
अशोककाष्ठैर्ज्वलिते वह्नावाज्याक्ततण्डुलैः ॥ १०७ ॥
होमतो वशयेद्विश्वमर्ककाष्ठं शुचावपि ।
खादिराग्नौ नरपतिं लक्ष्मीं पायसहोमतः ॥ १०८ ॥

तावत्त्रिलक्षं तत्फलं धनवृद्धिः ॥ १०६–१०८ ॥

सर्वप्रथम अङ्गपूजा करे । तदनन्तर इन आठ शक्तियों की पूजा करनी चाहिए; १. बलाका, २. विमला, ३. कमला, ४. वनमालिका, ५. विभीषिका, ६. मालिका, ७. शाङ्करी एवं ८. वसुबालिका - ये आठ शक्तियाँ हैं । तदनन्तर दाहिने एवं बायें भाग में क्रमशः शंखनिधि एवं पद्मनिधि का पूजन करना चाहिए । उनके बाहरी भाग में लोकपालों एवं उनके आयुधों का पूजन करना चाहिए । इस प्रकार पुरश्चरण करने के उपरान्त मन्त्र सिद्ध हो जाने पर मन्त्रवेत्ता अन्य काम्य प्रयोगों को कर सकता है ॥ १०२-१०५ ॥

विमर्श - प्रयोग विधि - १०१ श्लोकोक्त ध्यान के अनन्तर मानसोपचारों से पूजन कर गणेशोक्त पीठपूजा करे (द्र० २. ६-१०) । तदनन्तर लक्ष्मी विनायक के मूलमन्त्र का उच्चारण कर पीठ पर उनकी मूर्ति की कल्पना करनी चाहिए । तदनन्तर ध्यान, आवाहनादि पञ्च पुष्पाञ्जलि समर्पित कर आवरण पूजा इस प्रकार करनी चाहिए -

सर्वप्रथम ॐ श्रीं गां हृदयाय नमः, ॐ शिरसे स्वाहा, ॐ श्रीं गूं शिखायै वषट्, ॐ श्रीं गैं कवचाय हम्प, ॐ श्रीं गौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ श्रीं गः अस्त्राय फट् से षडङ्गन्यास कर अष्टदलों में पूर्वादि दिशाओं के क्रम से बलाकायै नमः से ले कर वसुबालिकायै नमः पर्यन्त अष्टशक्तियों की पूजा करनी चाहिए । तदनन्तर दाहिनी ओर ॐ शङ्खनिधये नमः तथा बाईं ओर ॐ पद्मनिधये नमः इन मन्त्रों से अष्टदल के दोनों भाग में दोनों निधियों का पूजन कर दलाग्रभाग में इन्द्राय नमः इत्यादि मन्त्रों से इन्द्रादि दशदिक्पालों का फिर उसके भी अग्रभाग में वज्राय नमः इत्यादि मन्त्रों से उनके आयुधों की पूजा करनी चाहिए । तदनन्तर मूल मन्त्र का जप एवं उत्तर पूजन की क्रिया करनी चाहिए । जैसा की उपर कहा गया है मूल मन्त्र की जप संख्या चार लाख है । उसका दशांश हवन बिल्ववृक्ष की समिधाओं से करना चाहिए । फिर दशांश तर्पण, तद्दशांश मार्जन, फिर उसका दशांश ब्राह्मण भोजन कराने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है और मन्त्रवेत्ता काम्य प्रयोग का अधिकारी होता है ॥ १०२-१०५ ॥

अब उक्त मन्त्र का **काम्य प्रयोग** कहते हैं - हृदय पर्यन्त जल में खड़े हो कर सूर्यमण्डल में लक्ष्मी विनायक का ध्यान कर तीन लाख की संख्या में जप करे तो धन की

त्रयस्त्रिंशद्वर्णात्मकस्त्रैलोक्यमोहनो गणेशमन्त्रः

वक्रकर्णेन्दुयुग् णान्तो डैकदंष्ट्राय मन्मथः ।
माया रमा गजमुखो गणपान्ते भगी हरिः ॥ १०९ ॥
वरवालाग्निसत्याः सरेफारूढं जलं स्थिरा ।
सेन्दुर्मेषो मे वशान्ते मानयोषर्बुधप्रिया ॥ ११० ॥
स्यात्त्रयस्त्रिंशदर्णाढ्यो मनुस्त्रैलोक्यमोहनः ।
गणकोऽस्य[1] ऋषिश्छन्दो गायत्रीदेवता पुनः ॥ १११ ॥
त्रैलोक्यमोहनकरो गणेशो भक्तसिद्धिदः ।
रविवेदशरोदन्वद् रसनेत्रैः षडङ्गकम् ॥ ११२ ॥

त्रैलोक्यमोहनगणेशमन्त्रमाह – **वक्रेति** । स्वरूपम् । णान्तस्तः। कर्णेन्दुयुक्। उबिन्दुयुतः । मन्मथः क्लीं, माया ह्रीं, रमा श्रीं, गजमुखो गं । भगीहरिः एयुतस्तः । बालो वः । अग्नी रः । सत्यो दः । रेफारूढजलं र्व । स्थिरा जः। सेन्दुर्मेषः नं । उषर्बुधप्रिया स्वाहा । स्वरूपमन्यत् । यथा – वक्रतुण्डैकदंष्ट्राय क्लीं ह्रीं श्रीं गं गणपते वर वरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहेति त्रयस्त्रिंशद्वर्णाः ॥ १०९–१११ ॥ षडङ्गमाह – **रवीति** । उदन्वन्तश्चत्वारः ॥ ११२ ॥

अभिवृद्धि होती है यही फल बिल्ववृक्ष के मूलभाग में बैठ कर उतनी ही संख्या में जप करने से प्राप्त होता है । अशोक की लकड़ी से प्रज्वलित अग्नि में घृताक्त चावलों के होम से सारा विश्व वश में हो जाता है । खादिर की लकड़ी से प्रज्वलित निर्मल अग्नि में आक की समिधाओं से होम करने से राजा भी वश में हो जाता है । उपर्युक्त मन्त्र द्वारा पायस के होम से महालक्ष्मी प्रसन्न हो जाती है ॥ १०६-१०८ ॥

अब **त्रैलोक्यमोहनगणपति मन्त्र** कहते हैं -

वक्र फिर कर्णेन्दु सहित णकारान्त त अर्थात् (तुण्) फिर 'ऐकदंष्ट्राय' यह पद तदनन्तर मन्मथ (क्लीं) माया (ह्रीं), रमा (श्रीं) गजमुख (गं), फिर 'गणप' तदनन्तर भगीहरि (ते) फिर 'वर' फिर बाल (व), अग्नि (र), सत्य (द) (वरद), फिर स, तदनन्तर रेफारूढ़ जल (र्व), तदनन्तर स्थिरा (ज), सेन्दुमेष (नं) फिर 'मे वशमानय' तदनन्तर उषर्बुधक्रिया (स्वाहा) लगाने से भक्तों को सिद्धिप्रदान करने वाला त्रैलोक्य मोहन मन्त्र निष्पन्न हो जाता है। यह मन्त्र ३३ अक्षरों का होता है - इस मन्त्र के गणक ऋषि हैं, गायत्री छन्द है तथा भक्तों को सिद्धिप्रदान करने वाले एवं त्रैलोक्य को मोहित करने वाले, श्री गणेश देवता है । इस मन्त्र के क्रमशः १२, ४, ५, ४, एवं ६ और २ अक्षरों से षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ १०९-११२ ॥

विमर्श - इस **मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - वक्रतुण्डैकदंष्ट्राय क्लीं ह्रीं श्रीं गं गणपते वरवरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा ।

ध्यानकथनम्

गदाबीजपूरे धनुः शूलचक्रे
सरोजोत्पले पाशधान्याग्रदन्तान् ।
करैः सन्दधानं स्वशुण्डाग्रराजन्
मणीकुम्भमङ्काधिरूढं स्वपत्न्या ॥ ११३ ॥
सरोजन्मनाभूषणानाम्भरेणो –
ज्ज्वलद्धस्ततन्व्यासमालिङ्गिताङ्गम् ।
करीन्द्राननं चन्द्रचूडं त्रिनेत्रं
जगन्मोहनं रक्तकान्तिं भजेत्तम् ॥ ११४ ॥

पुरश्चरणकथनम्

वेदलक्षं जपेन्मन्त्रमष्टद्रव्यैर्दशांशतः ।
हुत्वा पूर्वोदितं पीठे पूजयेद् गणनायकम् ॥ ११५ ॥

ध्यानमाह – **गदेति** । गदाबीजपूरशूलचक्रपद्मानि दक्षेषु अन्यान्यन्येषु । धान्याग्रं व्रीहिमञ्जरी ॥ ११३ ॥ किं भूतया पत्न्या । सरोजन्मनापद्मेन भूषणसमूहेन च क्रमात् । ज्वलन् दीप्यमानो हस्तो ज्वलन्ती तनुश्च यस्यास्तया ॥ ११४–११७ ॥

विनियोग विधि - ॐ अस्य श्रीत्रैलोक्यमोहनमन्त्रस्य गणकऋषिर्गायत्री छन्दो भक्तेष्ट सिद्धिदायकत्रैलोक्यमोहनकारको गणपतिर्देवता आत्मनोभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास - ॐ वक्रतुण्डैकदंष्ट्राय क्लीं ह्रीं श्रीं गं हृदयाय नमः,
ॐ गणपते शिरसे स्वाहा, ॐ वरवरद शिखायै वषट्,
ॐ सर्वजनं कवचाय हुम, ॐ मे वशमानय नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ स्वाहा अस्त्राय फट्
तदनन्तर आगे कहे गए ११३वें मन्त्र से ध्यान करना चाहिए ॥ १०९-११२ ॥

अब त्रैलोक्यमोहन गणपति का ध्यान कहते हैं - अपने दाहिने हाथों में गदा, बीजपूर, शूल, चक्र एवं पद्म तथा बायें हाथों में धनुष, उत्पल, पाश, धान्यमञ्जरी (धान के अग्रभाग में रहने वाली बाल) एवं दन्त धारण किए हुए जिन गणेश के शुण्डाग्रभाग में मणिकलश शोभित हो रहा है जिनका श्री अङ्ग कमल एवं आभूषणों से जगमगाती हुई अतएव उज्वल वर्णवाली अपनी गोद में बैठी हुई पत्नी से आलिङ्गित हैं - ऐसे त्रिनेत्र, हाथी के समान मुख वाले, सिर पर चन्द्रकला धारण किए हुए, तीनों लोकों को मोहित करने वाले, रक्तवर्ण की कान्ति से युक्त श्री गणेशजी का मैं ध्यान करता हूँ ॥ ११३-११४ ॥

अब इस मन्त्र से **पुरश्चरण विधि** कहते हैं - उक्त मन्त्र का चार लाख जप करना चाहिए तथा अष्टद्रव्यों (द्र० २. ८) से जप का दशांश होम करना चाहिए । इसके अनन्तर पूर्वोक्त पीठ पर (द्र० २. ६) श्री गणेश जी की पूजा करनी चाहिए । अङ्गन्यास

अङ्गाच्चों पूर्ववत्प्रोक्ता शक्तीः पत्रेषु पूजयेत् ।
वामा ज्येष्ठा च रौद्री स्यात्काली कलपदादिका ॥ ११६ ॥
विकरिण्याह्वया तद्वद्बलाद्या प्रमथन्यपि ।
सर्वभूतदमन्याख्या मनोन्मन्यपि चाग्रतः ॥ ११७ ॥
दिक्षु प्रमोदः सुमुखो दुर्मुखो विघ्ननाशकः ।
दीर्घाद्या मातरः पूज्या इन्द्राद्या आयुधान्यपि ॥ ११८ ॥
एवं सिद्धे मनौ कुर्यात्प्रयोगानिष्टसिद्धये ।

काम्यप्रयोगकथनम्

वशयेत्कमलैर्भूपान्मन्त्रिणः कुमुदैर्हुतैः ॥ ११६ ॥

दीर्घाद्या मातरः । आं ब्राह्म्यै नमः । ईं माहेश्वर्यै नम इत्यादि ॥ ११८–११६ ॥

का विधान भी पूर्ववत् (द्र० २. १४) है। दलों पर शक्तियों की पूजा करनी चाहिए । १. वामा, २. ज्येष्ठा, ३. रौद्री, ४. कलकाली, ५. बलविकरिणी, ६. बलप्रमथिनी, ७. सर्वभूतदमनी और ८. मनोन्मनी ये आठ शक्तियाँ हैं । पुनः आगे चारों दिशाओं में पूर्वादिक्रम से प्रमोद, सुमुख, दुर्मुख, विघ्ननाशक, का पूजन करना चाहिए । तदनन्तर आं ब्राह्म्यै नमः, ईं माहेश्वर्यै नमः इत्यादि अष्टमातृकाओं के आदि में (द्र० २. ३६) षड्दीर्घाक्षर लगा कर उनका पूजन करना चाहिए । तदनन्तर इन्द्रादि दिक्पालों का, पुनः उनके दज्र आदि आयुधों का पूजन करना चाहिए । इस प्रकार पुरश्चरण द्वारा मन्त्र की सिद्धि हो जाने पर अभीष्ट सिद्धि के लिए काम्य प्रयोग करना चाहिए ॥ ११५-११६ ॥

विमर्श - प्रयोग विधि - श्लोक ११३-११४ के अनुसार त्रैलोक्यमोहन गणपति का ध्यान कर मानसोपचारों से पूजन कर अर्घ्य स्थापित करे । पश्चात पीठ एवं पीठदेवता का पूजन कर मूलमन्त्र से त्रैलोक्यमोहन गणेश की मूर्ति की कल्पना कर उनका ध्यान करते हुए आवाहनादि से लेकर पुष्पाञ्जलि समर्पण पर्यन्त समस्त कार्य करना चाहिए । इस मन्त्र का अङ्गन्यास पूर्व में (द्र० २. ११२) में कहा जा चुका है । तदनन्तर आठ दलों पर वामायै नमः से ले कर मनोन्मन्ये नमः पर्यन्त आठ शक्तियों की पूजा करनी चाहिए । तदनन्तर पूर्वादि चारों दिशाओं में प्रमोद सुमुख, दुर्मुख और विघ्ननाशक इन चार नामों के अन्त में चतुर्थ्यन्तयुक्त नमः शब्द लगा कर पूजन करना चाहिए । फिर दल के अग्रभाग में ब्राह्मी आदि अष्ट मातृकाओं की क्रमशः आदि में ६ दीर्घों से युक्त कर तथा अन्त में चतुर्थ्यन्तयुक्त नमः लगा कर पूजा करे (द्र० २. ३६) । फिर दलों के बाहर इन्द्रादि दश दिक्पालों का तथा उनके वज्रादि आयुधों का (द्र० २. ३६) पूजन करना चाहिए। इस प्रकार आवरण पूजा कर धूप दीपादिविसर्जनान्त समस्त क्रिया संपन्न करनी चाहिए, फिर जप करना चाहिए । ऐसा प्रतिदिन करते हुए जब चार लाख जप पूरा हो जावे तब अष्टद्रव्यों से उसका दशांश होम, होम का दशांश तर्पण, तर्पण का दशांश मार्जन तथा

समिद्वरैश्चलदलसमुद्भूतैर्द्धरासुरान् ।
उदुम्बरोत्थैर्नृपतीन् प्लक्षैर्वाटैर्विशोऽन्तिमान् ॥ १२० ॥
क्षौद्रेण कनकप्राप्तिर्गोप्राप्तिः पयसा गवाम् ।
ऋद्धिर्दध्योदनैरन्नं घृतैः श्रीर्वेतसैर्जलम् ॥ १२१ ॥

द्वात्रिंशद्वर्णात्मको हरिद्रागणेशमन्त्रः

तारो वर्म गणेशो भूर्हरिद्रागणलोहितः ।
आषाढी येवरवरसत्यः सर्वजतर्जनी ॥ १२२ ॥
हृदयं स्तम्भयद्वन्द्वं वल्लभां स्वर्णरेतसः ।
द्वात्रिंशदक्षरो मन्त्रो मदनो[1] मुनिरीरितः ॥ १२३ ॥

चलदलोऽश्वत्थस्तस्य समिद्भिः धरासुरान् विप्रान् वशयेत् । औदुम्बरसमिदिभर्नृपतीन् वशयेत् । प्लक्षसमिद्भिर्वैश्यान् । वटजाभिरन्तिमान् शूद्रान् ॥ १२०–१२१ ॥ हरिद्रागणेशमनुमाह – **तार इति** । तार ॐ । वर्म हुं । गणेशो गं भूः ग्लौं। लोहितः प । आषाढी तः । सत्यो दः। तर्जनी नः स्वर्गरितसो वल्लभा स्वाहा। स्वरूपमन्यत् । यथा – ॐ हुं गं ग्लौं हरिद्रागणपतये वरवरद सर्वजनहृदयं स्तम्भय स्तम्भय स्वाहेति द्वात्रिंशद्वर्णः ॥ १२२–१२३ ॥

मार्जन का दशांश ब्राह्मण भोजन कराने पर मन्त्र सिद्ध हो जाता है और साधक काम्य प्रयोग का अधिकारी हो जाता है ॥ ११५-११६ ॥

अब इस मन्त्र से **काम्य प्रयोग** कहते हैं - कमलों के हवन से राजा तथा कुमुद पुष्पों के होम से उसके मन्त्री को वश में किया जा सकता है । पीपल की समिधाओं के हवन से ब्राह्मणों को, उदुम्बर की समिधाओं के हवन से क्षत्रियों को, प्लक्ष समिधाओं के हवन से वैश्यों को तथा वट वृक्ष की समिधाओं के हवन से शूद्रों को वश में किया जा सकता है । इसी प्रकार क्षौद्र (मुनक्का) के होम से सुवर्ण, गो दुग्ध के हवन से गौवें, दधि मिश्रित चरु के हवन से ऋद्धि, घी की आहुति से अन्न एवं लक्ष्मी की तथा वेतस की आहुतियों से सुवृष्टि की प्राप्ति होती है ॥ ११६-१२१ ॥

अब **हरिद्रागणपति के मन्त्र का उद्धार** कहते हैं -

तार (ॐ), वर्म (हुम्), गणेश (गं), भू (ग्लौं), इन बीजाक्षरों के अनन्तर 'हरिद्रागण' पद, इसके बाद लोहित (प), आषाढी (त), तदनन्तर 'ये', फिर 'वर वर' के अनन्तर सत्य (द), फिर 'सर्वज' पद, तदनन्तर तर्जनी (न), फिर 'हृदयं स्तम्भय स्तम्भय', फिर अन्त में अग्निवल्लभा (स्वाहा) लगाने से बत्तीस अक्षरों का हरिद्रागणपति मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ १२२-१२३ ॥

विमर्श - इस **मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - 'ॐ हुं गं ग्लौं हरिद्रागणपतये वरवरद सर्वजनहृदयं स्तम्भय स्तम्भय स्वाहा' ॥ १२२-१२३ ॥

छन्दोऽनुष्टुब् देवता तु हरिद्रागणनायकः ।
वेदाष्टशरसप्ताङ्गनेत्रार्णैरङ्गमीरितम् ॥ १२४ ॥

ध्यानकथनम्

पाशांकुशौ मोदकमेकदन्तं
करैर्दधानं कनकासनस्थम् ।
हारिद्रखण्डप्रतिमं त्रिनेत्रं
पीतांशुकं रात्रिगणेशमीडे ॥ १२५ ॥

पुरश्चरणकथनम्

वेदलक्षं जपित्वान्ते हरिद्राचूर्णमिश्रितैः ।
दशांशं तण्डुलैर्हुत्वा ब्राह्मणानपि भोजयेत् ॥ १२६ ॥
पूर्वोक्तपीठे प्रयजेदङ्गमातृदिशाधवैः ।
एवमाराधितो मन्त्रस्सिद्धो यच्छेन्मनोरथान् ॥ १२७ ॥

षडङ्गमाह – **वेदेति** ॥ १२४ ॥ ध्यानमाह – **पाशेति** । अंकुशमोदकौ दक्षयोः पाशदन्तावन्ययोः । रात्रिगणेशो हरिद्रागणपतिः ॥ १२५ ॥ *॥ १२६–१२६ ॥

इस मन्त्र के मदन ऋषि, अनुष्टुप् छन्द और हरिद्रागणनायकदेवता कहे गये हैं। मन्त्र के क्रमशः ४, ८, ५, ७, ६ और दो अक्षरों से षडङ्गन्यास बतलाया गया है ॥ १२४॥

विमर्श - विनियोग विधि - ॐ अस्य श्रीहरिद्रागणनायकमन्त्रस्य मदनऋषिः अनुष्टुप्छन्दः हरिद्रागणनायको देवता आत्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास विधि - ॐ हुं गं ग्लौं हृदयाय नमः, ॐ हरिद्रागणपतये शिरसे स्वाहा, वरवरद शिखायै वषट्, सर्वजनहृदयं कवचाय हुम्, स्तम्भय स्तम्भय नेत्रत्रयाय वौषट्, स्वाहा अस्त्राय फट् ॥ १२४ ॥

अब **हरिद्रागणपति का ध्यान** कहते हैं -

जो अपने दाहिने हाथों में अङ्कुश और मोदक तथा बायें हाथों में पाश एवं दन्त धारण किये हुए सुवर्ण के सिंहासन पर स्थित हैं - ऐसे हल्दी जैसी आभा वाले, त्रिनेत्र तथा पीत वस्त्रधारी हरिद्रागणपति की मैं वन्दना करता हूँ ॥ १२५ ॥

अब इस मन्त्र की **पुरश्चरण विधि** कहते हैं -

हरिद्रागणपति के मन्त्र का चार लाख जप कर पिसी हल्दी को चावलों में मिश्रित करके दशांश का होम करना चाहिए (तथा होम के दशांश से तर्पण और उसके दशांश से मार्जन, फिर उसका दशांश) ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए ॥ १२६ ॥

पूर्वोक्त विधि से पीठ पर अङ्गपूजा, मातृका पूजन तथा दिक्पाल आदि का पूजन करना चाहिए । इस प्रकार पुरश्चरण करने पर पूर्वोक्त मन्त्र (द्र०. २. १२२-१२३)

काम्यप्रयोगकथनम्

शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां तु कन्यापिष्टहरिद्रया ।
विलिप्याङ्गं जले स्नात्वा पूजयेद् गणनायकम् ॥ १२८ ॥
तर्पयित्वा पुरस्तस्य सहस्रं साष्टकं जपेत् ।
शतं हुत्वा घृतापूपैर्भोजयेद् ब्रह्मचारिणः ॥ १२९ ॥
कुमारीरपि सन्तोष्य गुरुं प्राप्नोति वाञ्छितम् ।
लाजैः कन्यामवाप्नोति कन्यापि लभते वरम् ॥ १३० ॥
वन्ध्यानारी रजः स्नाता पूजयित्वा गणाधिपम् ।
पलप्रमाणगोमूत्रे पिष्टाः सिन्धुवचानिशाः[1] ॥ १३१ ॥
सहस्रं मन्त्रयेत्कन्याबटून्सम्भोज्य मोदकैः ।
पीत्त्वा तदौषधं पुत्रं लभते गुणसागरम् ॥ १३२ ॥

कुमारीरपीति । भोजयेदित्यनेनान्वेति ॥ १३०–१३३ ॥

समस्त मनोवाञ्छित वस्तु प्रदान करता है ॥ १२७ ॥

विमर्श - प्रयोग विधि - सर्वप्रथम १२५ श्लोक के अनुसार हरिद्रागणेश का ध्यान करना चाहिए । तदनन्तर मानसपूजा एवं अर्घ्यस्थापन करना चाहिए । तत्पश्चात् पीठपूजा एवं केशरों के मध्य में तीव्रादि पीठ देवताओं का पूजन कर मूल मन्त्र से हरिद्रागणपति की मूर्ति की कल्पना कर पुनः ध्यान करना चाहिए । तदनन्तर आवाहन से ले कर पञ्चपुष्पाञ्जलि पर्यन्त पूजन करना चाहिए । फिर **कर्णिकाओं में** पूर्वादि दिशाओं के क्रम से क्रमशः ॐ गणाधिपतये नमः, ॐ गणेशाय नमः, ॐ गणनायकाय नमः, ॐ गणक्रीडाय नमः - से पूजन करना चाहिए । फिर **केशरों में** 'ॐ हूं गं ग्लौं हृदयाय नमः' इत्यादि मन्त्रों से षडङ्गन्यास और अङ्गपूजा करनी चाहिए । तदनन्तर पद्मदलों पर वक्रतुण्ड आदि अष्टगणपतियों का पूजन करना चाहिए । दलों के अग्रभाग में ब्राह्मी आदि अष्टमातृकाओं का, फिर दलों के बहिर्भाग में इन्द्रादि दश दिक्पालों का तथा उसके भी बाहर उनके वज्रादि आयुधों का पूजन कर धूप दीपादि पर्यन्त समस्त क्रिया संपन्न करनी चाहिए ॥ १२७ ॥

अब **हरिद्रागणपति मन्त्र का काम्य प्रयोग** कहते हैं -

शुक्ल पक्ष की चतुर्थी को कन्या द्वारा पीसी गई हल्दी से अपने शरीर में लेप करे। तदनन्तर जल में स्नान कर गणपति का पूजन करे । फिर गणेश के आगे स्थित हो तर्पण करे और उनके सम्मुख १००८ की संख्या में जप करे । फिर घी और मालपूआ से १०० आहुतियाँ देकर ब्रह्मचारियों को भोजन करावे तथा कुमारियों एवं स्वगुरु को भी संतुष्ट करे तो साधक अपना अभीष्ट प्राप्त कर लेता है ॥ १२८-१३० ॥

लाजाओं के होम से उत्तम वधू तथा कन्या को भी अनुरूप वर की प्राप्ति होती है।

---

१. हरिद्रा ।

वाणीस्तम्भं रिपुस्तम्भं कुर्यान्मनुरुपासितः ।
जलाग्निचौरसिंहास्त्रप्रमुखानपि रोधयेत् ॥ १३३ ॥

बीजमन्त्रकथनम्

शार्ङ्गीमांसस्थितः सेन्दुर्बीजमुक्तं गणेशितुः ।
हरिद्राख्यस्य यजनं पूर्ववत्प्रोदितं मनोः ॥ १३४ ॥

मन्त्रान्तरमाह – **शार्ङ्गीति** । शार्ङ्गी गः । मांसस्थितः लकारस्थः । ग्लमिति

बन्ध्या स्त्री ऋतुस्नान के पश्चात् गणेश जी का पूजन कर एक पल (चार तोला) गोमूत्र में दूधवच एवं हल्दी पीस कर उसे १००० बार हरिद्रागणपति के मन्त्र से अभिमन्त्रित करे, फिर कन्या एवं वटुकों को लड्डू खिला कर स्वयं उस औषधि का पान करे तो उसे गुणवान् पुत्र की प्राप्ति होती है । इतना ही नहीं इस मन्त्र की उपासना से वाणी स्तम्भन एवं शत्रुस्तम्भन भी हो जाता है तथा जल, अग्नि, चोर, सिंह एवं अस्त्र आदि का प्रकोप भी रोका जा सकता है ॥ १३०-१३३ ॥

अब **हरिद्रागणेश का अन्य मन्त्र** कहते हैं -

शार्ङ्गी (ग), मांसस्थित (ल), इन दोनों में अनुस्वार लगाने से हरिद्रागणपति का बीजमन्त्र (ग्लं) यह पूर्व में बतलाया जा चुका है । इस मन्त्र का पुरश्चरण भी पूर्वोक्त विधि से करना चाहिए ॥ १३४ ॥

विमर्श - विनियोग - ॐ अस्य श्रीहरिद्रागणपतिमन्त्रस्य वशिष्ठऋषिः गायत्रीछन्दः हरिद्रागणपतिर्देवता गं बीजं लं शक्तिः आत्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास - ॐ गां हृदयाय नमः, ॐ गीं शिरसे स्वाहा, ॐ गूं शिखायै वषट्, ॐ गैं कवचाय हुम्, ॐ गौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ गः अस्त्राय फट् ।

हरिद्रागणपति का ध्यान - हरिद्राभं चतुर्बाहुं हरिद्रावसनं विभुम् ।
पाशाङ्कुशधरं देवं मोदकं दन्तमेव च ॥

हल्दी के समान पीत वर्ण की आभा वाले, चार हाथों वाले, पीत वर्ण के वस्त्र को धारण करने वाले, व्याप्त, पाश एवं अङ्कुश अपने दाहिने हाथों में धारण करने वाले तथा मोदक एवं दन्त अपने बाएँ हाथों में धारण करने वाले हरिद्रागणेश का मैं ध्यान करता हूँ ।

इस प्रकार ध्यान करने के उपरान्त मानसोपचारपूजन, अर्घ्यस्थापन, पीठपूजा, तीव्रादि पीठशक्तियों की पूजा, अङ्गपूजा एवं आवरण पूजादि समस्त कार्य पूर्वोक्त रीति से संपन्न करना चाहिए । चार लाख जप पूर्ण करने के पश्चात् घी, मधु, शर्करा एवं हरिद्रा मिश्रित तण्डुलों से दशांश होम, तद्दशांश तर्पण, तद्दशांश मार्जन और तद्दशांश ब्राह्मण भोजन करा कर पुरश्चरण की क्रिया पूर्ण करनी चाहिए ॥ १३४ ॥

प्रोक्ता एते गणेशस्य मन्त्रा इष्टमभीप्सता।
गोपनीया न दुष्टेभ्यो वदनीयाः कथञ्चन॥ १३५॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचिते मन्त्रमहोदधौ गणेशमन्त्र–
कथनं नाम द्वितीयस्तरङ्गः ॥ २ ॥



बीजं । हरिद्रागणपतेः पूजनं पूर्ववत् ॥ १३४ ॥ *॥ १३५॥

इति श्रीमन्महीधरविरचितायां मन्त्रमहोदधिव्याख्यायां नौकायां
गणेशमन्त्रकथनं नाम द्वितीयस्तरङ्गः ॥ २ ॥



अब **उपसंहार** करते हुये ग्रन्थकार कहते हैं कि - मनोभीष्ट फल देने वाले गणेश जी के मन्त्रों को हमने कहा । ये मन्त्र दुष्ट जनों से सर्वदा गोपनीय रखने चाहिए तथा उन्हें कभी भी इनका उपदेश (कानों में मन्त्र देना) नहीं करना चाहिए ॥ १३५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमन्महीधर विरचित मन्त्रमहोदधि के द्वितीय तरङ्ग की महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत 'अरित्र' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ २ ॥



अथ तृतीयः तरङ्गः

अथ कालीमनून् वक्ष्ये सद्यो वाक्सिद्धिदायकान् ।
आराधितैर्यैः सर्वेष्टं प्राप्नुवन्ति जना भुवि ॥ १ ॥

कालिकाया द्वाविंशत्यर्णात्मको मन्त्रः

कोधीशत्रितयं वह्निवामाक्षिविधुभिर्युतम् ।
वराहद्वितयं वामकर्णचन्द्रसमन्वितम् ॥ २ ॥

---

* नौका *

कालीमन्त्रान् वक्तुं प्रतिजानीते – **अथेति** ॥ १ ॥ मन्त्रमुद्धरति – **क्रोधीशेति । क्रोधीशः कः** । तस्य त्रयं वह्निवामाक्षिविधुभिः रेफईकारानुस्वारैर्युतम् । तेन क्रीं क्रीं क्रीं । वराहो हः । वामकर्ण ऊं । दक्षिणे स्वरूपम् । सृष्टिः कः । दीर्घा आकारयुता । क्रिया लः । सदृक् इयुतः लिः । चक्री कः। झिंटीशमारूढः एयुत के । प्रागुक्तं आदावुक्तं बीजानां सप्तकम् । वह्निप्रिया स्वाहा । यथा – क्रीं क्रीं क्रीं हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं स्वाहेति ॥ २ ॥ * ॥ ३–४ ॥

---

* अरित्र *

अब सद्यः वाक्सिद्धि प्रदान करने वाले काली के मन्त्रों को कहता हूँ, जिनके द्वारा आराधना करने से मनुष्य इस भूलोक में अपना समस्त अभीष्ट प्राप्त कर लेता है ॥ १ ॥

सर्वप्रथम **दक्षिणकाली मन्त्र का उद्धार** कहते हैं -

वह्नि (र), वामाक्षि (ई) एवं विधु (र) के साथ अनुस्वार तथा क्रोधीश (क) अर्थात् क्रीं इसकी तीन आवृत्ति, वामकर्ण (ऊ) एवं चन्द्रमा (अनुस्वार) सहित वराह (ह) अर्थात् हूँ की आवृत्ति, फिर माया युग्म (ह्रीं ह्रीं), तदनन्तर दक्षिणे, दीर्घसृष्टि (का), सदृक् क्रिया (लि) और झिण्टीश (ए) के सहित चक्री (क अर्थात् के) तदनन्तर पुनः पूर्वोक्त सात बीज - क्रीं

मायायुग्मं दक्षिणे च दीर्घासृष्टिः सदृक् क्रिया।
चक्रीझिण्टीशमारूढः प्रागुक्तं बीजसप्तकम्॥ ३॥
मन्त्रो वह्निप्रियान्तोऽयं द्वाविंशत्यक्षरो मतः।
न चात्र सिद्धसाध्यादिशोधनं मनसापि च॥ ४॥
न यत्नातिशयः कश्चित्पुरश्चर्यानिमित्तकः।
विद्याराज्ञ्याः स्मृतेरेव सिद्ध्यष्टकमवाप्नुयात्॥ ५॥
भैरवोऽस्य[1] ऋषिश्छन्दउष्णिक्काली तु देवता।
बीजं माया दीर्घवर्मशक्तिरुक्ता मनीषिभिः॥ ६॥
षड्दीर्घाढ्याद्यबीजेन विद्याया अङ्गमीरितम्।
मातृकां पञ्चधा भक्त्या वर्णान् दशदशक्रमात्॥ ७॥
हृदये भुजयोः पादद्वये मन्त्री प्रविन्यसेत्।
व्यापकं मनुना कृत्वा ध्यायेच्चेतसि कालिकाम्॥ ८॥

दीर्घवर्म हूं ॥ ५–६ ॥ षडङ्गमाह – **षडिति** क्रां क्रीं इत्यादि । मातृकामिति – अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं १० नमो हृदि । एं १०

क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं - उसके अन्त में वह्निप्रिया अर्थात् स्वाहा लगाने से बाईस अक्षरों का काली मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ २-४ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा' ॥ २-४ ॥

इस मन्त्र की सिद्धि के लिए मन से भी किसी साधन की आवश्यकता नहीं है और न तो पुरश्चरण का प्रयत्न ही आवश्यक है, इस विद्याराज्ञी के स्मरण मात्र से साधक को सारी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं ॥ ४-५ ॥

मनीषियों ने इस मन्त्र के भैरव ऋषि, उष्णिक् छन्द, काली देवता, माया बीज (ह्रीं) तथा दीर्घ वर्म (हूं) को शक्ति कहा है । छ दीर्घ सहित आद्य बीज से इस विद्या का षडङ्गन्यास कहा गया है । वर्णमाला के कुल पचास अक्षरों को दश दश अक्षरों का पाँच विभाग कर हृदय, दोनों हाथ और दोनों पैरों में न्यास करना चाहिए । तदनन्तर मुख्य मन्त्र से व्यापक न्यास कर चित्त में महाकाली का ध्यान करना चाहिए ॥ ६-८ ॥

विमर्श - सर्वप्रथम इसका **विनियोग** कहते हैं - 'ॐ अस्य श्रीकालीमन्त्रस्य भैरवऋषिः उष्णिक्छन्दः कालीदेवता ह्रीं बीजं हूं शक्तिः क्रीं कीलकं आत्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे पुरुषार्थचतुष्टयप्राप्तये वा कालीमन्त्र जपे विनियोगः' ।

---

१. अस्य श्रीकालीमन्त्रस्य भैरवऋषिः उष्णिक्छन्दः कालीदेवता ह्रीं बीजं हूँ शक्तिः ममाभीष्टसिध्यर्थे जपे विनियोगः ।

ध्यानवर्णनम्

सद्यश्छिन्नशिरः कृपाणमभयं हस्तैर्वरं बिभ्रतीं
घोरास्यां शिरसां स्रजासुरुचिरामुन्मुक्तकेशावलिम्।
सृक्क्यसृक्प्रवहां श्मशाननिलयां श्रुत्योः शवालङ्कृतिं
श्यामाङ्गीं कृतमेखलां शवकरैर्देवीं भजे कालिकाम् ॥ ६ ॥

दक्षभुजे । डं १० वामभुजे । णं १० दक्षपादे । मं १० वामपादे इति ॥ ७–८ ॥ ध्यानमाह – **सद्य** इति । खड्गवरारौ दक्षयोः । सद्यश्छिन्न–शिरोऽभयवामयोः सृक्किणीरोष्ठप्रान्तयोरसृजो रुधिरस्य प्रवाहो यस्यास्ताम्। श्रुत्यो कर्णयोः शवालङ्कारयुताम् ॥ ६ ॥ * ॥ १०–१२ ॥

ऋष्यादिन्यास - ॐ भैरवऋषये नमः शिरसि, ॐ उष्णिकृछन्दसे नमः मुखे,
ॐ दक्षिणकालीदेवतायै नमः, हृदि,ॐ ह्रीं बीजाय नमः गुह्ये,
ॐ हूंशक्तये नमः पादयोः, ॐ क्रीं कीलकाय नमः सर्वाङ्गे

कराङ्गन्यास - ॐ क्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ क्रीं तर्जनीभ्यां नमः,
ॐ क्रूं मध्यमाभ्यां नमः, ॐ क्रैं अनामिकाभ्यां नमः,
ॐ क्रौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः, ॐ क्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

हृदयादिन्यास - उक्त प्रकार से दीर्घान्त ६ वर्णों के साथ बीज मन्त्र लगाकर हृदयादिन्यास भी क्रमशः कर लेना चाहिए ।

वर्णन्यास - अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं नमः, हृदि ।
एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं नमः, दक्षबाहौ ।
ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं नमः, वामबाहौ ।
णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं नमः, दक्षपादे ।
मं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं नमः, वामपादे ।
क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणकालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा, सर्वाङ्गे ॥ ६-८ ॥

अब **भगवती दक्षिणकालिका का ध्यान** कहते हैं -

भगवती दक्षिणकालिका का मुख अत्यन्त भयानक है, उनके गले में मुण्ड माला विराज रही है तथा केश खुले हुये हैं, उनकी चार भुजायें हैं, बायें के निचले भाग वाली भुजा में तुरन्त का काटा गया शिर तथा ऊपरी हाथ में अभयमुद्रा है, दायें के निचले भाग वाली भुजा में वरद मुद्रा तथा ऊपर वाली भुजा में खड्ग विराज रहा है, जिनके होठों के अग्रभाग से अजस्र रक्त की धारा चू रही है । कानों में दो शव-शिशु के कर्ण फूल आभूषण के रूप में लटक रहे हैं । कमर में शवहस्त से निर्मित करधनी शोभा दे रही है, ऐसी श्मशानवासिनी श्यामवर्णा महाकाली का मैं ध्यान करता हूँ ॥ ६ ॥

पुरश्चरणकथनम्

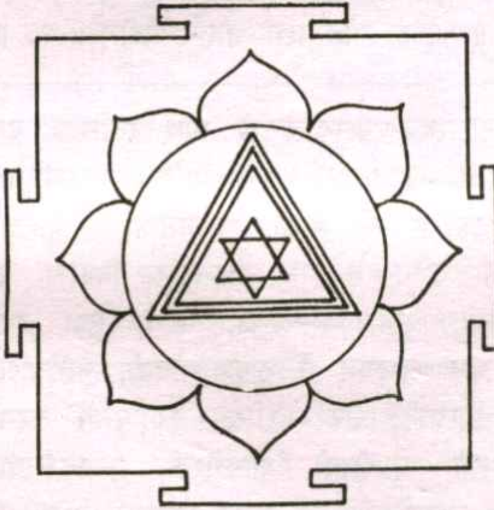
एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षं जुहुयात्तद्दशांशतः।
प्रसूनैः करवीरोत्थैः पूजायन्त्रमथोच्यते ॥ १० ॥
आदौ षट्कोणमारच्य त्रिकोणत्रितयं[1] ततः।
पद्ममष्टदलं बाह्ये भूपुरं तत्र पूजयेत् ॥ ११ ॥

पीठाद्यावरणपूजा पीठदेवता च

जयाख्या विजया पश्चादजिता चापराजिता।
नित्या विलासिनी चापि दोग्ध्र्यघोरा च मङ्गला ॥ १२ ॥
पीठशक्तय एताः स्युः कालिकायोगपीठतः।
आत्मने हृदयान्तोऽयं मायादिः[2] पीठमन्त्रकः ॥ १३ ॥

पीठमन्त्रमाह – **आत्मन इति** । ह्रीं आत्मने नम इति ॥ १३ ॥ * ॥ १४–१८ ॥

कालीपूजनयन्त्रम्



इस प्रकार ध्यान कर उपरोक्त का मन्त्र एक लाख जप करना चाहिए तथा कनेर के पुष्पों से उसका दशांश हवन करना चाहिए । अब उनका पूजा यन्त्र कहता हूँ ॥ १० ॥

अब **काली पूजा यन्त्र निर्माण की विधि** कहते हैं -

पूजन यन्त्र बनाने के लिए सर्वप्रथम षट्कोण की रचना करके, तदनन्तर उसके बाहर तीन त्रिकोण बनाना चाहिए । फिर उसके बाद अष्टदल कमल बनाकर उसके बाहर भूपुर की रचना कर उस यन्त्र में महाकाली का पूजन करना चाहिए ॥ ११ ॥

अब **महाकाली की पूजाविधि** कहते हैं -

१. जया, २. विजया, ३. अजिता ४. अपराजिता, ५. नित्या, ६. विलासिनी, ७. दोग्ध्री, ८. अघोरा और ९. मङ्गला - ये नव पीठ की शक्तियाँ हैं । 'ॐ ह्रीं कालिकायोगात्मने नमः' यह पीठ का मन्त्र है ॥ १२-१३ ॥

---

१. इदं यन्त्रं गौणं, मुख्ये तु त्रिकोणपञ्चकं लेखनीयम् ।
२. ह्रीं कालिकायोगपीठात्मने नमः ।

अस्मिन् पीठे यजेद्देवीं शवरूपशिवस्थिताम्।
महाकालरतासक्तां शिवाभिर्दिक्षु वेष्टिताम् ॥ १४ ॥
अङ्गानि [1]पूर्वमाराध्य षट्पत्रेषु समर्चयेत्।
कालीं कपालिनीं कुल्लां कुरुकुल्लां विरोधिनीम् ॥ १५ ॥
विप्रचित्तां च सम्पूज्य नवकोणेषु पूजयेत्।
उग्रामुग्रप्रभां दीप्तां नीलां घनबलाकिके ॥ १६ ॥
मात्रां मुद्रां तथा मित्रां पूज्याः पत्रेषु मातरः।
पद्मस्याष्टसु पत्रेषु ब्राह्मी नारायणीत्यपि ॥ १७ ॥
माहेश्वरी च चामुण्डा कौमारी चापरापजिता।
वाराही नारसिंही च पुनरेतास्तु भूपुरे ॥ १८ ॥
भैरवीं महदाद्यान्तां सिंहाद्यां धूम्रपूर्विकाम्।
भीमोन्मत्तादिकां चापि वशीकरणभैरवीम् ॥ १९ ॥
मोहनाद्यां समाराध्य शक्रादीनायुधान्यपि।
एवमाराधिता काली सिद्धा भवति मन्त्रिणाम् ॥ २० ॥

महादाद्यां महाभैरवीम् । सिंहाद्यां सिंहभैरवीम् । धूम्रपूर्विकां धूम्रभैरवीम्। भीमोन्मत्तादिकां भीमभैरवीमुन्मत्तभैरवीं च ॥ १९ ॥ मोहनाद्यां मोहनभैरवीम् ॥ २० ॥

उस पीठ पर शव रूपी शिव पर स्थित महाकाल के साथ रतासक्ता एवं चारों ओर शिवाओं से घिरी हुई महादेवी का पूजन करना चाहिए । सर्वप्रथम अङ्गपूजा करनी चाहिए । तदनन्तर षट्कोणों में काली, कपालिनी, कुल्ला, कुरुकुल्ला, विरोधिनी एवं विप्रचित्ता का पूजन करें । तदनन्तर त्रिकोण के नवकोणों में उग्रा, उग्रप्रभा, दीप्ता, नीला, घना, बलाकिका, मात्रा, मुद्रा तथा मित्रा का पूजन करना चाहिए । इसके बाद अष्टदल में क्रमशः ब्राह्मी, नारायणी, माहेश्वरी, चामुण्डा, कौमारी, अपराजिता, वाराही और नारसिंही का पूजन करना चाहिए । भूपुर में महाभैरवी, सिंहभैरवी, धूम्रभैरवी, भीमभैरवी, उन्मत्तभैरवी, वशीकरणभैरवी एवं मोहनभैरवी का तथा महाभैरवी का पूजन करना चाहिए । तदनन्तर भूपुर के बाहर इन्द्रादि दशदिक्पालों का तथा उसके बाहर उनके वज्रादि आयुधों का पूजन करना चाहिए । इस प्रकार की आराधना से मन्त्र वेत्ता को काली सिद्ध हो जाती हैं ॥ १४-२० ॥

विमर्श - प्रयोग विधि - ३. ६ वें श्लोक के अनुरूप महाकाली का ध्यान कर

---

१. अंसाञ्चनमेकम् । काल्याद्याः षट्षट् अञ्चयेदिति द्वितीयम् । उग्राद्या नवनवकोणेषु यजेदिति तृतीयम् । अष्टपत्रे ब्राह्माद्या अष्ट यजेदिति चतुर्थम् । भूपुरेऽष्टदिक्षु भैरवाद्या अष्ट यजेदिति पञ्चमम् ।

मानसोपचार से उनका पूजन करें । तदनन्तर अर्घ्य स्थापित कर हुं गर्भित त्रिकोण लिखकर उस पर आधार सहित अर्घ्यपात्र स्थापित करें । पुनः उसमें जल भर कर, गन्धादि डाल कर 'गङ्गे च यमुने चैव' इत्यादि मन्त्र से तीर्थों का आवाहन करें । तदनन्तर 'वं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः' इस मन्त्र से आधार की 'ॐ सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः' इस मन्त्र से शङ्ख की तथा 'ॐ सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः' इस मन्त्र से अर्घ्यपात्र स्थित जल की पूजा करना चाहिए । सर्वप्रथम जयायै नमः, विजयायै नमः, अजितायै नमः, अपराजितायै नमः, नित्यायै नमः, विलासिन्यै नमः, दोग्ध्यै नमः, अघोरायै नमः, मङ्गलायै नमः, इन मन्त्रों से ९ पीठ शक्तियों की पूजा कर 'कालिकायोगपीठात्मने नमः' इस मन्त्र से पीठ पूजा संपादन करना चाहिए । इस प्रकार पीठ पूजन के अनन्तर उस पीठ पर भगवती कालिका का श्लोक १४ के अनुसार ध्यान कर मूलमन्त्र से उनका आवाहन स्थापन तथा पूजा सम्पादन कर, 'ॐ दक्षिणकालिके देवि आवरणं ते पूजयामि' इस मन्त्र को बोल कर माँ से आवरण पूजा की आज्ञा लेकर आवरण पूजा करनी चाहिए । सर्वप्रथम षडङ्गपूजा करनी चाहिए । उसकी विधि इस प्रकार है -

ॐ क्रां हृदयाय नमः आग्नेये, क्रीं शिरसे स्वाहा, ईशाने,
ॐ क्रूं शिखायै वषट्, नैर्ऋत्ये, क्रैं कवचाय हुम् वायव्ये,
ॐ क्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् अग्रे, ॐ क्रः अस्त्राय फट् चतुर्दिक्षु,

इस विधि से पूजन कर तदनन्तर मूलमन्त्र पढ़कर 'अभीष्ट सिद्धिं में देहि ... **प्रथमावरणार्चन**' पर्यन्त पुष्पाञ्जलि समर्पित करनी चाहिए ।

तदनन्तर षट्कोणों में क्रमशः -

ॐ काल्यै नमः, ॐ कपालिन्यै नमः, ॐ कुल्लायै नमः,
ॐ कुरुकुल्लायै नमः, ॐ विरोधिन्यै नमः, ॐ विप्रचित्तायै नमः

इन मन्त्रों से पूजन कर मूलमन्त्र पढ़ें । फिर 'अभीष्ट सिद्धिं में देहि ... **द्वितीयावरणार्चन**' पर्यन्त मन्त्र बोलकर पुष्पाञ्जलि समर्पित करनी चाहिए ।

तदनन्तर तीनों त्रिकोणों में क्रमशः प्रथम त्रिकोण के तीन कोणों में ॐ उग्रायै नमः, ॐ उग्रप्रभायै नमः, ॐ दीप्तायै नमः - इन तीनों मन्त्रों से, तदनन्तर द्वितीय त्रिकोण के तीनों कोणों में ॐ नलायै नमः, घनायै नमः, वलाकायै नमः - इन तीन मन्त्रों से, तदनन्तर तृतीय त्रिकोण के तीनों कोणों में ॐ मात्रायै नमः, ॐ मुद्रायै नमः, ॐ मित्रायै नमः से पूजन करें, फिर मूलमन्त्र पढ़कर अभीष्टसिद्धि से लेकर **तृतीयावरणार्चन** पर्यन्त मन्त्र बोलकर पुष्पाञ्जलि समर्पित करनी चाहिए ।

तदनन्तर अष्टदल कमल में पूर्वादि दिशा क्रम से

ॐ ब्राह्म्यै नमः, ॐ नारायण्यै नमः, ॐ माहेश्वर्यै नमः,
ॐ चामुण्डायै नमः, ॐ कौमार्यै नमः, ॐ अपराजितायै नमः,
ॐ वाराह्यै नमः, ॐ नारसिंह्यै नमः

इन मन्त्रों से पञ्चोपचार पूजन कर 'अभीष्ट सिद्धिं मे ...' **चतुर्थावरणार्चन** पर्यन्त मन्त्र बोलकर पुष्पाञ्जलि समर्पित करनी चाहिए ।

तदनन्तर भूपुर के आठों दिशाओं में पूर्वादि क्रम से

ॐ महाभैरव्यै नमः, ॐ सिंहभैरव्यै नमः, ॐ धूम्रभैरव्यै नमः,
ॐ भीमभैरव्यै नमः, ॐ उन्मत्तभैरव्यै नमः, ॐ वशीकरणभैरव्यै नमः,
ॐ मोहनभैरव्यै नमः ॐ महाभैरव्यै नमः

इन मन्त्रों को पढ़कर पञ्चोपचार पूजन करें । फिर 'अभीष्टसिद्धिं मे देहि **पञ्चमावरणार्चन** पर्यन्त मन्त्र पढ़कर पुष्पाञ्जलि समर्पित करनी चाहिए ।

तदनन्तर भूपुर के बाहर पूर्वादि दिशाओं के क्रम से

ॐ इन्द्राय नमः, ॐ अग्नये नमः, ॐ यमाय नमः,
ॐ निर्ऋतये नमः, ॐ वरुणाय नमः, ॐ वायवे नमः,
ॐ सोमाय नमः, ॐ ईशानाय नमः,
ऊपर ॐ ब्रह्मणे नमः, अधः ॐ अनन्ताय नमः

इन मन्त्रों को पढ़कर पञ्चोपचार से दश दिक्पालों का पूजन कर मूलमन्त्र सहित 'अभीष्टसिद्धिं मे .....' से लेकर **षष्ठावरणार्चन** पर्यन्त मन्त्र पढ़कर पुष्पाञ्जलि समर्पित करनी चाहिए ।

तदनन्तर दिक्पालों के सन्निकट उनके आयुधों को पूर्वादिदिशाओं के क्रम से

ॐ वज्राय नमः, ॐ शक्तये नमः, ॐ दण्डायै नमः,
ॐ खड्गाय नमः, ॐ पाशाय नमः, ॐ अंकुशाय नमः,
ॐ गदायै नमः, ॐ त्रिशूलाय नमः, ॐ चक्राय,
ॐ पद्माय नमः

मन्त्र से पञ्चोपचार पूजन कर मूलमन्त्र सहित 'अभीष्ट सिद्धिं मे देहि .. ...' पर्यन्त मन्त्र पढ़कर **सप्तम, अष्टम** और **नवम** तीन बार पुष्पाञ्जलि समर्पित करनी चाहिए ।

इसके बाद मूल मन्त्र से गन्धादि उपचारों द्वारा देवी का पूजन कर मूलमन्त्र का जप करना चाहिए । निश्चित जप पूरा करने के पश्चात् प्रतिदिन 'गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वम्' इत्यादि मन्त्र पढ़कर देवी के बायें हाथ में जप समर्पित करना चाहिए । तदनन्तर प्रदक्षिणा और नमस्कार कर स्तोत्र और कवच का पाठ करना चाहिए ।

फिर देवी के अङ्गों में आवरण देवताओं को विलीन कर संहार मुद्रा द्वारा 'दक्षिण कालिके देवि क्षमस्व' पढ़कर देवी का विसर्जन करें । देवी के तेज को पुष्प में समाहित कर अपने हृदय में लगाकर आरोपित करें । नैवेद्य का कुछ अंश - 'ॐ उच्छिष्ट चाण्डालिन्यै नमः' । इस मन्त्र से ईशान कोण में रख देवें तथा निर्माल्य को मस्तक पर धारण करें ।

उक्त मन्त्र का पुरश्चरण दो लाख करना चाहिए । जिसमें एक लाख जप

ततः प्रयोगान् कुर्वीत महाभैरवभाषितान् ।
आत्मनोऽर्थे परस्यार्थे क्षिप्रसिद्धिप्रदायकान् ॥ २१ ॥
स्त्रीणां निन्दां प्रहारं च कौटिल्यं वाप्रियं वचः ।
आत्मनो हितमन्विच्छन् कालीभक्तो विवर्जयेत् ॥ २२ ॥

अस्य मन्त्रस्य नानाविधानानि नानाफलदानि

सुदृशो मदनावासं पश्यन् यः प्रजपेन्मनुम् ।
अयुतं सोऽचिरादेव वाक्पतेः समतामियात् ॥ २३ ॥
दिगम्बरो मुक्तकेशः श्मशानस्थोऽधियामिनि ।
जपेद्योऽयुतमेतस्य भवेयुः सर्वकामनाः ॥ २४ ॥
शावं हृदयमारुह्य निर्वासाः प्रेतभूगतः ।
अर्कपुष्पसहस्रेणाभ्यक्तेन स्वीयरेतसा ॥ २५ ॥
देवीं यः पूजयेद् भक्त्या जपन्नेकैकशो मनुम् ।
सोऽचिरेणैव कालेन धरणीप्रभुतां व्रजेत् ॥ २६ ॥

---

* ॥ २१–२२ ॥ मदनावासं भगम् ॥ २३ ॥ अधि यामिनि रात्रौ ॥ २४ ॥

दिन में पवित्र रहकर हविष्यान्न भोजन कर करें तथा एक लाख जप रात को ताम्बूल चर्वण कर शय्या पर बैठकर करें। जप पूरा होने पर पूर्ववत् दशांश होम, तर्पण मार्जन एवं ब्राह्मण भोजन करावें । तदनन्तर गुरुदेव को दक्षिणा प्रदान कर उनसे आशीर्वाद ग्रहण करे ॥ १४-२० ॥

पुरश्चरण द्वारा मन्त्र सिद्धि हो जाने पर महाभैरव द्वारा बतलाये गये शीघ्र सिद्धि प्रदायक काम्य प्रयोगों को अपने लिए अथवा अन्यों के लिए करना चाहिए ॥ २१॥

ध्यान रहे काली की सिद्धि चाहने वाले तथा अपना हित चाहने वाले साधकों को स्त्रियों की निन्दा, उन पर प्रहार, उनसे कुटिल व्यवहार अथवा अप्रिय कटुभाषण त्याग देना चाहिए ॥ २२ ॥

अब इस मन्त्र से **काम्य प्रयोग का विधान** कहते हैं -

सुन्दरी के गुप्ताङ्ग को देखते हुये जो साधक इस मन्त्र का दश हजार जप करता है वह शीघ्र ही वृहस्पति के तुल्य हो जाता है। रात्रि में श्मशान में बैठकर दिगम्बर एवं केशों को खोलकर कर जो इस मन्त्र का दश हजार जप करता है उसकी सारी कामनायें पूर्ण हो जाती हैं ॥ २३-२४ ॥

श्मशान में जाकर शव के हृदय पर आरूढ़ हो कर नग्न (विवस्त्र) हो जो साधक अपने वीर्य से अभ्यक्त आक के पुष्पों से एक-एक मन्त्र के साथ एक एक पुष्प द्वारा इस प्रकार एक हजार पुष्पों से देवी का भक्तिभाव से पूजन करता है वह शीघ्र ही भूपति बन जाता है ॥ २५-२६ ॥

रजःक्रीर्णभगं नार्या ध्यायन् योऽयुतमाजपेत्।
स कवित्वेन रम्येण जनान् मोहयति ध्रुवम् ॥ २७ ॥
त्रिपञ्चारे महापीठे शवस्य हृदि संस्थिताम्।
महाकालेन देवेन मारयुद्धं प्रकुर्वतीम् ॥ २८ ॥
तां ध्यायन् स्मेरवदनां विदधत् सुरतं स्वयम्।
जपेत् सहस्रमपि यः स शङ्करसमो भवेत् ॥ २९ ॥
अस्थिलोमत्वचायुक्तं मांसं मार्जारमेषयोः।
ऊष्ट्रस्य महिषस्यापि बलिं यस्तु समर्पयेत् ॥ ३० ॥
भूताष्टम्योर्मध्यरात्रे वश्याः स्युस्तस्य जन्तवः।
विद्यालक्ष्मीयशः पुत्रैः स चिरं सुखमेधते ॥ ३१ ॥
यो हविष्याशनरतो दिवा देवीं स्मरञ्जपेत्।
नक्तं निधुवनासक्तो लक्षं स स्याद् धरापतिः ॥ ३२ ॥
रक्ताम्भोजैर्हुतैर्मन्त्री धनैर्जयति वित्तपम्।
बिल्वपत्रैर्भवेद् राज्यं रक्तपुष्पैर्वशीकृतिः ॥ ३३ ॥

॥ २५–२७ ॥ त्रिगुणाः पञ्चाराः कोणा यस्येदृशं पीठे महाकालेन भर्त्रा मारयुद्धं सुरतं कुर्वन्तीम् ॥ २८ ॥ * ॥ २९–३७ ॥

स्त्री के रजः से आप्लुत भग का ध्यान करते हुये जो व्यक्ति दश हजार जप करता है वह अपनी उत्कृष्ट कविता द्वारा समस्त लोगों को निःसन्देह मोहितकर चकित कर देता है ॥ २७ ॥

त्रिगुणित पॉच अरों के कोणों वाले महापीठ पर शव के वक्षःस्थल पर बैठी हुई अपने पति महाकाल के साथ सुरत में प्रवृत्त स्मेरमुखी देवी का ध्यान करते हुये जो साधक स्वयं सुरत में प्रवृत्त होकर उक्त मन्त्र का एक हजार जप करता है वह शंकर के समान हो जाता है ॥ २८-२९ ॥

मार्जार, भेंड़, ऊँट अथवा भैसें के हड्डी, रोम एवं खाल सहित मांस से जो साधक कृष्ण पक्ष की अष्टमी अथवा चतुर्दशी तिथि की अर्धरात्रि में बलि देता है, सारे जन्तु उसके वश में हो जाते हैं । जो साधक दिन में हविष्यान्न भोजन कर देवी का स्मरण करते हुये जप करता है वह विद्या, लक्ष्मी, यश एवं पुत्र का चिरकाल पर्यन्त सुख प्राप्त करता है । रात्रि में निधुवन (सुरत) में आसक्त रहकर जो व्यक्ति इस मन्त्र का एक लाख जप करता है वह राजा हो जाता है ॥ ३०-३२ ॥

लाल कमलों के हवन से व्यक्ति राजमन्त्री बन जाता है और वह अपने धन से कुबेर को भी मात कर देता है । बिल्व पत्र के होम से राज्य की प्राप्ति होती है तथा लाल पुष्पों के हवन से वशीकरण की सिद्धि होती है ॥ ३३ ॥

असृजामहिषादीनां कालिकां यस्तु तर्पयेत्।
तस्य स्युरचिरादेव करस्थाः सर्वसिद्धयः॥ ३४॥
यो लक्षं प्रजपेन्मन्त्रं शवमारुह्य मन्त्रवित्।
तस्य सिद्धो मनुः सद्यः सर्वेप्सितफलप्रदः॥ ३५॥
तेनाश्वमेधप्रमुखैर्यागैरिष्टं सुजन्मना।
दत्तं दानं तपस्तप्तमुपास्ते यस्तु कालिकाम्॥ ३६॥
ब्रह्मा विष्णुः शिवो गौरी लक्ष्मीगणपती रविः।
पूजिताः सकला देवा यः कालीं पूजयेत् सदा॥ ३७॥

अथ कालीमन्त्रभेदास्तत्र एकविंशत्यर्णात्मको मन्त्रः

अथ कालीमन्त्रभेदा उच्यन्ते सिद्धिदायिनः।
मायायुगं कूर्चयुग्मं करशान्तिविधुत्रयम्॥ ३८॥

कालीमन्त्रभेदानाह – **मायेति** । कूर्च्चं हूं । करः स्वरूपम् । शान्तिरी ॥ विधुं बिन्दुः । क्रीं उक्तबीजानि व्युत्क्रमेण । स्वरूपमन्यत् । ॐ ह्रीं ह्रीं हूँ हूँ क्रीं क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं इत्येकविंशत्यर्णः ताराद्यः प्रणवाद्यः ॥ ३८॥ * ॥ ३६–४० ॥

भैंस आदि के रक्तों से जो व्यक्ति महाकाली का तर्पण करता है, समस्त सिद्धियाँ शीघ्र ही उसकी वशवर्त्तिनी हो जाती हैं ॥ ३४ ॥

जो मन्त्रवेत्ता शव पर बैठकर उक्त मन्त्र का एक लाख जप करता है, उसका मन्त्र सिद्ध हो जाता है तथा उसकी सारी मनोकामनायें शीघ्र ही पूर्ण हो जाती हैं ॥ ३५ ॥

जो व्यक्ति महाकाली की उपासना करता है, उस सुजन्मा ने अश्वमेधादि सर्वश्रेष्ठ यज्ञों को संपन्न कर लिया, उसने सभी दान एवं समस्त तप कर अपना जन्म सार्थक बना लिया ॥ ३६ ॥

जिस व्यक्ति ने सदैव महाकाली की उपासना कर ली, उसने ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गौरी, लक्ष्मी, गणपति, सूर्य एवं अन्य समस्त देवों का पूजन सम्पन्न कर लिया ॥ ३७ ॥

अब सिद्धिदायक **काली मन्त्रों का भेद** कहते हैं -

प्रथम तार (ॐ), फिर दो माया बीज (ह्रीं ह्रीं), फिर दो कूर्च (हूं हूं) करशान्ति विधु तीन (क्रीं क्रीं क्रीं) फिर दक्षिणे कालिके, तदनन्तर अन्त में विलोम क्रम से उक्त सातों बीज (क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं) लगाने से इक्कीस अक्षरों का मन्त्र निष्पन्न होता है, इसका पूजन एवं पुरश्चरण पूर्वोक्त विधि से करना चाहिए ॥ ३८-३९ ॥

दक्षिणेकालिके पूर्वबीजानि स्युर्विलोमतः।
एकविंशतिवर्णात्मा ताराद्यः पूर्ववद्यजिः॥ ३९॥
बिल्वमूले शवारूढो वटमूले तथैव च।
लक्षं मनुमिमं जप्त्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्॥ ४०॥

चतुर्दशार्णको मन्त्रो नृसुराद्याकर्षणक्षमः

काली कूर्चं च हृल्लेखा दक्षिणेकालिके पठेत्।
पुनर्बीजत्रयं वह्निवधूर्मन्वक्षरो मनुः॥ ४१॥
यजनं पूर्ववत् प्रोक्तमस्य मन्त्रस्य मन्त्रिभिः।
विशेषान्नृसुरादीनामयमाकर्षणे क्षमः॥ ४२॥

द्वाविंशत्यर्णो मन्त्रः वशीकरणक्षमः

कूर्चद्वयं[1] त्रयं काल्या मायायुग्मं तु दक्षिणे।

मन्त्रान्तरमाह -- **कालीति** । काली क्रीं । कूर्चं हूं । हृल्लेखा ह्रीं । वह्निवधूः स्वाहा । यथा – क्रीं हूं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं हूँ ह्रीं स्वाहेति । चतुर्दशार्णः ॥ ४१–४२ ॥ मन्त्रान्तरमाह – **कूर्चेति** । कूर्च्चं हूं हूं क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ॐ ह्रीं ह्रीं हूं हूं क्रीं क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूँ ह्रीं ह्रीं' ॥ ३८-३९ ॥

बिल्ववृक्ष के नीचे, अथवा शव पर, अथवा वट वृक्ष के नीचे बैठकर इस मन्त्र का एक लाख जप करने से साधक सभी सिद्धियों का स्वामी बन जाता है ॥ ४० ॥

अब चौदह अक्षरों वाले **काली मन्त्र का उद्धार** कहते हैं -

काली बीज (क्रीं) कूर्च (हूं) हृल्लेखा (ह्रीं), फिर 'दक्षिणे कालिके' यह पद, फिर तीनों बीज (क्रीं हूं ह्रीं), अन्त में वह्निवधू (स्वाहा) लगाने से चौदह अक्षरों का काली मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ ४१ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'क्रीं हूं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं हूं ह्रीं स्वाहा' ॥ ४१ ॥

मन्त्र शास्त्र वेत्ताओं ने इस मन्त्र का पुरश्चरण आदि पूर्वोक्त रीति से ही कहा है । यह मन्त्र मनुष्य तथा देवताओं के आकर्षण में विशेष रूप से सक्षम है ॥ ४२ ॥

अब **वशीकरण का अन्य मन्त्र** (मन्त्रराज) कहते हैं -

दो कूर्च (हूं हूं), तीन काली बीज (क्रीं क्रीं क्रीं), दो माया बीज

---

१. हूँ हूँ क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके हूँ हूँ क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं स्वाहा ।

कालिके पूर्वबीजानि स्वाहा मन्त्रो वशीकृतौ ॥ ४३ ॥

पञ्चदशार्णमन्त्रः

मन्त्रराजे पुनः प्रोक्तं बीजसप्तकमुत्सृजेत्[1] ।
तिथिवर्णो महामन्त्र उपास्तिः पूर्ववन्मता ॥ ४४ ॥
ब्रह्मरेफौ वामनेत्रं चन्द्रारूढं मनुर्मतः ।
एकाक्षरो महाकाल्याः सर्वसिद्धिप्रदायकः ॥ ४५ ॥

षडर्णमन्त्रः

बीजं दीर्घयुतश्चक्री पिनाकी नेत्रसंयुतः ।

ह्रीं । दक्षिणे कालिके पुनर्बीजानि स्वाहेति द्वाविंशत्यर्णः वशीकृतौ । क्षम इति शेषः ॥ ४३ ॥ मन्त्रान्तरमाह – **मन्त्रराजेति** । क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहेति पञ्चदशार्णः ॥ ४४ ॥ मन्त्रान्तरम् – **ब्रह्मेति** । ब्रह्मा कः वामनेत्रे ई क्रीं ॥ ४५ ॥ षडङ्गमाह – **बीजमिति** । बीजं क्रौं दीर्घयुतश्च क्रीं

(ह्रीं ह्रीं), फिर 'दक्षिणे कालिके' यह पद, तदनन्तर पुनः उक्त सात बीज फिर उसमें 'स्वाहा' लगाने से यह बाईस अक्षरों का मन्त्र निष्पन्न होता है । वशीकरण के लिए इस मन्त्र का प्रयोग विशेष रूप से किया जाता है ॥ ४३ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'हूं हूं क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं दक्षिणेकालिके हूं हूं क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं स्वाहा' ।

इस मन्त्र का विनियोग, न्यास तथा पुरश्चरण पूर्वोक्त है । इसकी जप संख्या एक लाख मानी गई है ॥ ४३ ॥

उक्त मन्त्रराज मन्त्र से अन्त के सात बीजाक्षरों को निकाल देने से पन्द्रह अक्षरों का एक और मन्त्र बन जाता है । इसका भी पुरश्चरण पूर्ववत् है ॥ ४४ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'हूं हूं क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहा' ॥ ४४ ॥

अब **काली एकाक्षर मन्त्र का उद्धार** कहते हैं -

वामनेत्र (ई) चन्द्र (अनुस्वार) से युक्त ब्रह्म और रेफ (क्‌र्) यह काली का एकाक्षर मन्त्र समस्त सिद्धियों को देने वाला है ॥ ४५ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'क्रीं' ॥ ४५ ॥

अब **महाकाली के षडक्षर मन्त्र का उद्धार** कहते हैं -

कालीबीज (क्रीं), दीर्घ से युक्त चक्री (का), नेत्रयुक्तपिनाकी (लि),

---

१. क्रीं क्रीं क्रीं हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं दक्षिणकालिके स्वाहा ।

दक्षिणेकालिके पूर्वबीजानि स्युर्विलोमतः।
एकविंशतिवर्णात्मा ताराद्यः पूर्ववद्यजिः ॥ ३६ ॥
बिल्वमूले शवारूढो वटमूले तथैव च।
लक्षं मनुमिमं जप्त्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥ ४० ॥

चतुर्दशार्णको मन्त्रो नृसुराद्याकर्षणक्षमः

काली कूर्चं च ह्रल्लेखा दक्षिणेकालिके पठेत्।
पुनर्बीजत्रयं वह्निवधूर्मन्वक्षरो मनुः ॥ ४१ ॥
यजनं पूर्ववत् प्रोक्तमस्य मन्त्रस्य मन्त्रिभिः।
विशेषान्नृसुरादीनामयमाकर्षणे क्षमः ॥ ४२ ॥

द्वाविंशत्यर्णो मन्त्रः वशीकरणक्षमः

कूर्चद्वयं[1] त्रयं काल्या मायायुग्मं तु दक्षिणे।

मन्त्रान्तरमाह -- **कालीति** । काली क्रीं । कूर्चं हूं । ह्रल्लेखा ह्रीं । वह्निवधूः स्वाहा । यथा – क्रीं हूं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं हूँ ह्रीं स्वाहेति । चतुर्दशार्णः ॥ ४१–४२ ॥ मन्त्रान्तरमाह – **कूर्चेति** । कूर्च्चं हूं हूं क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ॐ ह्रीं ह्रीं हूं हूं क्रीं क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूँ ह्रीं ह्रीं' ॥ ३८-३६ ॥

बिल्ववृक्ष के नीचे, अथवा शव पर, अथवा वट वृक्ष के नीचे बैठकर इस मन्त्र का एक लाख जप करने से साधक सभी सिद्धियों का स्वामी बन जाता है ॥ ४० ॥

अब चौदह अक्षरों वाले **काली मन्त्र का उद्धार** कहते हैं -

काली बीज (क्रीं) कूर्च (हूं) ह्रल्लेखा (ह्रीं), फिर 'दक्षिणे कालिके' यह पद, फिर तीनों बीज (क्रीं हूं ह्रीं), अन्त में वह्निवधू (स्वाहा) लगाने से चौदह अक्षरों का काली मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ ४१ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'क्रीं हूं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं हूं ह्रीं स्वाहा' ॥ ४१ ॥

मन्त्र शास्त्र वेत्ताओं ने इस मन्त्र का पुरश्चरण आदि पूर्वोक्त रीति से ही कहा है । यह मंन्त्र मनुष्य तथा देवताओं के आकर्षण में विशेष रूप से सक्षम है ॥ ४२ ॥

अब **वशीकरण का अन्य मन्त्र** (मन्त्रराज) कहते हैं -

दो कूर्च (हूं हूं), तीन काली बीज (क्रीं क्रीं क्रीं), दो माया बीज

---

१. हूँ हूँ क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके हूँ हूँ क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं स्वाहा ।

कालिके पूर्वबीजानि स्वाहा मन्त्रो वशीकृतौ ॥ ४३ ॥

पञ्चदशार्णमन्त्रः

मन्त्रराजे पुनः प्रोक्तं बीजसप्तकमुत्सृजेत्[1] ।
तिथिवर्णो महामन्त्र उपास्तिः पूर्ववन्मता ॥ ४४ ॥
ब्रह्मरेफौ वामनेत्रं चन्द्रारूढं मनुर्मतः ।
एकाक्षरो महाकाल्याः सर्वसिद्धिप्रदायकः ॥ ४५ ॥

षडर्णमन्त्रः

बीजं दीर्घयुतश्चक्री पिनाकी नेत्रसंयुतः ।

ह्रीं । दक्षिणे कालिके पुनर्बीजानि स्वाहेति द्वाविंशत्यर्णः वशीकृतौ । क्षम इति शेषः ॥ ४३ ॥ मन्त्रान्तरमाह – **मन्त्रराजेति** । क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहेति पञ्चदशार्णः ॥ ४४ ॥ मन्त्रान्तरम् – **ब्रह्मेति** । ब्रह्मा कः वामनेत्रे ई क्रीं ॥ ४५ ॥ षडङ्गमाह – **बीजमिति** । बीजं क्रौं दीर्घयुतश्च क्रीं

(ह्रीं ह्रीं), फिर 'दक्षिणे कालिके' यह पद, तदनन्तर पुनः उक्त सात बीज फिर उसमें 'स्वाहा' लगाने से यह बाईस अक्षरों का मन्त्र निष्पन्न होता है । वशीकरण के लिए इस मन्त्र का प्रयोग विशेष रूप से किया जाता है ॥ ४३ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'हूं हूं क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं दक्षिणेकालिके हूं हूं क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं स्वाहा' ।

इस मन्त्र का विनियोग, न्यास तथा पुरश्चरण पूर्वोक्त है । इसकी जप संख्या एक लाख मानी गई है ॥ ४३ ॥

उक्त मन्त्रराज मन्त्र से अन्त के सात बीजाक्षरों को निकाल देने से पन्द्रह अक्षरों का एक और मन्त्र बन जाता है । इसका भी पुरश्चरण पूर्ववत् है ॥ ४४ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'हूं हूं क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहा' ॥ ४४ ॥

अब **काली एकाक्षर मन्त्र का उद्धार** कहते हैं -

वामनेत्र (ई) चन्द्र (अनुस्वार) से युक्त ब्रह्म और रेफ (क्र्) यह काली का एकाक्षर मन्त्र समस्त सिद्धियों को देने वाला है ॥ ४५ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'क्रीं' ॥ ४५ ॥

अब **महाकाली के षडक्षर मन्त्र का उद्धार** कहते हैं -

कालीबीज (क्रीं), दीर्घ से युक्त चक्री (का), नेत्रयुक्तपिनाकी (लि),

---

१. क्रीं क्रीं क्रीं हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं दक्षिणकालिके स्वाहा ।

क्रोधीशो भगवान्स्वाहा षडर्णो मन्त्र ईरितः ॥ ४६ ॥

पञ्चार्णमन्त्रः, सप्तार्णमन्त्रश्च

काली कूर्च तथा लज्जा त्रिवर्णो मनुरीरितः ।
हुं फडन्तश्च पञ्चार्णः स्वाहान्तः सप्तवर्णकः ॥ ४७ ॥
एतेषां पूर्ववत् प्रोक्तं यजनं नारदादिभिः ।
निग्रहानुग्रहे शक्ताः कालीमन्त्राः स्मृता इमे ॥ ४८ ॥

क्रां । नेत्रयुतः पिनाकी लि । भगमेकारस्तद्युतः क्रोधीशः के, क्रीं कालिके स्वाहेति ॥ ४६ ॥ मन्त्रान्तरम् – **कालीति** । क्रीं हूं ह्रीं । क्रीं हूं ह्रीं हुं फडिति पञ्चार्णः । क्रीं हूं ह्रीं हुं फट् स्वाहेति सप्तार्णः ॥ ४७–४८ ॥

भगसहित क्रोधीश (के), तदनन्तर 'स्वाहा' लगा देने से ६ अक्षरों का मन्त्र निष्पन्न हो जाता है ॥ ४६ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'क्रीं कालिके स्वाहा' ॥ ४६॥

काली का त्रिवर्ण, पञ्चवर्ण एवं **सप्तवर्णात्मक मन्त्र** -

कालीबीज (क्रीं), कूर्च (हूं) एवं लज्जा (ह्रीं) ये तीन बीज त्रिवर्ण हैं, इन बीजाक्षरों के आगे 'हुं फट्' लगा देने से पञ्चवर्ण मन्त्र बन जाता है । उसके आगे 'स्वाहा' लगा देने से वह सप्तवर्ण मन्त्र हो जाता है ॥ ४७ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है -

'क्रीं हूं ह्रीं' - **त्रिवर्ण मन्त्र,**
'क्रीं हूं ह्रीं हुं फट्' - **पञ्चवर्ण मन्त्र**
'क्रीं हूं ह्रीं हुं फट् स्वाहा' यह **सप्तवर्ण मन्त्र** है ॥ ४७ ॥

नारदादि महार्षियों ने इन सब मन्त्र का विनियोग, ध्यान, पूजन, एवं पुरश्चरण विधि पूर्ववत् कहा है । अब तक कहे गये काली के ये सभी मन्त्र निग्रह और अनुग्रह में समर्थ हैं ॥ ४८ ॥

विमर्श - प्रस्तुत तरङ्ग में दक्षिणकाली के कुल दश मन्त्रों का वर्णन किया गया है, जो निम्नलिखित है -

१ - **द्वाविंशत्यक्षर मन्त्र** - 'क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा' ।

२ - **एकविंशत्यक्षर मन्त्र** - 'ॐ ह्रीं ह्रीं हूं हूं क्रीं क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं' ।

३ - **चतुर्दशाक्षर मन्त्र** - 'क्रीं हूं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं हूं ह्रीं स्वाहा' ।

४ - **द्वाविंशत्यक्षर मन्त्र** - 'हूं हूं क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके हूं हूं क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं स्वाहा' ।

५ - **पञ्चदशाक्षर मन्त्र** - 'क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहा' ।

द्वाविंशत्यर्णात्मको गायत्रीसुमुखीमन्त्रः

अथ वक्ष्ये परां विद्यां सुमुखीमतिगोपिताम् ।
यां लब्ध्वा देशिको विद्वान्न शोचति कृताकृते ॥ ४६ ॥
कर्णो द्युतिः सनयना श्वेतेशः स्याज्जरासनः ।

सुमुखीं वक्तुं प्रतिजानीते – **अथेति** ॥ ४६ ॥

---

६ - **एकाक्षर मन्त्र** - 'क्रीं' ।
७ - **त्रिवर्ण मन्त्र** - 'क्रीं हूं ह्रीं' ।
८ - **पञ्चाक्षर मन्त्र** - 'क्रीं हूं ह्रीं हुं फट्' ।
९ - **षडक्षर मन्त्र** - 'क्रीं कालिके स्वाहा' ।
१० - **सप्ताक्षर मन्त्र** - 'क्रीं हूं ह्रीं फट् स्वाहा' ।

इन समस्त मन्त्रों के ऋषि भैरव हैं । प्रारम्भ के पाँच मन्त्रों का छन्द उष्णिक् तथा शेष का विराट् छन्द है । समस्त मन्त्रों की देवता दक्षिण काली हैं । इनके अनुसार विनियोग तथा ऋष्यादिन्यास कर लेना चाहिए ।

अब सब मन्त्रों का **कराङ्गन्यास** एवं **अङ्गन्यास** निम्नलिखित होता है -

ॐ क्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः । हृदयाय नमः ।
ॐ क्रीं तर्जनीभ्यां नमः । शिरसे स्वाहा ।
ॐ क्रूं मध्यमाभ्यां नमः । शिखायै वषट् ।
ॐ क्रैं अनामिकाभ्यां नमः । कवचाय हुम् ।
ॐ क्रौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः । नेत्रत्रयाय वौषट् ।
ॐ क्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः । अस्त्राय फट् ।

इन समस्त मन्त्रों का ध्यान निम्नलिखित है -

'सद्यश्छिन्नशिरः कृपाणमभयं हस्तैर्वरं बिभ्रतीं,
घोरास्यां शिरसांस्रजासुरुचिरामुन्मुक्तकेशावलिम् ।
सृक्क्यसृक् प्रवहां श्मशाननिलयां श्रूत्योः शवालंकृतिं,
श्यामागीं कृतमेखलां शवकरैर्देवीं भजे कालिकाम्' ॥

उपर्युक्त समस्त मन्त्रों की पूजाविधि, पुरश्चरण विधि एवं जपसंख्या दक्षिण कालिका के पूर्वोक्त मन्त्र के समान हैं ॥ ४८ ॥

अब अत्यन्त गोपनीय **पराविद्या समुखी मन्त्र का उद्धार** कहते हैं -

इस मन्त्र को प्राप्त कर लेने के पश्चात् विद्वान् साधक अपने कर्तव्याकर्तव्य के बारे में नहीं सोंचते ॥ ४९ ॥

कर्ण (उकार), द्युतिसनयना (च्छि), जरासन श्वेतेश कर्णो (ष्ट), 'दीर्घेन्दु संयुक्ता लक्ष्मी (चां), दीर्घनन्दी (डा), सदृक् क्रिया (लि), समाधव मेष (नि),

लक्ष्मीर्दीर्घेन्दुसंयुक्ता नन्दीदीर्घः सदृक्क्रिया ॥ ५० ॥
मेषः समाधवः कर्णो भृगुस्तन्द्री च सेन्धिका ।
खिदेविम वियद्दीर्घं पिशाचिनि हिमाद्रिजा ॥ ५१ ॥
नन्दजत्रितयं सर्गिद्वाविंशत्यक्षरो मनुः ।
स्मृता भैरवगायत्री सुमुखीमुनिपूर्विका ॥ ५२ ॥
मुनिरामद्विषट्चन्द्रे वह्न्यर्णैरङ्गकं मनोः ।
विन्यस्य सुमुखीं ध्यायेद् भक्तचित्ताम्बुजस्थिताम् ॥ ५३ ॥

मन्त्रमुद्धरति – **कर्ण** इति । कर्ण उ । सनयनाद्युतिः इयुतश्छः च्छिः । जरासनः श्वेतेशः । टकारस्थः षः ष्टः । लक्ष्मीश्चः । दीर्घेन्दुसंयुक्ता आबिन्दुयुता चां । दीर्घो नन्दी डा । सदृक् क्रिया इयुतो लः लि । समाधवो मेषः इयुतो नः नि । कर्णो भृगुः सः उयुतः सु । सेन्धिका तन्द्री मः उयुतो मु । खि देवि म स्वरूपं । दीर्घं वियत् हा । पिशाचिनि स्वरूपम् । हिमाद्रिजा ह्रीं । सर्गिनन्दज त्रितयम् । विसर्गयुक्तठकारत्रयम् । यथा – उच्छिष्टचाण्डालिनि सुमुखि देवि महापिशाचिनि ह्रीं ठः ठः ठः द्वाविंशत्यर्णः । मुनिपूर्वाः ऋषिच्छन्दो देवताः ॥ ५०–५२ ॥ षडङ्गमाह – **मुनीति** ॥ ५३ ॥

भृगु (सु), सेन्धिका तन्द्री (मु), फिर 'खिदेविम' शब्द फिर दीर्घवियत् 'हा' तदनन्तर 'पिशाचिनि' फिर हिमाद्रिजा (ह्रीं) और अन्त में विसर्ग सहित नन्दज त्रितय (ठः ठः ठः) लगाना चाहिए । इस प्रकार बाईस अक्षरों का यह मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ ५०-५१ ॥

विमर्श – मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है – 'उच्छिष्ट चाण्डालिनि सुमुखि देवि महापिशाचिनि ह्रीं ठः ठः ठः' ॥ ५०-५१ ॥

इस मन्त्र के भैरव ऋषि, गायत्री छन्द तथा सुमुखी देवता हैं । इसके ७, ३, २, ६, १ एवं ३ अक्षरों से षडङ्गन्यास करना चाहिए । षडङ्गन्यास के अनन्तर भक्तों के हृदय कमल पर विराजमान सुमुखी देवी का (आगे के श्लोक ५४ के अनुसार) ध्यान करना चाहिए ॥ ५२-५३ ॥

विमर्श – विनियोग – 'अस्य श्रीसुमुखीमन्त्रस्य भैरवऋषिर्गायत्रीछन्दः श्रीसुमुखीदेवता आत्मनोऽभीष्टसिद्धये सुमुखीमन्त्रजपे विनियोगः'[1] ।

षडङ्गन्यास – ॐ उच्छिष्टचाण्डालिनि हृदयाय नमः,
ॐ सुमुखि शिरसे स्वाहा, ॐ देवि शिखायै वषट्,
ॐ महापिशाचिनि कवचाय हुम्, ॐ ह्रीं नेत्रत्रयाय वौषट्,
ॐ ठः ठः ठः अस्त्राय फट् ॥ ५२-५३ ॥

---

१. अस्य श्रीसुमुखीमन्त्रस्य भैरवऋषिर्गायत्रीछन्दः श्रीसुमुखीदेवता ममाऽभीष्टसिद्ध्यर्थे सुमुखीमन्त्रजपे विनियोगः ।

सुमुखीध्यानम्

गुञ्जानिर्मितहारभूषितकुचां सद्यौवनोल्लासिनीं
हस्ताभ्यां नृकपालखड्गलतिके रम्ये मुदा बिभ्रतीम्।
रक्तालंकृतिवस्त्रलेपनलसद्देहप्रभां ध्यायतां
नृणां श्रीसुमुखीं शवासनगतां स्युः सर्वदा सम्पदः ॥ ५४॥

मन्त्रसिद्धेर्विधानम्

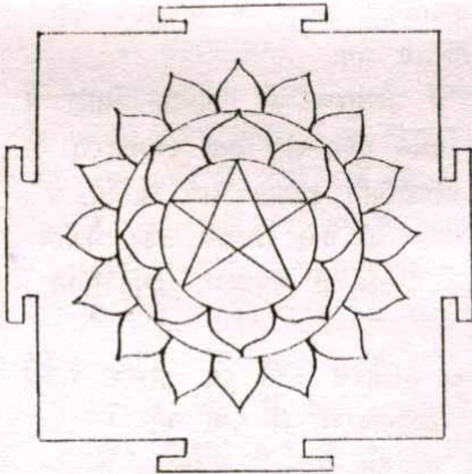
लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं दशांशं किंशुकोद्भवैः।
पुष्पैः समिद्वरैर्वापि जुहुयान्मन्त्रसिद्धये ॥ ५५॥
कालीपीठे यजेद् देवीं पञ्चकोणाढ्यकर्णिके।
अष्टपत्रे षोडशाब्जे वृत्तं भूपुरसंयुते ॥ ५६॥

ध्यानमाह – **गुञ्जेति** । एवंविधां सुमुखीं ध्यायतां नृणां सर्वदा सम्पदः स्युरित्यन्वयः । खड्गलता दक्षे, कपालं वामे ॥ ५४ ॥ * ॥ ५५ ॥ कर्णिकायां पञ्चकोणम् । उपर्यष्टपत्रम् । तदुपरि षोडशदलम् । तदुपरि चतुष्कोणमिति पूजायन्त्रम् ॥ ५६ ॥ * ॥ ५७–६० ॥

अब **सुमुखी के ध्यान के लिए उनका स्वरूप** कहते हैं –

गुञ्जानिर्मित हार से जिनके स्तन शोभा को प्राप्त हो रहे हैं, यौवन से उदीप्त कान्तिवाली जिन प्रसन्न भगवती के दाहिने हाथ में रम्य खड्गलता एवं बायें हाथ में नृकपाल हैं रक्तवर्ण के अलङ्कार, रक्तवर्ण के वस्त्र और रक्त वर्ण के आलेपन से जिनके श्री अङ्गों की शोभा जगमगा रही है, जो शवासन पर विराजमान हैं और जो ध्यान करने वाले अपने भक्तों को सर्वदा श्री संपदा प्रदान करती हैं, ऐसी सुमुखी का मैं ध्यान करता हूँ ॥ ५४ ॥

सुमुखीपूजनयन्त्रम्



उक्त मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिए, फिर मन्त्रसिद्धि के लिए किंशुक पुष्पों एवं उसकी समिधाओं से दशांश हवन करना चाहिए ॥ ५५ ॥

सुमुखी पूजन की विधि - पञ्चकोण की कर्णिका, फिर अष्टदल और उसके ऊपर षोडश दल एवं भूपुर सहित यन्त्र में काली पीठ पर सुमुखी देवी का पूजन करना चाहिए ॥ ५६ ॥

मूलेन मूर्तिं संकल्प्य पाद्यादीनि प्रकल्पयेत्।
चन्द्रां चन्द्राननां चारुमुखीं चामीकरप्रभाम्॥ ५७॥
चतुरां पञ्चकोणेषु केसरेष्वङ्गदेवताः।
ब्राह्म्याद्या अष्टपत्रेषु षोडशारे कलादिकाः॥ ५८॥
कला कलानिधिः काली कमला च क्रिया कृपा।
कुला कुलीना कल्याणी कुमारी कलभाषिणी॥ ५९॥
करालाख्या किशोरी च कोमला कुलभूषणा।
कल्पदा भूपुरे पूज्या इन्द्राद्या हेतयोऽपि च॥ ६०॥

मूल मन्त्र से यन्त्र में देवी की मूर्ति की कल्पना करनी चाहिए । तदनन्तर पाद्य, अर्घ्य आदि उपचारों से उनकी पूजा कर पञ्चकोणों में चन्द्रा, चन्द्रानना, चारुमुखी, चामीकरप्रभा तथा चतुरा का पूजन करना चाहिए । केशरों में अङ्गपूजा तथा अष्टदलों में क्रमशः ब्राह्मी आदि का पूजन कर षोडशदलों में कला, कलानिधि, काली, कमला, क्रिया, कृपा, कुला, कुलीना, कल्याणी, कुमारी, कलभाषिणी, कराला, किशोरी, कोमला, कुलभूषणा और कल्पदा का पूजन करना चाहिए । फिर भूपुर में इन्द्रादि दश दिक्पालों का तथा उनके वज्रादि आयुधों का पूजन करना चाहिए ॥ ५७-६० ॥

विमर्श - पुरश्चरण का प्रकार - प्रथमतः ५४ श्लोक में कहे गये सुमुखी देवी के स्वरूप का ध्यान करें । पुनः मानसोपचार से पूजन कर काली देवी के पूजन में कही गयी विधि के अनुसार पीठ शक्तियों का पूजन तथा पीठ पूजन कर यन्त्र में सुमुखी देवी की मूर्त्ति की कल्पना कर अर्घ्य से लेकर पुष्पाञ्जलि पर्यन्त उनकी पूजा करें । कर्णिका के पाँच कोणों में क्रमशः -

ॐ चन्द्रायै नमः, ॐ चन्द्राननायै नमः, ॐ चारुमुख्यै नमः,
ॐ चामीकरप्रभायै नमः, ॐ चतुरायै नमः

इन मन्त्रों से पूजन कर मूल मन्त्र से उच्चारण कर 'अभीष्ट सिद्धिं मे देहि .....' इत्यादि मन्त्र का उच्चारण कर प्रथम पुष्पाञ्जलि तथा **प्रथमावरण** की पूजा करें । यथा - ॐ उच्छिष्ट चाण्डालिनि हृदयाय नमः आग्नेये,
ॐ सुमुखि शिरसे स्वाहा ईशाने, ॐ देवि शिखायै वषट् नैर्ऋत्ये,
ॐ महापिशाचिनि कवचाय हुं वायव्ये, ॐ ह्रीं नेत्रत्रयाय वौषट् मध्ये,
ॐ ठः ठः ठः अस्त्राय फट् चतुर्दिक्षु

इन मन्त्रों से पूजन कर मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुए 'अभीष्ट सिद्धिं मे देहि .....' से द्वितीय पुष्पाञ्जलि तथा **द्वितीयावरण** की पूजा करें ।

तदनन्तर अष्टदल में पूर्वादि दिशाओं के क्रम से -
ॐ ब्राह्म्यै नमः, ॐ नारायण्यै नमः, ॐ माहेश्वर्यै नमः, ॐ चामुण्डायै नमः
ॐ कौमार्यै नमः, ॐ अपराजितायै नमः, ॐ वाराह्यै नमः, ॐ नारसिंह्यै नमः

इन मन्त्रों से पूजन कर मूल मन्त्र का उच्चारण कर 'अभीष्ट सिद्धिं मे

इत्थं जपादिभिः सिद्धे मनौ काम्यानि साधयेत् ।
भुक्त्वौदनमनाचम्य जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ॥ ६१ ॥

प्रयोगफलकथनम्

उच्छिष्टोऽयुतमेकं यः स भवेत् सम्पदां पदम् ।
उच्छिष्टेनैव भक्तेन बलिं दद्यान्निरन्तरम् ॥ ६२ ॥

प्रयोगानाह – **भुक्त्वेति** ॥ ६१ ॥ * ॥ ६२–६७ ॥

देहि ...' से तृतीय पुष्पाञ्जलि एवं **तृतीयावरण** की पूजा करें ।

तत्पश्चात् षोडशदलों में यथाक्रम - ॐ कलायै नमः,
ॐ कलानिधये नमः, ॐ काल्यै नमः, ॐ कमलायै नमः,
ॐ क्रियायै नमः, ॐ कृपायै नमः, ॐ कुलायै नमः,
ॐ कुलीनायै नमः, ॐ कल्याण्यै नमः, ॐ कुमार्यै नमः,
ॐ कलभाषिण्यै नमः, ॐ करालायै नमः, ॐ किशोर्य्यै नमः,
ॐ कोमलायै नमः, ॐ कुलभूषणायै नमः, ॐ कल्पदायै नमः

इन मन्त्रों से पूजन कर मूलमन्त्र एवं 'अभीष्ट सिद्धिं मे देहि .....' मन्त्र बोल कर चतुर्थ पुष्पाञ्जलि एवं **चतुर्थावरण** की पूजा करनी चाहिए ।

फिर भूपुर में पूर्वादि दिशाओं के क्रम से - ॐ इन्द्राय नमः,
ॐ अग्नये नमः, ॐ यमाय नमः, ॐ निर्ऋतये नमः,
ॐ वरुणाय नमः, ॐ वायवे नमः, ॐ सोमाय नमः,
ॐ ईशानाय नमः, ॐ ब्रह्मणे नमः ऊर्ध्व, ॐ अनन्ताय नमः, अधः

इन मन्त्रों से दश दिक्पालों का पूजन करें । तत्पश्चात् उसके आगे -
ॐ वज्राय नमः, ॐ शक्त्यै नमः, ॐ दण्डाय नमः,
ॐ खड्गाय नमः, ॐ पाशाय नमः, ॐ अंकुशाय नमः,
ॐ गदायै नमः, ॐ त्रिशूलाय नमः, ॐ चक्राय नमः, ॐ पद्माय नमः

इन मन्त्रों से उनके दश आयुधों की पूजा कर मूलमन्त्र पढ़कर 'अभीष्ट सिद्धिं ...' से पञ्चम एवं षष्ठ पुष्पाञ्जलि तथा **पञ्चम और षष्ठ आवरण** की पूजा करें ।

आवरण पूजा के पश्चात् मूल मन्त्र द्वारा देवी की गन्धादि उपचारों से पूजाकर देवी को पूजा समर्पित कर नैवेद्य ग्रहण कर उच्छिष्ट मुख से मूल मन्त्र का जप कर पूर्ववत् दशांश होम, तर्पण, मार्जन एवं ब्राह्मण भोजन सम्पन्न करावें । इस प्रकार मन्त्र सिद्ध हो जाने पर साधक काम्य प्रयोग का अधिकारी हो जाता है ॥ ५७-६० ॥

अब **सुमुखी मन्त्र से काम्य प्रयोग** कहते हैं -

उक्त पुरश्चरण से मन्त्र सिद्ध हो जाने पर साधक को काम्य प्रयोग करना चाहिए - भात खाकर आचमन किए बिना एकाग्र चित्त से उच्छिष्ट होकर जो व्यक्ति इस मन्त्र का १० हजार जप करता है वह सब प्रकार की सम्पत्ति प्राप्त करता है । जप के अनन्तर निरन्तर उसी उच्छिष्ट भात की बलि देनी चाहिए ॥ ६१-६२ ॥

दध्नाभ्यक्तैः प्रजुहुयाल्लक्षं सिद्धार्थतण्डुलैः ।
राजानो मन्त्रिणस्तस्य भवन्ति वशगाः क्षणात् ॥ ६३ ॥
शास्त्राणि वशगानि स्युर्हुतान्मार्जारमांसतः ।
धनर्द्धिश्छागमांसेन विद्याप्राप्तिस्तु पायसैः ॥ ६४ ॥
मधुपायससंयुक्तस्त्रीरजोयुक्तवाससा ।
होममाचरतः पुंसो जनतावशवर्तिनी ॥ ६५ ॥
मधुसर्पिर्युतैर्नागवल्लीपत्रैर्महाश्रियः ।
सद्यो निहतमार्जारमांसेन मधुसर्पिषा ॥ ६६ ॥
युक्तेनान्त्यजकेशाद्यैर्हुतैराकर्षति स्त्रियः ।
मध्वक्तशशमांसेन तत्फलं विद्यया सह ॥ ६७ ॥
उन्मत्ततरुभिर्दीप्ते चिताग्नौ जुहुयाच्छदैः ।
कोकिला काकयोर्मन्त्रीमाचरेदचिरादरीन् ॥ ६८ ॥
वायसोलूकयोः पत्रैर्होमाद्विद्वेषयेदरीन् ।
गर्भपातः सगर्भाणामुलूकच्छदनैर्भवेत् ॥ ६९ ॥
आज्याक्तैर्बिल्वपत्रैर्यो मासमेकं सहस्रकम् ।
प्रत्यहं जुहुयात्तेन बन्ध्यापि लभते सुतम् ॥ ७० ॥

उन्मत्तो धत्तूरः । छदैः पक्षैः ॥ ६८ ॥ * ॥ ६९–७२ ॥

जो व्यक्ति भात में दही मिलाकर एक लाख आहुति देता है राजा एवं राजमन्त्री तत्काल उसके वश में हो जाते हैं । मार्जार के मांस का होम करने से व्यक्ति सभी शास्त्रों का पारङ्गत विद्वान् हो जाता है, छागमांस के होम से धन की अभिवृद्धि तथा पायस के होम से विद्या प्राप्त होती है ॥ ६३-६४ ॥

रजस्वला स्त्री के वस्त्र के टुकड़ों को मधु एवं पायस में मिलाकर होम करने वाला व्यक्ति समस्त जनसमूह को अपने वश में कर लेता है । मधु, घी, तथा पान के होम से श्रीवृद्धि होती है । तत्काल मारे गये मार्जार के मांस में मधु, घी एवं अन्त्यज के केश मिलाकर होम करने से स्त्री आकर्षित होती है । मधुमिश्रित शशक (खरगोश) के मांस के होम से विद्या के साथ उक्त फल की प्राप्ति होती है ॥ ६५-६७ ॥

उन्मत्त (धतूरे) की लकड़ी से प्रज्वलित चिता की अग्नि में कोकिल एवं काक के पंखों का होम करने से मन्त्रवेत्ता सद्यः अपने शत्रुओं को वश में कर लेता है । काक एवं उलूक के पंखों को मिश्रित कर होम करने से शत्रुओं में विद्वेष हो जाता है । उल्लू के पंखों के होम से गर्भिणी स्त्री का गर्भ गिर जाता है । घी मिश्रित बिल्वपत्रों द्वारा एक मास तक प्रतिदिन एक हजार होम करने से बन्ध्या स्त्री को भी पुत्र की प्राप्ति हो जाती है ॥ ६८-७० ॥

मधुमिश्रित बन्धूक के नवीन पुष्पों से होम करने से भाग्यहीन स्त्री

सौभाग्यार्थं दुर्भगाया बन्धूककुसुमैर्नवैः ।
मधुनाक्तैः प्रजुहुयात् स्त्रीणामाकृष्टयेर्पितैः ॥ ७१ ॥
निर्जने सदनेऽरण्ये प्रेतावासे चतुष्पथे ।
बलिं दत्त्वा प्रजपतः सहस्रं चाष्टसंयुतम् ॥ ७२ ॥
उच्छिष्टस्य च सा देवी प्रत्यक्षा जायतेऽचिरात् ।
यत्र नोक्ता होमसंख्यायुतं तत्र विनिर्दिशेत् ॥ ७३ ॥
वाममार्गेण सुमुखी शीघ्रं कामविधायिनी ।
भोजनान्ते तथोच्छिष्टैर्जप्या सा स्वेष्टसिद्धये ॥ ७४ ॥
न शीघ्र फलदा देवी सुमुखी सदृशी परा ।
यस्या मन्त्रजपादेव प्रसिध्यन्ति मनोरथाः ॥ ७५ ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचिते मन्त्रमहोदधौ कालीसुमुखी–
मन्त्रोक्तिस्तृतीयस्तरङ्गः ॥ ३ ॥



उच्छिष्टस्य बलिं दत्त्वेति पूर्वेणान्वयः ॥ ७३ ॥ * ॥ ७४–७५ ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचित मन्त्रमहोदधिव्याख्यायां नौकायां
कालीमन्त्रकथनं नाम तृतीयस्तरङ्गः ॥ ३ ॥



सौभाग्यवती हो जाती है । निर्जन स्थान, उजाड़ घर, वन, श्मशान एवं चौराहे पर बलि समर्पित कर उच्छिष्ट होकर (जूठे मुँह) १००८ बार इस मन्त्र का जप करने से सुमुखी देवी शीघ्र प्रत्यक्ष होकर अपने साधक पर कृपा करने लगती हैं।

पूर्वोक्त होम प्रकरण में जहाँ आहुतियों की संख्या नहीं कही गई है वहाँ दश हजार आहुतियों की संख्या समझनी चाहिए ॥ ७१-७३ ॥

वाम मार्ग की उपासना से सुमुखी देवी शीघ्र ही समस्त कामनाओं को पूर्ण कर देती हैं । इनके मन्त्र का जप भोजन के बाद उच्छिष्ट (जूठे मुँह) मुख से ही करना चाहिए, जिससे अभीष्ट की सिद्धि हो । सुमुखी देवी के समान शीघ्र फलदात्री कोई अन्य देवी नही हैं क्योंकि इनके मन्त्र के जप मात्र से समस्त मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं ॥ ७४-७५ ॥

इस प्रकार श्रीमन्महीधर विरचित मन्त्रमहोदधि के तृतीय तरङ्ग की महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डाँ सुधाकर मालवीय कृत 'अरित्र' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ ३ ॥



अथ चतुर्थः तरङ्गः

तारामन्त्रः

कीर्त्यन्ते सिद्धिदातारस्ताराया मनवोऽधुना ।
गुरूपदेशाज्ज्ञातैर्यैः कृतार्थाः स्युर्नरा भुवि ॥ १ ॥
आप्यायिनी सरात्रीशा वियदग्नीन्दुशान्तियुक् ।
हरिः पावकगोविन्दचन्द्रमोभिरलंकृतः ॥ २ ॥
खमर्धीशशशांकाढ्यमस्त्रं पञ्चाक्षरो मनुः ।

तारायाः मन्त्रान्तरम्

आदिबीजवियुक्तैषा प्रोदितैकजटादिमैः ॥ ३ ॥

---

* नौका *

तारां वक्तुम् उपक्रमते – **कीर्त्यन्त** इति ॥ १ ॥ मन्त्रमुद्धरति – **आप्यायिनीति** । सरात्रीशा आप्यायिनी सबिन्दुरोङ्कारः ॐ । अग्नीन्दु-शान्तियुग्वियत् रेफबिन्दुईयुतो हः ह्रीं । पावकगोविन्दचन्द्रमोभिरलंकृतो हरिः रेफईबिन्दुयुतस्तकारः त्रीं । गोविन्द ईकारः ॥ २ ॥ अर्धीशशशाङ्काढ्यं खं । उबिन्दुयुतो हः हुं । अस्त्रं फट् ॐ । ॐ ह्रीं त्रीं हुं फडिति पञ्चार्णः ।

मन्त्रान्तरमाह – **आदीति** । इयमेव विद्या आदिबीजेन ओङ्कारेण वियुक्ता रहिता सती आदिमैः पूर्वाचार्यैरेकजटा प्रोदिता – ह्रीं त्रीं हुं फडिति ॥ ३ ॥

---

* अरित्र *

अब हम तारा के मन्त्रों का वर्णन करते हैं । जो सर्वथा सिद्धि प्रदान करने वाले हैं, और जिन्हें गुरूपदेश से जान कर मनुष्य इस लोक में कृतार्थ हो जाते हैं ॥ १ ॥

सरात्रीशा आप्यायनी (ॐ), अग्नीन्दुशान्तियुत् वियत् (ह्रीं), पावक (र्), गोविन्द (ई), चन्द्रमा (अनुस्वार) के साथ हरि (त) अर्थात् त्रीं, अर्धीश (उ), शशाङ्क अनुस्वार के साथ ख (ह) अर्थात् हुँ, तदनन्तर फट् लगाने से तारा का पञ्चाक्षर मन्त्र निष्पन्न हो जाता है ।

यदि इस मन्त्र के आदि में आदि बीज (ॐ) हटा दिया जाय तो यह एक जटा नामक मन्त्र हो जाता है - ऐसा पूर्वाचार्यो ने कहा है ॥ २-३ ॥

आद्यन्तबीजरहिता प्रोक्ता नीलसरस्वती।
तारा सर्वा मनोरस्य [1]मुनिरक्षोभ्यसंज्ञकः॥ ४॥
छन्दस्तु बृहती तारा देवता परिकीर्तिता।
द्वितीयतुर्ये क्रमतो बीजं शक्तिश्च सिद्धिदे॥ ५॥

आद्यन्त बीजाभ्यां ॐ फड्भ्यां रहिता नीलसरस्वती सैव – ह्रीं त्रीं हुं इति। सर्वा तु तारा॥ ४॥ द्वितीय तुर्ये ह्रीं हुमिति क्रमाद् बीजं शक्तिश्च॥ ५॥

इसी प्रकार आदि बीज ॐ और अन्त बीज फट् से रहित कर देने पर यह नीलसरवस्ती का मन्त्र हो जाता है ॥ ४ ॥

विमर्श - (**i**) **तारा पञ्चाक्षर मन्त्रोद्धार** - ॐ ह्रीं त्रीं हुं फट् ।
(**ii**) **एक जटा** - ह्रीं त्रीं हुं फट् ।
(**iii**) **नीलसरस्वती** - ह्रीं त्रीं हुं ।

वधू (स्त्रीं) बीज कहलाने की कथा इस प्रकार है -

तारावर्ण के अनुसार वसिष्ठ ऋषि ने बहुत समय तक इस विद्या की उपासना की, किन्तु उन्हें सिद्धि नहीं मिली । परिणामतः क्रोधित होकर उन्होंने देवी को शाप दे दिया और तब से यह विद्या फल देने में अक्षम हो गयी ।

बाद में शान्त होने पर ऋषिप्रवर ने इसका शापोद्धार प्राप्त किया । शापोद्धार करते समय ताराबीज (त्रीं) में सकार का योग कर ॐ ह्रीं स्त्रीं हुं फट्' इस विद्या (मन्त्र) से साधना करने का निर्देश दिया । तब से यह विद्या वधू के समान यशस्विनी हो गयी तथा तारा का यह बीज (त्रीं) 'वधू बीज' कहलाने लगा ।

नीलतन्त्र के अनुसार सप्रणव मायाबीज, वधूबीज, कूर्चबीज, एवं अस्त्र वाला यह (ॐ ह्रीं स्त्रीं हूँ फट्) पञ्चाक्षर दिव्य एवं अति पवित्र है । यह विद्या साधकों को बुद्धि, ज्ञान, शक्ति, जय एवं श्री देने वाली तथा भय, मोह एवं अपमृत्यु का निवारण करने वाली मानी गयी है ।

महीधर के अनुसार **तारा के मन्त्र** उपर्युक्त हैं - किन्तु **एकताराकल्प, विश्वसारतन्त्र** तथा **नीलतन्त्र** आदि ग्रन्थों में उक्त मन्त्रों में तारा बीज (त्रीं) के स्थान पर वधू बीज (स्त्रीं) का निर्देश किया गया है ॥ ४ ॥

ऊपर कहे गये तारा के सभी मन्त्रों के अक्षोभ्य ऋषि हैं, बृहती छन्द हैं और तारा देवता हैं । पञ्चाक्षर मन्त्र के द्वितीय एवं चतुर्थ वर्ण क्रमशः (ह्रीं तथा हुं) सिद्धिदायक बीज एवं शक्तिदायक माने गये हैं अथवा क्रोध (हुं) बीज, तथा अस्त्रमन्त्र (फट्) शक्ति है - ऐसा भी कुछ आचार्य मानते हैं ।

---

१. ॐ अस्य श्रीतारामन्त्रस्य अक्षोभ्यऋषिः बृहतीछन्दः तारादेवता ह्रीं बीजं हुं शक्तिः ममाऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

यद्वा क्रोधो बीजमुक्तमस्त्रं शक्तिरुदाहृता ।
षड्दीर्घयुग्द्वितीयेन षडङ्गविधिरीरितः ॥ ६ ॥

षडङ्गमाह – **षडिति** । ह्रां ह्रीमित्यादि ॥ ६ ॥ *॥ ७–६ ॥ *॥ १०–३८ ॥

षड्दीर्घयुक्त द्वितीय मन्त्र (ह्रीं) से षडङ्गन्यास किया जाता है । इसकी विधि पूर्वोक्त है ॥ ४-६ ॥

विमर्श – विनियोग का स्वरूप इस प्रकार है – 'ॐ अस्य श्रीतारामन्त्रस्य अक्षोभ्यऋषिः बृहतीछन्दः तारादेवता ह्रीं बीजं हुं शक्तिः आत्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थ तारामन्त्रजपे विनियोगः ।

क्योंकि यह देवी उग्र विपत्ति से साधक का उद्धार करती हैं, अतः इन्हें 'उग्रतारा' कहा गया है । यह राजद्वार, राजसभा, राजकार्य, विवाद, संग्राम एवं द्यूत आदि में साधक को विजय प्राप्त कराती हैं । अतः इस प्रकार के प्रयोगों में इन मन्त्रों का विनियोग करते समय 'हुं' बीज तथा फट् शक्ति माना जाता है क्योंकि **वीरतन्त्र** के अनुसार बीज एवं शक्ति चतुर्वर्गफल प्राप्ति के लिए भी विनियुक्त होते हैं ।

ऋष्यादिन्यास – ॐ अक्षोभ्यऋषये नमः शिरसि, ॐ बृहतीछन्दसे नमः मुखे,
ॐ तारादेवतायै नमः हृदि, ॐ ह्रीं (हूँ) बीजाय नमः गुह्ये,
ॐ हूँ (फट्) शक्तये नमः पादयोः ॐ स्त्रीं कीलकाय नमः सर्वाङ्गे

कराङ्गन्यास – ॐ ह्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः,
ॐ ह्रूं मध्यमाभ्यां नमः, ॐ ह्रैं अनामिकाभ्यां नमः,
ॐ ह्रौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः, ॐ ह्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

इसी प्रकार हृदयादिन्यास भी कर लेना चाहिए । मन्त्र का विनियोग पूर्ववत् है । एकजटा तथा नीलसरस्वती के लिए इस प्रकार का न्यास **सिद्धसारस्वत तन्त्र** के अनुसार करना चाहिए –

ॐ ह्रां एकजटायै अगुंष्ठाभ्यां नमः, ॐ ह्रीं तारिण्यै तर्जनीभ्यां नमः,
ॐ ह्रूं वज्रोदके मध्यमाभ्यां नमः, ॐ ह्रैं उग्रजटे अनामिकाभ्यां नमः,
ॐ ह्रौं महाव्रतिसरे कनिष्ठाभ्यां नमः, ॐ ह्रः पिङ्गोग्रैकजटे करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः

नीलसरस्वती के लिए न्यास इस प्रकार है –

ॐ ह्रां अखिलवाग्रूपिण्यै अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ।
ॐ ह्रीं अखिलवाग्रूपिण्यै तर्जनीभ्यां नमः ।
ॐ हूँ अखिलवाग्रूपिण्यै मध्यमाभ्यां नमः ।
ॐ ह्रैं अखिलवाग्रूपिण्यै अनामिकाभ्यां नमः ।
ॐ ह्रौं अखिलवाग्रूपिण्यै कनिष्ठाभ्यां नमः ।
ॐ ह्रः अखिलवाग्रूपिण्यै करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

षडङ्गन्यासः

षोढान्यासं ततः कुर्याद्देवताभावसिद्धये ।
देयं भक्ताय शिष्याय न देयं तु दुरात्मने ॥ ७ ॥

(१) रुद्रन्यासः

श्रीकण्ठा[१]दीन्यसेद्रुद्रान् मातृकावर्णपूर्वकान् ।
मातृकोक्तस्थले माया तृतीयक्रोधपूर्वकान् ॥ ८ ॥
चतुर्थीनमसायुक्तान् प्रथमो न्यास ईरितः ।
शवपीठसमासीनां नीलकान्तिं त्रिलोचनाम् ॥ ९ ॥
अर्द्धेन्दुशेखरां नानाभूषणढ्यां स्मरन्न्यसेत् ।

(२) ग्रहन्यासः

द्वितीयन्तु ग्रहन्यासं[२] कुर्यात्तां समनुस्मरन् ॥ १० ॥

इसी प्रकार हृदयादिन्यास करना चाहिए ।

वीरतन्त्र के मतानुसार काली एवं तारा का स्वरूप एक होने से तारा मन्त्र के जप में कालीन्यास में कहे गये वर्णन्यास का प्रयोग करना आवश्यक है । इसके लिए देखिए कालीन्यासोक्तवर्णन्यास (द्र० ३. ७) ॥ ४-६ ॥

साधक को देवत्व भाव की सिद्धि के लिए षोढान्यास करना चाहिए । इस न्यास की विधि अपने भक्त शिष्य को ही बतलानी चाहिए । दुष्ट को कदापि नहीं बतलानी चाहिए ॥ ७ ॥

प्रथम **रुद्रन्यास की विधि** कहते हैं - माया बीज (ह्रीं), तृतीय बीज (त्रीं या स्त्रीं), तदनन्तर क्रोध बीज (हुं) के आगे मातृका वर्ण क्रमशः अं आं इत्यादि को लगाकर पुनः चतुर्थ्यन्त श्रीकण्ठादि रुद्रों के नाम, तदनन्तर नमः लगाकर पूर्वोक्त कहे गये (१. ८६-६१) मातृकान्यास के स्थानों में यह न्यास करना चाहिए ।

इस न्यास के समय शवासन पर बैठी हुई विविध आभूषणों से युक्त, नीले वर्ण की कान्ति से युक्त, तीन नेत्रों वाली अर्ध चन्द्रकला धारण किए हुये तारा देवी का ध्यान करते रहना चाहिए ॥ ८-१० ॥

विमर्श - छः प्रकार के न्यास को षोढान्यास कहते हैं जो इस प्रकार हैं - १ - रुद्रन्यास, २ - ग्रहन्यास, ३ - लोकपालन्यास, ४ - शिवशक्तिन्यास, ५ - तारादिन्यास तथा ६ - पीठन्यास । **तारार्णव तन्त्र** के

---

१. श्रीकण्ठादिनामानि एकविंशतिरंगे वक्ष्यन्ते (२१. ६६–६६) । प्रयोगस्तु – ह्रीं त्रीं हूँ अं श्रीकण्ठाय नमः ललाटे । ह्रीं त्रीं हुँ आं अनन्ताय नमो मुखे । एवं सर्वत्र ।

२. ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लं लृं ऐं ऐं ओं औं अं अः रक्तवर्णं सूर्यं हृदि॥ १॥ ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं यं रं लं वं शुक्लवर्णं सोमं भ्रुवद्वये ॥ २॥ ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं)

अनुसार सुफल मनोरथ वाले साधक को तारा का षोढान्यास अवश्य करना चाहिए । तन्त्रशास्त्र में यह न्यास अत्यन्त गोपनीय ओर चमत्कारकारी फल देने वाला माना जाता है ।

रुद्रन्यास की विधि - रुद्रन्यास में देवी का ध्यान इस प्रकार है -

नीलवर्णा त्रिनयनां शवासनसमायुताम् ।
बिभ्रतीं विविधां भूषामर्धेन्दुशेखरां वराम् ॥

'तारा देवी का नीलवर्ण है, उनके तीन नेत्र हैं, वह शवासन पर विराजमान हैं और विविध अलङ्कारों से विभूषित तथा चन्द्रकला से सुशोभित है' - ऐसी देवी का ध्यान करते हुए निम्न विधि से न्यास करना चाहिए, यथा -

ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं अं श्रीकण्ठेशाय नमः, ललाटे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं आं अनन्तेशाय नमः, मुखवृत्ते ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं इं सूक्ष्मेशाय नमः, दक्षनेत्रं ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं ईं त्रिमूर्तीशाय नमः, वामनेत्रे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं उं अमरेशाय नमः, दक्षकर्णे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं ऊं अर्घीशाय नमः, वामकर्णे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं ऋं भारभूतीशाय नमः, दक्षनासायाम् ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं ॠं तिथीशाय नमः, वामनासायाम् ।
ह्रीं त्री (स्त्रीं) हुं लृं स्थाण्वीशाय नमः, दक्षगण्डे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं लॄं हरेशाय नमः, वामगण्डे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं एं झिण्टीशाय नमः, ऊर्ध्वोष्ठे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं ऐं भौतिकेशाय नमः, अधरोष्ठे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं ओं सद्योजाताय नमः, ऊर्ध्वदन्तपंक्तौ ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं औं अनुग्रहेशाय नमः, अधोदन्तपंक्तौ ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं अं अक्रूरेशाय नमः, ब्रह्मरन्ध्रे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं अः महासेनेशाय नमः, मुखे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं कं क्रोधीशाय नमः, दक्षबाहुमूले ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं खं चण्डेशाय नमः, दक्षकूर्परे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं गं पञ्चान्तकेशाय नमः, दक्षमणिबन्धे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं घं शिवोत्तमेशाय नमः, दक्षकराङ्गुलिमूले ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं ङं एकरुद्राय नमः, दक्षकराङ्गुल्यग्रे ।

हुं कं खं गं घं ङं. रक्तवर्णं मंगलं लोचनत्रये॥ ३॥ ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं चं छं जं झं ञं श्यामवर्णं बुधं वक्षस्थले ॥ ४॥ ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं टं ठं डं ढं णं पीतवर्णं बृहस्पति कण्ठकूपे॥ ५॥ ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं तं थं दं धं नं श्वेतवर्णं भार्गवं घण्टिकायाम्॥ ६॥ ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं पं फं बं भं मं नीलवर्णं शनैश्चरं नाभिदेशे॥ ७॥ ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं शं षं सं हं धूम्रवर्णं राहुं मुखे॥ ८॥ ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं लं क्षं धूमवर्णं केतुं नाभौं॥ ९॥ ॥ **इति ग्रहन्यासः** ॥

त्रिबीजस्वरपूर्वं तु रक्तं सूर्यं हृदि न्यसेत् ।
तथा यवर्गपूर्वं तु सोमं शुक्लं भ्रुवोर्द्वयोः ॥ ११ ॥

ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं चं कूर्मेशाय नमः, वामबाहुमूले ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं छं एकनेत्रेशाय नमः, वामकूर्परे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं जं चतुराननेशाय नमः, वाममणिबन्धे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं झं अजेशाय नमः, वामकराङ्गुलिमूले ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं ञं सर्वेशाय नमः, वामकराङ्गुल्यग्रे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं टं सोमेशाय नमः, दक्षोरुमूले ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं ठं लाङ्गलीशाय नमः, दक्षजानुमूले ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं डं दारुकेशाय नमः, दक्षपादमूलसन्धौ ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं ढं अर्धनारीश्वराय नमः, दक्षपादाङ्गुलिमूले ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं णं उमाकान्तेशाय नमः, दक्षपादाङ्गुल्यग्रे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं तं आषाढीशाय नमः, वामोरुमूले ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं थं दण्डीशाय नमः, वामजघांमूले ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं दं अन्त्रीशाय नमः, वामपादमूलसन्धौ ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं धं मीनेशाय नमः, वामपादाङ्गुलिमूले ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं नं मेषेशाय नमः, वामपादाङ्गुल्यग्रे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं पं लोहितेशाय नमः, दक्षपार्श्वे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं फं शिखीशाय नमः, वामपार्श्वे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं बं छगलण्डेशाय नमः, पृष्ठे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं भं द्विरण्डेशाय नमः, नाभौ ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं मं महाकालेशाय नमः, उदरे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं यं बालीशाय नमः, वक्षे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं रं भुजङ्गेशाय नमः, दक्षस्कन्धे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं लं पिनाकीशाय नमः, ककुदि ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं वं खड्गीशाय नमः, वामस्कन्धे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं शं बकेशाय नमः, हृदयादिदक्षहस्ते ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं षं श्वेतेशाय नमः, हृदयादिवामहस्ते ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं सं भृग्वीशाय नमः, हृदयादिदक्षपादे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं हं नकुलीशाय नमः, हृदयादिवामपादे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं ळं शिवेशाय नमः, हृदयादि उदरे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं क्षं सम्वर्तकाय नमः, हृदयादिमुखे ।

॥ **इति रुद्रन्यासः** ॥ ८-१० ॥

अब **ग्रहन्यास की विधि** कहते हैं - उपर्युक्त प्रकार से देवी का स्मरण करते हुये इस प्रकार ग्रहन्यास करना चाहिए - उक्त तीनों बीजों के साथ स्वर,

कवर्गपूर्वं रक्ताभं मङ्गलं लोचनत्रये ।
चवर्गाढ्यं बुधं श्यामं न्यसेद्वक्षःस्थले बुधः ॥ १२ ॥
टवर्गाढ्यं पीतवर्णं कण्ठकूपे बृहस्पतिम् ।
तवर्गाढ्यं श्वेतवर्णं घण्टिकायां तु भार्गवम् ॥ १३ ॥
नीलवर्णं पवर्गाढ्यं नाभिदेशे शनैश्चरम् ।
शवर्गाढ्यं धूम्रवर्णं ध्यात्वा राहुं मुखे न्यसेत् ॥ १४ ॥
लक्षाढ्यं धूम्रवर्णाभं केतुं नाभौ पुनर्न्यसेत् ।
त्रिबीजपूर्वकश्चैवं ग्रहन्यासः समीरितः ॥ १५ ॥

फिर रक्तवर्ण सूर्य उच्चारण कर हृदय में, इसी प्रकार य वर्ग के साथ शुक्लवर्ण सोम का उच्चारण कर दोंनों भ्रू में, कवर्ग के साथ रक्तवर्ण मङ्गल का उच्चारण कर तीनों नेत्रों में, चवर्ग के साथ श्यामवर्ण बुध का उच्चरण कर वक्षःस्थल में, टवर्ग के साथ पीतवर्ण बृहस्पति बोलकर कण्ठकूप में, तवर्ग के साथ श्वेतवर्ण भार्गव को घण्टिका में, पवर्ग के साथ नीलवर्ण शनैश्वर का उच्चारण कर नाभि में, शवर्ग के साथ धूम्रवर्ण राहु बोलकर मुख में तथा लवर्ग के साथ, धूम्रवर्ण केतु बोलकर पुनः नाभि में न्यास करना चाहिए ॥ १०-१५ ॥

ग्रहन्यास विधि - ग्रहन्यास में सभी वर्णों के प्रारम्भ में ह्रीं त्रीं हूँ इन तीन बीजाक्षरों को लगा कर न्यास करना चाहिए ॥ १५ ॥

विमर्श - १ - ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लं लृं ऐं ऐं ओं औं अं अः रक्तवर्णं सूर्यं हृदि न्यसामि ।

२ - ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं यं रं लं वं शुक्लवर्णं सोमं भ्रुवद्वये न्यसामि ।

३ - ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं कं खं गं घं ङं. रक्तवर्णं मंगलं लोचनत्रये न्यसामि।

४ - ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं चं छं जं झं ञं श्यामवर्णं बुधं वक्षस्थले न्यसामि ।

५ - ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं टं ठं डं ढं णं पीतवर्णं बृहस्पतिं कण्ठकूपे न्यसामि ।

६ - ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं तं थं दं धं नं श्वेतवर्णं भार्गवं घण्टिकायाम् ।

७ - ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं पं फं बं भं मं नीलवर्णं शनैश्चरं नाभिदेशे न्यासामि ।

८ - ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं शं षं सं हं धूम्रवर्णं राहुं मुखे न्यासामि ।

९ - ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं लं क्षं धूम्रवर्णं केतुं नाभौं न्यसामि ।

॥ **इति ग्रहन्यासः** ॥ १०-१५ ॥

तदनन्तर उक्त प्रकार से भगवती का ध्यान करते हुये प्रयत्न पूर्वक तृतीय

---

१. ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं अं इं उं ऋं लृं एं ओं अं ललाट पूर्वे इन्द्राय नमः॥ १॥ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं आं ईं ऊं ॠं लॄं ऐं औं अः ललाटाग्नेय्यां अग्नये नमः॥ २॥ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं कं खं गं घं ङं ललाटदक्षिणे यमाय नमः ॥ ३॥ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं चं छं जं झं ञं लालाटनैऋत्यां निर्ऋतये नमः ॥ ४॥ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं टं ठं डं ढं णं ललाटपश्चिमायां वरुणाय नमः ॥ ५॥ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं)

(३) दिक्पालन्यासः

तृतीयं लोकपालानां[१] न्यासं कुर्यात् प्रयत्नतः।
मायादिबीजत्रितयपूर्वकं सर्वसिद्धये॥ १६॥
स्वमस्तके ललाटादौ दशदिक्ष्वध ऊर्ध्वतः।
ह्रस्वदीर्घकादिकाष्टवर्गपूर्वान्दिशाधिपान् ॥ १७॥
शिवशक्त्याभिधन्यासं चतुर्थं[१] तु समाचरेत्।

लोकपालन्यास करना चाहिए । सर्वसिद्धियाँ प्राप्त करने के लिए आरम्भ में माया बीजादि तीन बीज, तदनन्तर ह्रस्व दीर्घ स्वरों का क्रमशः न्यास अपने मस्तक के ललाटादि प्रथम दो स्थानों और दो दिशाओं में, तदनन्तर आठ दिशाओं में आठ कवर्गादि वर्णो का न्यास करना चाहिए ॥ १६-१७ ॥

लोकपालन्यास विधि -

ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं अं इं उं ऋं लृं एं ओं अं ललाटपूर्वे इन्द्राय नमः ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं आं ईं ऊं ॠं ॡं ऐं औं अः ललाटाग्नेय्यां अग्नये नमः ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं कं खं गं घं ङं ललाटदक्षिणे यमाय नमः ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं चं छं जं झं ञं लालाटनैऋत्यां निर्ऋतये नमः ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं टं ठं डं ढं णं ललाटपश्चिमायां वरुणाय नमः
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं तं थं दं धं नं ललाट वायव्यां वायवे नमः ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं पं फं बं भं मं ललाटोत्तरस्यां सोमाय नमः ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं यं रं लं वं ललाटैशान्यां ईशानाय नमः ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं शं षं सं हं ललाटोर्ध्वायां ब्रह्मणे नमः ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं लं क्षं ललाटाधोदिशि अनन्ताय नमः ।

॥ **इति लोकपालन्यासः तृतीयः** ॥ १६-१७ ॥

लोकपालन्यास के अनन्तर शिव शक्ति संज्ञक चतुर्थ न्यास करना

हुं तं थं दं धं नं ललाटवायव्यां वायवे नमः॥ ६॥ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं पं फं बं भं मं ललाटोत्तरस्यां सोमाय नमः॥ ७॥ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं यं रं लं वं ललाटैशान्यां ईशानाय नमः॥ ८॥ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं शं षं सं हं ललाटोर्ध्वायां ब्रह्मणे नमः॥ ९॥ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं लं क्षं ललाटाधोदिशि अनन्ताय नमः॥ १०॥ ॥ **इति लोकपालन्यासः तृतीयः** ॥

१. ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्री) हुं वं शं षं सं डाकिनीयुत ब्रह्माणं चतुर्दलसमन्वित मूलाधारे न्यसेत् ॥ १॥ ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं बं भं मं यं रं लं राकिनीयुत श्रीविष्णुलिंगस्य षड्दले स्वाधिष्ठानचक्रे न्यसेत्॥ २॥ ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं लाकिनीयुत रुद्रं दशदलचक्र-नाभिस्थे मणिपूरके न्यसेत्॥ ३॥ ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं काकिनी युतमीश्वरम् अनाहते द्वादशदले चक्रे हृदि न्यसेत् ॥ ४॥ ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः शाकिनी युत सदाशिवं विशुद्धाख्य षोडशदले कण्ठस्थे विन्यसेत् ॥ ५॥ ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं लं (हं) क्षं हाकिनीयुतं परशिवमाज्ञाचक्रे मनोहरे भ्रूमध्यसंस्थिते विन्यसेत् ॥ ६॥ ॥ **इति शिवशक्तिन्यास चतुर्थः** ॥

त्रिबीजपूर्वकान्न्यस्येत् षट्शिवाञ्छक्तिसंयुतान् ॥ १८ ॥
आधारादिषु चक्रेषु चक्रस्थाक्षरपूर्वकान् ।
ब्रह्माणं डाकिनीयुक्तं वादिसान्तार्णभूषितम् ॥ १९ ॥
मूलाधारे प्रविन्यस्येच्चतुर्दलसमन्विते ।
श्रीविष्णुं राकिनीयुक्तवादिलान्तार्णपूर्वकम् ॥ २० ॥
स्वाधिष्ठानाभिधे चक्रे लिङ्गस्थे षड्दले न्यसेत् ।
रुद्रं तु लाकिनीयुक्तं डादिफान्तार्णपूर्वकम् ॥ २१ ॥
चक्रे दशदले न्यस्येन्नाभिस्थे मणिपूरके ।
ईश्वरं कादिठान्तार्णपूर्वकं काकिनीयुतम् ॥ २२ ॥
विन्यसेद् द्वादशदले हृदयस्थे त्वनाहते ।
सदाशिवं शाकिनीं च षोडशस्वरपूर्वकम् ॥ २३ ॥

चाहिए । प्रारम्भ में पूर्वोक्त तीनों बीजों को लगाकर फिर चक्रस्थ वर्ण, फिर अपनी अपनी शक्तियों के साथ ६ शिवों को क्रमशः मूलाधार आदि ६ चक्रों में न्यस्त करना चाहिए । उसकी विधि इस प्रकार है - चार दल वाले मूलाधार चक्र पर वकारादि (व श ष स) चार वर्णों के साथ डाकिनी सहित द्वितीयान्त १. **'ब्रह्मदेव'** को न्यस्त करना चाहिए । तदनन्तर लिङ्गस्थान स्थित ६ दलों वाले स्वाधिष्ठान चक्र में बकारादि ६ वर्णों से राकिनी सहित द्वितीयान्त २. **'विष्णु'** का, तदनन्तर नाभि देश में स्थित दशदल वाले मणिपूर चक्र में डकार से लेकर फकारान्त वर्ण पर्यन्त लाकिनी सहित द्वितीयान्त ३. **'रुद्र'** का, तदनन्तर हृदयस्थ द्वादश दल वाले अनाहतचक्र में क से ठ पर्यन्त वर्णों का तथा काकिनी सहित द्वितीयान्त ४. **'ईश्वर'** का न्यास करना चाहिए । इसी प्रकार कण्ठ स्थान में स्थित १६दल वाले विशुद्ध चक्र में १६ स्वरों के साथ शाकिनी सहित द्वितीयान्त ५. **'सदाशिव'** का तथा भ्रूमध्य स्थित दो दल वाले आज्ञाचक्र में 'ल' 'क्ष' वर्णों के साथ हाकिनी सहित द्वितीयान्त ६. **परशिव** का न्यास करना चाहिए ॥ १८-२४ ॥

विमर्श - इस न्यास की विधि इस प्रकार है -

ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं वं शं षं सं डाकिनीसहितब्रह्मणे नमः मूलाधारे ।

ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं बं भं मं यं रं लं राकिनीसहितविष्णवे नमः स्वाधिष्ठाने ।

ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुँ डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं लाकिनीसहितरुद्राय नमः मणिपूरके ।

ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं काकिनीसहिताय ईश्वराय नमः अनाहते ।

कण्ठस्थे षोडशदले विशुद्धाख्ये प्रविन्यसेत् ।
आज्ञाचक्रे परशिवहाकिनीसंयुतं जपेत् ॥ २४ ॥
लक्षार्णपूर्वं भ्रूमध्ये संस्थितेति मनोहरे ।
तारादिपञ्चमं न्यासं[1] कुर्यात्सर्वेष्टसिद्धये ॥ २५ ॥
अष्टौ वर्गान्स्वरद्वन्द्व–पूर्वकान् बीजसंयुतान् ।
पूर्वं प्रयोज्य ताराद्यान्यस्तव्या अष्टमूर्तयः ॥ २६ ॥
तारा उग्रा महोग्रापि वज्रा काली सरस्वती ।
कामेश्वरी च चामुण्डा इत्यष्टौ तारिकाः स्मृताः ॥ २७ ॥
ब्रह्मरन्ध्रे ललाटे च भ्रूमध्ये कण्ठदेशतः ।
हृदि नाभौ लिगमूले मूलाधारे क्रमान्न्यसेत् ॥ २८ ॥

ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः शाकिनीसहितसदाशिवाय नमः विशुद्धाख्ये ।

ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं लं (हं) क्षं हाकिनीसहितपरशिवाय नमः आज्ञाचक्रे ।

॥ **इति शिवशक्तिन्यासः चतुर्थः** ॥ १८–२४ ॥

तत्पश्चात् अपनी अभीष्ट सिद्धि के निमित्त तारादि पञ्चम न्यास करना चाहिए । पूर्वोक्त तीन बीजों के अनन्तर दो दो स्वर, तदनन्तर क्रमशः उसके आगे एक एक वर्ग, तदनन्तर तारा आदि अष्ट मूर्त्तियों को क्रमशः ब्रह्मरन्ध्र, ललाट, भ्रूमध्य, कण्ठ, हृदय, नाभि, लिङ्गमूल एवं मूलाधार में न्यास करना चाहिए । १. तारा, २. उग्रा, ३. महोग्रा, ४. वज्रा, ५. काली, ६. सरस्वती, ७. कामेश्वरी तथा ८. चामुण्डा – ये तारा आदि अष्ट मूर्तियाँ कही गईं हैं ॥ २५–२८ ॥

विमर्श – इसकी **विधि** इस प्रकार है –

ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं अं आं कं खं गं घं ङं तारायै नमः, ब्रह्मरन्ध्रे ।
ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं इं ईं चं छं जं झं ञं उग्रायै नमः, ललाटे ।
ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं उं ऊं टं ठं डं ढं णं महोग्रायै नमः, भ्रमूध्ये ।
ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं ऋं ॠं तं थं दं घं नं वज्रायै नमः, कण्ठदेशे ।
ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं ऌं ॡं पं फं बं भं मं महाकाल्यै नमः, हृदि ।

---

१. ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं अं आं कं खं गं घं ङं तारायै नमः ब्रह्मरन्ध्रे ॥ १॥ ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं इं ईं चं छं जं झं ञं उग्रायै नमः ललाटे ॥ २॥ ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं उं ऊं टं ठं डं ढं णं महोग्रायै नमः भ्रमूध्ये ॥ ३॥ ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं ऋं ॠं तं थं दं घं नं वज्रायै नमः कण्ठदेशे ॥ ४॥ ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं लं ॡं पं फं बं भं मं महाकाल्यै नमः हृदि ॥ ५॥ ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं एं ऐं यं रं लं वं सरस्वत्यै नमः नाभौ ॥ ६॥ ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं ओं औं शं षं सं हं कामेश्वर्यै नमः लिङ्गमूले ॥ ७॥ ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं अं अः लं क्षं चामुण्डायै नगः मूलाधारे ॥ ८॥ ॥ इति तारादिन्यासः ॥

षष्ठंन्यासं[1] ततः कुर्यात्पीठाख्यं सर्वसिद्धिदम् ।
आधारे कामरूपाख्यं ह्रस्वबीजार्णपूर्वकम् ॥ २९ ॥
हृदि जालन्धरं पीठं दीर्घपूर्वं प्रविन्यसेत् ।
ललाटे पूर्णगिर्याख्यं कवर्गाढ्यं न्यसेत्सुधीः ॥ ३० ॥
उड्डियानं चवर्गाद्यं केशसन्धौ प्रविन्यसेत् ।
भ्रुवोर्वाराणसीपीठं टवर्गाद्यं समाहितः ॥ ३१ ॥
तवर्गपूर्विकां न्यस्येदवन्तीं नयनद्वये ।
पवर्गपूर्वकं मायापुरीपीठं मुखे न्यसेत् ॥ ३२ ॥
कण्ठे तु मथुरापीठं यवर्गाद्यं प्रविन्यसेत् ।
अयोध्यापीठकं नाभौ शवर्गादिकमुत्तमम् ॥ ३३ ॥
कट्योः काञ्चीपुरीपीठं दशमं तु प्रविन्यसेत् ।
षोढान्यासास्तु तारायाः प्रोक्तास्ते इष्टदायकाः ॥ ३४ ॥

ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं एं ऐं यं रं लं वं सरस्वत्यै नमः, नाभौ ।
ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं ओं औं शं षं सं हं कामेश्वर्यै नमः, लिङ्गमूले ।
ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं अं अः लं क्षं चामुण्डायै नमः, मूलाधारे ।

॥ इति तारादिन्यासः ॥ २५-२८ ॥

अब साधकों को शीघ्र सिद्धि प्रदान करने वाले **षष्ठ पीठन्यास की विधि** कहते हैं -

आधार में बीजत्रितय सहित ह्रस्वस्वरों के साथ कामरूप पीठ का, हृदय में पूर्वबीजों के सहित दीर्घस्वरों का उच्चारण कर जालन्धर पीठ का, पुनः ललाट में पूर्ववत् तीनों बीजों के आगे कवर्ग का उच्चारण कर पूर्णगिरि संज्ञक पीठ का, केशसन्धियों में पूर्ववत् तीनों बीजों के साथ चवर्ग का उच्चारण कर उड्डीयान पीठ का, फिर दोनों भौहों में पूर्ववत् बीजों के साथ टवर्ग का उच्चारण कर वाराणसी पीठ का, दोनों नेत्रों में तवर्ग के साथ अवन्ति पीठ का, मुख में पवर्ग के साथ मायापुरी पीठ का, कण्ठ में यवर्ग के साथ मथुरा पीठ का, नाभि में शवर्ग के साथ अयोध्या पीठ का, तथा कटि में (ल क्ष के साथ) दशम

---

१. ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं अं इं उं ऋं लृं एं ओं अं कामरूपपीठाय नमः, आधारे । ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं आं ईं ऊं ॠं ॡं ऐं औं अः जालंधरपीठाय नमः, हृदि । ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं कं खं गं घं ङं पूर्णगिरिपीठाय नमः, ललाटे । ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं चं छं जं झं ञं उड्डीयानपीठाय नमः, केशसंघौ । ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं टं ठं डं ढं णं वाराणसीपीठाय नमः, भ्रुवोः । ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं तं थं दं धं नं अवन्तिपीठाय नमः, नेत्रयोः । ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं पं फं बं भं मं मायापुरीपीठाय नमः, मुखे । ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं यं रं लं वं मथुरापीठाय नमः, कण्ठे । ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं शं षं सं हं अयोध्यापीठाय नमः, नाभौ । ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं लं क्षं काञ्चीपुरीपीठाय नमः, कट्याम् ॥ **इति पीठन्यासः** ॥

श्रीमतीं ह्द्येकजटां[1] तारिणीं शिरसि न्यसेत् ।
वज्रोदकां शिखायां तु उग्रतारां तु वर्मणि ॥ ३५ ॥
महापरिसरे नेत्रे पिङ्गोग्रैकजटेऽस्त्रके ।
षड्दीर्घयुक्तमायाद्या एतान्यस्याः षडङ्गके ॥ ३६ ॥
अंगुष्ठादिष्वंगुलीषु पूर्वं विन्यस्य यत्नतः ।
तर्जनीमध्यमाभ्यां तु कृत्वा तालत्रयं ततः ॥ ३७ ॥
छोटिकामुद्रया कुर्याद्दिग्बन्धं देवतां स्मरन् ।
विद्यया तारपुटया व्यापकं सप्तधा चरेत् ।
उग्रां तारां ततो ध्यायेत्सद्योवाक्सिद्धिदायिनीम् ॥ ३८ ॥

काञ्चीपुरी पीठ का न्यास करना चाहिए । यहाँ तक जो तारा के षष्ठ पीठ न्यास कहे गये हैं वे साधकों को सभी प्रकार की सिद्धि प्रदान करते हैं ॥ २९-३४ ॥

विमर्श - षष्ठपीठन्यास विधि -

ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं अं इं उं ऋं लृं एं ओं अं कामरूपपीठाय नमः, आधारे।
ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं आं ईं ऊं ॠं लॄं ऐं औं अः जालन्धरपीठाय नमः, हृदि।
ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं कं खं गं घं ङं पूर्णगिरिपीठाय नमः, ललाटे ।
ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं चं छं जं झं ञं उड्डीयानपीठाय नमः, केशसंधौ ।
ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं टं ठं डं ढं णं वाराणसीपीठाय नमः, भ्रुवोः ।
ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं तं थं दं धं नं अवन्तिपीठाय नमः, नेत्रयोः ।
ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं पं फं बं भं मं मायापुरीपीठाय नमः, मुखे ।
ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं यं रं लं वं मथुरापीठाय नमः, कण्ठे ।
ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं शं षं सं हं अयोध्यापीठाय नमः, नाभौ ।
ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं लं क्षं काञ्चीपुरीपीठाय नमः, कट्याम् ।

॥ इति पीठन्यासः ॥ २९-३४ ॥

मायाबीज में क्रमशः ६ दीर्घवर्णों को आदि में लगाकर क्रमशः एक जटा का हृदय में, तारिणी का शिर में, वज्रोदका का शिखा में, उग्रतारा का कवच में, महापरिसरा का नेत्रों में, तथा पिङ्गोग्रैजटा का अस्त्रन्यास करना चाहिए । इसी प्रकार अङ्गुष्ठादि अङ्गुलियों में करन्यास कर तर्जनी मध्यमा द्वारा तीन ताली बजा कर छोटिका मुद्रा से दिग्बन्धन करना चाहिए । फिर प्रणव से सम्पुटित विद्या (ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं फट् ॐ) द्वारा सात बार व्यापक न्यास कर शीघ्र वाक्सिद्धि प्रदान करने वाली उग्रतारा भगवती का आगे (४.३९-४०) कहे गये श्लोकों में ध्यान करना चाहिए ॥ ३५-३८ ॥

---

१. ॐ ह्रां एकजटायै हृदयाय नमः ॥ १॥ ॐ ह्रीं तारिण्यै शिरसे स्वाहा ॥ २॥ ॐ ह्रूं वज्रोदकायै शिखायै वषट् ॥ ३॥ ॐ ह्रैं उग्रजटायै कवचाय हुम् ॥ ४॥ ॐ ह्रौं महापरिसरायै नेत्रत्रयाय वौषट् ॥ ५॥ ॐ ह्रः पिङ्गोग्रैकजटायै अस्त्राय फट् ॥ ६॥

ताराध्यानम्

विश्वव्यापकवारिमध्यविलसच्छ्वेताम्बुजन्मस्थितां
कर्त्रीखड्गकपालनीलनलिनै राजत्करां नीलभाम्।
काञ्चीकुण्डल–हार–कंकणलसत् केयूरमञ्जीरता–
माप्तैर्नागवरैर्विभूषिततनूमारक्तनेत्रत्रयाम् ॥ ३९ ॥
पिङ्गोग्रैकजटां लसत्सुरसनां दंष्ट्राकरालाननां
चर्मद्वीपिवरं कटौ विदधतीं श्वेतास्थिपट्टालिकाम्।
अक्षोभ्येण विराजमानशिरसं स्मेराननाम्भोरुहां
तारां शावहृदासनां दृढकुचामम्बां त्रिलोक्याः स्मरेत् ॥ ४० ॥

ध्यानमाह – **विश्वेति** । खड्गनीलसरोज दक्षयोः । कर्त्रीकपाले वामयोः ॥ ३९ ॥ श्वेतोऽस्थिपट्टोऽलिके ललाटे यस्यास्ताम् । अक्षोभ्यो मन्त्रद्रष्टा मुनिस्तेन शोभितमस्तकाम् ॥ ४० ॥ * ॥ ४१ ॥

विमर्श - षडङ्गन्यास विधि -

ॐ ह्रां एकजटायै हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं तारिण्यै शिरसे स्वाहा,
ॐ ह्रूं वज्रोदकायै शिखायै वषट्, ॐ ह्रैं उग्रजटायै कवचाय हुम्,
ॐ ह्रौं महापरिसरायै नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ ह्रः पिङ्गोग्रैकजटायै अस्त्राय फट्।

इसी प्रकार करन्यास कर पूर्वोक्त रीति से ताली बजाकर व्यापक न्यास करना चाहिए ॥ ३५-३८ ॥

अब **उग्रतारा का ध्यान** कहते हैं -

विश्वव्यापक जल के मध्य में श्वेत कमल पर विराजमान जिन भगवती के दाहिने हाथों में खड्ग एवं नीलकमल तथा बायें हाथों में कर्त्तारिका (छुरी) एवं कपाल (नरमुण्ड) है, जिनके शरीर की कान्ति नील वर्ण की है, तथा जो काञ्ची, कुण्डल, हार, कङ्कण, केयूर तथा मञ्जीर आदि आभूषणों से, एवं सुन्दर नागों से विभूषित हैं, ऐसे रक्त वर्ण वाले तीन नेत्रों से सुशोभित रहने वाली जिन भगवती के सिर पर पिङ्गल वर्ण की एक जटा है । जिनकी जिह्वा चञ्चल है, दन्तपक्तियों के कारण जिनका मुख महाभयानक प्रतीत हो रहा है । जिनके कटि में व्याघ्र चर्म, माथे पर श्वेतास्थिपट्टिका तथा शिर पर नागरूप धारी अक्षोभ्य ऋषि विराज रहे हैं ऐसी ईषद्धास्य से युक्त मुख कमल वाली, शव के हृदय पर आसन लगाये हुये कठोर स्तनों वाली त्रिलोक जननी भगवती तारा का ध्यान करना चाहिए ॥ ३९-४० ॥

हां त्रां हां एकजटायै अङ्गुष्ठाभ्यां नमः॥ १॥ हां त्रां हां तारिण्यै तर्जनीभ्यां स्वाहा॥ २॥ हां त्रां हां वज्रोदकायै मध्यमाभ्यां वषट् ॥ ३॥ हां त्रां हां उग्रतारायै अनामिकाभ्यां हुं ॥ ४॥ हां त्रां हां महापरिसरायै कनिष्ठिकाभ्यां वौषट् ॥ ५॥

एवं ध्यायन्नदन्भक्ष्यमनेकं दधिमध्वपि ।
मधुमांसं च ताम्बूलं जपेल्लक्षचतुष्टयम् ॥ ४१ ॥
दशांशं जुहुयाद् रक्तपद्मैः क्षीराज्यलोलितैः ।
स्थापयित्वा महाशङ्खं जपस्थाने जपं चरेत् ॥ ४२ ॥
नारीं पश्यन्स्पृशन्गाच्छन् महानिशिबलिं ददेत् ।
न कार्यः सुभ्रुवां द्वेषो यत्नात्ताः पूजयेत् सदा ॥ ४३ ॥
जपे न कालनियमो न स्थितौ सर्वदा जपेत् ।
श्माशाने शून्यसदने देवागारेथ निर्जने ॥ ४४ ॥
पर्वते वनमध्ये वा शवमारुह्य मन्त्रवित् ।
समरे शत्रुनिहतं यद्वा षाण्मासिकं शिशुम् ॥ ४५ ॥
विद्यां संसाधयेच्छीघ्रं साधितैवं प्रसिध्यति ।
मेधाप्रज्ञाप्रभाविद्याधीर्धृतिस्मृतिबुद्धयः ॥ ४६ ॥
विद्येश्वरीति सम्प्रोक्ताः पीठस्य नवशक्तयः ।

तारापीठमन्त्रः

भृगुमन्विन्दुसंयुक्तमेघवर्त्मसरस्वती ॥ ४७ ॥

महाशङ्खं कपालम् ॥ ४२ ॥ * ॥ ४३–४६ ॥ पीठमन्त्रमुद्धरति – **भृग्विति** । भृगुमन्विन्दुसंयुक्तं सकारः औबिन्दुयुतम् । मेघवर्त्म हः । हार्दं नमः । स्वरूपम् अन्यत् । हौं सरस्वतीयोगपीठात्मने नम इति ॥ ४७ ॥ * ॥ ४८–४६ ॥

तारा भगवती का ध्यान करते हुये एक हविष्यान्न अथवा अनेक दधि मधु अथवा मधु और मांस खाकर तथा ताम्बूल का चवर्ण करते हुए तारा मन्त्र का चार लाख जप करना चाहिए । तदनन्तर दूध और घी मिलाकर रक्तकमलों से दशांश हवन करना चाहिए । जप स्थान पर महाशंख (नर कपाल) स्थापित कर जप का विधान कहा गया है । स्त्री को देखते हुये स्पर्श करते हुये अथवा चलते हुये निशीथ काल में बलि देनी चाहिए । स्त्रियों से कभी द्वेष नहीं करना चाहिए, अपितु सर्वदा उनका पूजन करना चाहिए ॥ ४१-४३ ॥

तारा मन्त्र के जप में काल एवं स्थान का कोई नियम नहीं है । सर्वदा और सभी जगह जप करना चाहिए । श्मशान में, शून्यगृह में, देवस्थान (मन्दिर) में, एकान्त में, पर्वत पर या वन के मध्य में शव पर बैठकर साधक कहीं भी जप कर सकता है । युद्ध में मारे गये शत्रु अथवा ६ महीने के मरे हुए बालक के शव पर इस विद्या की सिद्धि करनी चाहिए । सिद्धि की हुई यह विद्या मनुष्य को शीघ्र ही प्रसिद्धि प्रदान करती है ॥ ४४-४५ ॥

पीठशक्ति एवं पीठ मन्त्र - १. मेधा, २. प्रज्ञा, ३. प्रभा, ४. विद्या, ५. धी, ६. धृति, ७. स्मृति ८. बुद्धि एवं ६. विद्येश्वरी - ये पीठ की नव

योगपीठात्मने हार्दं पीठस्य मनुरीरितः ॥ ४८ ॥
दत्त्वानेनासनं मूर्तिं मूलमन्त्रेण कल्पयेत् ।
पूजयेद्विधिवद्देवीं तद्विधानमथोच्यते ॥ ४९ ॥

नित्यबलिदानमन्त्रः

तारो माया भगं ब्रह्माजटेसूर्यः सदीर्घखम् ।
यक्षाधिपतये तन्द्रीमोपनीतं बलिं ततः ॥ ५० ॥
गृह्णयुग्मं शिवा स्वाहा बलिमन्त्रोऽयमीरितः ।
दद्यान्नित्य बलिं तेन मध्यरात्रे चतुष्पथे ॥ ५१ ॥
जलदानादिकं मन्त्रैर्विदध्याद्दशभिस्ततः ।

नित्यबलिदानमन्त्रमाह – **तार** इति । तारः प्रणवः । माया ह्रीं । भगमेकारः । ब्रह्मा कः । जटे स्वरूपम् । सूर्यो मः । सदीर्घ खं हा । तन्द्री मः । शिवा ह्रीं । स्वरूपम् अन्यत् । यथा – ॐ ह्रीं एकजटे महायक्षाधिपतये ममोपनीतं बलिं गृह्ण गृह्ण ह्रीं स्वाहेति । अनेन नित्यं निशीथे बलिं दद्यात् ॥ ५० ॥ * ॥ ५१ ॥ जलग्रहणादिमन्त्रान् उद्धरति – **ध्रुव** इति । ॐ वज्रोदके हुं फडिति जलग्रहणमन्त्रः ॥ ५२ ॥ **तारेति** । ॐ ह्रीं स्वाहेति पादक्षालन मन्त्रः ।

शक्तियाँ हैं । भृगुमन्विन्दुसंयुक्त सकार (सं), तदनन्तर औ बिन्दु संयुक्त मेघवर्त्म हकार (हौं) सरस्वतीयोगपीठात्मने नमः - यह पीठ मन्त्र कहा गया है ॥ ४६-४८ ॥

विमर्श - पीठ मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'सं हौं सरस्वती-योगपीठात्मने नमः' ॥ ४६-४८ ॥

इस पीठ मन्त्र से आसन देकर मूल मन्त्र से मूर्ति की कल्पना करनी चाहिए । तदनन्तर देवी की जिस प्रकार पूजा करनी चाहिए उसकी विधि कहते हैं ॥ ४९ ॥

पूजा के बाद नित्य बलिदान करना चाहिए । उसका मन्त्र इस प्रकार कहा है - तार (ॐ) माया (ह्रीं), भग (ए), ब्रह्मा (क), फिर 'जटे' पद । फिर सूर्य 'म', सदीर्घ ख 'हा' फिर यक्षाधिपतये' पद, इसके बाद तन्द्री (म), फिर 'मोपनीतं बलिं' यह पद, फिर गृह्ण गृह्ण, फिर शिवा (ह्रीं) एवं अन्त में स्वाहा पद - इतना बलि का मन्त्र कहा गया है । इस मन्त्र से अर्धरात्रि में चौराहे पर बलि प्रदान करना चाहिए ॥ ५०-५१ ॥

विमर्श - बलि मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है -

'ॐ ह्रीं एकजटे यक्षाधिपतये ममोपनीतं बलिं गृह्ण गृह्ण ह्रीं स्वाहा' - इस मन्त्र से नित्य अर्धरात्रि में बलिप्रदान करना चाहिए ॥ ५०-५१ ॥

इसके अनन्तर जल ग्रहणादि कार्य इन १० मन्त्रों से करना चाहिए ।

जलग्रहणादिमन्त्रोद्धारः

ध्रुवो वज्रोदके वर्मफट्सप्तार्णैर्जलग्रहः ॥ ५२ ॥
ताराद्यावह्निजायान्ता मायांघ्रिक्षालने स्मृता ।
तारो माया भृगुः कर्णीविशुद्धधर्मवर्णतः ॥ ५३ ॥
सर्वपापानिशाभ्याशे श्वेतो नेत्रयुतञ्जलम् ।
कल्पानपनयस्वाहा षड्विंशत्यक्षरो मनुः ॥ ५४ ॥
अनेनाचमनं कुर्याद् ध्रुवो मणिधरीति च ।
वज्रिण्यक्षियुतो मृत्युः खरिनेत्रयुता रतिः ॥ ५५ ॥
सर्वान्ते वबकः सेन्दुः करिण्यन्ते शिरोर्घिखम् ।
अस्त्रवह्निप्रियामन्त्रस्त्रयोविंशति वर्णवान् ॥ ५६ ॥
शिखाबन्धं प्रकुर्वीत मन्त्रेणानेन मन्त्रवित् ।

तार इति । कर्णी भृगुः उयुतः सः ॥ ५३ ॥ श्वेतः षः । नेत्रयुतं जलं वि । स्वरूपम् अन्यत् । ॐ ह्रीं सुविशुद्धधर्मसर्वपापनिशाम्याशेषविकल्पान् अपनय स्वाहेत्याचमनमन्त्रः ॥ ५४ ॥ ध्रुव इति । अक्षियुतो मृत्युः शि । नेत्रयुता रतिः णि ॥ ५५ ॥ वकः शं । शिरः कं । अर्घिसेन्दुः खं । बिन्दुयुतो हः हुं । अस्त्रं फट् । वह्निप्रिया स्वाहा । स्वरूपम् अन्यत् । यथा – ॐ मणिधरि वज्रिणि शिखरिणि सर्ववशङ्करिणि कं हुं फट् स्वाहेति शिखाबन्धनमन्त्रः ॥ ५६ ॥

---

१. ध्रुव (ॐ), फिर 'वज्रोदके' पद, फिर वर्म (हुं) अन्त में 'फट्' । इस सात अक्षर के मन्त्र से जल ग्रहण करना चाहिए ॥ ५२ ॥

२. माया बीज (ह्रीं) के आदि में तार (ॐ) तथा अन्त में वह्निजाया (स्वाहा) लगाने से पादप्रक्षालन का मन्त्र बनता है ।

३. तार (ॐ), कर्णीभृगु (सु) फिर 'विशुद्ध धर्म' फिर 'सर्वपापनिशाम्याशे' फिर श्वेत (ष), नेत्रयुत् जल (वि), फिर 'कल्पानपनय स्वाहा' इस छब्बीस अक्षर के मन्त्र से आचमन कराना चाहिए ॥ ५३-५४ ॥

४. ध्रुव (ॐ), फिर 'मणिधरि' यह पद, फिर अक्षियुत् मृत्यु (शि), फिर 'खरि' पद, फिर नेत्रयुता रति (णि), फिर 'सर्व' पद, फिर व, तदनन्तर सेन्दुवक (शं) तथा करिणि पद, फिर सेन्दु शिर (कं) अर्घिखं (हुं), अस्त्र (फट्) तथा अन्त में वह्निप्रिया (स्वाहा) इस तेईस अक्षरों के मन्त्र से साधक को शिखाबन्धन करना चाहिए ॥ ५५-५७ ॥

५. प्रणव (ॐ), तदनन्तर रक्ष युगल (रक्ष रक्ष), दीर्घ वर्म (हूं), अस्त्र (फट्) तदनन्तर ठ द्वय (स्वाहा), इस ८ अक्षर के मन्त्र से भूमिशोधन करना चाहिए ॥ ५७-५८ ॥

भूमिशोधनविघ्ननिवारणमन्त्रकथनम्

प्रणवो रक्षयुगलं दीर्घवर्मास्त्रठद्वयम् ॥ ५७ ॥
नववर्णेन मन्त्रेण कुर्याद्भूमिविशोधनम् ।
तारान्ते सर्वविघ्नानुत्सारयेतिपदं ततः ॥ ५८ ॥
हुंफट्स्वाहा गुणेन्द्वर्णो मनुर्विघ्ननिवारणे ।
अनेन विघ्नानुत्सार्य भूतशुद्धिमथाचरेत् ॥ ५९ ॥

भूतशुद्धिमन्त्रकथनम्

मायाबीजं जपापुष्पनिभं नाभौ विचिन्तयेत् ।
तदुत्थेनाग्निना देहं दहेत्सार्द्धं स्वपाप्मना ॥ ६० ॥
ताराबीजं सुवर्णाभं चिन्तयेद्धृदि मन्त्रवित् ।
पवनेन तदुत्थेन पापभस्म क्षिपेद् भुवि ॥ ६१ ॥
तुरीयं चन्द्रकुन्दाभं बीजं ध्यात्वा ललाटतः ।
तदुत्थसुधया देहं रचयेद्देवतानिभम् ॥ ६२ ॥

प्रणव इति । दीर्घं वर्म हूं । अस्त्रं फट् । ठद्वयं स्वाहा । ॐ रक्ष रक्ष हूं फट् स्वाहेति भूशोधनमन्त्रः । तारेति । ॐ सर्वविघ्नान् उत्सारय हुं फट् स्वाहेति विघ्नवारणमन्त्रः ॥ ५७ ॥ * ॥ ५८–५९ ॥ भूतशुद्धिमाह – **मायेति** ॥ ६० ॥ * ॥ ६१ ॥ **तुरीयमिति** – हूं ॥ ६२ ॥

---

६. तार (ॐ) के बाद 'सर्वविघ्नानुत्सारय' फिर 'हुं फट् स्वाहा' इस तेरह अक्षरों के मन्त्र से विघ्नों का निवारण कर पश्चात् भूतशुद्धि करनी चाहिए ॥ ५२-५९ ॥

विमर्श - **मन्त्रों का स्वरूप** इस प्रकार है -

१. जल ग्रहण मन्त्र - ॐ वज्रोदके हुं फट् ।

२. पादप्रक्षालन मन्त्र - ॐ ह्रीं स्वाहा ।

३. आचमन मन्त्र - ॐ ह्रीं सुविशुद्धधर्मसर्वपापनिशाम्याशेषविकल्पानपनय स्वाहा ।

४. शिखाबन्धन मन्त्र - ॐ मणिधरि वज्रिणि शिखरिणि सर्ववशङ्करिणि कं हुं फट् स्वाहा ।

५. भूमिशोधन मन्त्र - ॐ रक्ष रक्ष हूं फट् स्वाहा ।

६. विघ्न निवारण मन्त्र - ॐ सर्वविघ्नानुत्सारय हुं फट् स्वाहा ॥ ५२-५९ ॥

अब **भूतशुद्धि का प्रकार** कहते हैं - सर्वप्रथम जपा कुसुम (ओड़हुल) के समान लाल आभा वाले माया बीज (ह्रीं) का नाभिस्थान में ध्यान करना चाहिए । तदनन्तर उससे निकलने वाली अग्नि की लपटों से पाप सहित अपने

अनयाभूतशुद्ध्या तु देवीसादृश्यमाप्नुयात् ।

भूमिनिमन्त्रणमन्त्रः

तारः पवित्रवज्रेति भूमेर्घीशेन्दुयुग्वियत् ॥ ६३ ॥

तार इति । अर्घीशेन्दुयुक् वियत् । ऊबिन्दुयुतो हः हूं । ॐ पवित्रवज्रभूमे हूं स्वाहेति भूमिनिमन्त्रणमन्त्रः ॥ ६३ ॥

शरीर को जला देना चाहिए । फिर सुवर्ण के समान पीत वर्ण वाले त्रीं या स्त्रीं का हृदय प्रदेश में ध्यान कर उससे उत्पन्न वायु द्वारा पापों को भस्म कर शरीर से बाहर निकाल कर पृथ्वी पर फेंक देना चाहिए । पश्चात् चन्द्रमा या कुन्द के समान श्वेत आभा वाले तुरीय बीज (हूँ) का ललाट देश में ध्यान कर उससे उत्पन्न अमृत द्वारा देवता के समान अपने निष्पाप शरीर की रचना करनी चाहिए । इस प्रकार की भूतशुद्धि की क्रिया से साधक स्वयं देवी के सदृश बन जाता है ॥ ६०-६३ ॥

विमर्श - भूतशुद्धि प्रयोगविधि - साधक को अपनी गोद में दोनों हाथों को उत्तानमुद्रा में रखकर पद्मासन बाँधकर एकान्त एवं शान्त भाव से बैठ जाना चाहिए । फिर 'हंस' मन्त्र से साधक कुण्डलिनी को जीवात्मा एवं चौबीस तत्वों के साथ सुषुम्नामार्ग से ऊर्ध्व गति से ले जाकर शिर में स्थित सहस्रार पद्म में परमशिव से उन्हें मिला दें ।

(i) तदनन्तर साधक नाभि में रक्तवर्ण **'ह्रीं' बीज** का ध्यान कर सोलह बार जप करते हुए पूरक क्रिया द्वारा उस बीज से उत्पन्न अग्नि की लपटों से पापसहित लिङ्ग शरीर को जला दे ।

(ii) तत्पश्चात् हृदय में पीतवर्ण **'स्त्रीं' बीज** का ध्यान कर चौंसठ बार जप करते हुए कुम्भक प्राणायाम से भस्म को इकट्ठा कर साधक को रेचक क्रिया द्वारा उक्त भस्म को बाहर निकाल कर फेंक देना चाहिए ।

(iii) इसके बाद शिर में शुक्लवर्ण **'हुं' बीज** का ध्यान कर बत्तीस बार जप करते हुए पूरक क्रिया द्वारा उससे उत्पन्न अमृत से आप्लावित कर दिव्य शरीर की रचना करनी चाहिए ।

फेत्कारिणी तन्त्र के अनुसार साधक को भूतशुद्धि कर 'आः' वर्ण को रक्त कमल के समान ध्यान कर उसके 'आँ' वर्ण को श्वेतकमल के समान और उसके ऊपर 'हुं' बीज को नीलकमल के समान ध्यान कर उसके ऊपर 'हूं' बीज से उत्पन्न बीजभूषित कर्तरिका का ध्यान करना चाहिए । कर्तरिका के ऊपर अपनी आत्मा का तारिणी (तारादेवी) के रूप में ध्यान करना चाहिए । फिर 'आं' ह्रीं क्रौं स्वाहा' इस मन्त्र का ग्यारह बार जप करते हुए हृदय में देवी की

वह्निप्रियामनुः प्रोक्ता रुद्रार्णो भूमिमन्त्रणे ।

मण्डलमन्त्रः

तारोऽनन्तो भृगुः कर्णी पद्मनाभयुतो बली ॥ ६४ ॥
खे वज्ररेखे क्रोधाख्यं बीजं पावकवल्लभा ।
द्वादशार्णेन मन्त्रेण रचयेन्मण्डलं शुभम् ॥ ६५ ॥

पुष्पशोधनमन्त्रः

तारो यथागतानिद्रासदृक्षेकभृगुर्विषम् ।
सदीर्घस्मृतिरौ साक्षौ महाकालो भगान्वितः ॥ ६६ ॥
क्रोधोस्त्रं मनुवर्णोऽयं मनुः पुष्पादिशोधने ।

चित्तशोधनमन्त्रः

तारः पाशपरास्वाहा पञ्चार्णश्चित्तशोधने ॥ ६७ ॥

तार इति । अनन्त आ । कर्णी भृगुः । सु । पद्मनाभयुतो बली एयुतो रः रे । क्रोधबीजं हुं । ॐ आसुरेखे वज्ररेखे हुं स्वाहेति मण्डलमन्त्रः ॥ ६४ ॥ * ॥ ६५ ॥ **तार** इति । सदृक् निद्रा इयुतो भः भिः । भृगुः सः । विषं मः । सदीर्घमायुतम् । स्मृतिरो गकाररेफौ साक्षौ इयुतौ ग्नि । भगान्वितो महाकालः एयुतो मः ॥ ६६ ॥ क्रोधो हुं । अस्त्रं फट् । यथा – ॐ गताभिषेकसमाग्नि मे हुं फडिति पुष्पशोधनमन्त्रः । **तार** इति । पाश आं । परा ह्रीं । ॐ आं ह्रीं स्वाहेति चित्तशोधनमन्त्रः ॥ ६७ ॥

प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिए । इस प्रकार की भूतिशुद्धि की क्रिया से साधक स्वयं देवी सदृश हो जाता है ॥ ६०-६३ ॥

अब **भूमिनिमन्त्रण आदि का मन्त्र** कहते हैं -

७. तार (ॐ), फिर 'पवित्र वज्र' पद, फिर भूमि, फिर अर्धीशेन्दुयुत वियत् (हूँ), इसके अन्त में वह्निप्रिया (स्वाहा) यह ग्यारह अक्षरों का भूमि अभिमन्त्रण का मन्त्र बन जाता है ॥ ६३-६४ ॥

८. तार (ॐ), अनन्त (आ), फिर कर्णी भृगु (सु) फिर पद्मनाभयुत बली (रे), तदनन्तर 'खे वज्र रेखे', फिर क्रोध बीज (हुं), फिर अन्त में पावकवल्लभा (स्वाहा) लगाने से बारह अक्षरों का मण्डल रचना का मन्त्र निष्पन्न होता है । साधक को इस मन्त्र से शुभ मण्डल की रचना करनी चाहिए ॥ ६४-६५ ॥

९. तार (ॐ), फिर 'यथागता', फिर 'सदृक् निद्रा' इकार युक्त भकार अर्थात् (भि), फिर 'षेक' पद, फिर भृगु (स), सदीर्घविष (मा), साक्षि स्मृति

मनवो दश संप्रोक्ता अर्घ्यस्थापनमुच्यते ।

अर्घ्यस्थापनम्

सेन्दुभ्यां मांसतोयाभ्यां भुवं संमृज्य भूगृहम् ॥ ६८ ॥
वृत्तं त्रिकोणसंयुक्तं कुर्यान्मण्डलमन्त्रतः ।
यजेत्तत्राधारशक्तिं कच्छपं नागनायकम् ॥ ६९ ॥
आधारं स्थापयेत्तत्र ताराद्यस्त्राङ्गमायया ।
वह्निमण्डलमभ्यर्च्य महाशङ्खं निधापयेत् ॥ ७० ॥

अर्घ्यस्थापनमाह – **सेन्दुभ्यामिति** । मांसं लः । तोयं वः ॥ ६८ ॥ सबिन्दुभ्याम् आभ्यां भूमिं संशोध्य पूर्वोक्तेन मण्डलमन्त्रेण वृत्तत्रिकोण–चतुष्कोणात्मकं मण्डलं कुर्यात् । तत्राधारशक्तिं कूर्मशेषान् संपूज्य ॥ ६९ ॥ ॐ ह्रीं फडिति मन्त्रेणार्घ्याधारं स्थापयेत् । मं वह्निमण्डलाय नम इति तत्सम्पूज्य ॥ ७० ॥ वामकर्णेन्दुयुक्तेन उबिन्दुयुतेन फडन्तेन विहायसा हकारेण

(ग्नि), भगान्वित महाकाल (मे), क्रोध (हुं), एवं अन्त में अस्त्र (फट्) लगाने से चौदह अक्षरों का पुष्पादिशोधन मन्त्र बनता है ।

१०. तार (ॐ), पाशं (आं) परा (ह्रीं) उसके अन्त में स्वाहा लगाने से पाँच अक्षरों का चित्तशोधन मन्त्र बनता है -

इस प्रकार जल ग्रहण आदि के दश मन्त्र बतलाये गये । आगे अर्घ्य स्थापन की क्रिया का वर्णन करेगें ॥ ६६–६७ ॥

विमर्श - मन्त्रों का स्वरूप इस प्रकार है -

७ - भूमि अभिमन्त्रण मन्त्र - ॐ पवित्रवज्रभूमे हूं स्वाहा ।

८ - मण्डल रचना मन्त्र - ॐ आसुरेखे वज्ररेखे हुं स्वाहा

९ - पुष्पादिशोधन मन्त्र - ॐ यथागताभिषेकसमाग्नि मे हुं फट् ।

१० - चित्तशोधन मन्त्र - ॐ आं ह्रीं स्वाहा ॥ ६६-६७ ॥

यहाँ तक ग्रन्थकार ने दश मन्त्रों का वर्णन किया । अब आगे **अर्घ्य स्थापन की विधि** कहते हैं -

सेन्दु (सानुस्वार) मांस (ल) तथा तोय व (अर्थात् लं वं) मन्त्र पढ़कर भूमि शोधन करें । पश्चात् मण्डल मन्त्र (ॐ आसुरेखे वज्ररेखे हुं स्वाहा) पढ़कर वृत्त त्रिकोण और चतुष्कोणात्मक मण्डल की रचना कर उस पर आधार शक्ति 'आधारशक्तये नमः' कच्छप (कच्छपाय नमः) नागनायक शेष (शेषाय नमः) का पूजन करें । तदनन्तर आदि में तार (ॐ) माया (ह्रीं) सहित फडन्त मन्त्र अर्थात् 'ॐ ह्रीं फट्' इस मन्त्र से मण्डल पर आधार पात्र स्थापित करें । इसके पश्चात् 'मं वह्निमण्डलाय नमः' इस मन्त्र से वह्निमण्डल

मन्त्रचतुष्टयेन महाशंखपूजा

वामकर्णेन्दुयुक्तेन फडन्तेन विहायसा ।
प्रक्षालितं भृगुर्दण्डित्रिमूर्तीन्दुयुतं पठन् ॥ ७१ ॥
ततोऽर्चयेन्महाशङ्खं जपन्मन्त्रचतुष्टयम् ।

मन्त्रचतुष्टयकथनम्

दीर्घत्रयान्विता माया कालीसृष्टिः सदीर्घपः ॥ ७२ ॥
प्रतिष्ठा संयुतं मांसं पवनो हृदयं ततः ।
एकादशार्णः प्रथमो महाशङ्खार्चने मनुः ॥ ७३ ॥
हंसो हरिभुजङ्गेशयुतो दीर्घत्रयेन्दुयुक् ।
तारिण्यन्ते कपालायनमोऽन्तो द्वादशाक्षरः ॥ ७४ ॥

हुं फडिति मन्त्रेण प्रक्षालितं महाशङ्खं नरकपालम् । दण्डि त्रिमूर्तीन्दुयुतं त्रईबिन्दुयुक्तं भृगु सकारम् स्त्रीमिति बीज पठन् । स्थापयेदित्यन्वयः ॥ ७१ ॥ ततो मन्त्रचतुष्टयेन महाशङ्खपूजा । मन्त्रचतुष्टयमाह – **दीर्घेति** । दीर्घत्रयम् – आ ई ऊ । तद्युता माया सृष्टिः कः । सदीर्घ पः पा । प्रतिष्ठा आकारस्तद्युतं मांसं लः ला । पवनो यः हृदयं नमः । ह्रां ह्रीं ह्रूँ 'कालीकपालाय नमः' इत्येको मन्त्रः ॥ ७२ ॥ * ॥ ७३ ॥ **हंस** इति । हंसः सः । हरिभुजङ्गे शौ तरौ ताभ्यां युतः तथा दीर्घत्रयं बिन्दुयुतश्च । स्वरूपमन्यत् । स्त्रां स्त्रीं स्त्रूं तारिणीकपालाय नम इति द्वितीयः ॥ ७४ ॥

की पूजाकर वाम कर्ण (उकार) इन्दु अनुस्वार से युक्त विहायस ह (अर्थात् हुं) उसके बाद फट् अर्थात् 'हुं फट्' इस मन्त्र से महाशंख (नरकपाल) का प्रक्षालन कर भृगु (स), दण्डी तृ त्रिमूर्त्ती ई उस पर बिन्दु (अर्थात् स्त्रीं) इस बीज मन्त्र से महाशंख (नर कपाल) को आधार पात्र पर स्थापित करना चाहिए ॥ ६८-७१ ॥

तदनन्तर वक्ष्यमाण चार मन्त्रों को पढ़ते हुए उस महाशङ्ख की पूजा करनी चाहिए । दीर्घत्रयान्विता माया (ह्रां ह्रीं ह्रुं), फिर 'काली', सृष्टि (क), दीर्घ सहित प (पा), प्रतिष्ठा युत् मांस (ला), तदनन्तर पवन (य), अन्त में हृदय (नमः) लगाने से महाशङ्ख पूजा का ग्यारह अक्षर का प्रथम मन्त्र बनता है ॥ ७२-७३ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप - (i) 'ह्रां ह्रीं ह्रूं कालीकपालाय नमः' ।

अनुस्वार एवं दीर्घ त्रय सहित हंस (स्), हरि (त्), भुजङ्गेश (र्) अर्थात् स्त्रां स्त्रीं स्त्रृं फिर 'तारिणी' उसके अन्त में 'कपालाय नमः' लगाने से बारह अक्षर का दूसरा मन्त्र बनता है ॥ ७४ ॥

विमर्श - (ii) 'स्त्रां स्त्रीं स्त्रृं तारिणीकपालय नमः' ।

खं दीर्घत्रयबिन्द्वाढ्यं मेषोवामदृगन्वितः।
लोकपालाय हृदयं तृतीयोऽयं शिवाक्षरः॥ ७५॥
माया स्त्रीबीजमर्घ्नीन्दुयुतं खं स्वर्गखादिमः।
पालाय सर्वाधाराय सर्वः सर्वोद्भवस्तथा॥ ७६॥
सर्वशुद्धिमयश्चेति ङेन्ताः सर्वासुरान्ततः।
रुधिरारुरतिर्दीर्घावायुः शुभ्रानिलः सुरा॥ ७७॥
भाजनाय भगीसत्यो वीकपालायहृन्मनुः।
तुर्यो रसेषु वर्णोऽयं महाशङ्खप्रपूजने॥ ७८॥

खमिति । खं हः । दीर्घत्रयबिन्दुयुतः । वामदृगन्वितो मेषः ईयुतो नः नी । स्वरूपमग्रे । हां हीं हूँ नीलाकपालाय नम इति तृतीयः॥ ७५॥ चतुर्थमाह – **मायेति** । माया ह्रीं । स्त्रीबीजं स्त्रीं । अर्घ्नीन्दुयुतं खं हूं । स्वर्ग स्वरूपम् । खादिमः कः । पालायेत्यादिस्वरूपम् । सर्वः सर्वोद्भवः सर्वशुद्धिमय इतिपदत्रय चतुर्थ्यन्तम् । स्वरूपमग्रे । दीर्घा रतिः णा । वायुः यः । शुभ्रा स्वरूपम् । अनिलो यकारः । सुराभाजनाय स्वरूपम् । भगी सत्यः एयुतो दः दे । वीत्यादिस्वरूपम् । हृन्नमः । यथा – ह्रीं स्त्रीं हूं स्वर्गकपालाय सर्वाधाराय सर्वाय सर्वोद्भवाय सर्वशुद्धिमयाय सर्वासुररुधिरारुणाय शुभ्राय सुराभाजनाय देवीकपालाय नम इति चतुर्थो मन्त्रः रसेषु वर्णः षट्–पञ्चाशदक्षरः । एभिर्मन्त्रैर्महाशङ्खं सम्पूज्य अं सूर्यमण्डलाय नम इत्यर्कमण्डलं

बिन्दु एवं दीर्घत्रय समन्वित ख (ह) अर्थात् हां हीं हूँ, वामदृक् सहित मेष (नी), फिर 'ला कपालाय' उसके अन्त में हृदय (नमः) लगाने से ग्यारह अक्षरों का तृतीय मन्त्र बनता है॥ ७५॥

विमर्श – मन्त्र का स्वरूप – (iii) 'हां हीं हूं नीलाकपालाय नमः' ।

माया (ह्रीं), स्त्रीं बीज (स्त्रीं), अर्घ्नीन्दुयुत् ख (हूँ), फिर 'स्वर्ग', तदनन्तर खादिम (क), फिर 'पालाय सर्वाधाराय', फिर चतुर्थ्यन्त सर्व, 'सर्वोद्भव' तथा 'सर्वशुद्धिमय' शब्द (सर्वोद्भवाय सर्वशुद्धिमयाय), फिर 'सर्वासुर' तब 'रुधिरारु' उसके अनन्तर दीर्घरति 'णा', फिर वायु य (सर्वासुर रुधिरारुणाय), फिर 'शुभ्रा' पद फिर अनिल (य) (शुभ्राय), तदनन्तर 'सुराभाजनाय', फिर भगीसत्य (दे), फिर 'वीकपालाय' पद (देवीकपालाय), तदनन्तर हृत् (नमः) इस प्रकार रस ६ इषु ५ 'अङ्कानां वामतो गतिः' के अनुस्वार ५६ अक्षरों का तुर्य अर्थात् चौथा महाशंखपूजन का मन्त्र निष्पन्न होता है॥ ७६-७८॥

विमर्श – मन्त्र का स्वरूप – (iv) 'ह्रीं स्त्रीं हूं स्वर्गकपालाय सर्वाधाराय सर्वाय सर्वोद्भवाय सर्वशुद्धिमयाय सर्वासुररुधिरारुणाय शुभ्राय सुराभाजनाय देवीकपालाय नमः॥ ६७-७८॥

तत्रार्कमण्डलं चेष्ट्वा सलिलं मूलमन्त्रतः ।
प्रपूरयेत्सुधाबुद्ध्या गन्धपुष्पाक्षतान् क्षिपेत् ॥ ७९ ॥

चन्द्रमण्डलपूजा

मुद्रां त्रिखण्डां संदर्श्य पूजयेच्चन्द्रमण्डलम् ।

एकादशार्णमन्त्रोद्धारः

वाक्शक्तिपद्मागगनं रेफानुग्रहबिन्दुयुक् ॥ ८० ॥
मूलमन्त्रो वियद्धंसमनुसर्गसमन्वितम् ।
वराहो दीपिकेन्द्वाढ्यो मनुरेकादशाक्षरः ॥ ८१ ॥

संपूज्य, मूल मन्त्रं पठन् सुधाबुद्ध्या तोयं सम्पूर्य, तत्र गन्धपुष्पाक्षतान् क्षिपेत् । सुधा सुरात्रेति रहस्यम् ॥ ७६–७९ ॥ त्रिखण्डां मुद्रां बद्ध्वा । ॐ सोममण्डलाय नम इति तोये चन्द्रमण्डलं सम्पूज्यैकादशार्णेन मन्त्रेणाष्टवारं जलं मन्त्रयेत् ।

त्रिखण्डालक्षणं यथा –

परिवर्त्यकरौ स्पष्टावङ्गुष्ठौ कारयेत् समौ ॥
अनामान्तर्गते कृत्वा तर्जन्यौ कुटिलाकृती ।
कनिष्ठिके नियुञ्जीत निजस्थाने महेश्वरि ॥
त्रिखण्डेयं समाख्याता त्रिपुराह्वानकर्मणि ॥ इति ॥

एकादशार्णमाह – **वागिति** । वाक् ऐं । शक्ति ह्रीं । पद्मा श्रीं । रेफानुग्रहबिन्दुयुक् गगनं रेफ औबिन्दुयुतो हः ह्रौं । मूलमन्त्रः पूर्वोक्तः पञ्चार्णः । हंसमनुसर्गसमन्वितं वियत् । सऔ विसर्गयुतो हः ह्सौः । दीपिकेन्द्वाढ्यो वराहः ऊ । बिन्दुयुतो हः हूं । यथा – ऐं ह्रीं श्रीं ह्रौं ॐ ह्रीं त्रीं हूं फट् ह्सौ हूमिति ॥ ८०–८१ ॥

उस कपाल में 'अं सूर्यमण्डलाय नमः' मन्त्र से अर्कमण्डल की पूजाकर मूलमन्त्र पढ़ते हुए मद्य की भावना से उसमें जल भरे, तदनन्तर गन्ध, पुष्प एवं अक्षत डालकर त्रिखण्डामुद्रा दिखाते हुए 'ॐ सोममण्डलाय नमः' इस मन्त्र से जल में चन्द्रमण्डंल की पूजा करनी चाहिए ॥ ७९-८० ॥

वाक् (ऐं), शक्ति (ह्रीं), पद्मा (श्रीं), रेफानुग्रह बिन्दुसहित गगन (ह्रीं), फिर मूल मन्त्र (ॐ ह्रीं त्रीं हुं फट्), फिर स औ विसर्ग से युक्त ह अर्थात् ह्सौः, फिर अन्त में दीपिका एवं बिन्दुसहित वराह (हूँ) लगाने से ग्यारह अक्षरों वाला मन्त्र बनता है ॥ ८१ ॥

विमर्श - यथा - ऐं ह्रीं श्रीं ह्रीं ॐ ह्रीं त्रीं हुं फट् ह्सौः हूं ॥ ८१ ॥

अष्टकृत्वोऽमुनामन्त्री मन्त्रयेत् प्रयतो जलम् ।
मायया मदिरां क्षिप्त्वा शंखं योनिं च दर्शयेत् ॥ ८२ ॥

ततो ह्रीं बीजेन तोये सुरां प्रक्षिप्य शङ्खयोनिमुद्रे दर्शयत् ।
ततो लक्षणं यथा –

वामाङ्गुष्ठं तु संगृह्य दक्षहस्तस्य मुष्टिना ।
कृत्वोत्तानं तथा मुष्टिमङ्गुष्ठे तु प्रसारयेत् ।
वामाङ्गुल्यस्तथाश्लिष्टाः संयुताः सुप्रसारिताः ।
दक्षिणाङ्गुष्ठके लग्ना मुद्राशङ्खस्य भूतिदा । इति शङ्खमुद्रालक्षणम् ।
मिथः कनिष्ठिके बद्धा तर्जनीभ्यामनामिके ।
अनामिकोर्ध्व संश्लिष्ट दीर्घमध्यमयोरधः ।
अङ्गुष्ठाग्रद्वयं न्यस्येद्योनि मुद्रेयमीरिता । इति योनिमुद्रालक्षणम् ॥ ८२ ॥

इस मन्त्र को आठ बार पढ़कर साधक जल को अभिमन्त्रित करे । फिर मायावीज (ह्रीं) मन्त्र से उसमें मदिरा डालकर शंखमुद्रा एवं योनिमुद्रा प्रदर्शित करें ॥ ८२ ॥

विमर्श - अर्घ्यस्थापन की विधि - साधक अपने बॉयीं ओर अर्घ्यस्थापन के लिए सर्वप्रथम 'लं वं', इन बीजों से भूमि साफ एवं शुद्ध करके 'ॐ आसुरेखे वज्ररेखे हुं स्वाहा' इस मन्त्र से वृत्त त्रिकोण एवं चतुष्कोण मण्डल बनावें । उस पर 'ॐ आधारशक्तये नमः, ॐ कूर्माय नमः, ॐ शेषाय नमः', इन मन्त्रों से आधारशक्ति, कूर्म एवं शेषनाग का पूजन कर 'ॐ ह्रीं फट्' मन्त्र से अर्घ्य के आधार पात्र को स्थापित करे ।

तत्पश्चात् 'ॐ मं वह्निमण्डलाय नमः, - इस मन्त्र से आधार पात्र का पूजन कर 'हुँ फट्' मन्त्र से महाशंख (नरकपाल) को धोकर 'स्त्रीं' बीज पढ़ते हुये आधार पात्र पर महाशंख को स्थापित करना चाहिए ।

फिर निम्नलिखित चार मन्त्रों से महाशंख का पूजन करना चाहिए ।

१ - ह्रां ह्रीं ह्रूं कालीकपालाय नमः ।

२ - स्त्रां स्त्रीं स्त्रूं तारिणीकपालाय नमः ।

३ - हां हीं हूं नीलाकपालाय नमः ।

४ - ह्रीं स्त्रीं ह्रूं स्वर्गकपालाय सर्वाधाराय सर्वाय सर्वोद्भवाय सर्वशुद्धिमयाय सर्वासुररुधिरारुणाय शुभ्राय सुराभाजनाय देवी कपालाय नमः ।

इन मन्त्रों से महाशंख का पूजन कर 'अं सूर्यमण्डलाय नमः' - इस मन्त्र से अर्कमण्डल का पूजन कर मूलमन्त्र पढते हुए मदिरा की भावना से उसमें जल भरकर उसमें गन्ध, पुष्प एवं अक्षत डालने चाहिए तथा त्रिखंडा मुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिए ।

तत्र वृत्ताष्टषट्कोणं ध्यात्वा देवीं विचिन्तयेत्।
पूर्वोक्तां पूजयित्वैनां मूलेनाथ प्रतर्पयेत्॥ ८३॥
तर्जनी मध्यमानामाकनिष्ठाभिर्महेश्वरी।
साङ्गुष्ठाभिश्चतुर्वारं महाशङ्खस्थिते जले॥ ८४॥

तर्पणमन्त्रः

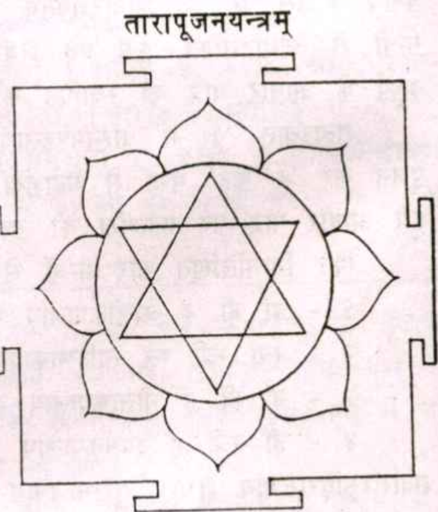
खं रेफमनुबिन्द्वाढ्यं भृगुमन्विन्दुयुक् तथा।
ध्रुवाद्येन नमोऽन्तेन तर्प्यादानन्दभैरवम्॥ ८५॥

तत्रार्घ्यजले वृत्ताष्टषट्कोणरूपं यन्त्रं विचिन्त्य ध्यानोक्तां देवीं च स्मृत्वा मूलेनार्चयेत् ॥ ८३ ॥ ततो अङ्गुष्ठयुताभिस्तर्जन्याद्यङ्गुलीभिरर्घ्यजले मूलेन तां तर्पयेत्॥ ८४॥ **खमिति** । ख हः । मनुरौ । भृगुः सः । तथा हकार एव भृग्वादियुतः । ध्रुव ॐ । यथा – ॐ हौं ह्सौं नम इत्यानन्दभैरवं तर्पयेत्॥ ८५–८६॥

फिर 'ॐ सोममण्डलाय नमः' - इस मन्त्र से जल में चन्द्रमण्डल की पूजा कर 'ऐं ह्रीं श्रीं ॐ ह्रीं त्रीं हुं फट् ह्सौः हूम्' इस मन्त्र को पढ़ते हुए आठ बार जल को अभिमन्त्रित करना चाहिए ॥ ८२ ॥

तत्पश्चात् 'ह्रीं' से उस जल में तीर्थ (मदिरा) डालकर शंख मुद्रा एवं योनि मुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिए ।

तारापूजनयन्त्रम्



उस अर्घ्य के जल में वृत्त, अष्टदल एवं षटकोण रूपी यन्त्र की भावना कर पूर्वोक्त (४.३६,४०) विधि से देवी का ध्यान कर मूल मन्त्र से उनका पूजन करना चाहिए ॥ ८३ ॥

तदनन्तर तर्जनी, मध्यमा, अनामिका, कनिष्ठिका तथा अंगूठे को मिलाकर मूलमन्त्र द्वारा महाकपाल स्थित अर्घ्य के जल से ४ बार देवी का तर्पण करना चाहिए ॥ ८४ ॥

फिर ख (ह), जो रेफ औ और बिन्दु से युक्त हो (हौं) तथा बिन्दु अनुस्वार भृगु स और औ से युक्त हकार (ह्सौं) इस प्रकार मन्त्र के आदि में ध्रुव (ॐ) लगाकर अन्त में 'नमः' लगाकर अर्थात् 'ॐ हौं ह्सौं नमः' इस मन्त्र से आनन्दभैरव का तर्पण करना चाहिए ॥ ८५ ॥

ततस्तेनार्घ्यतोयेन प्रोक्षेत्पूजनसाधनम् ।
योनिमुद्रां प्रदर्श्याथ प्रणमेद्भवतारिणीम् ॥ ८६ ॥
विधानमध्ये सम्प्रोक्तं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।
पूर्वोक्ते पूजयेत्पीठे पद्मे षट्कोणकर्णिके ॥ ८७ ॥
धरागृहावृते रम्ये देवीं रम्योपचारकैः ।
महीगृहचतुर्दिक्षु गणेशादीन्प्रपूजयेत् ॥ ८८ ॥

पीठे शक्तिपूजायां गणेशध्यानादिकथनम्

पाशांकुशौ कपालं च त्रिशूलं दधतं करैः ।
अलङ्कारचयोपेतं गणेशं प्राक्समर्चयेत् ॥ ८९ ॥
कपालशूले हस्ताभ्यां दधतं सर्पभूषणम् ।
श्वयूथवेष्टितं रम्यं बटुकं दक्षिणेर्चयेत् ॥ ९० ॥
असिशूलकपालानि डमरुं दधतं करैः ।
कृष्णं दिगम्बरं क्रूरं क्षेत्रपं पश्चिमे यजेत् ॥ ९१ ॥

इत्यर्घ्यविधिं कृत्वा पूर्वोक्ते मेधादि नवशक्तिके पीठे तां पूजयेत् ॥ ८७-८८ ॥ गणेशादिध्यानमाह – **पाशेति** । अङ्कुशत्रिशूले दक्षयोः । पाशकपाले वामयोः । अलङ्काराणां चयः समूहस्तद् युतम् ॥ ८९ ॥ बटुकस्य दक्षे शूलम् ॥ ९० ॥ क्षेत्रपालस्यासिशूले दक्षयोः ॥ ९१ ॥

तर्पण करने के उपरान्त अर्घ्यपात्रस्थ जल से पूजा सामग्री का प्रोक्षण करें । फिर योनिमुद्रा दिखाकर भवतारिणी भगवती तारा को प्रणाम करना चाहिए॥ ८६॥

तारा पूजा के विधान के मध्य में ग्रन्थकार ने पूर्व में सर्वसिद्धि प्रदान करने वाले पीठ का वर्णन किया है । उसी पूर्वोक्त (द्र० ४.८३) षट्कोण, कर्णिका, अष्टदल कमल एवं भूपुर से वेष्टित पीठ पर रम्य उपचारों से देवी का पूजन करना चाहिए । तदनन्तर वक्ष्यमाण विधि से पीठ के चारों ओर गणेशादि का पूजन करना चाहिए ॥ ८७-८८ ॥

अब भगवती के **आवरण की पूजा** का प्रकार कहते हैं

पीठ के पूर्व दिशा के द्वार पर हाथों में पाश, अंकुश कपाल तथा त्रिशूल धारण किये हुए अनेक अलङ्कारों से सुशोभित गणेश जी का पूजन करना चाहिए ॥ ८९ ॥

पीठ के दक्षिण द्वार पर हाथों में कपाल एवं त्रिशूल लिए हुये सर्परूप आभूषणों से सुशोभित श्वानों के दल से घिरे हुये बटुक भैरव की पूजा करनी चाहिए ॥ ९० ॥

पीठ के पश्चिम द्वार पर तलवार, त्रिशूल, कपाल एवं डमरु हाथों में लिए हुये, कृष्णवर्ण, दिगम्बर एवं क्रूर आकृति वाले क्षेत्रपाल का पूजन

कपालं डमरुं पाशं लिङ्गं सम्बिभ्रतीं करैः ।
अन्त्राकल्पा रक्तवस्त्रा योगिनीरुत्तरे यजेत् ॥ ६२ ॥
अक्षोभ्यं प्रयजन्मूर्ध्नि देव्यामन्त्रऋषिं शुभम् ।
अक्षोभ्यवज्रपुष्पं च प्रतीच्छानलवल्लभा ॥ ६३ ॥
अक्षोभ्यपूजने मन्त्रः षटकोणेषु षडङ्गकम् ।
वैरोचनं चामिताभं पद्मनाभाभिधं तथा ॥ ६४ ॥
शङ्खं पाण्डुरसंज्ञं च दिग्दलेषु प्रपूजयेत् ।
लामकां मामकां चैवपाण्डुरां तारकां तथा ॥ ६५ ॥
विदिग्गताब्जपत्रेषु पूजयेदिष्टसिद्धये ।
सबिन्दुनामाद्यर्णाद्याः सम्बुध्यन्तास्तथाभिधाः ॥ ६६ ॥
वज्रपुष्पं प्रतीच्छाग्निप्रियान्ताः प्रणवादिकाः ।
वैरोचनादिपूजायां मनवः परिकीर्तिताः ॥ ६७ ॥

योगिनीनां पाशलिङ्गे दक्षयोः ॥ ६२ ॥ अक्षोभ्य वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहेति मुनिमन्त्रः ॥ ६३–६५ ॥ सबिन्दुनामादिवर्ण आद्यो यासां ईदृश्य संबोधनान्ताः प्रणवाद्या वज्राद्यन्ता अभिधानामान्येव वैरोचनादिमन्त्राः । यथा – ॐ वैं वैरोचनवज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा । ॐ अं अमिताभवज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा । ॐ पं पद्मनाभवज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा । ॐ शं शङ्खपाण्डुरवज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा । ॐ लां लामके वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा । ॐ मां मामके वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा इत्यादि । पद्मान्तकादि पूजायाम् अप्येवमेव मन्त्राः ॥ ६६ ॥ * ॥ ६७–६६ ॥

करना चाहिए ॥ ६१ ॥

तदनन्तर पीठ के उत्तर द्वार पर कपाल, डमरु, पाश एवं लिङ्ग हाथों में धारण करने वाली और लाल वस्त्र धारण की हुई तथा आंतों के आभूषणों से भूषित योगिनियों की पूजा करनी चाहिए ॥ ६२ ॥

पीठ के ऊपर देवी के मस्तक पर नागरूप से विराजमान तारा मन्त्र के अक्षोभ्य ऋषि का 'अक्षोभ्य वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा' इस मन्त्र से पूजन करना चाहिए । तदनन्तर षट्कोणों में षडङ्गपूजा करनी चाहिए ॥ ६३ ॥

पूर्वादि दिशाओं के अष्टदलों में क्रमशः वैरोचन, अमिताभ, पद्मनाभ एवं पाण्डुशंख की पूजा करें । अष्टदल के कोणों में इष्टसिद्धि के लिए लामका, मामका, पाण्डुरा तथा तारका की पूजा करनी चाहिए । संबोधन पूर्वक नाम के आद्य अक्षर में अनुस्वार लगाकर, तदनन्तर 'वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा' इस मन्त्र से वैरोचन आदि की पूजा करनी चाहिए । भूपुर के चारों द्वारों पर पद्मान्तक, यमान्तक, विघ्नान्तक, तथा नारान्तक की पूजा

भूगृहस्य चतुर्द्वार्षु पद्मान्तकयमान्तकौ।
विघ्नान्तकाभिधं पश्चान्नारान्तकमथो यजेत्॥ ६८॥
शक्रादींश्चापि वज्रादीन् पूजयेत्तदनन्तरम्।
एवं सम्पूजयेद्देवीं पाण्डित्यं धनमद्भुतम्॥ ६६॥
पुत्रान् पौत्रान् सुखं कीर्तिं लभते जनवश्यताम्।

करनी चाहिए । फिर इन्द्रादि दशदिक्पालों की तथा उनके वज्र आदि आयुधों की पूजा करनी चाहिए ॥ ६४-६६ ॥

इस प्रकार देवी का पूजन करने से साधक अदभुत पाण्डित्य धन, पुत्र, पौत्र, सुख एवं कीर्त्ति प्राप्त करता है तथा जनसामान्य को अपने वश में करने की शक्ति प्राप्त करता है ॥ ६६-१०० ॥

विमर्श - ऊपर ४.८८ से ४.६६ पर्यन्त तारा के आवरण पूजा की विधि कही गई है उसका यथाक्रम संक्षेप इस प्रकार है -

पूर्वोक्त (द्र० ४. ८३-८६) रीति से देवी की पूजा कर योनिमुद्रा प्रदर्शित कर 'आवरणं ते पूजयामि, देवि आज्ञापय' मन्त्र पढ़कर देवी से आज्ञा ले आवरण पूजा करनी चाहिए ।

प्रथम पीठ के द्वार पर पाशांकुशो (द्र० ४.८६) से गणपति का ध्यान कर 'गणपतये नमः गणपतिं पूजयामि' इस मन्त्र से गणपति की पूजा करे । पुनः पीठ के दक्षिण द्वार पर 'कपाल शूले' (द्र० ४.६०) आदि श्लोक से ध्यान कर 'बटुक भैरवाय नमः' इस मन्त्र से बटुक भैरव की पूजा करे । पुनः पीठ के पश्चिम द्वार पर असिशूलकपालानि' (द्र० ४.६१) श्लोक से ध्यान कर 'क्षेत्रपालाय नमः' इस मन्त्र से क्षेत्रपाल की पूजा करे, पुनः पीठ के उत्तर दिशा में 'कपालं डमरुं पाशं' (द्र० ४.०२) इस श्लोक से ध्यान कर 'योगिनीभ्यो नमः' इस मन्त्र से योगिनियों की पूजा करनी चाहिए ।

पुनः पीठ के ऊपर 'ॐ अक्षोभ्य वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा' इस मन्त्र से अक्षोभ्य ऋषि का पूजन करना चाहिए । तदनन्तर केशरों के अग्नि कोण, ईशान कोण, वायव्य एवं नैऋत्य कोणों में तथा मध्य दिशा में इस प्रकार षडङ्ग पूजा करनी चाहिए । यथा -

ॐ ह्रां एकजटायै नमः, आग्नेये ।
ॐ ह्रीं तारिण्यै शिरसे स्वाहा, ईशान्ये ।
ॐ ह्रूं वज्रोदकायै शिखायै वषट्, वायव्ये ।
ॐ ह्रैं उग्रजटायै कवचाय हुं, नैर्ऋत्ये ।
ॐ ह्रौं महापरिसरायै नेत्रत्रयाय वौषट्, मध्ये ।
ॐ ह्रः पिङ्गोग्रैकजटायै अस्त्राय फट्, चतुर्दिक्ष ।

इसके अनन्तर पूर्वादि स्थित दलों की दिशाओं में स्थित अष्टदलों के कमलों में वैरोचनादि का तथा आग्नेयादि कोणों में स्थित दलों में लामका आदि का इस प्रकार पूजन करना चाहिए -

ॐ वं वैरोचन वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा ।
ॐ अं अमिताभ वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा ।
ॐ पं पद्मनाभ वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा ।
ॐ शं शंखनाभ वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा ।
ॐ लां लामिके वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा ।
ॐ मां मामिके वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा ।
ॐ पां पाण्डुरे वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा ।
ॐ तां तारके वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा ।

फिर भूपुर के चारों द्वारों पर यथाक्रम पूर्वादि दिशाओं में पूजन करे -

ॐ पं पद्मान्तक वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा ।
ॐ यं यमान्तकं वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा ।
ॐ विं विघ्नात्मक वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा ।
ॐ नां नारान्तक वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा ।

तदनन्तर चतुरस्र के पूर्व आदि दिशाओं में इन्द्रादि लोकपालों का यथाक्रम पूजन करना चाहिए -

ॐ लां इन्द्राय देवाधिपतये नमः, पूर्वे ।
ॐ रां अग्नये तेजाधिपतये नमः, आग्नेये ।
ॐ यां यमाय प्रेताधिपतये नमः, दक्षिणे ।
ॐ क्षां निर्ऋतये रक्षोधिपतये नमः, नैर्ऋत्ये ।
ॐ वां वरुणाय जलाधिपतये नमः पश्चिमे ।
ॐ यां वायवे प्राणाधिपतये नमः, वायव्ये ।
ॐ सां सोमाय ताराधिपतये नमः, उत्तरे ।
ॐ हां ईशानाय गणाधिपतये नमः, ईशाने ।
ॐ आं ब्रह्मणे प्रजाधिपतये नमः, पूर्वेशानयोर्मध्ये ।
ॐ ह्रीं अनन्ताय नागाधिपतये नमः, निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये ।

इसके बाद चतुरस्र के बाहर दश दिक्पालों के आयुधों का पूजन पूर्व आदि दिशाओं में करना चाहिए -

ॐ वज्राय नमः, पूर्वे, ॐ शक्तये नमः, आग्नेये, ॐ दण्डाय नमः, दक्षिणे, ॐ खड्गाय नमः, नैर्ऋत्ये, ॐ पाशाय नमः, पश्चिमे. ॐ अंकुशाय नमः, वायव्ये, ॐ गदायै नमः, उत्तरे, ॐ शूलाय नमः, ईशाने, ॐ पदमाय नमः, ऊर्ध्वम्, ॐ चक्राय नमः, अधः ।

इस प्रकार पाँच आवरणों की पृजा कर पाँच पुष्पाञ्जलि भगवति को

नित्यपूजान्ते बलिदानं द्विपञ्चाशदर्णमन्त्रः

तारो माया श्रीमदेकजटे नीलसरस्वति ॥ १०० ॥
महोग्रतारे देबालः सनेत्रो गदियुग्मकम् ।
सर्वभूतपिशाचकूर्मो दीर्घोग्निर्मेरुसान् ग्रसः ॥ १०१ ॥
ग्रभृगुर्ममजाड्यं च च्छेदयद्वितयं रमा ।
मायास्त्राग्निप्रियान्तोऽयं द्विपञ्चाशल्लिपिर्मनुः ॥ १०२ ॥
अनेन नित्यपूजान्तेऽन्वहं देव्यै बलिं हरेत् ।
एवं सिद्धे मनौ मन्त्री प्रयोगान्विदधीत च ॥ १०३ ॥
जातमात्रस्य बालस्य दिवसत्रितयादधः ।
जिह्वायां विलिखेन्मन्त्रं मध्वाज्याभ्यां शलाकया ॥ १०४ ॥

नित्यपूजान्ते बलिदानमन्त्रमाह – **तार इति** । तार ॐ । माया ह्रीं । वालो वः । सनेत्रयुतः वि । गदी खः । कूर्मश्चकारः । दीर्घोग्निः रा । मेरुः क्षः । भृगुः सः । रमा श्रीं । माया ह्रीं । अस्त्रं फट् । अग्निप्रिया स्वाहा । स्वरूपम् अन्यत् । यथा – ॐ ह्रीं श्रीमदेकजटे नीलसरस्वति महोग्रतारे देवि ख ख सर्वभूतपिशाचराक्षसान् ग्रस ग्रस मम जाड्यं छेदय छेदय श्रीं ह्रीं फट् स्वाहेति द्विपञ्चाशदर्णः ॥ १०० ॥ *॥ १०१–१०५ ॥

समर्पित करे ।

अब पूजा के उपरान्त **बलिदान मन्त्र का उद्धार** कहते हैं -

तार (ॐ), माया (ह्रीं), फिर, 'श्रीमदेकजटे नीलसरस्वति महोग्रतारे दे' फिर सनेत्र वाल (वि) फिर गदियुग्मक (ख ख), फिर 'सर्वभूतपिशा', फिर कूर्म (च), दीर्घ अग्नि (रा), मेरु (क्ष), फिर 'सान्', 'ग्रस ग्र' फिर भृगु (स), फिर 'मम जाड्यं' फिर २ बार छेदय शब्द, फिर रमा (श्रीं), माया (ह्रीं), अस्त्र (फट्) तथा अन्त में अग्निप्रिया (स्वाहा) लगाने से बावन अक्षरों का मन्त्र निष्पन्न होता है । इस मन्त्र से प्रतिदिन पूजा के बाद भगवती को बलि समर्पित करनी चाहिए । इस प्रकार मन्त्र सिद्धि होने पर साधक काम्य कर्म का अधिकारी हो जाता है ॥ १००-१०३ ॥

विमर्श - बलिदान मन्त्र का स्वरूप - ॐ ह्रीं श्रीमदेकजटे नीलसरस्वति महोग्रतारे देवि ख ख सर्वभूतपिशाचराक्षसान् ग्रस ग्रस मम जाड्यं छेदय छेदय श्रीं ह्रीं फट् स्वाहा ॥ १००-१०३ ॥

अब **काम्य प्रयोग** कहते हैं -

नवजात शिशु के उत्पन्न होने पर ३ दिनों के भीतर उसकी जिह्वा पर शहद एवं घी से (स्वर्ण निर्मित या श्वेत दूर्वा निर्मित) शलाका से तारा मन्त्र

सुवर्णकृतया यद्वा मन्त्री धवलदूर्वया ।
गतेऽष्टमेऽब्दे बालोऽसौ जायते कविराट् ध्रुवम् ॥ १०५ ॥
तथापरैरजेयोऽपि भूपसंघैर्धनार्चितः ।

तस्य मन्त्रस्य प्रयोगान्तरम्

उपरागे तदानीय तरद्दारुसरो जले ॥ १०६ ॥
निर्माय कीलकं तेन तैलमध्वमृतैर्लिखेत् ।
सरोजिनीदले मन्त्रं वेष्टयेन्मातृकाक्षरैः ॥ १०७ ॥
निखाय तद्दलं कुण्डे चतुरस्रे समेखले ।
संस्थाप्य पावकं तत्र जुहुयान्मनुनाऽमुना ॥ १०८ ॥
सहस्रं रक्तपद्मानां धेनुदुग्धजलाप्लुतम् ।
होमान्ते विविधैरन्नैः पलैरपि बलिं हरेत् ॥ १०९ ॥
बलिमन्त्रेण विधिवद् बलिमन्त्रः प्रकाश्यते ।

बलिदानेऽन्यः षोडशार्णमन्त्रः

तार पद्मेयुगं तन्द्रीवियद्दीर्घं च लोहितः ॥ ११० ॥

प्रयोगान्तरमाह – उपराग इति । ग्रहणे तडागे तरत्काष्ठं दतादन्तेनानीयते न लेखनीं कृत्वा तैलमधुसुधाभिः पद्मिनीपत्रे तया मनुम् आलिख्य मातृकावर्णैः संवेष्ट्य कुण्डं निखाय तदुपर्यग्निं प्रतिष्ठाप्य गोदुग्धाक्तेन रक्तपद्मसहस्रेण तत्र हुत्वा षोडशार्णेन मांसैर्होमान्ते बलिं दत्त्वा मध्यरात्रे पूर्वोक्तमन्त्रेण बलिं दद्यात् । एवं कृते उक्तफलसिद्धिः ॥ १०६ ॥ * ॥ १०७–१०९ ॥ षोडशार्णमाह – तार इति । तन्द्री मः । दीर्घवियत् हा । लोहितः पः । विषभगारूढो त्रिः मएयुतो दः द्मे । अनिलो झिंटीशाढ्यः यएयुतः ये । यथा – ॐ पद्मे पद्मे महापद्मे पद्मावतीये स्वाहेति ॥ ११० ॥ *॥ ११२ ॥

लिखना चाहिए । इस क्रिया के अनुष्ठान से ८ वर्ष व्यतीत हो जाने पर वह बालक निश्चित रूप से महाकवि बन जाता है तथा अन्य विद्वानों से अपराजित होकर राजपूजित हो जाता है ॥ १०४-१०६ ॥

ग्रहण के समय सरोवर में तैरते हुए काष्ठ की लेखनी बनावें फिर कमल के पत्ते पर तेल, मधु और मदिरा से तारा मन्त्र लिखकर मातृका (इक्यावन अक्षरों) वर्णों से उसे वेष्टित कर चौकोर मेखला वाले कुण्ड में उसे गाड़कर अग्निस्थापन कर तारामन्त्र से गोदुग्धमिश्रित जल से आप्लुत रक्त कमलों से एक हजार आहुतियाँ देवे । फिर विविध अन्न और मांस से विधिवत् भगवती तारा को बलिदान देना चाहिए । बलिदान का मन्त्र इस प्रकार है ॥ १०६-११० ॥

अत्रिर्विषभगारूढो वदेत्पद्मावतीपदम्।
झिण्टीशाढ्योऽनिलः स्वाहा षोडशार्णो[1] बलेर्मनुः॥ १११ ॥

अस्य मन्त्रस्य प्रयोगान्तराणि

ततो निशीथेऽपि बलिं पूर्वोक्तमनुना हरेत्।
एवं कृते पण्डितानामजेयः कविराड् भवेत्॥ ११२ ॥
निवासो भारती लक्ष्म्योर्जनतारञ्जनक्षमः।
शताभिजप्तां यो मन्त्री रोचनामलिके धरेत्॥ ११३ ॥
स यं पश्यति तस्यासौ दासवज्जायते क्षणात्।
श्मशानाङ्गारमाहृत्य शर्वर्यां कुजवासरे॥ ११४ ॥
कृष्णाम्बरेण सम्वेष्ट्य निबद्धं रक्ततन्तुभिः।
शताभिजप्तमूलेन निःक्षिपेद्वैरिवेश्मनि॥ ११५ ॥
उच्चाटयति सप्ताहात् सकुटुम्बान्विरोधिनः।
क्षाराढ्यनिशया मन्त्रं लिखित्वा पौरुषेऽस्थिनि॥ ११६ ॥

अलिके ललाटे धरेत् तिलकं कुर्यादित्यर्थः ॥ ११३ ॥ * ॥ ११४–११५ ॥ विरोधिनः शत्रून् उच्चाटयति निष्कासयति । क्षाराढ्यनिशया सैंधवयुक्तया हरिद्रया ॥ ११६–११७ ॥

तार (ॐ) फिर दो बार पद्मे शब्द (पद्मे पद्मे), फिर तन्द्री (म) दीर्घवियत् (हा) लोहित (प) वृषभगारुढोऽत्रिः म ए से युक्त द (अर्थात् द्मे) फिर 'पद्मावती' फिर झिण्टीशाढ्योऽनिलः य् ए से युक्त 'ये' तदनन्तर 'स्वाहा' यह सोलह अक्षरों का बलि मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ ११०-१११ ॥

मन्त्र का स्वरूप - 'ॐ पद्मे पद्मे महापद्मे पद्मावतीये स्वाहा' ॥ ११०-१११ ॥

फिर निशीथ काल में भी पूर्वोक्त मन्त्र (द्र० ४.५०-५१) से बलि देनी चाहिए । ऐसा करने से साधक पण्डितों से अपराजेय एवं महाकवि हो जाता है। उसमें स्वयं लक्ष्मी एवं सरस्वती दोनों निवास करती हैं तथा वह समस्त जनसमूहों को प्रसन्न करने में सक्षम हो जाता है ॥ ११२-११३ ॥

तारा मन्त्र का १०० बार जप कर जो व्यक्ति गोरोचन का तिलक अपने ललाट पर धारण करता है वह जिसे देखता है, वह तत्काल उसका दास बन जाता है ॥ ११३-११४ ॥

मंगलवार के दिन रात्रि के समय श्मशान से अङ्गार लाकर काले कपड़े में उसे लपेट कर और लाल धागों से उसे बाँध कर मूल मन्त्र से १०० बार जप

---

१. ॐ पद्मे पद्मे महापद्मे पद्मावतीये स्वाहा इति षोडशार्णः ।

रविवारे निशीथिन्यां सहस्रमभिमन्त्रयेत् ।
तत्क्षिप्तं शत्रुसदने मण्डलाद्भ्रंशकं भवेत् ॥ ११७ ॥
क्षेत्रे क्षिप्तं सस्यहान्यैजवह्नतुरगालये ।

यन्त्रकथनं तत्फलानि च

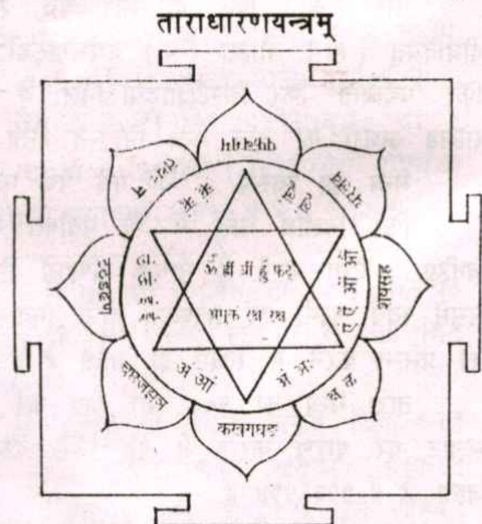
षट्कोणमध्ये प्रविलिख्य मूलं
साध्यान्वितं केसरगस्वराढ्यम् ।
काद्यष्टवर्गान्वितपत्रमब्जं
लिखेद् बहिर्भूमिपुरेणवीतम् ॥ ११८ ॥
यन्त्रमेतल्लिखेद् भुर्जे रसेन जतुजन्मना ।
पीताम्बरेण सम्वेष्ट्य बध्नीयात्पीतसूत्रतः ॥ ११६ ॥

यन्त्रमाह – **षडिति** । षट्कोणे साध्यान्वितं मूलममुकं रक्ष रक्षेति युक्तं मूलमन्त्रं विलिख्य अष्टदलकेसरेषु अं आमित्यादि स्वराणां युग्मपत्रेषु क च ट त प य श लेति वर्गान् विलिख्य बहिश्चतुष्कोणेन वेष्टयेत् ॥ ११८ ॥ जतु जन्मनालाक्षोत्थेन रसेन ॥ ११६ ॥ *॥ १२०–१२३ ॥

कर शत्रु के घर में फेंक दे तो एक सप्ताह के भीतर शत्रु का परिवार सहित उच्चाटन हो जाता है ॥ ११४-१११६ ॥

रविवार को रात्रि में पुरुष की हडडी पर सैन्धव एवं हल्दी से मूल मन्त्र लिखकर १००० मन्त्रों से उसे अभिमन्त्रित कर शत्रु के घर में फेक देने से वह पदच्युत हो जाता है और खेत में फेकने से वहाँ फसल नहीं उगती तथा घोड़साल में फेंक देने से घोड़े मर जाते हैं ॥ ११६-११८ ॥

ताराधारणयन्त्रम्



भोजपत्र पर षट्कोण, अष्टदल, एवं भूपुर वाला यन्त्र लाक्षारस से लिखकर षट्कोण के मध्य में मूलमन्त्र तथा साध्य व्यक्ति का नाम लिखें, केशरों पर स्वर लिखें तथा अष्टदलों में कवर्गादि आठ वर्ग लिखकर भूपुर से वेष्टित करें । पुनः इस मन्त्र को पीले कपड़े से लपेट कर पीले धागों से बाँध देना चाहिए । इस यन्त्र को बच्चों के गले में बाँधने से भूत प्रेतादिकों के भय से उनकी रक्षा हो जाती है । स्त्रियों

शिशूनां कण्ठतो बद्धं रक्षकं भूतभीतितः ।
वामबाहौ तु नारीणां पुत्रदं सुभगत्वकृत् ॥ १२० ॥
दक्षबाहौ नृणां बद्धं रक्षकं निर्धनानां धनप्रदम् ।
ज्ञानदं ज्ञानमिच्छूनां राज्ञां तु विजयप्रदम् ॥ १२१ ॥
एतद्यन्त्रं पुरा धृत्वा गौतमाद्या महर्षयः ।
लेभिरे मोक्षसंसिद्धिं साम्राज्यं भूमिनायकाः ॥ १२२ ॥
किम्भूरिणा नृणामेतद्वाञ्छितां यच्छति श्रियम् ।
कवित्वं राजमानं च कीर्तिमायुररोगताम् ॥ १२३ ॥
नैव तारा समा काचिद्देवता सर्वसिद्धिदा ।
कलौ युगे ततो गोप्या वाञ्छितां सिद्धिमीप्सुना ॥ १२४ ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचिते मन्त्रमहोदधौ तारामन्त्रकथनं नाम चतुर्थस्तरङ्गः ॥ ४ ॥



तारेति । गोप्या अहं तदुपासक इति कस्याप्यग्रे न प्रकाशयेत् ॥ १२४ ॥

इति श्रीमन्महीधरविरचितायां मन्त्रमहोदधिव्याख्यायां नौकायां तारामन्त्रकथनं नाम चतुर्थस्तरङ्गः ॥ ४ ॥



को बाएँ हाथ में धारण करने से पुत्र और सौभाग्य की वृद्धि होती है । पुरुषों को दाहिनी भुजा में धारण करने से निर्धन को धन और जिज्ञासुओं को ज्ञान, तथा राजा को विजय प्राप्त होती है ॥ ११८-१२१ ॥

इस मन्त्र को पूर्वकाल में गौतमादि महर्षियों ने धारण किया था, जिससे उनको मुक्ति प्राप्त हुई । राजर्षियों ने साम्राज्य प्राप्त किया । इस विषय में विशेष क्या कहें ? यह यन्त्र मनुष्यों की मनोवांछित सिद्धि कवित्व, राजसम्मान, कीर्ति, आयु एवं आरोग्य प्रदान करता है । कलियुग में तारा के समान सर्वसिद्धिदायक कोई अन्य देवता नहीं है । अतः मनोभिलषित चाहने वालों को यह विद्या गोपनीय रखनी चाहिए ॥ १२२-१२४ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमन्महीधर विरचित मन्त्रमहोदधि के चतुर्थ तरङ्ग की महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत 'अरित्र' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ ४ ॥



अथ पञ्चमः तरङ्गः

ताराभेदा अथोच्यन्ते शीघ्रं सिद्धिप्रदायिनः।

ब्रह्मोपासितताराविद्याकथनम्

वह्निवामाक्षिबिन्द्वाढ्या कामिका भुवनेश्वरी॥ १॥
भुवनेशी वर्मरुद्धाफडन्ता प्रणवादिका।
सप्ताक्षरीमहाविद्या विरिञ्चिसमुपासिता॥ २॥

विष्णूपासिततारविद्याकथनम्

वाक्शक्तिः कमलाकामो हंसोऽनुग्रहसर्गवान्।
वर्मोग्रतारे वर्मास्त्रं विष्णवर्चा द्वादशाक्षरी॥ ३॥

---

* नौका *

ताराभेदानाह – ब्रह्मोपासितां तावदाह – **वह्नीति** । रेफईबिन्दुयुता कामिका । तकारः त्रीं ॥ १ ॥ वर्मरुद्धाभुवनेशी वर्मद्वयमध्यगतेत्यर्थः । यथा – ॐ त्रीं ह्रीं हुँ ह्रीं हुँ फडिति ॥ २ ॥ विष्णूपासितामाह – **वागिति** । कामः क्लीं । अनुग्रहसर्गवान् हंसः औविसर्गयुतः सः सौः। यथा – ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सौः हुँ उग्रतारे हुँ फडिति ॥ ३ ॥

---

* अरित्र *

अब **तारा के मन्त्रभेदों** को कहता हूँ जो शीघ्र ही सिद्धि प्रदान करने वाले हैं –

वह्नि (र), दीर्घाक्षि (ई) और बिन्दु से युक्त कामिकास्त्र (अर्थात् त्रीं) फिर भुवनेश्वरी (ह्रीं) एवं दो वर्मबीजों के मध्य में भुवनेशी (हुं ह्रीं हुं) इसके अन्त में फट् तथा आदि में प्रणव (ॐ) लगाने से ब्रह्मोपासित सप्ताक्षरी महाविद्या (तारा) का मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ १-२ ॥

विमर्श - (i) **ब्रह्मोपासित तारा मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - ॐ त्रीं ह्रीं हुं ह्रीं हुं फट् ॥ १-२ ॥

वाक् (ऐं), शक्ति (ह्रीं), कमला (श्रीं), काम (क्लीं), अनुग्रह सर्गवान् हंस (सौः), वर्म (हुं), 'उग्रतारे' फिर वर्म (हुं), इसके अन्त में 'फट्' लगाने

विष्णूपासितद्वितीयताराविद्याकथनम्

तारवर्मशिवाकामो मनुसर्गयुतो भृगुः।
वर्मास्त्रमेषा सप्तार्णा सिद्धिदा विष्णुसेविता॥ ४॥

चतुर्मुखोपासितविद्याद्वयकथनम्

एतयोः पञ्चमे बीजे सकारो हादिरान्तिमः।
तदा विद्याद्वयं प्रोक्तं चतुर्मुखसमर्चितम्॥ ५॥

द्वितीयां विष्णूपासितामाह – **तारेति** । शिवा ह्रीं । भृगुः सः । यथा – ॐ हुँ ह्रीं क्लीं सौः हुँ फडिति ॥ ४ ॥ चतुर्मुखोपासितं मन्त्रद्वयमाह – **एतयोरिति** । एतयोरनन्तरोक्तयोर्विष्णूपासितयोर्द्वादशाक्षरी–सप्ताक्षरयोर्विद्ययोः पञ्चमे बीजे सौ रूपे यदि आदौ हकारः अन्ते रेफः तदा तदेव विद्याद्वयं चतुर्मुखसेवितं हः आदौ यस्य रः, अन्तिमो यस्य सः, हादिरान्तिमः । यथा – ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं हसौः हुँ उग्रतारे हुँ फट्–इत्याद्या । ॐ हुँ ह्रीं क्लीं हसौः हुं फडिति द्वितीया ॥ ५ ॥

से विष्णु के द्वारा उपासित १२ अक्षरों का तारा मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ ३ ॥

विमर्श - (ii) **विष्णूपासित तारा मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सौः हुं उग्रतारे हुं फट् ॥ ३ ॥

तार (ॐ), वर्म (हुं), शिवा (ह्रीं), काम (क्लीं), मनुसर्गसहित भृगु (सौः), वर्म (हुं) एवं अन्त में अस्त्र (फट्) लगाने से सिद्धि प्रदान करने वाला विष्णुसेवित तारा का सप्ताक्षरी मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ ४ ॥

विमर्श - (iii) **विष्णु द्वारा उपासित द्वितीय तारा मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - ॐ हुं ह्रीं क्लीं सौः हुं फट् ॥ ४ ॥

ऊपर कहे गये विष्णु से उपासित द्वादशाक्षर एवं सप्ताक्षर इन दोनों विद्याओं में पञ्चम बीज (सौः) के आदि में यदि ह लगा दिया जाये तो प्रथम मन्त्र और उसके अन्त में 'रेफ' लगा दिया जाय तो वह 'ब्रह्मोपासित' तारा का दूसरा मन्त्र बन जाता है ॥ ५ ॥

विमर्श - (iv) द्वादशाक्षर मन्त्र के पञ्चम (सौः) के पहले ह लगाने से **ब्रह्मोपासित तारा का प्रथम मन्त्र** निष्पन्न होता है । इसका स्वरूप इस प्रकार है - 'ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं ह्सौः हुं उग्रतारे हुं फट्' ।

(v) सप्ताक्षर मन्त्र के पञ्चम (सौः) के पहले (र्) अन्त में है जिसके, ऐसा ह अर्थात् ह्र लगाने से **ब्रह्मोपासित तारा मन्त्र का द्वितीय मन्त्र** बनता है । जिसका स्वरूप इस प्रकार होता है - 'ॐ हुं ह्रीं क्लीं ह्रसौः हुं फट्' ॥ ५ ॥

एकजटाविद्याद्वयम्

तारो माया वर्म माया वर्मास्त्रं च रसाक्षरी।
हरिरग्नित्रिमूर्तीन्दुयुग् वर्मपुटितादिजा ॥ ६ ॥
अस्त्रान्ता पञ्चवर्णोऽयं प्रोक्तमेकजटाद्वयम्।

नारायणीया ताराविद्या

रेफशान्तीन्दुयुङ्णान्तो वर्मास्त्रं कामवाग्भवम् ॥ ७ ॥
नारायणोपासितेयं पञ्चार्णा सर्वसिद्धिदा।

उक्तानामष्टविद्यानामृष्यादिकथनम्

अमूषामष्टविद्यानामृषिः[1] शक्तिर्वसिष्ठजः ॥ ८ ॥

एकजटाद्वयमाह – **तार इति** । अग्नित्रिमूर्तीन्दुयुक्हरिः । रईबिन्दुयुक्त–कारस्त्रीं । स्पष्टमन्यत् । यथा – ॐ ह्रीं हुँ ह्रीं हुँ फट् इति प्रथमा । त्रीं हुँ ह्रीं हुँ फडिति द्वितीया ॥ ६–७ ॥ नारायणीयामाह – **रेफेति** । रेफः रः । शान्तिः ईकारः । अनुस्वारयुक्तो णान्तस्तः त्रीं । यथा – त्रीं हुँ फट् क्लीं ऐमिति ॥ ७–८ ॥ उक्तानामष्टविद्यानामृष्याद्याह – **अमूषामिति** ॥ ८ ॥

इसके अनन्तर **एकजटा के दो मन्त्र का प्रातिपादन** करते हैं -

तार (ॐ), माया (ह्रीं), वर्म (हुं), फिर माया (ह्रीं), वर्म (हुँ) और इसके अन्त में अस्त्र (फट्) लगाने से षडक्षर मन्त्र बन जाता है ॥ ६॥

विमर्श - (vi) **एकजटा मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - ॐ ह्रीं हुं ह्रीं हुं फट्। इस प्रकार तारा का अन्य (**प्रथम एकजटा**) षडक्षर मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ ६ ॥

अग्नि (र्), त्रिमूर्ति (इ), इन्दु (अनुस्वार) के सहित हरि (त्) अर्थात् (त्रीं) वर्मसंपुटित अद्रिजा (हुं ह्रीं हुं) फिर अन्त में अस्त्र (फट्) लगाने से पञ्चाक्षर मन्त्र बन जाता है । ये दोनों एकजटा के मन्त्र हैं ॥ ७ ॥

विमर्श - (vii) **एकजटा के दूसरे मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - 'त्रीं हुं ह्रीं हुं फट्' । इस प्रकार एकजटा का द्वितीय मन्त्र बनता है । दोनों मन्त्र षडक्षर और पञ्चाक्षर एकजटा के हैं ॥ ७ ॥

रेफ (र), शान्ति (ईकार), इन्दु (अनुस्वार) से युक्त णान्त (अर्थात् तकार त्रीं), वर्म (हुं), अस्त्र (फट्), काम (क्लीं) और अन्त में वाग्भव (ऐं) लगाने से जो मन्त्र बनता है वह पञ्चाक्षरों से युक्त नारायणोप्रासित तारा मन्त्र सर्वसिद्धियों को देने वाला कहा जाता है ॥ ८ ॥

---

१. अष्टविद्यानां वसिष्ठजोशक्तिर्ऋषिः गायत्रीछन्दः तारादेवता ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

गायत्रीतारके छन्दोदेवते परिकीर्तिते ।
न्यासं तु पूर्ववत् कृत्वा ध्यायेत्तारां हृदम्बुजे ॥ ६ ॥

ध्यानवर्णनम्

श्वेताम्बरां शारदचन्द्रकान्तिं
सद्भूषणां चन्द्रकलावतंसाम् ।
कर्त्रीकपालान्वितपाणिपद्मां
तारां त्रिनेत्रां प्रभजेऽखिलर्द्ध्यै ॥ १० ॥

गायत्रीछन्दः । तारादेवता । पूर्ववत् षडदीर्घाढ्यमायाबीजेन ह्रां ह्रीमित्यादि ॥ ६ ॥ ध्यानमाह – **श्वेतेति** । कर्त्री दक्षे ॥ १० ॥

विमर्श - (viii) **नारायणोपासित तारा मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - 'त्रीं हुं फट् क्लीं ऐं' ॥ ८ ॥

ऊपर कही गई इन आठों विद्याओं के वशिष्ठ पुत्र शक्ति ऋषि हैं । गायत्री छन्द तथा तारा देवता हैं । पूर्वोक्त विधि से न्यास कर हृत्कमल पर इस मन्त्र में भगवती तारा का इस प्रकार ध्यान करना चाहिए ॥ ८-६ ॥

विमर्श - इसके विनियोग, ऋष्यादिन्यास तथा कराङ्गन्यास का स्वरूप इस प्रकार है -

विनियोग - ॐ अस्यास्ताराविद्यायाः वशिष्ठजो शक्तिर्ऋषिः गायत्रीछन्दः तारा-देवता ह्रीं बीजं हुं शक्तिः स्त्रीं कीलकं आत्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यासः -

ॐ वशिष्ठजशक्तिर्ऋषये नमः, शिरसि । ॐ गायत्रीछन्दसे नमः, मुखे ।
ॐ तारादेवतायै नमः, हृदि । ॐ ह्रीं बीजाय नमः, गुह्ये ।
ॐ हुं शक्त्यै नमः, पादयोः । ॐ स्त्रीं कीलकाय नमः, सर्वाङ्गे ।

हृदयादिन्यास -

ॐ ह्रां हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा,
ॐ ह्रूं शिखायै वषट्, ॐ ह्रैं कवचाय हुं,
ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ ह्रः अस्त्राय फट् ।

इसी प्रकार **कराङ्गन्यास** - ॐ ह्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा, ॐ ह्रूं मध्यमाभ्यां वषट्, ॐ ह्रैं अनामिकाभ्यां हुं, ॐ ह्रौं कनिष्ठिकाभ्यां वौषट् ॐ ह्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् भी कर लेना चाहिए ॥ ८-६ ॥

अब **तारा मन्त्र के जप के पूर्व ध्यान** कहते हैं - श्वेत वस्त्र धारण की हुई शारदीय चन्द्रिका के समान शरीर की आभा से युक्त, चन्द्रकला को मस्तक पर धारण करने वाली, नाना प्रकार के आभूषणों से उल्लसित, हाथों में

जपपूजादिकं सर्वमासां पूर्ववदाचरेत्।

प्रयोगवर्णनम्

मधुयुक्परमान्नेन होमाद्विद्यानिधिर्भवेत् ॥ ११ ॥
रक्तां वश्ये स्वर्णवर्णां स्तम्भने मारणे सिताम्।
उच्चाटने धूम्रवर्णां शान्तौ श्वेतां स्मरेदिमाम् ॥ १२ ॥
भूरिणा किमिहोक्तेन विद्या एताः प्रसाधिताः।
पूरयन्त्यखिलं नृणां मनोरथमिह ध्रुवम् ॥ १३ ॥

एकजटामन्त्रः

मायाहृद्भगवत्येकजटे मम जलं स्थिरा।
वह्न्यासनगता पुष्पं प्रतीच्छानलवल्लभा ॥ १४ ॥
द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रस्तारादिः सर्वसिद्धिदः।
ऋषिः[1] पतञ्जलिश्छन्दो गायत्र्येकजटा पुनः ॥ १५ ॥

प्रयोगानाह – **मध्विति** ॥ ११ ॥ * ॥ १२–१३ ॥ एकजटामाह – **मायेति**। जलं वः वह्न्यासनगता स्थिरा रेफयुतो जः ज्रः । यथा – ॐ ह्रीं नमो भगवत्येकजटे मम वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहेति ॥ १४ ॥ * ॥ १५–१६ ॥

कर्तारिका (कैंची या चाकू) तथा कपाल लिए हुये त्रिनेत्रा भगवती तारा का मैं अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिए ध्यान करता हूँ ॥ १० ॥

प्रयोग कथन - इन विद्याओं का जप, पूजन एवं होमादि सर्व कर्म पूर्वोक्त तारा मन्त्र (४. ५०-१०३) के समान करना चाहिए । साधक मधु युक्त परमान्न के होम से विद्यानिधि हो जाता है ॥ ११ ॥

वश्यकार्य के लिए रक्तवर्णा, स्तम्भनकर्म में स्वर्णवर्णा, मारणकर्म में कृष्णवर्णा, उच्चाटन में धूम्रवर्णा तथा शान्ति कार्यो में श्वेतवर्णा भगवती का ध्यान करना चाहिए ॥ १२ ॥

इस विषय में बहुत क्या कहें - उक्त रीति से आराधना करने पर ये विद्यायें निश्चित रूप से साधकों के समस्त अभीष्ट को पूर्ण कर देती हैं ॥ १३ ॥

अब पुनः **एकजटा मन्त्र** कहते हैं - माया (ह्रीं), हृद् (नमः), फिर भगवत्येकजटे मम, फिर जल (व), तदनन्तर वह्न्यासनगता स्थिरा (ज्र), फिर 'पुष्पं प्रतीच्छ', इसके अन्त में अनलवल्लभा (स्वाहा) तथा आदि में तार (ॐ) लगाने से बाईस अक्षरों का सर्वसिद्धिदायक एकजटा मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ १४-१५ ॥

---

१. ॐ अस्य श्रीमदेकजटामन्त्रस्य पतञ्जलिर्ऋषिः गायत्रीछन्दः एकजटादेवता ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः । ॐ अस्य श्रीनीलसरस्वतीमन्त्रस्य ब्रह्मऋषिः गायत्रीछन्दः नीलसरस्वतीदेवता ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

देवता दीर्घषट्काढ्यमायया स्यात् षडङ्गकम् ।
ध्यानार्चनप्रयोगांस्तु कुर्यात् पूर्वोक्तमन्त्रवत् ॥ १६ ॥

नीलसरस्वतीमन्त्रः

रमां माया हसौ व्यापिन्यारूढौ सर्गसंयुतौ ।
वर्मास्त्रं नीलभृगुरस्वत्यैठद्वयमीरितम् ॥ १७ ॥
प्रणवाद्यो मनुः सर्वसिद्धिदो मनुवर्णकः ।
ऋष्याद्या ब्रह्मगायत्री तथा नीलसरस्वती ॥ १८ ॥
नेत्रचन्द्रेन्दुनेत्राङ्गनेत्रार्णैरङ्गकल्पना ।
मन्त्रोत्थितैरथो ध्यायेद् देवीं सर्वेष्टसिद्धिदाम् ॥ १९ ॥

नीलसरस्वतीमाह – **रमेति** । व्यापिन्यारूढौ औयुतौ । नीलस्वरूपम् । भृगुः सः । रस्वत्यैस्वरूपम् । ठद्वयं स्वाहा । यथा – ॐ श्रीं ह्रीं हसौः हुँ फट् नीलसरस्वत्यै स्वाहा । मनुवर्णश्चतुर्दशार्णः ॥ १७–१८ ॥ षडङ्गमाह – **नेत्रेति** । नेत्रशब्देनार्णद्वयं चन्द्र एकः। अङ्गानि षट् ॥ १९ ॥

विमर्श - एकजटा मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - ॐ ह्रीं नमो भगवत्येकजटे मम वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा ॥ १४-१५ ॥

इस मन्त्र के पतञ्जलि ऋषि हैं, गायत्री छन्द है तथा एकजटा देवता हैं । इस मन्त्र के जप में षड्दीर्घ युक्त माया बीज से षडङ्गन्यास करना चाहिए । ध्यान, पूजा एवं प्रयोगादि पूर्वोक्त रीति से करना चाहिए ॥ १५-१६ ॥

विमर्श - मन्त्र का विनियोग इस प्रकार है - ॐ अस्य श्रीमदेकजटामन्त्रस्य पतञ्जलिर्ऋषिः गायत्रीछन्दः श्रीमदेकजटादेवतात्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

षडङ्गन्यास - ॐ ह्रां एकजटायै हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं तारिण्यै शिरसे स्वाहा, ॐ ह्रूं वज्रोदके शिखायै वषट्, ॐ ह्रैं उग्रजटे कवचाय हुं, ॐ ह्रौं महाप्रतिसरे नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ ह्रः अस्त्राय फट्।

इसी प्रकार कराङ्गन्यास कर एकजटा मन्त्र की देवता तारा का ध्यान पूर्वोक्त ४. ३९-४० श्लोकों में वर्णित स्वरूप से करें ॥ १५-१६ ॥

अब **नीलसरस्वती का मन्त्र** कहते हैं - रमा (श्रीं), माया (ह्रीं), व्यापिनी (औ) एवं सर्ग (विसर्ग) से युक्त हस् वर्ण (अर्थात् हसौः), वर्म (हुं), अस्त्र (फट्), फिर 'नील' पद, तदनन्तर भृगु 'स', फिर 'रस्वत्यै' तथा उसके अन्त में दो ठ (स्वाहा), तथा मन्त्र के आदि में प्रणव (ॐ) लगाने से चौदह अक्षरों का नीलसरस्वती मन्त्र बन जाता है ॥ १७-१८ ॥

इस मन्त्र के ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द तथा नीलसरस्वती देवता हैं । मन्त्र के क्रमशः २, १, १, २, ६, एवं २ अक्षरों से षडङ्गन्यास कर मनोरथपूर्ण

घण्टाशिरः शूलमसिं कराग्रैः
सम्बिभ्रतीं चन्द्रकलावतंसाम् ।
प्रमथ्नतीं पादतले पशुं तां
भजे मुदा नीलसरस्वतीशाम् ॥ २० ॥
जपपूजादिकं सर्वमस्याः पूर्ववदीरितम् ।
विशेषाज्जयदा वादे विद्येयं साधिता नृणाम् ॥ २१ ॥

नीलसरस्वत्या अपरो मन्त्रः

माया सानन्तसंयुक्ता वर्मह्रन्ङेयुता पुनः ।
तारामहापदाद्या सा भृगुब्रह्मानलान्तिमः ॥ २२ ॥

ध्यानमाह – **घण्टामिति** । शूलासीदक्षयोः घण्टाशिरसीवामयोः ॥ २० ॥ * ॥ २१ ॥ मन्त्रान्तरमाह – **मायेति** । सा माया अनन्तसंयुता आकारसंयुता ह्राम् ॥ ङेयुता तारा तारायै । सा महापदाद्या महातारायै । भृगुः सः । ब्रह्मा कः । अनलान्तिमो लः । स्पष्टमन्यत् ॥ तथा ताराद्या त्रीं बीजाद्या । यथा – ॐ त्रीं ह्रां हुँ नमस्तारायै महातारायै सकलदुस्तरां–

करने वाली भगवती नीलसरस्वती का ध्यान करना चाहिए ॥ १८-१९ ॥

विमर्श - **नीलसरस्वती मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - ॐ श्रीं ह्रीं ह्सौः हुं फट् नीलसरस्वत्यै स्वाहा ।

विनियोग - ॐ अस्य श्रीनीलसरस्वतीमन्त्रस्य ब्रह्माऋषिर्गायत्रीछन्दः नीलसरस्वतीदेवतात्मनोऽभीष्टसिद्धयर्थे जपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास - ॐ श्रीं हृदयाय नमः, ह्रीं शिरसे स्वाहा,
ह्सौः शिखायै वषट्, हुं फट् कवचाय हुम्,
नीलसरस्वत्यै नेत्रत्रयाय वौषट् स्वाहा, अस्त्राय फट् ।

इसी प्रकार कराङ्गन्यास कर भगवती का ध्यान करना चाहिए ॥ १८-१९ ॥

अब **नीलसरस्वती का ध्यान** कहते हैं - दाहिने हाथों में शूल एवं तलवार तथा बायें हाथों में घण्टा एवं मुण्ड धारण करने वाली, शिर पर चन्द्रकला धारण किये हुये तथा अपने पैरों के नीचे उन पशुओं का प्रमन्थन करती हुई प्रसन्न मुद्रा वाली ईश्वरी भगवती नीलसरस्वती का मैं ध्यान करता हूँ ॥ २० ॥

इस मन्त्र के जप पूजादि का विधान हम पूर्व में कह आये हैं । यह विद्या सिद्ध हो जाने पर मनुष्यों को वाद-विवाद में विशेष रूप से विजय प्रदान करने वाली होती हैं ॥ २१ ॥

अब अन्य **तारा मन्त्र** कहते हैं -

आदि में तारा (त्रीं), सानन्त आकार सहित माया (ह्रां), वर्म (हुं),

दुस्तरांस्तारयद्वन्द्वं तरयुग्मं च ठद्वयम् ।
द्वात्रिंशदर्णा ताराद्या पूजास्याः पूर्ववन्मताः ॥ २३ ॥

विद्याराज्ञीमन्त्रः

विद्याराज्ञीमथो वक्ष्ये सुरेन्द्रस्यापि दुर्लभाम् ।
लब्ध्वा यां मानवाः स्वेष्टं साधयन्त्यर्चने रताः ॥ २४ ॥
वाङ्माया श्रीर्मनोजन्माहंसोऽनुग्रह बिन्दुयुक् ।
कामः शक्तिश्च वाग्बीजं फान्तोलार्घीशबिन्दुयुक् ॥ २५ ॥
स्त्रीबीजं नीलतारेस्यात्संबुद्धयन्ता सरस्वती ।
अत्रीसरेफौ क्रमतः शेषवामाक्षिसंयुतौ ॥ २६ ॥
सानुस्वारौ कामबीजं फान्तो मांसार्धिबिन्दुगः ।
सर्गीभृगुर्वाग्हृल्लेखारमाकामोऽथ सौ द्वयम् ॥ २७ ॥

स्तारय तारय तर तर स्वाहेति ॥ २२–२३ ॥ द्वात्रिंशदर्णाविद्याराज्ञीमाह – **विद्येति** ॥ २४ ॥ वागिति । मनोजन्मा क्लीं । अनुग्रहबिन्दुयुक्हंसः सः सौं । लार्घीशबिन्दुयुक्फान्तः लऊ बिन्दुयुतो बः ब्लूं ॥ २५ ॥ स्त्रीबीजं स्त्रींसरेफौ रेफयुक्तौ शेषवामाक्षिसंयुतौ क्रमतआईसंयुतौ अत्रीदकारौ ॥ २६ ॥ सानुस्वारौ द्रां द्रीमिति । कामबीजं क्लीं । मांसार्घीबिन्दुयुग्लऊबिन्दुयुक्तः फान्तो बः ब्लूं, सर्गी भृगुः सः ॥ हृल्लेखा ह्रीं यथा – ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सौं क्लीं ह्रीं ऐं ब्लूं स्त्री नीलतारे सरस्वति द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः ऐं ह्रीं

हृत (नमः) उसके बाद चतुर्थ्यन्त तारा पद (तारायै), एवं महातारा पद (महातारायै), भृगु (स), ब्रह्मा (क), अनलान्तिम (ल), फिर दुस्तरां पद, फिर दो तारय पद (तारय तारय), दो तर पद (तर तर) तदनन्तर ठद्वय 'स्वाहा' लगाने से बत्तीस अक्षरों का तारा मन्त्र बनता है । इस मन्त्र का पूजनादि विधान तारा मन्त्र के समान समझना चाहिए ॥ २२-२३ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - ॐ त्रीं ह्रां हुं नमस्तारायै महातारायै सकलदुस्तरांस्तारय तारय तर तर स्वाहा ॥ २२-२३ ॥

अब विद्याराज्ञी (महाविद्या मन्त्र) जो सुरेन्द्र के लिए भी दुर्लभ है, उसे कहता हूँ जिसे प्राप्त कर देवी के पूजनादि में तत्पर रहने वाला साधक अपना सारा अभीष्ट प्राप्त कर लेता है ॥ २४ ॥

वाग् (ऐं), माया (ह्रीं), श्री (श्रीं), मनोजन्मा (क्लीं), अनुग्रह (औ), बिन्दु सहित हंस (सौं), फिर काम (क्लीं), शक्ति (ह्रीं), वाग्बीज (ऐं), मांस (ब), - अर्घी (ऊ), बिन्दु (अनुस्वार) से युक्त फान्त (ल अर्थात ब्लूं), स्त्रीबीज (स्त्रीं) फिर सम्बुद्धयन्त 'नीलतारे सरस्वति' पद, रेफ

सर्गान्तं भुवनेशानी स्वाहा[1] द्वात्रिंशदक्षरी।
महाविद्या हि सा ख्याता सेविता भोगमोक्षदा ॥ २८ ॥
ब्रह्मानुष्टुप्सरस्वत्यो मुन्याद्या[2] अङ्गकल्पना।
पञ्चपञ्चाष्टपञ्चेषु युगार्णैर्मन्त्रसम्भवैः ॥ २९ ॥

ध्यानवर्णनम्

शवासनां सर्पविभूषणाढ्यां
कर्त्री कपालं चषकं त्रिशूलम् ।

श्रीं क्लीं सौः सौः ह्रीं स्वाहेति ॥ २७–२८ ॥ षडङ्गमाह – **पञ्चेति** ॥ २९ ॥ ध्यानमाह – **शवेति**। कर्त्री त्रिशूले दक्षयोः ॥ ३० ॥

(रू) शेष वामाक्षि से संयुक्त एवं अनुस्वार के सहित अत्री दो बार (द्रां द्रीं), फिर काम बीज (क्लीं) मांसार्धीबिन्दु युक्त फान्त (ब्लूं), विसर्ग युक्त भृगु स (अर्थात् सः), वाग् (ऐं), हृल्लेखा (ह्रीं), रमा (श्रीं), काम (क्लीं), दो बार विसर्गान्त सौ (सौः सौः), भुवनेशानी (ह्रीं) तथा अन्त में स्वाहा लगाने से बत्तीस अक्षरों का तारा मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ २५-२८ ॥

इसे **महाविद्या** कहते हैं, जो साधक को भुक्ति तथा मुक्ति दोनों ही प्रदान करती है ।

इस मन्त्र के ब्रह्मा ऋषि हैं, अनुष्टुप् छन्द है, सरस्वती देवता हैं । इस मन्त्र के क्रमशः ५, ५, ८, ५, ५ एवं ४ वर्णो से षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ २५-२९ ॥

विमर्श – विद्याराज्ञी मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार हैं - ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सौं क्लीं ह्रीं ऐं ब्लूं स्त्रीं नीलतारे सरस्वति द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सौः सौः ह्रीं स्वाहा ।

विनियोग - ॐ अस्य श्रीमहाविद्यामन्त्रस्य ब्रह्माऋषिः अनुष्टुपूछन्दः सरस्वतीदेवता ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास -

ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सौः हृदयाय नमः, क्लीं ह्रीं ऐं ब्लू स्त्रीं शिरसे स्वाहा,
नीलतारे सरस्वति शिखायै वषट्, द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः कवचाय हुं,
ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सौः नेत्रत्रयाय वौषट्, सौः ह्रीं स्वाहा अस्त्राय फट्,
इस प्रकार हृदयादिन्यास कर कराङ्गन्यास भी करना चाहिए ॥ २५-२९ ॥

---

१. ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सौं क्लीं ह्रीं ऐं ब्लू त्रीं नीलतारे सरस्वति द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सौ सौः ह्रीं स्वाहा।

२. अस्य महाविद्यामन्त्रस्य ब्रह्माऋषिः अनुष्टुपछन्दः सरस्वतिदेवता ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

करैर्दधानां नरमुण्डमालां
त्र्यक्षां भजे नीलसरस्वतीं ताम् ॥ ३० ॥

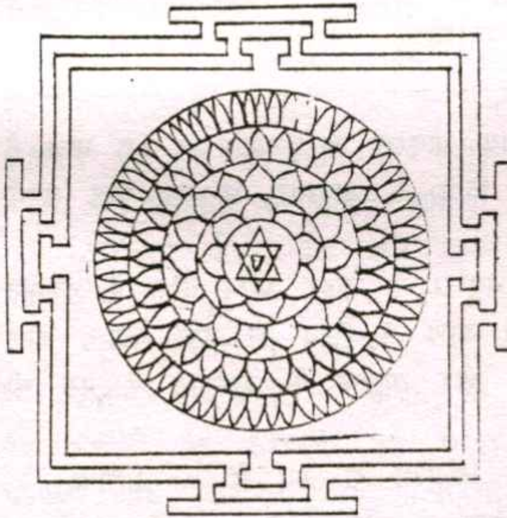
प्रयोगवर्णनम्

चतुर्लक्षं जपेद् विद्यां किंशुकैर्मधुरान्वितैः ।
दशांशं जुहुयाद् वह्नौ श्रद्धापूर्वमतन्द्रितः ॥ ३१ ॥
पूर्वोक्ते पूजयेत् पीठे वक्ष्यमाणेन वर्त्मना ।
आदौ त्रिकोणं षट्कोणमष्टषोडशपत्रके ॥ ३२ ॥
द्वात्रिंशत् पत्रमब्जं स्याच्चतुष्षष्टिदलं ततः ।
त्रिरेखाढ्यं धरागेहं चतुरस्रमतः परम् ॥ ३३ ॥
एवं यन्त्रं समालिख्य बाह्यतः पूजनं चरेत् ।

किंशुकैः पलाशपुष्पैः ॥ ३१ ॥ * ॥ ३२–४० ॥

अब **महाविद्या का ध्यान** कहते हैं - शवासन पर आसीन सर्पो के भूषण से विभूषित अपने चारों हाथों में क्रमशः कर्तरिका (कैंची), कपाल, चषक (पानपात्र) एवं त्रिशूल धारण किये हुये तथा हाथों में नरमुण्डमाला लिए हुये त्रिनेत्रा नीलसरस्वती का मैं ध्यान करता हूँ ॥ ३० ॥

विद्याराज्ञीपूजनयन्त्रम्



पुरश्चरण - उक्त सरस्वती महाविद्या मन्त्र का चार लाख जप करना चाहिए, तदनन्तर मधुमिश्रित पलाश पुष्पों का श्रद्धा एवं उत्साह सहित अग्नि में दशांश होम करना चाहिए ॥ ३१ ॥

पीठपूजाविधान - जपारम्भ के प्रथम पूर्वोक्त पीठ पर वक्ष्यमाण मन्त्र से देवी की पूजा करनी चाहिए । सर्वप्रथम त्रिकोण, फिर षट्कोण, उसके बाद अष्टदल, फिर षोडशदल, तदनन्तर बत्तीसदल, फिर चौंसठ दल वाला कमल निमार्ण कर तीन रेखाओं वाले भूपुर से वेष्टित कर चतुरस्र बनाना चाहिए । ऐसा यन्त्र लिखकर उसके बाह्य भाग से पूजन प्रारम्भ करना चाहिए ॥ ३२-३४ ॥

विमर्श - चौथे तरङ्ग में कही गई विधि के अनुसार भूतशुद्धि, षोढान्यास, दिग्बन्धन तथा अर्घ्यस्थापन कर ४. ८६-८८ में बताई गई विधि के अनुसार पीठ पूजा, ध्यान एवं आवाहन कर षोडशोपचारों से नीलसरस्वती का पूजन कर

आवरणपूजाकथनम्

चतुरस्रस्याग्निकोणे विघ्नेशं परिपूजयेत् ॥ ३४ ॥
वायुकोणे क्षेत्रपालमैशान्ये भैरवं तथा ।
नैर्ऋते योगिनीः सर्वा वामभागे गुरुं यजेत् ॥ ३५ ॥

अष्टसिद्धिकथनम्

भूगृहस्याद्यरेखायामणिमालघिमा तथा ।
महिमा चेशिता पूज्या वशिता कामपूरणी ॥ ३६ ॥
गरिमा प्राप्तिरित्येताः पूज्याः पूर्वादिदिक् क्रमात् ।

अष्टभैरवकथनम्

धरागृहस्य रेखायां द्वितीयायां तु भैरवाः ॥ ३७ ॥
असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोधोन्मत्तकपालिनः ।
भीषणश्चाथ संहार एतेष्टौ भैरवाः स्मृताः ॥ ३८ ॥

सप्तमातृकाकथनम्

भूमिगेहे तृतीयायां रेखायां मातरः पुनः ।
ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारीवैष्णवी तथा ॥ ३९ ॥
वारहीन्द्राणिका चैव चामुण्डा सप्तमी स्मृता ।
महालक्ष्मीस्तथेज्यास्ताः पूर्वादिषु यथाक्रमम् ॥ ४० ॥

योनि मुद्रा प्रदर्शित कर - देवि आज्ञापय आवरणं ते पूजयामि - इस मन्त्र से देवी से आज्ञा लेकर आगे कही गई विधि के अनुसार आवरण पूजा करनी चाहिए ॥ ३२-३४ ॥

अब **आवरण पूजा** कहते हैं - चतुरस्र के बाहर अग्नि कोण में गणपति का, वायव्यकोण में क्षेत्रपाल का, ईशान कोण में भैरव का तथा नैर्ऋत्य कोण में योगिनियों का पूजन करना चाहिए और चतुरस्र के वामभाग में गुरु की पूजा करनी चाहिए ॥ ३४-३५ ॥

भूपुर की **प्रथम रेखा में** पूर्वादि दिशाओं के क्रम से १. अणिमा, २. लघिमा, ३. महिमा, ४. ईशिता, ५. वशिता, ६. कामपूरणी, ७. गरिमा एवं ८. प्राप्ति की पूजा करनी चाहिए ॥ ३६-३७ ॥

पुनः भूपुर की **द्वितीय रेखा में** पूर्वादि क्रम से - १. असिताङ्ग, २. रुरु, ३. चण्ड, ४. क्रोध, ५. उन्मत्त, ६. कपाली, ७. भीषण एवं ८. संहार - इन आठ भैरवों का पूजन करना चाहिए । तथा भूपुर की **तृतीय रेखा में** १.

इत्थमाद्यावृतिं चेष्ट्वा योनिमुद्रां प्रदर्शयेत्।

चतुःषष्टिशक्तिकथनम्

चतुःषष्टिदले पद्मे शक्तीरर्चेच्च तावतीः ॥ ४१ ॥
कुलेशी कुलनन्दा च वागीशी भैरवी तथा।
उमा श्रीः शान्तया चण्डा धूम्रा काली करालिनी ॥ ४२ ॥
महालक्ष्मीश्च कङ्काली रुद्रकाली सरस्वती।
वाग्वादिनी च नकुली भद्रकाली शशिप्रभा ॥ ४३ ॥
प्रत्यङ्गिरा सिद्धलक्ष्मीरमृतेशी च चण्डिका।
खेचरी भूचरी सिद्धा कामाक्षी हिङ्गुला बला ॥ ४४ ॥
जया च विजया चाप्यजिता नित्यापराजिता।
विलासिनी तथा घोरा चित्रा मुग्धा धनेश्वरी ॥ ४५ ॥
सोमेश्वरी महाचण्डा विद्या हंसी विनायिका।
वेदगर्भा तथा भीमा उग्रा वैद्या च सद्गतिः ॥ ४६ ॥
उग्रेश्वरी चन्द्रगर्भा ज्योत्स्ना सत्या यशोवती।
कुलिका कामिनी काम्या ज्ञानवत्यथ डाकिनी ॥ ४७ ॥

योनिमुद्रोक्ता ॥ ४१ ॥ * ॥ ४२–४८ ॥

ब्राह्मी, २. माहेश्वरी, ३. कौमारी, ४. वैष्णवी, ५. वाराही, ६. इन्द्राणी, ७. चामुण्डा एवं ८. महालक्ष्मी - इन आठ मातृकाओं के नाम के आगे चतुर्थ्यन्त नमः पद लगाकर पूर्वादि क्रम से पूजा करनी चाहिए । इस प्रकार **प्रथम आवरण** की पूजा कर योनि मुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिए ॥ ३७-४१ ॥

अब **सरस्वती की चौंसठ शक्तियों** को कहते हैं -

तदनन्तर चौंसठ दल वाले कमल में चौंसठ शक्तियों की पूजा करनी चाहिए -

१. कुलेशी, २. कुलनन्दा, ३. वागीशी, ४. भैरवी, ५. उमा, ६. श्री, ७. शान्तया, ८. चण्डा, ९. धूम्रा, १०. काली, ११. करालिनी, १२. महालक्ष्मी, १३. कंकाली, १४. रुद्रकाली, १५. सरस्वती, १६. वाग्वादिनी, १७. नकुली, १८. भद्रकाली, १९. शशिप्रभा, २०. प्रत्यङ्गिरा, २१. सिद्धलक्ष्मी, २२. अमृतेशी, २३. चण्डिका, २४. खेचरी, २५. भूचरी, २६. सिद्धा, २७. कामाक्षी, २८. हिंगुला, २९. बला, ३०. जया, ३१. विजया, ३२. अजिता, ३३. नित्या, ३४. अपराजिता, ३५. विलासिनी, ३६. घोरा, ३७. चित्रा, ३८. मुग्धा, ३९. धनेश्वरी, ४०. सोमेश्वरी, ४१. महाचण्डा, ४२. विद्या, ४३. हंसी, ४४. विनायिका, ४५. वेदगर्भा, ४६. भीमा, ४७. उग्रा, ४८. वैद्या, ४९. सद्गती, ५०. उग्रेश्वरी, ५१.

राकिनी लाकिनी चाथ काकिनी शाकिनीत्यपि।
हाकिनीति चतुःषष्टिशक्तयः सिद्धिदायिकाः ॥ ४८ ॥
दर्शयेत् खेचरीमुद्रां द्वितीयावरणेर्चिते।

द्वात्रिंशच्छक्तिकथनं पूजाविधिश्च

द्वात्रिंशत् पत्रमध्ये तु पूज्या एतास्तु शक्तयः ॥ ४९ ॥
किराता योगिनी वीरा वेताला यक्षिणी हरा।
ऊर्ध्वकेशी च मातङ्गी मोहिनी वंशवर्द्धिनी ॥ ५० ॥
मालिनी ललिता दूती मनोजा पद्मिनी धरा।
वर्वरी छत्रहस्ता च रक्तनेत्रा विचर्चिका ॥ ५१ ॥
मातृकादूरदर्शी च क्षेत्रेशी रङ्गिनी नटी।
शान्तिर्दीप्ता वज्रहस्ता धूम्रा श्वेता सुमङ्गला ॥ ५२ ॥

चतुःषष्टिदले तावतीः शक्तीरभ्यर्च्य खेचरीमुद्रां दर्शयेत् । तल्लक्षणं यथा –
सव्यं दक्षिणहस्ते तु सव्यहस्ते तु दक्षिणम् ।
बाहुकृत्वा महादेवि हस्तौ सपरिवर्त्य च ॥
कनिष्ठानामिके देवि युक्ता तेन क्रमेण तु ।
तर्जनीभ्यां समाक्रान्ते सर्वोर्ध्वमपि मध्यमे ॥
अंगुष्ठौ तु महादेवि सरलावपि कारयेत् ।
इयं सा खेचरी नाम मुद्रां सर्वोत्तमोत्तमा ॥ ४९ ॥

इति ॥ * ॥ ५०–५२ ॥

चन्द्रगर्भा, ५२. ज्योत्स्ना, ५३. सत्या, ५४. यशोवती, ५५. कुलिका, ५६. कामिनी, ५७. काम्या, ५८. ज्ञानवती, ५९. डाकिनी, ६०. राकिनी, ६१. लाकिनी, ६२. काकिनी, ६३. शाकिनी एवं ६४. हाकिनी -- ये चौंसठ सिद्धिदायिका सरस्वती की शक्तियाँ कहीं गई हैं । इस प्रकार चतुर्थ्यन्त नामों के आगे नमः लगाकर इनकी पूजा कर खेचरी मुद्रा प्रदर्शित कर **द्वितीयावरण** की पूजा समाप्त करनी चाहिए ॥ ४१-४८ ॥

फिर बत्तीस दल वाले कमल पर **बत्तीस शक्तियों** की पूजा करनी चाहिए। उनके नाम इस प्रकार हैं - १. किराता, २. योगिनी, ३. वीरा, ४. वेताला, ५. यक्षिणी, ६. हरा, ७. ऊर्ध्वकेशी, ८. मातङ्गी, ९. मोहिनी, १०. वंशवर्द्धिनी, ११. मालिनी, १२. ललिता, १३. दूती, १४. मनोजा, १५. पद्मिनि, १६. धरा, १७. वर्वरी, १८. छत्रहस्ता, १९. रक्तनेत्रा, २०. विचर्चिका, २१. मातृका, २२. दूरदर्शीनी, २३. क्षेत्रेशी, २४. रङ्गिनी, २५. नटी, २६. शान्ति, २७. दीप्ता, २८. वज्रहस्ता, २९. धूम्रा, ३०. श्वेता, ३१. सुमङ्गला (एवं ३२. सर्वेश्वरी) -

इष्ट्वा तृतीयावरणं बीजमुद्रां प्रदर्शयेत् ।

षोडशशक्तिपूजनम्

ततः षोडशपत्रेषु पूज्याः षोडशशक्तयः ॥ ५३ ॥
मुग्धा श्रीः कुरुकुल्ला च त्रिपुरा तोतला क्रिया ।
रतिः प्रीतिस्तथा बाला सुमुखी श्यामलाविला ॥ ५४ ॥
पिशाची च विदारी च शीतला वज्रयोगिनी ।
सर्वेश्वरीति सम्पूज्य सृणिमुद्रां प्रदर्शयेत् ॥ ५५ ॥

अष्टसरस्वतीपूजनं मन्त्राश्च

अष्टपत्रे स्वस्वमन्त्रैर्यजेदष्टसरस्वतीः ।
तारो हृल्लोहितः सत्यो वैकुण्ठानन्तसंयुताः ॥ ५६ ॥

तृतीयावरणं सम्पूज्य बीजमुद्रां दर्शयेत् । तल्लक्षणं यथा –
परिवर्त्य करौ स्पष्टावर्द्धचन्द्राकृती प्रिये ।
तर्जन्यङ्गुष्ठयुगलं युगपत्कारयेत्ततः ॥
अधः कनिष्ठावष्टब्धे मध्यमे विनियोजयेत् ।
तथैव कुटिले योज्ये सर्वाधस्तादनामिके ॥
बीजमुद्रेयमुदिता सर्वसिद्धिप्रदायिनी ॥ इति ॥ ५३ ॥
*॥ ५४ ॥ षोडशपत्रं सम्पूज्य सृणिमुद्रामंकुशमुद्रां दर्शयेत् । सा पूर्वमुक्ता ॥ ५५ ॥ अष्टपत्रे सरस्वत्यष्टकं स्वमन्त्रैर्यजेदित्युक्तम् । तासां मन्त्रान् क्रमेण वदन्नादौ वागीश्वरीमन्त्रमाह – **तार इति** । लोहितः पः बैकुण्ठानन्तसंयुतः

इनके नामों में चतुर्थ्यन्त विभक्ति युक्त नमः लगाकर पूजा करने के पश्चात् **तृतीयावरण** की पूजा बीज मुद्रा प्रदर्शित कर संपन्न करनी चाहिए ॥ ४८-५३ ॥

इसके बाद सोलह दलों में इन **सोलह शक्तियों** की पूजा करनी चाहिए । १. मुग्धा, २. श्री, ३. कुरुकुल्ला, ४. त्रिपुरा, ५. तोतला, ६. क्रिया, ७. रति, ८. प्रीति, ९. बाला, १०. सुमुखी, ११. श्यामलाविला, १२. पिशाची, १३. बिदारी, १४. शीतला, १५. वज्रयोगिनी, १६. सर्वेश्वरी -- इन नामों में चतुर्थ्यन्त सहित 'नमः' लगाकर पूजा करे और अंकुश मुद्रा प्रदर्शित कर **चतुर्थावरण** की पूजा सम्पन्न करनी चाहिए ॥ ५३-५५ ॥

इसके अनन्तर अष्टपत्रों में अष्ट सरस्वतियों की उनके लिए विहित पृथक् पृथक् मन्त्रों से पूजा करनी चाहिए ।

(i) अब **वागीश्वरी के मन्त्र का उद्धार** करते हैं -

तार (ॐ), हृत् (नमः), लोहित (प), वैकुण्ठानन्त सहित सत्य (द्या), भृगु (स), फिर 'ने शब्दरूपे' यह पद, फिर वाक् (ऐं), माया (ह्रीं), काम

भृगुर्नेशब्दरूपे वाङ्मायाकामो वदद्वयम्।
वाग्वादिन्यग्निकान्तेति मन्त्रो वेदाक्षिवर्णवान् ॥ ५७ ॥
अनेन मनुना पूर्वपत्रे वागीश्वरीं यजेत्।
वराहहंसचक्रीन्द्रसंयुता भुवनेश्वरी ॥ ५८ ॥
वदयुग्मं च चित्रेश्वरि वाग्बीजानलप्रिया।
द्वादशार्णेन मनुना वह्नौ चित्रेश्वरीं यजेत् ॥ ५९ ॥
वाग्बीजं कुलजे वाक् च सरस्वत्यनलाङ्गना।
एकादशार्णमनुना कुलजां दक्षिणेर्चयेत् ॥ ६० ॥

सत्यः मआयुतो दः द्मा ॥ ५६ ॥ भृगुः सः स्पष्टमन्यत् । यथा – ॐ नमः पद्मासनेशब्दरूपे ऐं ह्रीं क्लीं वद वद वाग्वादिनी स्वाहेति वेदाक्षिवर्णवान् चतुर्विंशत्यर्णः ॥ ५७ ॥ चित्रेश्वरीमन्त्रमाह – वराहेति । वराह हंसचक्रीन्द्रसंयुता भुवनेश्वरी हसकल ह्रीं ॥ ५८ ॥ वद वद चित्रेश्वरि ऐं स्वाहेति । प्रथमं षट्कूटम् ॥ यथा – क्लीं वद वद चित्रेश्वरि ऐं स्वाहा । वह्नौ अग्निकोणे ॥ ५९ ॥ कुलजामन्त्रमाह – **वागिति** । ऐं कुलजे ऐं सरस्वति स्वाहेति ॥ ६० ॥

(क्लीं), इसके बाद दो बार वद शब्द (वद वद), फिर 'वाग्वादिनी' इसके बाद अग्निकान्ता (स्वाहा) लगाने से चौबीस अक्षरों का मन्त्र बनता है इस मन्त्र से पूर्वदिशा के पत्र पर वागीश्वरी का पूजन करना चाहिए ॥ ५६-५८ ॥

विमर्श - वागीश्वरी के पूजन में विनियुक्त २४ अक्षरों के **मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - 'ॐ नमः पद्मासने शब्दरूपे ऐं ह्रीं क्लीं वद वद वाग्वादिनी स्वाहा' ॥ ५६-५८ ॥

(ii) अब **चित्रेश्वरी पूजन का मन्त्र** कहते हैं - 'वराह हंसचक्रीन्द्रसंयुता भुवनेश्वरी' अर्थात् 'हस कल ह्रीं' फिर दो बार वद शब्द (वद वद), फिर 'चित्रेश्वरि' पद, इसके बाद वाग्बीज (ऐं), फिर अनलप्रभा (स्वाहा) लगाने से द्वादश अक्षर का मन्त्र बन जाता है । इस बारह अक्षर वाले मन्त्र से साधक अग्निकोण में चित्रेश्वरी की पूजा करें ॥ ५८-५९ ॥

विमर्श - चित्रेश्वरी के मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'हसकलह्रीं वद वद चित्रेश्वरि ऐं स्वाहा' । ऊपर हकार में ६ अक्षरों का मेल होने से १ अक्षर समझना चाहिए ॥ ५८-५९ ॥

(iii) इसके बाद **कुलजा का मन्त्र** कहते हैं - वाग्बीज (ऐं), फिर 'कुलजे' पद, फिर वाग्बीज (ऐं), फिर सरस्वति पद, तदनन्तर अनलाङ्गना (स्वाहा) लगाने से ग्यारह अक्षरों का कुलजा मन्त्र बनता है, इससे दक्षिण में कुलजा का पूजन करना चाहिए ॥ ६० ॥

वाङ्माया श्रीं वदद्वन्द्वं कीर्तीश्वरि वसुप्रिया ।
त्रयोदशार्णेन यजेन्नैर्ऋत्ये कीर्तिनायिका ॥ ६१ ॥
वाङ्माया चान्तरिक्षान्ते सरस्वति च ठद्वयम् ।
रव्यर्णेन यजेत् प्रत्यगन्तरिक्षसरस्वतीम् ॥ ६२ ॥
वराहहंसचण्डीशजनार्दनकृशानुयुक् ।
सेन्दुर्योनिश्च लकुलीभृगुवह्नीन्दुयुङ् मनुः ॥ ६३ ॥
अरुणाभृगुशिख्यग्निसंयुता शान्तिरिन्दुयुक् ।
वाङ्माया श्रीषु बीजानि घ्रीं घटान्ते सरस्वतीम् ॥ ६४ ॥

कीर्तीश्वरीमन्त्रमाह – **वागिति** । ऐं ह्रीं श्रीं वद वद कीर्तीश्वरि स्वाहेति । वसुरग्निः ॥ ६१ ॥ अन्तरिक्षसरस्वतीमन्त्रमाह – **वागिति** । ऐं ह्रीं अन्तरिक्षसरस्वति स्वाहेति ॥ ६२ ॥ घटसरस्वतीमन्त्रमाह – **वराहमिति** । एवंविधा योनिरेकारः। कीदृशी ? वराहहंसचण्डीश – जनार्दनकृशानुयुक् हसखफरयुता । सेन्दुः सबिन्दुश्च । कूटमिदम् । मनुरौकारः । कीदृशः ? लकुलीभृगुवह्नीन्दुयुक् हसरबिन्दुयुतः । शान्ति री अरुणादियुता । अरुणाहः। भृगुः सः । शिखी फः । अग्रीरः एतैर्युता । सबिन्दुश्च वाक् ऐं, माया ह्रीं, श्रीं श्रीः । इषुबीजानि बाणबीजानि – 'द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं स' इति ।

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ऐं कुलजे ऐं सरस्वति स्वाहा' ॥ ६० ॥

(iv) अब **कीर्तीश्वरी का मन्त्र** कहते हैं -

वाग् (ऐं), माया (ह्रीं), श्री (श्रीं), दो बार 'वद' पद (वद वद) फिर कीर्तीश्वरि और अन्त में वसुप्रिया (स्वाहा) लगाने से तेरह अक्षरों का मन्त्र बनता है । इससे नैर्ऋत्यकोण में कीर्तीश्वरी का पूजन करना चाहिए ॥ ६१ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ऐं ह्रीं श्रीं वद वद कीर्तीश्वरि स्वाहा ॥ ६१ ॥

(v) अब **अन्तरिक्षसरस्वती मन्त्र** कहते हैं -

वाग (ऐं), माया (ह्रीं), फिर 'अन्तरिक्षसरस्वति' यह पद, इसके अन्त में 'ठद्वय' (स्वाहा) लगाने से बारह अक्षरों का मन्त्र निष्पन्न होता है । इससे पश्चिम के दल में अन्तरिक्ष सरस्वती का पूजन करना चाहिए ॥ ६२ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ऐं ह्रीं अन्तरिक्षसरस्वति स्वाहा ॥ ६२ ॥

(vi) अब **घटसरस्वती मन्त्र** कहते हैं - वराह हंस चण्डीश जनार्दन-कृशानुयुक् (ह् स् ष् फ र) सेन्दु (ह्स्ष्फं), लकुलीभृगुवह्नी (ह् स् र्) और इन्दु से युक्त मनु (ओं) अर्थात् ह्स्रौं अरुण भृगु शिख्यग्निसंयुत इन्दु युक् शान्ति अर्थात्

घटेवदतरद्वन्द्वं रुद्राज्ञा टायुता मम ।
अभिलाषं कुरु द्वन्द्वं प्रेयसीकृष्णवर्त्मनः ॥ ६५ ॥
गुणवेदार्णेन यजेद्वायौ घटसरस्वतीम् ।

नीलामन्त्रकथनम्

भूधरेन्द्रयुतोर्घीशो बिन्द्वाढ्यो वें वदद्वयम् ॥ ६६ ॥
त्रीं हुँ फट् नवार्णेन नीलामर्चेदुदग्दिशि ।
वाग्बीजमधराक्रान्तो नकुलीबिन्दुमान् पुनः ॥ ६७ ॥

घ्रीमिति स्वरूपम् । टायुता तृतीयान्ता रुद्राज्ञा । कृष्णवार्त्मनोऽग्नेः प्रेयसी स्वाहा । यथा – ह्स्फ्रं ह्स्रों ह्स्फ्रों ऐं ह्रीं श्रीं द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः घ्रीं घटसरस्वतीघटे वद वद तर तर रुद्राज्ञया ममाभिलाषं कुरु कुरु स्वाहेति ॥ ६३–६५ ॥ गुणवेदार्णस्त्रिचत्वारिंशदक्षरः । नीलामन्त्रमाह – **भूधरेति** । अर्घीश ऊ । भूधरो वः । इन्द्रो लः । ताभ्यां युतः बिन्दुयुतश्च ब्लूं । वें वदवदस्वरूपम् । यथा – ब्लूं वें वद वद त्रीं हुं फडिति । किणिमन्त्रमाह – **वाग्बीजमिति** । अधराक्रान्तो नकुली ऐंयुतो हः । शान्तिचन्द्राढ्यमाकाशम् ईबिन्दुयुतो हः सदृक् जलं वि । भगाक्रान्तं

अरुण (ह्), भृगु (स), शिखी (फ), अग्नि (र्) इससे युक्त सबिन्दु शान्ति (ह्स्फ्रें), फिर वाग्बीज (ऐं), माया (ह्रीं), श्री (श्रीं) इषु बीज (द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः) फिर 'घ्रीं घटसरस्वती घटे' पद, फिर दो बार 'वद' पद (वद वद) एवं 'तर' पद (तर तर), टा युता (तृतीयान्ता) रुद्राज्ञा (रुद्राज्ञया), फिर 'ममाभिलाषं', फिर दो बार 'कुरु' शब्द (कुरु कुरु), तदनन्तर कृष्णवर्त्माप्रेयसी (स्वाहा) लगाने से तिरालिस अक्षरों का मन्त्र निष्पन्न होता है । इस मन्त्र से वायव्य दल में घटसरस्वती का पूजन करना चाहिए ॥ ६३-६६ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ह्स्फ्रं ह्स्रों ह्स्फ्रों ऐं ह्रीं श्रीं द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः घ्रीं घटसरस्वती घटे वद वद तर तर रुद्राज्ञया ममाभिलाषं कुरु कुरु स्वाहा' (४३) ॥ ६३-६६ ॥

(vii) अब **नीलसरस्वती का मन्त्र** कहते हैं -

भूधरेन्द्र युत् बिन्दु सहित अर्घीश (ब्लूं), फिर बिन्दु सहित (वें), तदनन्तर दो बार वद पद (वद वद), फिर 'त्रीं हुं फट्' लगाने से ९ अक्षरों का मन्त्र निष्पन्न होता है । इससे उत्तर के दल में नीलसरस्वती का पूजन करना चाहिए ॥ ६६-६७ ॥

विमर्श - नीलसरस्वती मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ब्लूं वें वद वद त्रीं हुं फट्' (९) ॥ ६६-६७ ॥

शान्तिचन्द्राढ्यमाकाशं किणिद्वन्द्वं सदृग्जलम् ।
कूर्मद्वन्द्वं भगाक्रान्तं नवार्णेनामुना यजेत् ॥ ६८ ॥
मन्त्रेणेशानदिग्भागे किणिसंज्ञां सरस्वतीम् ।
पञ्चमावृत्तिमाराध्य क्षोभमुद्रां प्रदर्शयेत् ॥ ६९ ॥

डाकिन्यादिषण्णां पूजनम्

डाकिन्याद्याः पूर्वमुक्ताः षट्कोणे षट् प्रपूजयेत् ।
दर्शयेद् द्राविणीं मुद्रां षष्ठावरणपूजने ॥ ७० ॥

परादि–तिसृणां पूजनम्

पराबालाभैरवीति पूजनीयास्त्रिकोणके ।

कूर्मद्वन्द्वम् ऐयुतं च द्वन्द्वं च । यथा – ऐं हैं ह्रीं किणि किणि विच्चे इति ॥ ६६–६८ ॥ एवं सरस्वत्यष्टकं सम्पूज्य क्षोभमुद्रादर्शनम् । तल्लक्षणम् –

मध्यमां मध्यमे कृत्वा कनिष्ठाङ्गुष्ठरोधिते ।
तर्जन्यौ दण्डवत्कृत्वा मध्यमोपर्यनामिके ।
क्षोभाभिधानामुद्रेयं सर्वसंक्षोभकारिणी ॥ ६९ ॥ इति

डाकिन्याद्याः पूर्वोक्ताः । डाकिनी, राकिनी, लाकिनी, काकिनी, शाकिनी, हाकिन्यः । द्राविणीमुद्रालक्षणं यथा – क्षोभमुद्रालक्षणमुक्त्वोक्तम्

एतस्या एवमुद्राया मध्यमे सरले यदा ।
क्रियते परमेशानि तदा विद्राविणीमता ॥ इति ॥ ७० ॥

(viii) अब **किणिसरस्वती का मन्त्र** कहते हैं -

वाग्बीज (ऐं), अधराक्रान्त सबिन्दु नकुली (हैं), शान्तिचन्द्राढ्य आकाश (ह्रीं), दो बार किणि शब्द (किणि किणि), सदृक् इकार सहित जल व् (अर्थात् वि), भगाक्रान्त कूर्मद्वय (च्चे) यह ९ अक्षर का मन्त्र निष्पन्न होता है । इससे ईशानकोण में किणि सरस्वती का पूजन करना चाहिए । इस प्रकार अष्टदलों में आठ सरस्वतियों का पूजन कर **पञ्चमावरण** की पूजा समाप्त कर क्षोभमुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिए ॥ ६७-६९ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ऐं हैं ह्रीं किणि किणि विच्चे' ॥ ६७-६९ ॥

षट्कोण में पूर्वोक्त १. डाकिनी, २. राकिनी, ३. लाकिनी, ४. काकिनी, ५. शाकिनी एवं ६. हाकिनी का पूजन कर **षष्ठावरण** की पूजा समाप्त कर द्राविणीमुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिए ॥ ७० ॥

तदनन्तर त्रिकोण में परा, बाला एवं भैरवी का पूजन कर **सप्तमावरण** की पूजा समाप्त कर आकर्षणी मुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिए ।

सप्तमावृतिपूजायां मुद्रां कुर्याच्चकर्षिणीम् ॥ ७१ ॥
इत्थं सम्पूज्य तारेशीं मनोभीष्टमवाप्नुयात् ।

पराबालाभैरवीति स्वस्वमन्त्रैः — ह्रीं परायै नमः— ऐं क्ली सौः बालायै नमः – ह्सैंह्क्लीं ह्सौः भैरव्यै नमः इति ।

आकर्षिणीमुद्रालक्षणं यथा –

मध्यमातर्जनीभ्यां तु कनिष्ठानामिके समे ।
अंकुशाकार रूपाभ्यां मध्यमे परमेश्वरि ।
इयमाकर्षिणीमुद्रा त्रैलोक्याकर्षणे क्षमा ॥ इति ॥ ७१ ॥

इस प्रकार सप्तावरण युक्त तारा देवी तारेशी का पूजन करने से समस्त मनोरथों की पूर्ति होती है ॥ ७१-७२ ॥

विमर्श – आवरण पूजा प्रयोग इस प्रकार हैं - नाम मन्त्रों में चतुर्थी लगाकर तत्तत्स्थानों में आवरण पूजा करनी चाहिए ।

पूर्वोक्त विधि से देवी की पूजा करने के बाद उनकी आज्ञा लेकर **प्रथम आवरण पूजा** करनी चाहिए । सर्वप्रथम चतुरस्त्र के बाहर अग्निकोण में विधिवत् ध्यान कर 'ॐ ह्रीं गं गणपतये नमः' मन्त्र से गणेशजी का पूजन करना चाहिए। इसी प्रकार वायव्य में 'ॐ ह्रीं क्षं क्षेत्रपालाय नमः' से क्षेत्रपाल का, ईशान कोण में 'ॐ ह्रीं वं बटुकाय नमः' से बटुकभैरव का तथा नैर्ऋत्यकोण में 'ॐ ह्रीं यं योगिनीभ्यो नमः' मन्त्र से योगिनीयों का पूजन करना चाहिए ।

भूपुर की **प्रथम रेखा में** पूर्व आदि दिशाओं में -

ॐ अणिमायै नमः, ॐ लघिमायै नमः, ॐ महिमायै नमः,
ॐ ईशित्वै नमः, ॐ वशितायै नमः, ॐ कामपूरण्यै नमः,
ॐ गरिमायै नमः तथा ॐ प्राप्त्यै नमः - इन मन्त्रों से क्रमशः अणिमा आदि का पूजन करना चाहिए ।

भूपुर की **द्वितीय रेखा में** पूर्व आदि आठ दिशाओं में निम्नलिखित मन्त्रों से आठ भैरवों का पूजन करना चाहिए -

ॐ असिताङ्गभैरवाय नमः, ॐ रुरुभैरवाय नमः,
ॐ चण्डभैरवाय नमः, ॐ क्रोधभैरवाय नमः,
ॐ उन्मत्तभैरवाय नमः, ॐ कपालीभैरवाये नमः,
ॐ भीषणभैरवाय नमः एवं ॐ संहारभैरवाय नमः ।

भूपुर की **तृतीय रेखा** में पूर्व आदि दिशाओं में -

ॐ ब्राह्म्यै नमः, ॐ माहेश्वर्यै नमः, ॐ कौमार्यै नमः,
ॐ वैष्णव्यै नमः, ॐ वाराह्यै नमः, ॐ इन्द्राण्यै नमः,
ॐ चामुण्डायै नमः, ॐ महालक्ष्म्यै नमः

इन मन्त्रों से अष्टमातृकाओं का पूजन करना चाहिए । इस प्रकार प्रथम आवरण का पूजन कर योनिमुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिए ।

द्वितीय आवरण में चौंसठ दलों पर निम्नलिखित मन्त्रों से **चौंसठ शक्तियों** का पूजन करना चाहिए -

१. ॐ कुलेश्यै नमः	२३. ॐ चण्डिकायै नमः	४५. ॐ वेदगर्भायै नमः
२. ॐ कुलनन्दायै नमः	२४. ॐ खेचर्यै नमः	४६. ॐ भीमायै नमः
३. ॐ वागीश्वर्यै नमः	२५. ॐ भूचर्यै नमः	४७. ॐ उग्रायै नमः
४. ॐ भैरव्यै नमः	२६. ॐ सिद्धायै नमः	४८. ॐ वैद्यायै नमः
५. ॐ उमायै नमः	२७. ॐ कामाख्यै नमः	४९. ॐ सद्गत्यै नमः
६. ॐ श्रियै नमः	२८. ॐ हिंगुलायै नमः	५०. ॐ उग्रेश्वर्यै नमः
७. ॐ शान्तयायै नमः	२९. ॐ बलायै नमः	५१. ॐ चन्द्रगर्भायै नमः
८. ॐ चण्डायै नमः	३०. ॐ जयायै नमः	५२. ॐ ज्योत्स्नायै नमः
९. ॐ धूम्रायै नमः	३१. ॐ विजयायै नमः	५३. ॐ सत्यायै नमः
१०. ॐ काल्यै नमः	३२. ॐ अजितायै नमः	५४. ॐ यशोवत्यै नमः
११. ॐ करालिन्यै नमः	३३. ॐ नित्यायै नमः	५५. ॐ कुलिकायै नमः
१२. ॐ महालक्ष्म्यै नमः	३४. ॐ अपराजितायै नमः	५६. ॐ कामिन्यै नमः
१३. ॐ कड्काल्यै नमः	३५. ॐ विलासिन्यै नमः	५७. ॐ काम्यायै नमः
१४. ॐ रुद्रकाल्यै नमः	३६. ॐ घोरायै नमः	५८. ॐ ज्ञानवत्यै नमः
१५. ॐ सरस्वत्यै नमः	३७. ॐ चित्रायै नमः	५९. ॐ डाकिन्यै नमः
१६. ॐ वाग्वादिन्यै नमः	३८. ॐ मुग्धायै नमः	६०. ॐ राकिन्यै नमः
१७. ॐ नकुल्यै नमः	३९. ॐ धनेश्वर्यै नमः	६१. ॐ लाकिन्यै नमः
१८. ॐ भद्रकाल्यै नमः	४०. ॐ सोमेश्वर्यै नमः	६२. ॐ काकिन्यै नमः
१९. ॐ शशिप्रभायै नमः	४१. ॐ महाचण्डायै नमः	६३. ॐ शाकिन्यै नमः
२०. ॐ प्रत्यङ्गिरायै नमः	४२. ॐ विद्यायै नमः	६४. ॐ हाकिन्यै नमः
२१. ॐ सिद्धलक्ष्म्यै नमः	४३. ॐ हंस्यै नमः	
२२. ॐ अमृतेश्यै नमः	४४. ॐ विनायकायै नमः	

इस प्रकार **द्वितीय आवरण** की पूजा कर खेचरी मुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिए ।

तृतीय आवरण में बत्तीस दलों पर निम्नलिखित मन्त्रों से **बत्तीस** शक्तियों का पूजन करना चाहिए ।

१. ॐ किरातायै नमः	५. ॐ यक्षिण्यै नमः	९. ॐ मोहिन्यै नमः
२. ॐ योगिन्यै नमः	६. ॐ हराये नमः	१०. ॐ वंशवर्द्धिन्यै नमः
३. ॐ बीरायै नमः	७. ॐ ऊर्ध्वकेश्यै नमः	११. ॐ मालिन्ये नमः
४. ॐ बेतालायै नमः	८. ॐ मातंग्यै नमः	१२. ॐ ललितायै नमः
१३. ॐ दूत्यै नमः	२०. ॐ विचर्चिकायै नमः	२७. ॐ दीप्तायै नमः

१४. ॐ मनोजायै नमः २१. ॐ मातृकायै नमः २८. ॐ वज्रहस्तायै नमः
१५. ॐ पद्मिन्यै नमः २२. ॐ दूरदर्श्यै नमः २९. ॐ धूम्रायै नमः
१६. ॐ धरायै नमः २३. ॐ क्षेत्रेश्यै नमः ३०. ॐ श्वेतायै नमः
१७. ॐ बर्वर्यै नमः २४. ॐ रङ्गिन्यै नमः ३१. ॐ सुमङ्गलायै नमः
१८. ॐ छत्रहस्तायै नमः २५. ॐ नट्यै नमः ३२. ॐ सर्वेश्वर्यै नमः
१९. ॐ रक्तनेत्रायै नमः २६. ॐ शान्त्यै नमः

इस प्रकार **तृतीय आवरण** में उक्त मन्त्रों से ३२ शक्तियों का पूजन कर बीजमुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिए ।

चतुर्थ आवरण में १६ दलों पर निम्नलिखित मन्त्रों से **१६ शक्तियों** का पूजन करना चाहिए, यथा -

१. ॐ मुग्धायै नमः, २. ॐ श्रियै नमः, ३. ॐ कुरुकुल्लायै नमः,
४. ॐ त्रिपुरायै नमः, ५. ॐ तोतलायै नमः, ६. ॐ क्रियायै नमः,
७. ॐ रत्यै नमः, ८. ॐ प्रीत्यै नमः, ९. ॐ बालायै नमः,
१०. ॐ सुमुख्यै नमः, ११. ॐ श्यामलाविलायै नमः,
१२. ॐ पिशाच्यै नमः, १३. ॐ विदार्यै नमः, १४. ॐ शीतलायै नमः,
१५. ॐ वज्रयोगिन्यै नमः, १६. ॐ सर्वेश्वर्यै नमः ।

इस प्रकार **चतुर्थ आवरण** में उक्त मन्त्रों से १६ शक्तियों का पूजन कर अंकुश मुद्रा दिखलानी चाहिए ।

पञ्चम आवरण में पूर्व आदि आठ दिशाओं के कमल दलों पर निम्नलिखित मन्त्रों से **अष्टसरस्वतियों** का पूजन करना चाहिए, यथा -

१. **पूर्वदिशा दल पर** - ॐ नमः पद्मासने शब्दरूपे ऐं ह्रीं क्लीं वद वद वाग्वादिनी स्वाहा' मन्त्र से **वागीश्वरी** का पूजन करना चाहिए ।

२. **अग्निकोण दल पर** - 'क्लीं वद वद चित्रेश्वरी ऐं स्वाहा' मन्त्र से **चित्रेश्वरि** का पूजन करना चाहिए ।

३. **दक्षिण दल पर** - ऐं कुलिजे ऐं सरस्वति स्वाहा' मन्त्र से **कुलजा** का पूजन करना चाहिए ।

४. **नैऋत्यकोण दल पर** - 'ऐं ह्रीं श्रीं वद वद कीर्तीश्वरी स्वाहा' मन्त्र से **कीर्तीश्वरी** का पूजन करना चाहिए ।

५. **पश्चिम दल पर** - 'ऐं ह्रीं अन्तरिक्षसरस्वति स्वाहा' मन्त्र से **अन्तरिक्षसरस्वती** का पूजन करना चाहिए ।

६. **वायव्य कोण दल पर** - 'ह्स्ख्फ्रें ह्सौं ह्स्फ्रों ऐं ह्रीं श्रीं द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः घ्रीं घटसरस्वति घटे वद वद तर तर रुद्राज्ञया ममाभिलाषं कुरु कुरु स्वाहा' मन्त्र से **घटसरस्वती** का पूजन करना चाहिए ।

७. **उत्तर के दल पर** - 'ब्लूं वें वद वद त्रीं हुं फट्' मन्त्र से

गणेशक्षेत्रपालाभ्यां योगिन्यै भैरवाय च ॥ ७२ ॥
तारायै चापि वितरेद् बलिं नित्यं चतुष्पथे ।
मांसमाषान्नशाकाज्यपायसापूपकादिकम् ॥ ७३ ॥
बलिद्रव्यं समाख्यातं तेनेष्टं सा प्रयच्छति ।
तस्या ध्यानं त्रिधा वच्मि सत्त्वादिगुणभेदतः ॥ ७४ ॥

सात्त्विकध्यानमाह – **श्वेतेति** । कमण्डलुवराक्षस्रक्पुष्पमालादक्षेषु । इतराणि वामेषु ॥ ७५–७६ ॥

नीलासरस्वती का पूजन करना चाहिए ।

८. **ईशान कोण के दल पर** - ऐं हैं ह्रीं किणि किणि विच्चे' मन्त्र से **किणि** का पूजन करना चाहिए ।

इस विधि से **पञ्चम आवरण पूजा** में आठ दलों पर उक्त मन्त्रों से वागीश्वरी आदि का पूजन कर क्षोभमुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिए ।

षष्ठ आवरण पूजा में षट्कोण में निम्नलिखित मन्त्रों से डाकिनी आदि का पूजन करना चाहिए, यथा -

१. ॐ डाकिन्यै नमः ३. ॐ लाकिन्यै नमः ५. ॐ शाकिन्यै नमः
२. ॐ राकिन्यै नमः ४. ॐ काकिन्यै नमः ६. ॐ हाकिन्यै नमः

इस विधि से **षष्ठ आवरण पूजा** में ६ कोणों में निर्दिष्ट मन्त्रों से डाकिनी आदि का पूजन कर द्राविणी मुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिए ।

सप्तम आवरण पूजा में त्रिकोण में अपने - अपने मन्त्रों से परा, वाला एवं भैरवी का पूजन करना चाहिए, यथा -

ह्रीं परायै नमः, ऐं क्लीं सौः बालायैः नमः,
हसैं हक्लीं हसौः भैरव्यै नमः ।

इन मन्त्रों से त्रिकोण के तीनों कोणों में क्रमशः परा, बाला एवं भैरवी का पूजन कर आकर्षणी मुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिए ।

इस प्रकार आवरण पूजा कर पाँच पुष्पाञ्जलियाँ देकर विधिवत् मन्त्र का जप (पुरश्चरण) करना चाहिए ॥ ७१-७२ ॥

प्रतिदिन चौराहे पर गणेश, क्षेत्रपाल, योगिनी, भैरवी एवं तारा देवी को बलिप्रदान करना चाहिए । मांस से तथा उड़द से बनी हुई वस्तु और शाक, घी, खीर एवं मालपूआ आदि पदार्थ बलि द्रव्य होते हैं । इस प्रकार के बलि द्रव्यों के प्रदान से वह देवी साधक को अभीष्ट सिद्धि प्रदान करती हैं ॥ ७२-७४ ॥

विमर्श - चौथे तरङ्ग के ५०-५१ श्लोक में निर्दिष्ट मन्त्र से विधिपूर्वक बलिदान करना चाहिए ॥ ७२-७४ ॥

महाविद्या के तीन ध्यानों का वर्णन -

सत्त्वादि गुणों के भेद से अव हम महाविद्या का तीन प्रकार का ध्यान

सत्त्विकध्यानवर्णनम्

श्वेताम्बराढ्यां हंसस्थां मुक्ताभरणभूषिताम्।
चतुर्वक्त्रामष्टभुजैर्दधानां कुण्डिकाम्बुजे ॥ ७५ ॥
वराभये पाशशक्ती अक्षस्रक्पुष्पमालिके।
शब्दपाथोनिधौ ध्यायेत् सृष्टिध्यानमुदीरितम् ॥ ७६ ॥

राजसध्यानवर्णनम्

रक्ताम्बरां रक्तसिंहासनस्थां हेमभूषिताम्।
एकवक्त्रां वेदसंख्यैर्भुजैः संबिभ्रतीं क्रमात् ॥ ७७ ॥
अक्षमालां पानपात्रमभयं वरमुत्तमम्।
श्वेतद्वीपस्थितां ध्यायेत् स्थितिध्यानमिदं स्मृतम् ॥ ७८ ॥

तामसध्यानकथनम्

कृष्णाम्बराढ्यां नौसंस्थामस्थ्याभरणभूषिताम्।
नववक्त्रां भुजैरष्टादशभिर्दधतीं वरम् ॥ ७९ ॥
अभयं परशुं दर्वीं खड्गं पाशुपतं हलम्।
भिण्डिं शूलं च मुसलं कर्त्रीं शक्तिं त्रिशीर्षकम् ॥ ८० ॥

राजसध्यानमाह – **रक्तेति** । अक्षमालावरौ दक्षयोः अन्ययोरन्ये ॥ ७७–७८ ॥ तामसध्यानमाह – **कृष्णेति** । परशुदर्वीखड्गमुसलकर्त्रीशूल–

कहते हैं । सर्वप्रथम **'सात्त्विक ध्यान'** कहते हैं - श्वेत वस्त्र धारण किये हुए हंस पर आसीन, मोती के आभूषणों से विभूषित, चार मुखों वाली एवं अपनी आठ भुजाओं में क्रमशः १. कमण्डल, २. कमल, ३. वर, ४. अभय मुद्रा, ५. पाश, ६. शक्ति, ७. अक्षमाला एवं ८. पुष्पमाला धारण किये हुये शब्द समुद्र में स्थित महाविद्या का ध्यान करना चाहिए । इस प्रकार इसे **'सृष्टि ध्यान'** कहते हैं ॥ ७४-७६ ॥

अब **रजोगुणात्मिका भगवती का ध्यान** कहते हैं - रक्त वस्त्र धारण किये हुये, रक्त वर्ण के सिंहासन पर आसीन, सुवर्ण निर्मित आभूषणों से सुशोभित, एक मुख वाली, अपने चार भुजाओं में १. अक्षमाला, २. पानपात्र, ३. अभय एवं ४. वरमुद्रा धारण किये हुये श्वेतद्वीप निवासिनी भगवती का ध्यान करना चाहिए । इस प्रकार इसे **'स्थिति' ध्यान** कहते हैं ॥ ७७-७८ ॥

अब **तामस ध्यान** कहते हैं - कृष्ण वर्ण का वस्त्र धारण किये हुये, नौका पर विराजमान, हड्डी के आभूषणों से विभूषित, नौ मुखों वाली, अपने अट्ठारह भुजाओं में १. वर. २. अभय, ३. परशु, ४. दर्वी, ५. खड्ग, ६.

संहारास्त्रं वज्रपाशौ खट्वाङ्गं गदया सह।
रक्ताम्भोधौ स्थितां ध्यायेत्संहारध्यानमीदृशम् ॥ ८१ ॥
कर्मसु क्रूरसौम्येषु ध्यायेन्मन्त्री यथातथा।
एवंसिद्धे मनोमन्त्रीगिरावाचस्पतिर्भवेत् ॥ ८२ ॥
दूर्वोत्थया तु लेखन्या रोचनारसयुक्तया।
बालस्याच्छिन्ननालस्य जिह्वायां विलिखेन्मनुम् ॥ ८३ ॥
संप्राप्ते चाष्टमे वर्षे सर्वशास्त्रज्ञतामियात्।
मन्त्रेणायुतसंजप्तां वचां बालस्य कण्ठतः ॥ ८४ ॥
बध्नीयात् पूर्वसम्प्रोक्तं बलिं दत्त्वा विधानतः।
द्वादशे वत्सरे प्राप्ते भक्षिता सा कवित्वकृत् ॥ ८५ ॥
ज्योतिष्मती भवं तैलं कर्षमात्रं सुमन्त्रितम्।
उपरागे जलस्थो योऽश्नीयाद्वाचस्पतिर्भवेत् ॥ ८६ ॥

वज्रपाशगदादक्षेषु । शेषाणि वामेषु ॥ ७६–८१ ॥ क्रूरेषु मारणे तामसध्यानम् । उच्चाटनवश्यादौ रक्तम् । शान्तौ पुष्टौ श्वेतम् ॥ ८२ ॥ * ॥ ८३–८६ ॥

पाशुपत, ७. हल, ८. भिण्डि, ९. शूल, १०. मुशल, ११. कर्तृका (कैंची), १२. शक्ति, १३. त्रिशूल, १४. संहार अस्त्र, १५. पाश, १६. वज्र, १७. खट्वाङ्ग एवं १८. गदा धारण करने वाली रक्त-सागर में स्थित देवी का ध्यान करना चाहिए । इस प्रकार इसे **'संहार ध्यान'** कहते हैं ॥ ७९-८१ ॥

मन्त्रवेत्ता को मारणादि क्रूर कर्मों में संहार ध्यान, उच्चाटन एवं वशीकरण में स्थिति ध्यान तथा शान्तिक-पौष्टिक आदि कार्यों में सृष्टि ध्यान करना चाहिए । इस प्रकार प्रयोग तथा पुरश्चरण द्वारा मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर साधक वाणी में वाचस्पति के समान हो जाता है ॥ ८२ ॥

अब **काम्य प्रयोग** कहते हैं -

बालक के नालच्छेदन होने से पहले उसकी जिह्वा पर दूर्वा की लेखनी तथा गोरोचन के रस से इस मन्त्र को लिखे तो वह ८ वर्ष का होते होते संपूर्ण शास्त्रों का पारंगत विद्वान् हो जाता है ॥ ८३-८४ ॥

पूर्वोक्त रीति से बलिदान कर उक्त मन्त्र से अभिमन्त्रित वचा नामक औषधि बालक के कण्ठ में बाँध देवें । फिर १२ वर्ष बीत जाने पर उसे वह भक्षण कर ले तो उत्तम कविता करने वाला हो जाता है, ॥ ८४-८५ ॥

एक कर्ष अर्थात् ४ तोला ज्योतिष्मती का तेल ग्रहण के समय जल में स्थित हो इस मन्त्र से अभिमन्त्रित कर जो साधक पीता है वह वाचस्पति हो जाता है ॥ ८६ ॥

चतुष्पथे श्मशाने वा हित्वा लज्जाभयं तथा।
जपेच्छवं समारुह्य विद्यातत्परमानसः॥ ८७॥
श्रृणोत्यसावमुं शब्दं निशीथे जपतत्परः।
प.ागो भव विद्यानां सर्वां सिद्धिमवाप्नुहि॥ ८८॥
विद्वत्कुलसमुद्भूतमष्टवर्षं शिशुद्वयम्।
उपवेश्य तयोर्मूर्ध्नि करौ दत्त्वा जपेन्मनुम्॥ ८९॥
वेदान्तन्यायसंयुक्त्या विवदेते उभावपि।
यः कौतुकी स आश्चर्यं विद्यायाः पश्यतु ध्रुवम्॥ ९०॥
विधाय वेदिकां रम्यां विजने कदलीवने।
तत्रासीनो जपेद्विद्यामर्कलक्षं विधानतः॥ ९१॥
दासीचालितदोलायामारूढां सुस्मिताननाम्।
पुन्नागचम्पकाशोकरम्भाविपिनसंस्थिताम् ॥ ९२॥
एवं ध्यायन्भगवतीं बलिं दद्याज्जपान्ततः।

उभावपि शिशू नैयायिकवेदान्तिनौ भूत्वा विवादं कुर्वाते ॥ ९० ॥
* ॥ ९१–९३ ॥

चौराहे पर अथवा श्मशान में लज्जा एवं भंय का त्याग कर शव के ऊपर बैठ कर एकाग्रचित्त से मध्यरात्रि में जप में तल्लीन हुये व्यक्ति को ऐसा सुनाई पडता है 'कि विद्याओं में पारङ्गत हो जाओ और समस्त सिद्धियाँ प्राप्त करो' ॥ ८७-८८ ॥

विद्वत्कुल में उत्पन्न आठ वर्ष के दो शिशुओं को बैठा कर उनके शिर पर हाथ रखकर इस मन्त्र का जप करें तो वे दोनों ही वेदान्त एवं न्यायशास्त्र में प्रतिपादित तर्कों से शास्त्रार्थ करने लगते हैं । जिसे इस विषय में कुतूहल हो वह अवश्य इस विद्या के आश्चर्य को देखें ॥ ८९-९० ॥

किसी निर्जन केले के वन में सुन्दर वेदिका बना कर उस पर बैठकर विधिवत् बारह लाख की संख्या में जप करें ॥ ९१ ॥

फिर दासियों द्वारा ढोई जाती हुई ढोला (डोली) में बैठी हुई मन्द-मन्द हास करती हुई पुन्नाग, चम्पक, अशोक एवं केले के वन में स्थित भगवती का ध्यान करते हुए जप के अन्त में बलि देनी चाहिए ॥ ९२-९३ ॥

फलस्तुति कथन -

इस प्रकार पूजा अर्चना करने से साधक शीघ्र ही अपना अभीष्ट प्राप्त कर लेता है ॥ ९३ ॥

अस्य मन्त्रस्य नानाफलकथनम्

एवं कुर्वन्नरः सर्वमभीष्टं लभते चिरात् ॥ ६३ ॥
निर्वासाविशिखः प्रेतभूमिस्थो यो जपेन्मनुम् ।
अयुतं कृष्णभूताहे स वाक्सिद्धिमवाप्नुयात् ॥ ६४ ॥
विद्यां सौख्यं धनं पुष्टिमायुः कीर्तिं बलं स्त्रियः ।
रूपं कामयमानेन तारासेव्या निरन्तरम् ॥ ६५ ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचिते मन्त्रमहोदधौ कालीमन्त्रकथनं नाम पञ्चमस्तरङ्गः ॥ ५ ॥



निर्वासा नग्नः । विशिखो मुक्तकेशः कृष्णभूताहे कृष्णपक्षचतुर्दश्याम् ॥ ६४ ॥ * ॥ ६५ ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचितायां मन्त्रमहोदधिव्याख्यायां नौकायां कालीमन्त्रकथनं नाम पञ्चमस्तरङ्गः ॥ ५ ॥



कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को नङ्गा हो कर, केशों को खोल कर प्रेतभूमि (श्मशान) में बैठकर दश हजार जप करें तो साधक को वाक् सिद्धि प्राप्त हो जाती है ॥ ६४ ॥

विद्या, सौख्य, धन, पुष्टि, आयु, कान्ति, बल, स्त्री एवं रूप की कामना रखने वाले साधकों को निरन्तर भगवती तारा की आराधना करनी चाहिए ॥ ६५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमन्महीधर विरचित मन्त्रमहोदधि के पञ्चम तरङ्ग की महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डाँ सुधाकर मालवीय कृत 'अरित्र' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ ५ ॥



अथ षष्ठः तरङ्गः

छिन्नमस्तामनुं वक्ष्ये शीघ्रसिद्धिविधायिनम् ।

छिन्नमस्तामन्त्रः

पद्मासनाशिवायुग्मं भौतिकः शशिशेखरः ॥ १ ॥
वज्रवैरोचनीपद्मनाभयुतः सदागतिः ।
मायायुगास्त्रदहनप्रियान्तः प्रणवादिकः ॥ २ ॥
मन्त्रः सप्तदशार्णोऽयं भैरवोऽस्य मुनिर्मतः[1] ।
सम्राट्छन्दश्छिन्नमस्ता देवताभुवनेश्वरी ॥ ३ ॥

---

* नौका *

छिन्नमस्तामन्त्रमाह – **पद्मेति** । पद्मासना श्रीं । शिवा ह्रीं । भौतिकः सबिन्दुः ऐं ॥ १ ॥ पद्मनाभयुतः सदागतिः एयुतो यः ये । यथा – ॐ श्रीं ह्रीं ह्रीं ऐं वज्रवैरोचनीये ह्रीं ह्रीं फट् स्वाहेति ॥ २ ॥ *॥ ३–५ ॥

---

* अरित्र *

अब शीघ्र सिद्धि प्रदान करने वाले छिन्नमस्ता के मन्त्रों को मैं कहता हूँ -

छिन्नमस्तामन्त्रोद्धार - पद्मासना (श्रीं), शिवायुग्म (ह्रीं ह्रीं), शशिशेखर (सविन्दु), भौतिक (ऐं) फिर 'वज्रवैरोचनी' पद, तदनन्तर 'पद्मनाभ' युक्त सदागति (ये), फिर मायायुग्म (ह्रीं ह्रीं), फिर अस्त्र (फट्), उसके अन्त में दहनप्रिया (स्वाहा) तथा प्रारम्भ में प्रणव (ॐ) लगाने से १७ अक्षरों वाला छिन्नमस्ता मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ १-२ ॥

विमर्श - इस मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ॐ श्रीं ह्रीं ह्रीं वज्रवैरोचनीये ह्रीं ह्रीं फट् स्वाहा' ॥ १-२ ॥

सप्तदशाक्षर वाले इस मन्त्र के भैरव ऋषि हैं, सम्राट् छन्द हैं, तथा छिन्नमस्ताभुवनेश्वरी देवता हैं ॥ ३ ॥

---

१. अस्य श्रीछिन्नमस्तामन्त्रस्य भैरवऋषिः सम्राट्छन्दः छिन्नमस्ताभुवनेश्वरीदेवता ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

आं खड्गाय हृदाख्यातमीं खड्गाय शिरः स्मृतम् ।
ॐ वज्राय शिखा प्रोक्ता ऐं पाशाय तनुच्छदम् ॥ ४ ॥
ओमंकुशाय नेत्रं स्याद् विसर्गो वसुरक्षयुक् ।
मायायुग्मं चास्त्रमङ्गमनवः प्रणवादिकाः ।
स्वाहान्ताः प्रोदिता एवमङ्गे विन्यस्य तां स्मरेत् ॥ ५ ॥

ध्यानवर्णनम्

भास्वन्मण्डलमध्यगां निजशिरश्छिन्नं विकीर्णालकं
स्फारास्यं प्रपिबद् गलात् स्वरुधिरं वामे करे बिभ्रतीम् ।
याभासक्तरतिस्मरोपरिगतां सख्यौ निजे डाकिनी
वर्णिन्यौ परिदृश्यमोदकलितां श्रीछिन्नमस्तां भजे ॥ ६ ॥

अस्त्रमन्त्रमाह – **विसर्ग इति** । ॐ अः वसुरक्ष ह्रीं ह्रीं अस्त्रं फडिति । सर्वे स्वाहान्ताः । ध्यानमाह – **भास्वदिति** । याभौ मैथुनं तदासक्त रतिकामोपरि स्थिताम् ॥ ६ ॥ *॥ ७–६ ॥

आदि में प्रणव (ॐ) तथा अन्त में दो माया बीज (ह्रीं ह्रीं), अस्त्रबीज, 'आं खड्गाय' से हृदय में, इसी प्रकार 'ईं खड्गाय' से शिर में, 'ॐ वज्राय' से शिखा में, 'ऐं पाशाय' से कवच में, 'ॐ अंकुशाय' से नेत्र में, तथा 'अः वसुरक्ष' से अस्त्राय फट् करे । इस प्रकार से अङ्गन्यास करे तथा प्रत्येक अङ्ग में न्यास के समय 'स्वाहा' शब्द का उच्चारण करे । इस प्रकार अङ्गन्यास करके भगवती छिन्नमस्ता का ध्यान करना चाहिए ॥ ४-५ ॥

विमर्श - विनियोग - ॐ अस्य श्रीछिन्नमस्तामन्त्रस्य भैरवऋषिः सम्राट्छन्दः छिन्नमस्तादेवता हूं हूं बीजं स्वाहाशक्तिरात्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थं जपे विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यास - ॐ भैरवाय ऋषये नमः, शिरसि,
ॐ सम्राट्छन्दसे नमः, मुखे छिन्नमस्तादेवतायै नमः, हृदि,
हूं हूं बीजाय नमः, गुह्ये, शक्तये नमः, पादयोः

अङ्गन्यास -

ॐ आं खड्गाय ह्रीं ह्रीं फट् हृदयाय स्वाहा,
ॐ ईं सुखड्गाय ह्रीं ह्रीं फट् शिरसे स्वाहा,
ॐ ऊं वज्राय ह्रीं ह्रीं फट् शिखायै स्वाहा,
ॐ ऐं पाशाय ह्रीं ह्रीं फट् कवचाय स्वाहा,
ॐ औं अंकुशाय ह्रीं ह्रीं फट् नेत्रत्रयाय स्वाहा,
ॐ अः वसुरक्षाय ह्रीं ह्रीं फट् अस्त्राय फट् स्वाहा,

इसी प्रकार कराङ्गन्यास भी करना चाहिए ॥ ४-५ ॥

अस्य मन्त्रस्य प्रयोगकथनम्

ध्यात्वैवं प्रजपेल्लक्षचतुष्कं तद्दशांशतः ।
पालाशैर्बिल्वजैर्वापि जुहुयात् कुसुमैः फलैः ॥ ७ ॥

पीठस्थनवदेवताकथनं पूजाविधिश्च

आधारशक्तिमारभ्य परतत्त्वान्तपूजिते ।
पीठे जयाख्याविजयाऽजिता चाप्यपराजिता ॥ ८ ॥
नित्याविलासिनी षष्ठी दोग्ध्र्यघोरा च मङ्गला ।
दिक्षु मध्ये च सम्पूज्या नवपीठस्य शक्तयः ॥ ९ ॥

पीठमन्त्रः शिवापूजनविधिरावरणदेवताश्च

सर्वबुद्धिप्रदे वर्णनीये सर्वभृगुःसदृक् ।
द्धिप्रदे डाकिनीये च तारो वज्रसभौतिकः ॥ १० ॥
खड्गीशो रोचनीये च भगं ह्येहि नमोऽन्तिकः ।
तारादिः पीठमन्त्रोऽयं वेदरामाक्षरो मतः ॥ ११ ॥

पीठमन्त्रमाह – **सर्वेति** । सदृक् भृगुः सिः । सभौतिकः खड्गीशः ऐयुतो वः वै । भगम् ए, यथा – ॐ सर्वबुद्धिप्रदे वर्णनीये सर्वसिद्धिप्रदे डाकिनीये ॐ वज्रवैरोचनीये एह्येहि नमः । वेदरामाक्षरश्चतुस्त्रिंशदर्णः ॥ १०–११ ॥ *॥ १२–१३ ॥

अब **छिन्नमस्ता देवी का ध्यान** कहते हैं -

सूर्यमण्डल के मध्य में विराजमान, बायें हाथ में अपने कटे मस्तक को धारण करने वाली, बिखरे केशों वाली, अपने कण्ठ से निकलती हुई रक्त धारा का पान करने वाली, मैथुन में आसक्त, रति तथा काम के ऊपर निवास करने वाली, डाकिनी एवं वर्णिनी नामक अपनी दोनों सखियों को देखकर प्रसन्न रहने वाली छिन्नमस्ता देवी का मैं ध्यान करता हूँ ॥ ६ ॥

इस प्रकार छिन्नमस्ता का ध्यान कर मूल मन्त्र का ४ लाख जप करना चाहिए और पलाश या बेल के पुष्पों एवं फलों से दशांश होम करना चाहिए ॥ ७॥

आधारशक्ति से लेकर परतत्त्वपर्यन्त पूजित पीठ पर ८ दिशाओं में पूर्वादिक्रम से १. जया, २. विजया, ३. अजिता, ४. अपराजिता, ५. नित्या, ६. विलासिनी, ७. दोग्ध्री, ८. अधोरा का तथा मध्य में ९. मङ्गला का, इस प्रकार पीठ की ९ शक्तियों का पूजन करना चाहिए (द्र० ३. ११-१२) ॥ ८-९ ॥

'सर्वबुद्धिप्रदे वर्णनीये सर्व' के बाद सदृक् भृगु (सि), फिर 'द्धिप्रदे डाकिनीये', फिर तार (ॐ), फिर 'वज्र' पद, फिर सभौतिक ऐ से युक्त खड्गीश (व

समर्प्यासनमेतेन तत्र सम्पूजयेच्छिवाम् ।

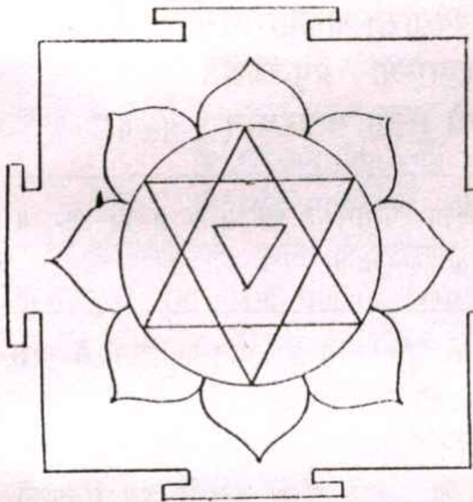
अर्थात् वै), फिर 'रोचनीये' पद, फिर भग 'ए', इसके बाद 'ह्येहि', तदनन्तर 'नमः' तथा मन्त्र के प्रारम्भ में प्रणव लगाने से चौंतिस अक्षरों का पीठ मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ १०-११ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ॐ सर्वबुद्धिप्रदे वर्णनीये सर्वसिद्धिप्रदे डाकिनीये ॐ वज्रवैरोचनीये एह्येहि नमः' ॥ १०-११ ॥

इस मन्त्र से आसन समर्पित कर देवी की पूजा करनी चाहिए ॥ १२ ॥

विमर्श - छिन्नमस्ता पूजाविधि - ६. ६ के अनुसार छिन्नमस्ता का ध्यान कर मानसोपचार से देवी का पूजन कर, तारा पूजन पद्धति के क्रम से अर्घ्यस्थापनादि क्रिया करे (द्र० ४. ६८-८२) । फिर पीठ निर्माण कर उसकी भी पूजा करे । यथा -

छिन्नमस्तापूजनयन्त्रम्



ॐ आधारशक्तये नमः ॐ प्रकृतये नमः,
ॐ कूर्माय नमः, ॐ अनन्ताय नमः,
ॐ पृथिव्यै नमः, ॐ क्षीरसमुद्राय नमः,
ॐ रत्नद्वीपाय नमः, ॐ कल्पवृक्षाय नमः,
ॐ स्वर्णसिंहासनाय नमः,
ॐ आनन्दकन्दाय नमः,
ॐ संविन्नालाय नमः,
ॐ सर्वतत्त्वात्मकपद्माय नमः,
ॐ सत्त्वाय नमः,
ॐ रं रजसे नमः, ॐ तमसे नमः,
ॐ आं आत्मने नमः, ॐ अं अन्तरात्मने नमः, ॐ पं परमात्मने नमः,
ॐ ह्रीं ज्ञानात्मने नमः, मध्ये ॐ रतिकामाभ्यां नमः ।

इन मन्त्रों से पीठ पूजा कर पूर्वादि ८ दिशाओं के क्रम से तदनन्तर मध्य में नवशक्तियों के नाममन्त्रों से इस प्रकार पूजा करनी चाहिए । यथा -

ॐ जयायै नमः, पूर्वे, ॐ विजयायै नमः, आग्नेये,
ॐ अजितायै नमः, दक्षिणे, ॐ अपराजितायै नमः नैर्ऋत्ये,
ॐ नित्यायै नमः पश्चिमे, ॐ विलासिन्यै नमः वायव्ये,
ॐ दोग्ध्र्यै नमः उत्तरे, ॐ अघोरायै नमः ऐशान्ये ।

ॐ मङ्गलायै नमः, मध्ये, इस प्रकार ९ शक्तियों का पूजन करना चाहिए ।

इसके बाद 'सर्वबुद्धिप्रदे वर्णनीये सर्वसिद्धिप्रदे डाकिनीये ॐ वज्रवैरोचनीये एह्येहि नमः', इस पीठ मन्त्र से वर्णनी एवं डाकिनी सहित छिन्नमस्ता देवी को आसन देकर उनका पूजन करना चाहिए ॥ १०-१२ ॥

त्रिकोणमध्यषट्कोणपद्मभूपुरमध्यतः ॥ १२ ॥
बाह्यावरणमारभ्य पूजयेत् प्रतिलोमतः ।
भूपुराद् बाह्यभागेषु वज्रादीनि प्रपूजयेत् ॥ १३ ॥
तदन्तः सुरराजादीन् पूजयेद्धरितां पतीन् ।
भूपुरस्य चतुर्द्वार्षु द्वारपालान् यजेदथ ॥ १४ ॥
करालविकरालाख्यावतिकालस्तृतीयकः ।
महाकालश्चतुर्थः स्यादथ पद्मेष्टशक्तयः ॥ १५ ॥
एकलिङ्गा योगिनी च डाकिनी भैरवी तथा ।
महाभैरविकेन्द्राक्षी त्वसिताङ्गी तु सप्तमी ॥ १६ ॥
संहारिण्यष्टमी चेति षट्कोणेष्वङ्गमूर्तयः ।
त्रिकोणगच्छिन्नमस्ता पार्श्वयोस्तु सखीद्वयम् ॥ १७ ॥
डाकिनीवर्णिनीसंज्ञे तारवाग्भ्यां प्रपूजयेत् ।
एवं पूजादिभिः सिद्धे मन्त्रे मन्त्री मनोरथान् ॥ १८ ॥

सुरराजादीन् इन्द्रादीन् हरितान् दिशां पतीन् ॥ १४ ॥ * ॥ १५–१७ ॥ तारवाग्भ्याम् ॐ ऐं डाकिन्यै नमः ॥ १८ ॥ *॥ १९–२० ॥

त्रिकोण, षट्कोण, अष्टदल एवं भूपुर से युक्त यन्त्र पर प्रतिलोम क्रम से वाह्य आवरण से प्रारम्भ कर इनकी पूजा करनी चाहिए ॥ १२-१३ ॥

आवरणपूजा विधि इस प्रकार है -

भूपुर से बाह्यभाग में वज्रादि आयुधों का, उसके भीतर इन्द्रादि दश दिक्पालों का, फिर भूपुर के चारों द्वारों पर १. कराल, २. विकराल, ३. अतिकाल एवं ४. महाकाल - इस प्रकार चार द्वारपालों का पूजन करना चाहिए ॥ १३-१५ ॥

इसके बाद अष्टदल में १. एकलिङ्गा, २. योगिनी, ३. डाकिनी, ४. भैरवी, ५. महाभैरवी, ६. केन्द्राक्षी, ७. असिताङ्गी एवं ८. संहारिणी इन आठ शक्तियों का पूजन करना चाहिए । तदनन्तर षट्कोण में ६ खड्गादि अङ्गमूर्त्तियों की, (द्र० ६. ४-५), फिर त्रिकोण के मध्य में वाग्बीज के साथ छिन्नमस्ता की, तथा वाग्बीज (ऐं) के साथ तार से दोनों पार्श्वभाग में डाकिनी और वर्णिनी इन दो सखियों का पूजन करना चाहिए । इस प्रकार पूजनादि द्वारा मन्त्र सिद्ध हो जाने पर साधक के समस्त मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं ॥ १६-१८ ॥

विमर्श - इस प्रकार पूजादि कर्म से छिन्नमस्ता की पूजा के लिए त्रिकोण ,उसके बाद षट्कोण, फिर अष्टदल कमल, फिर भूपुर युक्त यन्त्र बनाना चाहिए ।

पीठ पूजन एवं देवी पूजन करने के पश्चात् देवी से 'आज्ञापय आवरणं ते पूजयामि' - कहकर आज्ञा माँगे फिर विलोम क्रम से बाह्य आवरण से पूजा प्रारम्भ करे ।

भूपुर के बाहर पूर्वादि आठ दिशाओं में -

ॐ वज्राय नमः, पूर्वे, ॐ शक्तये नमः, आग्नेये,
ॐ दण्डाय नमः, दक्षिणे, ॐ खड्गाय नमः, नैर्ऋत्ये,
ॐ पाशाय नमः, पश्चिमे, ॐ अंकुशाय नमः, वायव्ये,
ॐ गदायै नमः, उत्तरे, ॐ शूलाय नमः, ऐशान्याम्,
ॐ पद्माय नमः, ऊर्ध्वम्, ॐ चक्राय नमः, अधः ।

इस प्रकार वज्रादि आयुधों के पूजन के पश्चात् **भूपुर के भीतर पूर्वादि दिशाओं में** इन्द्रादि दश दिक्पालों की पूजा करे । यथा -

ॐ इन्द्राय नमः, पूर्वे, ॐ अग्नये नमः, आग्नेये, ॐ यमाय नमः, दक्षिणे
ॐ निर्ऋतये नमः, नैर्ऋत्ये, ॐ वरुणाय नमः, पश्चिमे, ॐ वायवे नमः, वायव्ये,
ॐ सोमाय नमः, उतरे, ॐ ईशानाय नमः, ऐशान्ये, ॐ ब्रम्हणे नमः, ऊर्ध्वम्,
ॐ अनन्ताय नमः, अधः,

दिक्पालों की पूजा के पश्चात् **भूपुर के चारों द्वारों पर** पूर्वादि क्रम से कराल आदि द्वारपालों की पूजा करनी चाहिए । यथा -

ॐ करालाय नमः, पूर्वे, ॐ विकरालाय नमः, दक्षिणे,
ॐ अलिकालाय नमः, पश्चिमे, ॐ महाकालाय नमः, उत्तरे ।

द्वारपालों के पूजन के पश्चात् **अष्टदल कमल में** एकलिङ्गा आदि आठ शक्तियों की पूजा करनी चाहिए । यथा -

ॐ एकलिङ्गायै नमः, पूर्वादिदलपत्रे, ॐ योगिन्यै नमः, आग्नेयकोणदलपत्रे
ॐ डाकिन्यै नमः, दक्षिणदिग्दलपत्रे, ॐ भैरव्यै नमः, नैर्ऋत्यकोणदलपत्रे,
ॐ महाभैरव्यै नमः, पश्चिमदिग्दलपत्रे, ॐ केन्द्राक्ष्यै नमः, वायव्यकोणदिग्दलपत्रे,
ॐ असितांग्यै नमः, उत्तर दिग्दलपत्रे, ॐ संहारिण्यै नमः, ईशानकोणदिग्दलपत्रे,

तत्पश्चात् **षट्कोण में** षडङ्गों की पूजा करनी चाहिए । यथा -

ॐ आं खड्गाय ह्रीं ह्रीं हृदयाय स्वाहा,
ॐ ई सुखड्गाय ह्रीं ह्रीं फट् शिरसे स्वाहा,
ॐ ऊं वज्राय ह्रीं ह्रीं फट् शिखायै वषट्,
ॐ ऐं पाशाय ह्रीं ह्रीं फट् कवचाय स्वाहा,
ॐ औं अंकुशाय ह्रीं ह्रीं फट् नेत्रत्रयाय वौषट् स्वाहा,
ॐ अः वसुरक्ष ह्रीं ह्रीं फट् अस्त्राय फट् स्वाहा ।

तदनन्तर **त्रिकोण में** छिन्नमस्ता देवी का पूजन डाकिनी एवं वर्णिनी सहित करना चाहिए । यथा -

ॐ ऐं छिन्नमस्तायै नमः, ॐ ऐं डाकिन्यै नमः, ॐ ऐं वर्णिन्यै नमः

इन मन्त्रों से मध्य में छिन्नमस्ता का तथा दक्षिण पार्श्व के क्रम से उक्त दोनों सखियों का दोनों पार्श्व में पूजन करना चाहिये । पूजा समाप्त कर छ पुष्पाञ्जलियाँ भगवती छिन्नमस्ता को समर्पित करनी चाहिये ॥ १६-१८ ॥

अस्य विधानस्य नानासिद्धिकथनम्

प्राप्नुयान् निखिलान् सद्यो दुर्लभांस्तत्प्रसादतः ।
श्रीपुष्पैर्लभते लक्ष्मीं तत्फलं स्वसमीहितम् ॥ १९ ॥
वाक्सिद्धिं मालतीपुष्पैश्चम्पकैर्हवनात् सुखम् ।
घृताक्तं छागमांसं यो जुहुयात् प्रत्यहं शतम् ॥ २० ॥
मासमेकं तु वशगास्तस्य स्युः सर्वपार्थिवाः ।
करवीरस्य कुसुमैः श्वेतैर्लक्षं जुहोति यः ॥ २१ ॥
रोगजालं पराभूय सुखीजीवेच्छतं समाः ।
रक्तैस्तत्संख्यया हुत्वा वशयेन्मन्त्रिणो नृपान् ॥ २२ ॥
फलैर्हुत्वाप्नुयाल्लक्ष्मीमुदुम्बरपलाशजैः ।
गोमायुमांसैस्तामेव कविता पायसान्धसा ॥ २३ ॥
बन्धूककुसुमैर्भाग्यं कर्णिकारैः समीहितम् ।
तिलतण्डुलहोमेन वशयेन्निखिलाञ्जनान् ॥ २४ ॥

करवीरस्य कुसुमैः पुष्पैः । प्रसूनं कुसुमं सुममित्यमरोक्तेः ॥ २१ ॥ रक्तैः करवीरैरिति पूर्वेण सम्बन्धः । तत्संख्यया लक्षेण ॥ २२ ॥ गोमायुः शृगालः । तामेव लक्ष्मीमेव । पायसान्धसा पायसान्नेन ॥ २३–२४ ॥ नार्या

इस प्रकार पूजन पुरश्चरणादि के पश्चात् मन्त्र सिद्ध हो जाने पर साधक शीघ्र ही उनकी प्रसन्नता से अपने दुर्लभ मनोरथों को प्राप्त करने में समर्थ हो जाता हैं । श्री पुष्पों के होम से लक्ष्मी तथा लक्ष्मी के प्राप्त होने से सारा मनोरथ पूर्ण करता है ॥ १९ ॥

मालती पुष्पों के होम से वाक्सिद्धि, चम्पा पुष्पों के हवन से सुख मिलता है । इस प्रकार जो व्यक्ति १ मास पर्यन्त घी मिश्रित छाग मांस की १०० आहुतियाँ देता है सभी राजा उसके वश में हो जाते हैं ॥ २०-२१ ॥

सफेद कनेर के पुष्पों से जो व्यक्ति १ लाख आहुतियाँ देता है वह रोग जाल से मुक्त होकर १०० वर्ष पर्यन्त जीवित रहता है ॥ २१-२२ ॥

लाल वर्ण के कनेर के फूलों से एक लाख आहुति देने से साधक व्यक्ति राजाओं और उसके मन्त्रियों को वश में कर लेता है ॥ २२ ॥

उदुम्बर एवं पलाश के फलों द्वारा होम करने वाला व्यक्ति लक्ष्मीवान् हो जाता है । गोमायु (सियार) के मांस से भी होम करने से लक्ष्मी प्राप्त हो जाती है । पायास एवं अन्न के होम से कवित्व शक्ति प्राप्त होती है ॥ २३ ॥

बन्धूक पुष्पों के होम से भाग्याभ्युदय होता है । तिल एवं चावलों के होम से सभी लोग वश में हो जाते हैं । स्त्री के रज से होम करने पर आकर्षण,

नारीरजोभिराकृष्टिमृगमांसैः समीहितम् ।
स्तम्भनं माहिषैर्मासैः पङ्कजैः सघृतैरपि ॥ २५ ॥
चिताग्नौ परभृत्पक्षैर्जुहुयादरिमृत्यवे ।
उन्मत्तकाष्ठदीप्तेऽग्नौ तत्फलं वायसच्छदैः ॥ २६ ॥
द्यूते वने नृपद्वारे समरे वैरिसंकटे ।
विजयं लभते मन्त्री ध्यायन्देवीं जपेन्मनुम् ॥ २७ ॥
भुक्तौ मुक्तौ सितां ध्यायेदुच्चाटे नीलरोचिषम् ।
रक्तां वश्ये मृतो धूम्रांस्तम्भने कनकप्रभाम् ॥ २८ ॥
निशि दद्याद् बलिं तस्यै सिद्धये मदिरादिना ।
गोपनीयः प्रयोगोऽथ प्रोच्यते सर्वसिद्धिदः ॥ २९ ॥
भूताहे कृष्णपक्षस्य मध्यरात्रे तमो घने ।
स्नात्वा रक्ताम्बरधरो रक्तमाल्यानुलेपनः ॥ ३० ॥
आनीय पूजयेन्नारीं छिन्नमस्तास्वरूपिणीम् ।
सुन्दरीं यौवनाक्रान्तां नरपञ्चकगामिनीम् ॥ ३१ ॥

रजोभिर्ऋतुकालनिर्गतरुधिरैराकर्षणम् । सघृतैः पङ्कजैरपि स्तम्भनमेव परभृत् कोकिलः । उन्मत्तो धत्तूरः तत्काष्ठज्वलितेऽग्नौ काकपक्षैर्होमात् फलमरिमृत्युरेव स्यात् ॥ २५–२६ ॥ *॥ २७–३६ ॥

मृगमांस के होम से मोहन, महिष मांस के होम से स्तम्भन और इसी प्रकार घी मिश्रित कमल के होम से भी स्तम्भन होता है ॥ २४-२५ ॥

चिताग्नि में कोयल के पखों का होम करने से शत्रु की मृत्यु तथा धतूरे की लकड़ी से प्रज्वलित अग्नि में कौवों के पखों के होम से भी शत्रु मर जाता है ॥ २६ ॥

जुआ, जंगल, राजद्वार, संग्राम एवं शत्रुसंकट में छिन्नमस्ता देवी का ध्यान कर मन्त्र का जप करने से विजय प्राप्ति होती है ॥ २७ ॥

भुक्ति एवं मुक्ति के लिए श्वेत वर्ण वाली देवी का, उच्चाटन के लिए नीलवर्ण वाली देवी का, वशीकरण के लिए रक्तवर्ण वाली देवी का, मारण के लिए धूम्रवर्ण वाली देवी का तथा स्तम्भन के लिए सुवर्णवर्णा देवी का ध्यान करना चाहिए ॥ २८ ॥

देवी को सिद्ध करने के लिए रात्रि में मद्यादि की बलि देनी चाहिए ॥ २९ ॥

अब **सर्वसिद्धिदायक एवं अत्यन्त गोपनीय प्रयोग** कहता हूँ -

कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तिथि को मध्यरात्रि में जब घनघोर अन्धकार हो उस समय स्नान कर लाल वस्त्र, लाल माला एवं लाल चन्दन लगाकर नवयुवती सुन्दरी,

सस्मितां मुक्तकबरीं भूषादानप्रतोषिताम् ।
विवस्त्रां पूजयित्वैनामयुतं प्रजपेन्मनुम् ॥ ३२ ॥
बलिं दत्त्वा निशां नीत्वा सम्प्रेष्य धनतोषिताम् ।
भोजयेद् विविधैरन्नैर्ब्राह्मणान् देवताधिया ॥ ३३ ॥
अनेन विधिना लक्ष्मीं पुत्रान् पौत्रान् यशः सुखम् ।
नारीमायुश्चिरं धर्ममिष्टमन्यदवाप्नुयात् ॥ ३४ ॥
तस्यां रात्रौ व्रतं कार्यं विद्याकामेन मन्त्रिणा ।
मनोरथेषु चान्येषु गच्छेत्तां प्रजपन्मनुम् ॥ ३५ ॥
किंबहूक्तेन विद्याया अस्याविज्ञानमात्रतः ।
शास्त्रज्ञानं पापनाशः सर्वसौख्यं भवेद् ध्रुवम् ॥ ३६ ॥

प्रयोगान्तरफलकथनम्

उषस्युत्थाय शय्यायामुपविष्टो जपेच्छतम् ।
षण्मासाभ्यन्तरे मन्त्री कवित्वेन जयेत्कविम् ॥ ३७ ॥

प्रयोगान्तरमाह – **उषसीति** । कविं शुक्राचार्यम् ॥ ३७ ॥

पञ्चपुरुषोपभुक्ता, स्मेरमुखी (हास्यवदना), और खुले केशों वाली किसी स्त्री को लाकर उसमें छिन्नमस्ता की भावनाकर आभूषणादि प्रदान कर प्रसन्न करें । तदनन्तर उसे नंगी कर उसका पूजन कर दश हजार मन्त्रों का जप करे ॥ २९-३२ ॥

फिर बलि देकर रात्रि बिताकर धन से उसे संतुष्ट कर उसे उसके घर भेज दे । फिर दूसरे दिन देवता की भावना से ब्राह्मणों को विविध प्रकार का भोजन करावें ॥ ३३ ॥

इस प्रकार का प्रयोग करने वाला व्यक्ति लक्ष्मी पुत्र, पौत्र, यश, सुख, स्त्री, दीर्घायु एवं धर्म से पूर्ण हो मनोभिलषित फल प्राप्त करता है ॥ ३४ ॥

विद्या की कामना वाले साधक को उस रात्रि में व्रत करना चाहिए तथा अन्य प्रकार के फल चाहने वाले मन्त्रवेत्ता को मन्त्र का जप करते हुये उसके साथ संभोग करना चाहिए ॥ ३५ ॥

विमर्श - इन प्रयोगों को जनसाधारण को नहीं करना चाहिए । बिना गुरु के इन्हें करने से निश्चित नुकसान होता है ॥ ३५ ॥

विशेष क्या कहें, इस विद्या के ज्ञान मात्र से निश्चित रूप से शास्त्रों का ज्ञान तथा पापों का सर्वनाश होकर सभी प्रकार के सुखों की प्राप्ति होती है ॥ ३६ ॥

उषः काल में उठकर शय्या पर बैठकर १०० बार प्रतिदिन इस मन्त्र का जप करने वाला व्यक्ति ६ महीने के भीतर अपनी कवित्व शक्ति से शुक्राचार्य को जीत लेता है ॥ ३७ ॥

छिन्नमस्ताया उत्कीलनम्

शिवेन कीलिताविद्या तदुत्कीलनमुच्यते ।
मायां तारपुटां मन्त्री जप्यादष्टोत्तरं शतम् ॥ ३८ ॥
मन्त्रस्यादौ तथैवान्ते भवेत्सिद्धिप्रदा तु सा ।
एष नूनं विधिर्गोप्यः सिद्धिकामेन मन्त्रिणा ॥ ३९ ॥
उदिता छिन्नमस्तेयं कलौ शीघ्रमभीष्टदा ।

रेणुकाशबरीविद्यामन्त्रः

रेणुकाशबरीविद्या तादृश्येवोच्यतेऽधुना ॥ ४० ॥
प्रणवः कमलामायासृणिरिन्दुयुतोऽधरः ।
पञ्चाक्षरीमहाविद्या भैरवोऽस्य मुनिर्मतः ॥ ४१ ॥
पंक्तिश्छन्दो रेणुकाख्या शबरीदेवतोदिता ।
पञ्चवर्णै समस्तेन कुर्वीत मनुनाङ्गकम् ॥ ४२ ॥

तारपुटां मायां ॐ ह्रीं ॐ इति ॥ ३८–३९ ॥ रेणुका शबरीमाह – **प्रणव** इति । कमला श्रीं । माया ह्रीं । सृणिः क्रों। इन्दुयुतोऽधरः ऐं । मन्त्रो यथा – ॐ श्रीं ह्रीं क्रों ऐं । षडङ्गमाह – **पञ्चेति** । समस्तेनास्त्रम् ॥ ४० ॥ *॥ ४१–४२ ॥

अब **मन्त्र के उत्कीलन का विधान** करते हैं -

इस विद्या को भगवान् शिव ने कीलित कर दिया है । अतः अब उसका उत्कीलन कहता हूँ । मन्त्रवेत्ता मन्त्र जप के पहले तथा अन्त में इसका १०८ बार जप करे तो उत्कीलन हो जाता है और यह विद्या सिद्धिदायक हो जाती है ।

उत्कीलन का मन्त्र इस प्रकार है - प्रणव (ॐ), उससे संपुटित माया बीज (ॐ ह्रीं ॐ) । सिद्धि की कामना रखने वाले व्यक्ति को यह विधि निश्चित रूप से गुप्त रखनी चाहिए । इस प्रकार कलि में शीघ्र ही मनोऽभीष्टफल देने वाली छिन्नमस्ता विद्या के विषय में हमने कहा है ॥ ३८-४० ॥

रेणुका शबरी विद्या भी छिन्नमस्ता के समान ही होती है । अब मैं उस विद्या को कह रहा हूँ -

प्रणव (ॐ), कमला (श्रीं), माया (ह्रीं), सृणि (क्रों), एवं इन्दुयुत् अधर (ऐं) - यह पाँच अक्षरों वाली **शबरी महाविद्या** हैं । इस मन्त्र के भैरव ऋषि, पंक्ति छन्द, एवं रेणुकाशबरी देवता हैं । इन्हीं पाँच बीजाक्षरों से तथा समस्त मन्त्र से इसका षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ ४०-४२ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप - ॐ श्रीं ह्रीं क्रों ऐं ।

विनियोग - ॐ अस्य श्रीरेणुकाशबरीमन्त्रस्य भैरवऋषिः पंक्तिश्छन्दः

ध्यानवर्णनं जपादिपूजाविधानं च

हेमाद्रिसानावुद्याने नानाद्रुममनोहरे ।
रत्नमण्डपमध्यस्थवेदिकायां स्थितां स्मरेत् ॥ ४३ ॥
गुञ्जाफलाकल्पितहाररम्यां
श्रुत्योःशिखण्डं शिखिनो वहन्तीम् ।
कोदण्डबाणौ दधतीं कराभ्यां
कटिस्थवल्कां शबरीं स्मरेयम् ॥ ४४ ॥
ध्यात्वैवं प्रजपेल्लक्षपञ्चकं तद्दशांशतः ।
फलैर्बिल्वैः प्रजुहुयात्तत्काष्ठैरेधितेऽनले ॥ ४५ ॥
पूर्वोदितेऽर्चयेत्पीठे षडङ्गावृत्तिरादिमा ।
द्वितीयावरणे पूज्याः शबर्य्या अष्टशक्तयः ॥ ४६ ॥

ध्यानमाह – **हेमाद्रीति** । मेरुशिखरे ॥ ४३ ॥ शिखिनो मयूरस्य पिच्छं कर्णयोर्दधतीम् । कोदण्डं धनुर्वामे ॥ बाणो दक्षे ॥ ४४ ॥ * ॥ ४५ ॥ पूर्वोदिते जयादिके ॥ ४६ ॥ *॥ ४७–५१ ॥

रेणुकाशबरीदेवता आत्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास - ॐ हृदयाय नमः, ॐ श्रीं शिरसे स्वाहा,
ॐ ह्रीं शिखायै वषट्, ॐ क्रों कवचाय हुम्,
ॐ ऐं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ श्री ह्रीं क्रों ऐं अस्त्राय फट् ।

इसी प्रकार करन्यास भी करना चाहिए ॥ ४०-४२ ॥

अव **रेणुकाशबरी का ध्यान** कहते हैं -

मेरु शिखर पर अनेक वृक्षों से मण्डित उद्यान में रत्नमण्डप के मध्य स्थित वेदिका पर विराजमान देवी का ध्यान इस प्रकार करना चाहिए ॥ ४३ ॥

जो देवी गुञ्जाफलों से निर्मित हार धारण करने से मनोहर हैं, कानों में मोरपखं का कुण्डल धारण किये हुये हैं जिनके दोनों हाथों में धनुष और वाण हैं - ऐसी शबरी देवी का मैं ध्यान करता हूँ ॥ ४४ ॥

इस प्रकार रेणुका शबरी देवी का ध्यान कर उक्त मन्त्र का ५ लाख जप करना चाहिए तथा विल्व वृक्ष की लकडी से प्रज्वलित अग्नि में बिल्वफलों से उसका दशांश होम करना चाहिए ॥ ४५ ॥

अब **पीठपूजा और आवरणपूजा** का विधान कहते हैं -

पूर्वोक्त पीठ पर देवी की पूजा करनी चाहिए । **प्रथमावरण** में षडङ्गपूजा और **द्वितीयावरण** में शबरी की आठ शक्तियों की पूजा करनी चाहिए । १. हुंकरी, २. खेचरी, ३. चण्डास्या, ४. छेदिनी, ५. क्षेपणा, ६. अस्त्री, ७. हुंकारीं तथा ८.

हुङ्कारीखेचरी चाथ चण्डास्याच्छेदनी तथा।
क्षेपणास्त्री च हुङ्कारीक्षेमकारी तथाष्टमी॥ ४७॥
तृतीये दशदिक्पाला वज्राद्यानि चतुर्थके।
एवं सिद्धं मनुं सम्यक्कार्यकर्मणि योजयेत्॥ ४८॥

क्षेमकरी - ये शबरी की ८ महाशक्तियाँ कही गई हैं । **तृतीयावरण** में दश दिक्पालों की तथा **चतुर्थावरण** में उनके वज्रादि आयुधों की पूजा करनी चाहिए । इस प्रकार मन्त्र सिद्ध हो जाने पर काम्य प्रयोग करना चाहिए ॥ ४६-४८ ॥

विमर्श - प्रयोग विधि - षट्कोण, अष्टदल एवं भूपुर से युक्त यन्त्र पर देवी की पूजा करनी चाहिए । पुनः ६.६-११ के विमर्श में कही गई रीति से 'ॐ आधारशक्तये नमः' से लेकर 'ॐ रतिकामाभ्यां नमः' पर्यन्त मन्त्र से पीठ पूजन कर उस पर जयादि नौ शक्तियों का पूजन करे । तदनन्तर उसी पीठ पर मूल मन्त्र से विधिवत् रेणुकाशबरी का पूजन कर 'आज्ञापय आवरणं ते पूजयामि' से इस मन्त्र से भगवती की आज्ञा ले आवरण पूजा प्रारम्भ करनी चाहिए ।

प्रथमावरण में षडङ्ग पूजन करे उसकी विधि इस प्रकार है -

ॐ हृदयाय नमः, श्रीं शिरसे स्वाहा, ह्रीं शिखायै वषट्, क्रों कवचाय हुम्, ऐं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ श्रीं ह्रीं क्रों ऐं अस्त्राय फट् ।

द्वितीयावरण में अष्टदलों के पूर्वादि दिशाओं के क्रम से हुंकारी आदि शक्तियों का पूजन इस प्रकार करना चाहिए -

ॐ हुंकर्यै नमः, अष्टदलस्य पूर्वदिक्पत्रे, ॐ खेचर्यै नमः, आग्नेयकोणस्थपत्रे,
ॐ चण्डालास्यायै नमः, दक्षिणदिक्पत्रे, ॐ छेदिन्यै नमः, नैर्ऋत्यकोणस्थपत्रे,
ॐ क्षेपणायै नमः, पश्चिमदिक्पत्रे, ॐ अस्त्र्यै नमः, वायव्यकोणस्थपत्रे,
ॐ हुंकार्यै नमः, उत्तरस्थ दिक्पत्रे, ॐ क्षेमकर्यै नमः, ईशानकोणस्थपत्रे ।

द्वितीयावरण की पूजा के पश्चात् भूपुर के भीतर दशों दिशाओं में पूर्वादि क्रम से **तृतीयावरण** में इस प्रकार पूजा करे ।

ॐ इन्द्राय नमः, पूर्वे, ॐ अग्नये नमः, आग्नेयकोण,
ॐ यमाय नमः, दक्षिणे, ॐ निर्ऋतये नमः, नैर्ऋत्ये,
ॐ वरुणाय नमः, पश्चिमे ॐ वायवे नमः, वायव्ये,
ॐ सोमाय नमः, उत्तरे, ॐ ईशानाय नमः, ऐशान्ये,
ॐ ब्रह्मणे नमः, पूर्वेशानयोर्मध्ये, ॐ अनन्तराय नमः, नैर्ऋत्यपश्चिमयोर्मध्ये ।

इस प्रकार तृतीयावरण की पूजा समाप्त कर भूपुर के बाहर वज्रादि आयुधों की **चतुर्थावरण** पूजा करे, यथा -

ॐ वज्राय नमः, पूर्वे, ॐ शक्तये नमः, आग्नेये,
ॐ दण्डाय नमः, दक्षिणे, ॐ पाशाय नमः, नैर्ऋत्ये,
ॐ गदायै नमः, पश्चिमे, ॐ पद्माय नमः, वायव्ये,

मल्लीपुष्पैर्जनावश्या इक्षुखण्डैर्धनाप्तयः।
पञ्चगव्यैर्धेनवः स्युरशोककुसुमैस्सुताः ॥ ४६ ॥
इन्दीवरैः कृते होमे नृपपत्नीवशंवदा।
अन्नाप्तिरन्नैः सकलं मधूकैर्वाञ्छितं भवेत् ॥ ५० ॥
प्रोदिता शबरीविद्या कलौ त्वरिता सिद्धिदा।

विवाहसिद्धिदः स्वयंवरकलामन्त्रः

अथोच्यते विवाहाप्त्ये स्वयम्वरकलाशिवा ॥ ५१ ॥
तारो माया योगिनीतिद्वयं योगेश्वरिद्वयम्।
योगनिद्रायङ्करि स्यात् सकलस्थावरेति च ॥ ५२ ॥
जङ्गमस्य मुखं प्रोच्य हृदयं मम संपठेत्।
वशमाकर्षयाकर्ष पवनो वह्निसुन्दरी ॥ ५३ ॥

स्वयंवरकलामाह – **तार** इति । निद्रा भकारः । पवनो यः । वह्निसुन्दरी स्वाहा । स्वरूपमन्यत् यथा – ॐ ह्रीं योगिनि योगिनि योगेश्वरि योगेश्वरि योगभयङ्करि सकलस्थावरजङ्गमस्य मुखं हृदयं मम वशमाकर्षयाकर्षय स्वाहेति ॥ ५२–५४ ॥

ॐ खड्गाय नमः, उत्तरे, ॐ अङ्कुशाय नमः, ऐशान्ये
ॐ त्रिशूलाय नमः, पूर्वेशानयोर्मध्ये, ॐ चक्राय नमः, नैर्ऋत्यपश्चिमयोर्मध्ये ।

इस प्रकार **चतुर्थावरण** की पूजा कर पुनः देवी का पूजन कर पुष्पाञ्जलियाँ समर्पित करे ॥ ४६-४८ ॥

अब **काम्य प्रयोग** कहते हैं - मल्लिका पुष्पों द्वारा हवन करने से लोग वश में हो जाते हैं । ऊख के टुकडों के होम से धन लाभ होता है । पञ्चगव्य के होम से साधक के गोधन की वृद्धि होती है और अशोक के फूलों के हवन से पुत्र प्राप्ति होती है । कमल पुष्पों के होम से रानी वश में होती है । अन्न के होम से अन्न की प्राप्ति होती है । मधूक के होम से सभी मनोभिलषित कार्य संपन्न होते हैं, कलियुग में सिद्धि देने वाली शबरी विद्या यहाँ तक कही गई ॥ ४६-५० ॥

अब इसके बाद विवाह के लिए **स्वयंवर कला विद्या का मन्त्र** कहते हैं -

तार (ॐ), माया (ह्रीं), तदनन्तर दो बार 'योगिनि' पद (योगिनि योगिनि), उसके बाद २ बार 'योगेश्वरि' (योगेश्वरि योगेश्वरि), फिर योग तदनन्तर निद्रा (भ), फिर 'यङ्करि सकलस्थावरजङ्गमस्य मुखं', फिर 'हृदयं मम', फिर 'वशमाकर्षयाकर्ष', फिर पवन (य), तदनन्तर वह्निसुन्दरी (स्वाहा) लगाने से ५० अक्षरों का स्वयंवर कला मन्त्र बनता है ॥ ५१-५३ ॥

पञ्चाशद्वर्णविद्याया मुनिरस्याः पितामहः।
छन्दोतिजगती देवीगिरिपुत्रीस्वयम्वरा ॥ ५४ ॥

अस्य मन्त्रस्य षडङ्गन्यासप्रकारः

जगत्त्रयेति हृदयं त्रैलोक्येति शिरो मतम्।
उरगेति शिखा सर्वराजेति कवचं तथा ॥ ५५ ॥
सर्वस्त्रीपुरुषेत्यक्षि सर्वेत्यस्त्रं समीरितम्।
तारामायादिकावश्यमोहिन्यैपदपश्चिमाः ॥ ५६ ॥
षडङ्गमन्त्रा उद्दिष्टा[1] मूलेन व्यापकं चरेत्।
ध्यायेद्देवीं महादेवं वरीतुं समुपागताम् ॥ ५७ ॥

षडङ्गमाह – **जगत्त्रयेतीति** ॥ ५५ ॥ तारमायादिकाः । वश्यमोहिन्यै पदं पश्चिममन्तर्वर्ति येषामीदृशाः । षडङ्गमन्त्रा इत्युक्तत्वात् ॥ ॐ ह्रीं जगत्त्रयवश्यमोहिन्यै हृदयाय नमः; ॐ ह्रीं त्रैलोक्यवश्यमोहिन्यै शिरसेत्यादि – ॐ ह्रीं उरगवश्यमोहिन्यै शिखेत्यादि बोध्यम् । माया त्र दीर्घषट्कयुता कार्या ॥ ५६ ॥ *॥ ५७–६३ ॥

विमर्श - इस **मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - 'ॐ ह्रीं योगिनि योगिनि योगेश्वरि योगेश्वरि योगभयंकरि सकलस्थावरजङ्गमस्य मुखं हृदयं मम वशमाकर्षयाकर्षय स्वाहा' ॥ ५१-५३ ॥

पचास अक्षरों वाली इस विद्या के पितामह ब्रह्मा ऋषि हैं, अतिजगती छन्द है तथा गिरिपुत्री स्वयंवरा इसकी देवता कही गयीं हैं ॥ ५४ ॥

अब **मन्त्र का षडङ्गन्यास** कहते हैं -

आदि में तार (ॐ), माया (ह्रीं) को प्रारम्भ में तथा अन्त में 'वश्य मोहिन्यै' पद लगाकर, मध्य में क्रमशः 'जगत्त्रय' से हृदय, 'त्रैलोक्य' से शिर, 'उरग' से शिखा, 'सर्वराज' से कवच, 'सर्वस्त्रीपुरुष' से अक्षि (नेत्र), तथा 'सर्व' से अस्त्रन्यास करना चाहिए । यहाँ तक तो षडङ्गन्यास कहा गया । इसके बाद मूल मन्त्र पढ़कर व्यापक न्यास करना चाहिए । फिर महादेव का वरण करने के लिए आयी हुई गिरिराज़पुत्री गिरिजा का ध्यान करना चाहिए ॥ ५५-५७ ॥

विमर्श - **विनियोग** - 'ॐ अस्य श्रीस्वयंवरकलामन्त्रस्य ब्रह्माऋषिः अतिजगतीछन्दः देवीगिरिपुत्रीस्वयंवरादेवतात्मनोऽभीष्टसिद्धये मन्त्रजपे विनियोगः' ।

---

१. ॐ ह्रीं जगत्त्रयवश्यमोहिन्यै हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं त्रैलोक्यवशमोहिन्यै शिरसे स्वाहा, ॐ ह्रीं सर्वराजवश्यमोहिन्यै कवचाय हुम्, ॐ ह्रीं सर्वस्त्रीपुरूष वश्यमोहिन्यै नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ ह्रीं सर्ववश्यमोहिन्यै अस्त्राय फट् ।

ध्यानवर्णनं पूजाविधानं च

शम्भु जगन्मोहनरूपपूर्णं
विलोक्य लज्जाकुलितां स्मिताढ्याम् ।
मधूकमालां स्वसखीकराभ्यां
संबिभ्रतीमद्रिसुतां भजेयम् ॥ ५८ ॥
एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षचतुष्कं तद्दशांशतः ।
पायसान्नेन जुहुयात् पीठे पूर्वोदिते यजेत् ॥ ५९ ॥
त्रिकोणचतुरस्राङ्गकोणादलदिग्दलम् ।
दिक्कलादन्तपत्राणि चतुष्षष्टिदलं पुनः ॥ ६० ॥
वृत्तत्रयं चतुर्द्वारयुक्तं धरणिकेतनम् ।
पूजायन्त्रं प्रकुर्वीत तत्र सम्पूजयेदिमाम् ॥ ६१ ॥
त्रिकोणे पार्वतीमिष्ट्वा चतुरस्रेऽर्चयेदिमाः ।
मेधां विद्यां पुनर्लक्ष्मीं महालक्ष्मीं चतुर्थिकाम् ॥ ६२ ॥

षडङ्गन्यास - ॐ ह्रीं जगत्त्रयवश्यमोहिन्यै हृदयाय नमः,
ॐ ह्रीं त्रैलोक्यवश्यमोहिन्यै शिरसे स्वाहा,
ॐ ह्रीं सर्वराजवश्यमोहिन्यै कवचाय हुम्,
ॐ ह्रीं सर्वस्त्रीपुरुषवश्यमोहिन्यै नेत्रत्रयाय वौषट्,
ॐ ह्रीं सर्ववश्यमोहिन्यै अस्त्राय फट् ।

ॐ ह्रीं योगिनि योगिनि योगेश्वरि योगेश्वरि योगभयङ्करि सकलस्थावरजङ्गमस्य मुखं हृदयं मम वशमाकर्षयाकर्षय स्वाहा इति सर्वाङ्गे ॥ ५५-५७ ॥

गिरिराजपुत्री का ध्यान -

भगवान् सदाशिव के जगन्मोहन परिपूर्णरूप को देखकर संकोच से लजाती हुई मन्द मन्द मुस्कान से युक्त, अपने सखियों के साथ वर वरणार्थ मधूक पुष्प की माला लिए हुये गिरिराजपुत्री का मैं ध्यान करता हूँ ॥ ५८ ॥

इस प्रकार ध्यान कर चार लाख उक्त मन्त्र का जप करना चाहिए, फिर उसका दशांश पायस से हवन करना चाहिए । तदनन्तर पूर्वोक्त पीठ पर देवी का पूजन करना चाहिए ॥ ५९ ॥

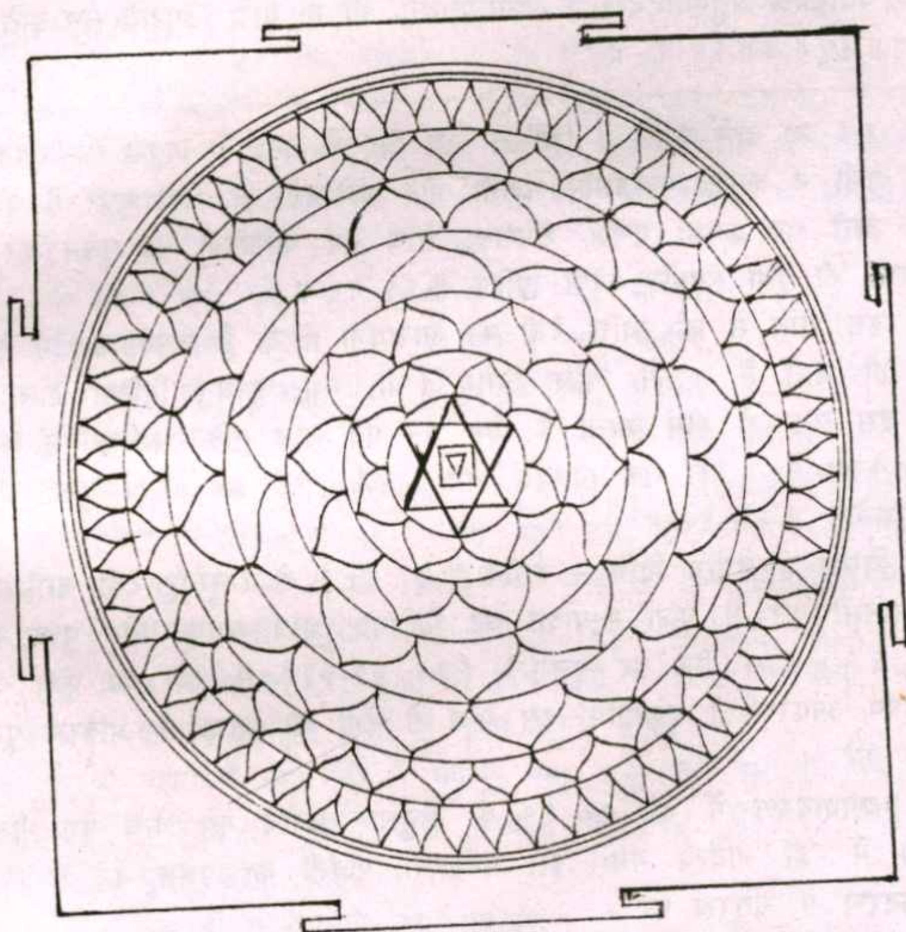
प्रथम त्रिकोण, उसके बाद चतुष्कोण, उसके बाद षट्कोण, तदनन्तर अष्टदल, फिर दशदल, पुनः दशदल, फिर षोडशदल, फिर बत्तीस दल, फिर चौंसठ दल, इसके बाद तीन वृत्त, उसके बाद चार द्वार वाला भूपुर - इस प्रकार का यन्त्र बनाकर उस पर देवी का पूजन करना चाहिए ॥ ६०-६१ ॥

(१) त्रिकोण में पार्वती का पूजन कर चतुरस्र (२) में मेधा, विद्या, लक्ष्मी एवं महालक्ष्मी इन चारों का पूजन करना चाहिए ॥ ६२ ॥

षट्कोणेषु षडङ्गानि स्वरानष्टदलेऽर्चयेत् ।
दिग्दलद्वितीये देवानिन्द्रादीनायुधानि च ॥ ६३ ॥
ताराद्येन नमोन्तेन श्रीबीजेन रमां यजेत् ।
कलापत्रे द्विरामारे पाशमायांकुशैः शिवा ॥ ६४ ॥

कलापत्रे षोडशदले । ताराद्येन रमान्तेन बीजेन ॐ श्रीं श्रीमिति मनुना श्रियं यजेत् । द्विरामारे द्वात्रिंशद्दले । पाशमायाङ्कुशैः । आं ह्रीं क्रों शिवायै नम इति ? (द्वारं) तां यजेत् ॥ ६४ ॥

स्वयंवरकलापूजनयन्त्रम्



षट्कोण (३) में षडङ्गपूजा (द्र० ६. ५५-५७) तथा अष्टदलों (४) में २ के क्रम से १६ स्वरों की, दोनों (५-६) दश दलों में क्रमशः इन्द्रादि दश दिक्पालों का तथा उनके वज्रादि आयुधों का पूजन करना चाहिए ॥ ६३ ॥

षोडशदलों (७) में 'श्रीरमायै नमः' इस मन्त्र से रमा का, बत्तीस (८) दलों वाले कमल में 'आं ह्रीं क्रों शिवायै नमः' मन्त्र से शिवा का पूजन करना चाहिए ॥ ६४॥

वेदाङ्गपत्रे त्रिपुटां श्रीमायामदनैर्यजेत् ।
वृत्तत्रये महालक्ष्मीं भवानीं पुष्पसायकाम् ॥ ६५ ॥
चतुरस्रं चतुर्द्वार्षु विघ्नेट्क्षेत्रेशभैरवान् ।
योगिनीः पूजयेदित्थं नवावरणमर्चनम् ॥ ६६ ॥
एवं यो भजते देवीं वश्यास्तस्याखिला जनाः ।
लाजैस्त्रिमधुरोपेतैर्जुहुयादयुतं तु यः ॥ ६७ ॥
लभते वाञ्छितां कन्यां धनमानसमन्विताम् ।
एवं स्वयंवरा प्रोक्ता प्रोच्यते मधुमत्यथ ॥ ६८ ॥

वेदाङ्गपत्रे चतुष्षष्टिदले । श्रीमायामदनैः श्री ह्रीं क्लीं त्रिपुरायै नम इति तां यजेत् ॥ ६५ ॥ *॥ ६६–६८ ॥

---

६४ दल वाले कमल में 'श्रीं ह्रीं क्लीं त्रिपुरायै नमः' से त्रिपुरा का, तदनन्तर तीनों वृत्तों में क्रमशः महालक्ष्मी, भवानी और कामेश्वरी का, तथा भूपुर मे पूर्वादि चारों द्वारों पर क्रमशः गणेश, क्षेत्रपाल, भैरव एवं योगिनियों का पूजन कर ९ आवरणों की पूजा समाप्ति करनी चाहिए ॥ ६५-६६ ॥

इस रीति से जो व्यक्ति देवी की आराधना करता है उसके वश में सभी लोग हो जाते हैं । जो व्यक्ति त्रिमधु (घी, मधु, दुग्ध) मिश्रित लाजा के साथ इस मन्त्र से होम करता है, वह धन एवं मान सहित अभिलषित कन्या प्राप्त करता है । यहाँ तक स्वयंवरा विद्या कही गई अब आगे मधुमती विद्या कही जायेगी ॥ ६७-६८ ॥

विमर्श - प्रयोग विधि - श्लोक (६. ५८) के अनुसार देवी का ध्यान कर मानसोपचार से पूजा सम्पादन कर विधिवत अर्घ्य स्थापन पीठ पूजा करे (द्र० ६. ८) । पीठ पर मूलमन्त्र (द्र० ५१-५३) से देवी की पूजा कर 'आज्ञापय आवरणं ते पूजयामि' इस मन्त्र से देवी की आज्ञा ले आवरण पूजा प्रारम्भ करे ।

प्रथमवावरण में ६. ६०-६१ के अनुसार बनाये गये यन्त्र पर भीतर त्रिकोण में 'ह्रीं पार्वत्यै नमः' इस मन्त्र से पार्वती का पूजन करे । फिर **द्वितीयावरण** में चतुरस्र पर -

ॐ मेधायै नमः, ॐ विद्यायै नमः,
ॐ लक्ष्म्यै नमः, ॐ महालक्ष्म्यै नमः,

आदि मन्त्रों से पूजा करे । फिर षट्कोण पर **तृतीयावरण** में क्रमशः

ॐ ह्रीं जगत्त्रयवश्यमोहिन्यै हृदयाय नमः,
ॐ ह्रीं त्रैलोक्यवश्यमोहिन्यै शिरसे स्वाहा,
ॐ ह्रीं उरगवश्यमोहिन्यै शिखायै वषट्,

ॐ ह्रीं सर्वराजवश्यमोहिन्यै कवचाय हुम,
ॐ ह्रीं सर्वस्त्रीपुरुषवश्यमोहिन्यै नेत्रत्रयाय वौषट्,
ॐ ह्रीं सर्ववश्यमोहिन्यै अस्त्राय फट्,

तथा मूलमन्त्र से यन्त्र के ऊपर पूजा करे । फिर **चतुर्थावरण** में अष्टदल कमलों का क्रमशः दो दो स्वरों के साथ 'ॐ प्रं प्रां नमः', 'ॐ इ ई नमः' इत्यादि क्रम से चतुर्थावरण की पूजा करे ।

दश दल वाले कमल पर **पञ्चमावरण** में इन्द्र आदि दश दिक्पालों की पूजा करनी चाहिए । यथा -

ॐ इन्द्राय नमः, पूर्वे, ॐ अग्नये नमः, आग्नेये,
ॐ यमाय नमः, दक्षिणे, ॐ निर्ऋतये नमः, नैर्ऋत्ये,
ॐ वरुणाय नमः, पश्चिमे, ॐ वायवे नमः, वायव्ये,
ॐ सोमाय नमः, उत्तरे, ॐ ईशानाय नमः, ऐशान्ये,
ॐ ब्रह्मणे नमः, पूर्वेशानयोर्मध्ये, ॐ अनन्ताय नमः, निर्ऋति पश्चिमयोर्मध्ये,

फिर **षष्ठावरण** में दूसरे दश कमल पत्रों पर दश दिक्पालों के आयुधों की पूजा करे । यथा -

ॐ वज्राय नमः, पूर्वे, ॐ शक्तये नमः, आग्नेये,
ॐ दण्डाय नमः, दक्षिणे, ॐ पाशाय नमः, नैर्ऋत्ये,
ॐ गदायै नमः, पश्चिमे, ॐ पद्माय नमः, वायव्ये,
ॐ खड्गाय नमः, उत्तरे, ॐ अङ्कुशाय नमः, ऐशान्ये
ॐ त्रिशूलाय नमः, पूर्वेशानयोर्मध्ये, ॐ चक्राय नमः, नैर्ऋत्यपश्चिमयोर्मध्ये ।

सप्तमावरण में षोडशदलों पर 'ॐ श्री रमायै नमः' से, तदनन्तर **अष्टमावरण** में बत्तीस दलों पर 'ॐ आं ह्रीं क्रों शिवायै नमः' मन्त्र से, फिर **नवमावरण** में ६४ दलों पर 'ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं त्रिपुरायै नमः' मन्त्र से त्रिपुरा का पूजन करे ।

इस प्रकार नवमावरणों की पूजा कर तीन वृत्तों में क्रमशः महालक्ष्मी, भवानी एवं कामेश्वरी का निम्नलिखित मन्त्रों से पूजन करना चाहिए -

ॐ श्रीं महालक्ष्म्यै नमः, ॐ ह्रीं भवान्यै नमः, ॐ क्लीं कामेश्वर्यै नमः,

अन्त में भूपुर में पूर्वादि चारों दिशाओं में गणेश, क्षेत्रपाल, भैरव एवं योगिनियों का पूजन करना चाहिए । यथा -

ॐ ह्रीं गं गणेशाय नमः, पूर्वद्वारे,
ॐ ह्रीं वं वटुकाय नमः, दक्षिणद्वारे,
ॐ ह्रीं क्षं क्षेत्रपालाय नमः, पश्चिमद्वारे,
ॐ ह्रीं यं योगिनीभ्यो नमः, उत्तरद्वारे ।

इस प्रकार आवरण पूजा कर देवी को ६ पुष्पाञ्जलि समर्पित कर, विधिवत् जप करना चाहिए ॥ ६२-६८ ॥

मधुमतीमन्त्रः

नारायणो विन्दुयुतो ह्रल्लेखांकुशमन्मथा।
दीर्घवर्मध्रुवो वह्निप्रेयसी वसुवर्णवान् ॥ ६९ ॥
मुनिरस्य मधुश्छन्दस्त्रिष्टुब्मधुमतीति च।
मुन्याद्याः पञ्चभिर्बीजैः पञ्चाङ्गानि प्रकल्पयेत् ॥ ७० ॥
अस्त्रं स्वाहान्ततारेण कृत्वा देवीं स्मरेद् बुधः।

ध्यानं पूजनादिविधिश्च

नानाद्रुमलताकीर्णकैलासगतकानने ॥ ७१ ॥
अहिलतादलनीलसरोजयुक्-
करयुगां मणिकाञ्चनपीठगाम्।
अमरनागवधूगणसेविता
मधुमतीमखिलार्थकारीं भजे ॥ ७२ ॥

मधुमतीमाह – **नारायण** इति । बिन्दुयुतो नारायणः आं । ह्रल्लेखा ह्रीं । अकुशः क्रों । मन्मथः क्लीं । दीर्घवर्म हूं । ध्रुवः ॐ वह्निप्रयेसी स्वाहा । मन्त्रो यथा – आं ह्रीं क्रों क्लीं हूं ॐ स्वाहा ॥ ६६ ॥ * ॥ ७० ॥ स्वाहान्तप्रणवेनास्त्रम् ॥ ७१ ॥ ध्यानमाह – **अहीति** । नागवल्लीदलं दक्षे नीलपद्मं वामे ॥ ७२ ॥ * ॥ ७३–७६ ॥

अब पूर्व प्रतिज्ञात (द्र० ६• ६८) **मधुमती मन्त्र का उद्धार** कहते हैं -

बिन्दु सहित नारायण (आं), ह्रल्लेखा (ह्रीं), अंकुश (क्रों), मन्मथ (क्लीं), दीर्घवर्म (हूं), फिर ध्रुव (ॐ), तथा अन्त में वह्निप्रेयसी (स्वाहा) लगाने से ८ अक्षरों का मधुमती मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ ६६ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'आं ह्रीं क्रों क्लीं हूं ॐ स्वाहा' ॥ ६६ ॥

इस मन्त्र के मधु ऋषि हैं, त्रिष्टुप् छन्द है तथा मधुमती देवता हैं । पाँच बीजों से पाँच अगों का तथा स्वाहान्त प्रणव से अस्त्र न्यास कर विद्वान् साधक को देवी का ध्यान करना चाहिए ॥ ७०-७१ ॥

विमर्श - विनियोग - ॐ अस्य श्रीमधुमतीमन्त्रस्य मधुर्ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः मधुमतीदेवता आत्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे मधुमतीमन्त्रजपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास - ॐ आं हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा,
ॐ क्रों शिखायै वषट्, ॐ क्लीं कवचाय हुं,
ॐ हूं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ स्वाहा अस्त्राय फट् ॥ ७०-७१ ॥

अब **मधुमती देवी का ध्यान** कहते हैं -

अनेक वृक्ष एवं लताओं से घिरे कैलाश पर्वत के गहन वन में मणि जटित काञ्चन पीठ पर विराजमान, अपने दोनों हाथों में क्रमशः दाहिने हाथ में नागलता

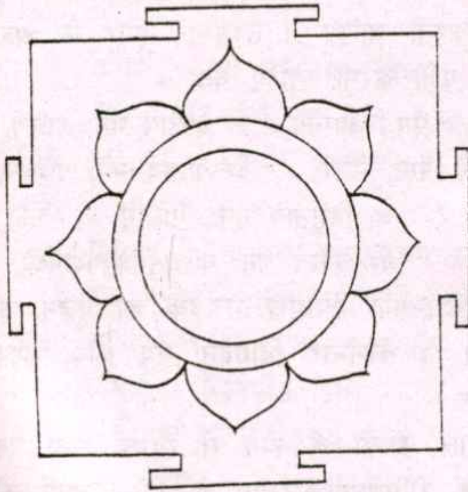
प्रजप्य वसुलक्षं तद्दशांशं जुहुयाद्दलैः ।
बिल्वोत्थैः पूजयेत् पीठे जयादिसर्वशक्तिके ॥ ७३ ॥
कर्णिकायां षडङ्गानि शक्तयो वसुपत्रके ।
निद्राच्छायाक्षमातृष्णाकान्तिरार्याश्रुतिः स्मृतिः ॥ ७४ ॥
शक्रादयस्तदस्त्राणि पूज्यान्यन्ते सुखाप्तये ।
य इत्थं सेवते देवीं स समृद्धेः पदं लभेत् ॥ ७५ ॥

एवं बायें हाथ में नीलकमल धारण किये हुये देवाङ्गना एवं नागपत्नियों से सेवित सर्वार्थसिद्धिदायक मधुमती का ध्यान करता हूँ ॥ ७२ ॥

उक्त मन्त्र का आठ लाख जप करना चाहिए । जप पूर्ण होने पर विल्ब पत्रों से उसका दशांश होम करना चाहिए और पीठ पर जयादि शक्तियों का पूजन करना चाहिए ॥ ७३ ॥

कर्णिका में षडङ्गपूजा, एवं अष्टदलों में शक्तियों का पूजन करना चाहिए । १. निद्रा, २. छाया, ३. क्षमा, ४. तृष्णा, ५. कान्ति, ६. आर्या, ७. श्रुति एवं ८. स्मृति ये आठ मधुमती की शक्तियाँ हैं । इसके बाद इन्द्रादि दश दिक्पालों का, तदनन्तर उनके वज्रादि आयुधों का सुख प्राप्ति के लिए पूजन करना चाहिए । जो इस प्रकार मधुमती देवी की उपासना करता है वह समृद्धि प्राप्त करता है ॥ ७४-७५ ॥

मधुमतीपूजनयन्त्रम्



विमर्श - प्रयोग विधि - वृत्ताकार कर्णिका के ऊपर क्रमशः अष्टदल एवं भूपुर बना कर उस यन्त्र में मधुमती का मूल मन्त्र से आवाहन कर पूजन करना चाहिए ।

फिर **'आज्ञापय आवरणं ते पूजयामि'** इस मन्त्र से आज्ञा लेकर आवरण पूजा प्रारम्भ करना चाहिए ।

प्रथमावरण में वृत्ताकार कर्णिका में निम्न मन्त्रों से षडङ्गपूजा करनी चाहिए -

ॐ आं हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा, ॐ क्रों शिखायै वषट्,
ॐ क्लीं कवचाय हुम्, ॐ हूं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ स्वाहा अस्त्राय फट्,

इसके अनुसार अष्टदल कमल में पूर्वादि दिशाओं के क्रम से -

ॐ निद्रायै नमः, ॐ छायायै नमः, ॐ क्षमायै नमः,
ॐ तृष्णायै नमः, ॐ कान्त्यै नमः, ॐ आर्यायै नमः,
ॐ श्रुत्यै नमः, ॐ स्मृत्यै नमः,

रक्ताम्भोजैर्हुतैर्मन्त्री भूपतीन् वश्यतां नयेत्।
नानाभोगान् पायसेन ताम्बूलैर्वामलोचनाम्॥ ७६॥

नानाभोगप्रदोऽपरो मधुमतीमन्त्रः

दामोदरो बिन्दुयुक्तो मधुमत्याःऽपरो मनुः।
पूर्ववद्यजनं चास्य ध्यायेद्देवीं कुमारिकाम्॥ ७७॥
कोटिरर्द्धजपं कुर्वन्विद्यापारङ्गमो भवेत्।
मधुमत्या समानान्या नानाभोगसुखप्रदा॥ ७८॥

मन्त्रान्तरमाह – **दामोदर** इति । दामोदर एकारः॥ ७७॥ *॥ ७८॥

पर्यन्त मन्त्रों से **द्वितीयावरण** की पूजा करनी चाहिए ।

इसके बाद भूपुर के दशों दिशाओं में -

ॐ इन्द्राय नमः, पूर्वे, ॐ अग्नये नमः आग्नेये,
ॐ यमाय नमः, दक्षिणे, ॐ निर्ऋतये नमः नैर्ऋत्ये,
ॐ वरुणाय नमः, पश्चिमे, ॐ वायवे नमः, वायव्ये,
ॐ सोमाय नमः उत्तरे, ॐ ईशानाय नमः ऐशान्ये,
ॐ ब्रह्मणे नमः पूर्वेशानयोर्मध्ये, ॐ अनन्ताय नमः पश्चिमनैर्ऋत्यमध्ये,

इस प्रकार **तृतीयावरण** की पूजा करनी चाहिए । तदनन्तर भूपुर के बाहर पूर्वादि क्रम से उनके वज्रादि आयुधों की पूजा करनी चाहिए यथा -

ॐ वज्राय नमः पूर्वे, ॐ शक्तये नमः, आग्नेये, ॐ दण्डाय नमः दक्षिणे,
ॐ खड्गाय नमः वायव्ये, ॐ गदायै नमः, उत्तरे, ॐ पाशाय नमः पश्चिमे,
ॐ अङ्कुशाय नमः वायव्ये, ॐ त्रिशूलाय नमः, ऐशान्ये,
ॐ पद्माय नमः पूर्वेशानयोर्मध्ये, ॐ चक्राय नमः पश्चिमनैर्ऋत्ययोर्मध्ये,

इस प्रकार **चतुर्थावरण** की पूजाकर गन्धादि उपचारों से देवी का पूजन कर चार पुष्पाञ्जलियाँ समर्पित करना चाहिए । तदनन्तर विधिवत् जप कार्य करना चाहिए ॥ ७४-७५ ॥

अब **काम्य प्रयोग** कहते हैं - लाल कमलों के होम से साधक राजा एवं राजमन्त्री को अपने वश में कर लेता है । पायस के होम से अनेक भोगों की प्राप्ति होती है तथा ताम्बूल के होम से स्त्रियाँ वश में हो जाती हैं ॥ ७६ ॥

अब **मधुमती का अन्य मन्त्र** कहते हैं - बिन्दु सहित दामोदर (ऐं) यह मधुमती का अन्य मन्त्र हैं । पूर्वोक्त रीति से इसका अनुष्ठान करना चाहिए । इस मन्त्र के अनुष्ठान में कुमारिका देवी का ध्यान तथा पूजन करना चाहिए । आधा करोड़ (अर्थात् ५० लाख) जप करने से साधक सभी विद्याओं में पारंगत हो जाता है । इस प्रकार नाना प्रकार के सुखों एवं भोगों को प्रदान करने वाला मधुमती के समान अन्य कोई मन्त्र नहीं है ॥ ७७-७८ ॥

इष्टप्राप्तिदः प्रमदामन्त्रः -

माया वह्न्यासनः शूरो मदेपावकसुन्दरी ।
षडर्णो मनुराख्यातो मुनिः शक्तिः समीरितः ॥ ७६ ॥
गायत्रीछन्द आख्यातं देवताप्रमदाभिधा ।
षडङ्गानि प्रकुर्वीत दीर्घषट्काढ्यमायया ॥ ८० ॥

ध्यान–जप–पूजादिविधानं च

केयूरमुख्याभरणाभिरामां
वराभये सन्दधतीं कराभ्याम् ।
संक्रन्दनाद्यामरसेव्यपादां
सत्काञ्चनाभां प्रमदां भजामि ॥ ८१ ॥

प्रमदामन्त्रमाह – **मायेति** । वह्न्यासनः शूरः । रेफयुतः पः प्र । मदे स्वरूपम् । पावकसुन्दरी स्वाहा । मन्त्रो यथा – ह्रीं प्रमदे स्वाहेति षडर्णः ॥ ७६–८० ॥ ध्यानमाह – **केयूरेति** । केयूरमंगदो वरो दक्षे । संक्रन्दनः इन्द्रः तदाद्यैर्देवैः सेव्यौ पादौ यस्याः ॥ आशाधवा दिक्पालाः ॥ ८१–८२ ॥ *॥ ८३–८४ ॥

विमर्श - इस मन्त्र का स्वरूप - (ऐं), एक अक्षर मात्र है ॥ ७७-७८ ॥

अब **प्रमदा देवी का मन्त्र** कहते हैं - माया (ह्रीं), वह्न्यासन शूर (प्र), फिर 'मदे' पद, तदनन्तर पावकसुन्दरी (स्वाहा), लगाने से ६ अक्षरों का प्रमदामन्त्र बनता है ॥ ७६ ॥

विमर्श - इस मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ह्रीं प्रमदे स्वाहा' ॥ ७६ ॥

इस मन्त्र के शक्ति ऋषि हैं, गायत्री छन्द तथा प्रमदा देवता हैं । षड्दीर्घ सहित माया मन्त्र से इसका षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ ८० ॥

विमर्श - विनियोग विधि - ॐ अस्य श्रीप्रमदामन्त्रस्य शक्तिर्ऋषिः गायत्री छन्दः प्रमदा देवतात्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे मन्त्र जपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास - ॐ ह्रां हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा,
ॐ ह्रूं शिखायै वषट्, ॐ ह्रैं कवचाय हुं,
ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ ह्रः अस्त्राय फट् ॥ ८० ॥

अब **प्रमदा देवी का ध्यान** कहते हैं -

केयूर आदि समस्त प्रधान आभूषणों से अलंकृत, अपने दोनों हाथों में वर और अभय मुद्रा धारण करने वाली, इन्द्रादि देवताओं से सेव्यमान पादों वाली, उत्तम सुवर्ण के समान देदीप्यमान कान्ति वाली प्रमदा देवी का मैं ध्यान करता हूँ ॥ ८१ ॥

रसलक्षं जपेन्मन्त्रं दशांशं जुहुयाद् घृतैः ।
पूर्वोक्ते पूजयेत् पीठे षडङ्गाशाधवायुधैः ॥ ८२ ॥
निर्जने कानने रात्रावयुतं नियुतं जपेत् ।
सहस्रं पायसान्नेन हुत्वा शयनमाचरेत् ॥ ८३ ॥
त्रिसप्तदिवसं यावदेवमाचरतो निशी ।
देवीदृग्गोचरीभूय दद्यादिष्टानि मन्त्रिणे ॥ ८४ ॥

प्रमोदादर्शनदः प्रमोदामन्त्रः

मायाप्रमोदे ठद्वन्द्वं षडर्णो मनुरुत्तमः ।
ऋष्याद्यर्चनपर्यन्त प्रमदावदुदीरितम् ॥ ८५ ॥
सरितो निर्जने तीरे मण्डले चन्दनैः कृते ।
जपहोमौ विधायोक्तौ प्रमोदां पश्यति ध्रुवम् ॥ ८६ ॥

प्रमोदामाह – **मायेति** । ठद्वयं स्वाहा । मन्त्रो यथा – ह्रीं प्रमोदे स्वाहेति षडर्णः ॥ ८५ ॥ *॥ ८६ ॥

अब **अनुष्ठान का प्रकार** कहते हैं -

उक्त मन्त्र का ६ लाख जप करे, उसका दशांश घी से होम करे, जप से पूर्व पूर्वोक्त पीठ पर देवी का पूजन करे तथा कर्णिका में षडङ्गपूजा, दिक्पालों की पूजा एवं आयुधों की पूजा करे । किसी निर्जन वन में रात्रि के समय नियमपूर्वक दश हजार जप करना चाहिए तथा पायस से एक हजार आहुतियाँ देने के बाद शयन करना चाहिए । २१ दिन तक लगातार रात्रि में ऐसा करने पर देवी साक्षात् दृष्टिगोचर होकर साधक की समस्त मनोकामनायें पूर्ण कर देती हैं ॥ ८२-८४ ॥

अब **प्रमोदा का मन्त्र एवं प्रयोग** कहते हैं -

माया (ह्रीं), फिर 'प्रमोदे' यह पद, इसके अन्त में ठद्वय (स्वाहा) लगाने से ६ अक्षरों का प्रमोदा का श्रेष्ठ मन्त्र निष्पन्न होता है । इस मन्त्र के ऋषि, छन्द, देवता तथा पूजा विधि प्रमदा के समान ही कहे गए हैं ॥ ८५ ॥

अनुष्ठान विधि - नदी के निर्जन तट पर चन्दन से मण्डल निर्माण करे । पूर्वोक्त रीति से पूजा, जप और होम करने से साधक निश्चित रूप से प्रमोदा देवी का दर्शन पा जाता है ॥ ८६ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ह्रीं प्रमोदे स्वाहा' ।

विनियोग एवं षडङ्गन्यास आदि के प्रयोग प्रमदा के मन्त्रों में देखिये । (द्र० ६. ७९-८४) ॥ ८५-८६ ॥

कारागृहमोक्षणक्षमो बन्दीमन्त्रः

तारो हिलियुगं बन्दीदेवी ङेन्ता नमोन्तकः ।
एकादशाक्षरो मन्त्रो भैरवत्रिष्टुभौ पुनः ॥ ८७ ॥
बन्दीमुन्यादयः प्रोक्ता एकेन द्वन्द्वशोऽङ्गकम् ।
विधाय संस्मरेद् बन्दीं रत्नसिंहासनस्थिताम् ॥ ८८ ॥

ध्यानजपपूजाप्रकारादिकथनम्

सतोयपाथोदसमानकान्तिम्
अम्भोजपीयूषकरीरहस्ताम् ।
सुराङ्गनासेवितपादपद्मां
भजामि बन्दीं भवबन्धमुक्तये ॥ ८६ ॥
लक्षयुग्मं जपेन्मन्त्री पायसान्नैर्दशांशतः ।
हुत्वा पूर्वोदिते पीठे पूजयेद् बन्धमुक्तये ॥ ६० ॥

बन्दीमन्त्रमाह – **तार** इति । ॐ हिलि हिलि बन्दीदेव्यै नम इत्येकादशाक्षरः ॥ ८७–८८ ॥ ध्यानमाह – **सतोयेति** । सजलमेघश्यामां पीयूषकरीरोऽमृतकुम्भः सदक्षे ॥ ८६ ॥ *॥ ६०–६२ ॥

अब **बन्दी मन्त्र का उद्धार** करते हैं –

तार (ॐ), फिर हिलियुग्म (हिलि हिलि), फिर 'बन्दी देवी' पद का चतुर्थ्यन्त (बन्दी देव्यै), तदनन्तर नमः लगाने से ग्यारह अक्षरों का बन्दी मन्त्र बनता है ॥ ८७ ॥

विमर्श – मन्त्र का स्वरूप – 'ॐ हिलि हिलि बन्दीदेव्यै नमः' ॥ ८७ ॥

इस मन्त्र के भैरव ऋषि हैं, त्रिष्टुप् छन्द है तथा बन्दी देवता हैं । मन्त्र के एक तदनन्तर २, २, २, २, २, अक्षरों से षडङ्गन्यास करना चाहिए । फिर रत्न सिंहासन पर विराजमान बन्दी देवी का ध्यान करना चाहिए ॥ ८७-८८ ॥

विनियोग – ॐ अस्य श्रीबन्दीमन्त्रस्य भैरवऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः बन्दीदेवता भवबन्धमुक्तये बन्दीमन्त्र जपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास – ॐ हृदयाय नमः, ॐ हिलि शिरसे स्वाहा,
ॐ हिलि शिखायै वषट्, ॐ बन्दी कवचाय हुम्,
ॐ देव्यै नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ नमः अस्त्राय फट् ॥ ८७-८८ ॥

अब **बन्दी देवी का ध्यान** कहते हैं –

जलधर मेघ के समान कान्ति वाली, हाथों में कमल एवं अमृत कलश लिए हुये एवं देवाङ्गनाओं से सेव्यमान चरणों वाली बन्दी देवी का मैं बन्धन से मुक्ति पाने हेतु ध्यान करता हूँ ॥ ८६ ॥

अङ्गपूजाकेसरेषु शक्तयः पत्रमध्यगाः ।
कालीताराभगवतीकुब्जाह्वा शीतलापि च ॥ ६१ ॥
त्रिपुरामातृकालक्ष्मीर्दिगीशा आयुधान्यपि ।
एवमाराधिता बन्दी प्रयच्छेदीप्सितं नृणाम् ॥ ६२ ॥
एकविंशति घस्रान्तमयुतं प्रत्यहं जपेत् ।
ब्रह्मचर्यरतो मन्त्रीगणेशार्चनपूर्वकम् ॥ ६३ ॥
कारागृहनिबद्धस्य मोक्ष एवं कृते भवेत् ।

प्रयोगान्तरकथनम्

चतुरस्रे ठकारान्तरपूपोपरि संलिखेत् ॥ ६४ ॥

घस्रो दिनम् ॥ ६३ ॥ प्रयोगान्तरमाह – **चतुरस्र** इति । अपूपोपरि घृतेन

अब **पुरश्चरण विधि** कहते हैं –

उपर्युक्त बन्दी मन्त्र का दो लाख जप तथा तद्दशांश पायस से होम करना चाहिए । सभी प्रकार के बन्धनों से मुक्ति पाने के लिए पूर्वोक्त पीठ पर देवी का पूजन करना चाहिए ॥ ६० ॥

१. काली, २. तारा, ३. भगवती, ४. कुब्जा, ५. शीतला, ६. त्रिपुरा, ७. मातृका एवं ८. लक्ष्मी ये आठ बन्दी देवी की शक्तियाँ हैं । कमल के केशरों में अंगपूजा तथा कमलदलों के मध्य शक्तियों का पूजना करना चाहिए । आठ शक्तियों की पूजा के पश्चात् दिक्पालों एवं उनके आयुधों का पूजन करना चाहिए । इस प्रकार की आराधना से प्रसन्न होकर बन्दी देवी मनुष्यों को अभीष्ट फल देती हैं ॥ ६०-६१ ॥

साधक को ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुये २१ दिन पर्यन्त गणेश पूजन पूर्वक प्रति दिन दश हजार मन्त्रों का जप करना चाहिए । ऐसा करने से कारागार में बन्दी व्यक्ति कारागार से मुक्त हो जाता है ॥ ६३-६४ ॥

विमर्श – प्रयोग विधि – (अनुष्ठान के लिए ६. १९-३७ श्लोक द्रष्टव्य है ।) अनुष्ठान के प्रारम्भ में गणपति का सविधि पूजन करे । फिर ६. ८९ श्लोकानुसार देवी का ध्यान कर मानसोपचारों से उनकी पूजा करे । पुनः सुसम्पन्न मण्डल रचना कर अर्घ स्थापित करे । तीर्थाभिमिश्रित अर्घ्य के जल को प्रोक्षणी में डाल देवे । फिर उस जल से पूजन सामग्री का प्रोक्षण करे । तदनन्तर पीठ पूजा कर उस पर षट्कोण, अष्टदल एवं भूपुर युक्त यन्त्र का निर्माण कर, उसमें देवी का ध्यान कर, पुनः उनका पूजन करे । तदनन्तर षडङ्गपूजा सहित देवी के आवरणों की पूजा करे ।

प्रथमावरण में षट्कोण में –

ॐ हृदयाय नमः, ॐ हिलि शिरसे स्वाहा, ॐ हिलि शिखायै वषट्,
ॐ बन्दी कवचाय हुम्, ॐ देव्यै नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ नमः अस्त्राय फट् ।

साध्यनाम घृतेनैव मायाबीजं च दिक्ष्वपि।
मनुनाष्टादशार्णेन चतुरस्रं प्रवेष्टयेत् ॥ ६५॥

अष्टादशवर्णात्मकः स एव मन्त्रः

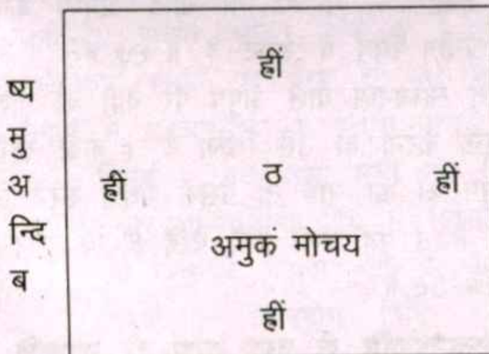
वाग्बीजं भुवनेशानी रमाबन्दि च केशवः।
मुष्यबन्धं ततो मोक्षं कुरु युग्मं च ठद्वयम् ॥ ६६॥

चतुरस्रान्तर्वर्तिठकारं विलिख्य तत्रामुकं मोच्येति लिखेत् । दिक्षु मायाबीजं च अष्टादशार्णमन्त्रेण तं वेष्टयित्वा तत्र देवीमावाह्याभ्यर्च्य कारागृहस्थायाऽपूपं दद्यात् । स च तज्जग्ध्वा बन्धनान् मुच्यते ॥ ६४–६५ ॥ अष्टादशार्णमाह – **वागिति** । केशवः अकारः । ठद्वये स्वाहा । स्वरूपमन्यत् । स्पष्टं च । यथा –

यहाँ तक प्रथमावरण की पूजा कही गई । इसके बाद **द्वितीयावरण** की पूजा हेतु दलों के मध्य में पूर्वादि दिशाओं के क्रम से काली आदि शक्तियों का पूजन करना चाहिए । यथा - ॐ काल्यै नमः, ॐ तारायै नमः,
ॐ भगवत्यै नमः, ॐ कुब्जायै नमः, ॐ शीतलायै नमः,
ॐ त्रिपुरायै नमः, ॐ मातृकायै नमः, ॐ लक्ष्म्यै नमः ।

फिर भूपुर के भीतर पूर्वोक्त रीति से पूर्वादि दिशाओं के क्रम से पूर्वोक्त इन्द्रादि दश दिक्पालों की पूजा कर **तृतीयावरण** की पूजा सम्पन्न करे । फिर बाहर पूर्वादि दिशाओं के क्रम से पूर्वोक्त इन्द्रादि दश दिक्पालों के वज्रादि आयुधों की पूजा कर **चतुर्थावरण** की पूजा सम्पन्न कर जप करना चाहिए । जप की समाप्ति हो जाने पर पायस से दशांश होम करना चाहिए ॥ ६०-६४ ॥

बन्धनमोक्षकरं यन्त्रम्



अब **कारागार से बन्दियों को छुड़ाने का एक अन्य प्रयोग** कहते हैं -

अपूप (माल पूआ) पर घी से चतुरस्र के भीतर ठकार लिखकर जिसे छुड़ाना हो उस साध्य का नाम लिखकर (अमुकं) मोचय लिखना चाहिए। फिर चतुरस्त्र के चारों दिशाओं में माया बीज (ह्रीं) लिखकर उसे अष्टादशाक्षर मन्त्र से (प्रतिलोम क्रम से) परिवेष्टित करे ॥ ६५ ॥

वसुचन्द्रार्णमन्त्रोऽयं क्षिप्रं बन्धविमोक्षदम् ।
तस्मिन्नपूपे सम्पूज्य बन्दीमावरणान्विताम् ॥ ६७ ॥
कारानिकेतनस्थाय मित्राय प्रददीत तम् ।
सशुद्धो वाग्यतो भूत्वा भक्षयेत्तमपूपकम् ॥ ६८ ॥
तस्मिन्सम्भक्षिते बद्धो मुच्यते बन्धनाद्द्रुतम् ।
एवं सम्प्रोदिता बन्दीस्मरणाद् बन्धमुक्तिदा ॥ ६९ ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचिते मन्त्रमहोदधौ छिन्नमस्तादिमन्त्रकथनं नाम षष्ठस्तरङ्गः ॥ ६ ॥



ऐं ह्रीं श्रीं बन्दि अमुष्य बन्धमोक्षं कुरु कुरु स्वाहेति । वसुचन्द्रार्णो-ऽष्टादशार्णः ॥ ६६–६७ ॥ *॥ ६८–६९ ॥

इति श्रीमन्महीधरविरचितायां मन्त्रमहोदधिव्याख्यायां नौकायां छिन्नमस्तादिकथनं नाम षष्ठस्तरङ्गः ॥ ६ ॥



वाग्बीज (ऐं), भुवनेशानी (ह्रीं), रमा (श्रीं), फिर 'बन्दी' पद, उसके बाद केशव (अ), फिर 'मुष्य बन्ध', तदनन्तर 'मोक्षं' फिर दो बार कुरु (कुरु कुरु), फिर ठद्वय (स्वाहा) लगाने से अष्टादशाक्षर मन्त्र निष्पन्न होता है, जो बन्दियों को शीघ्र मोक्ष देने वाला है ॥ ६६-६७ ॥

विमर्श - अष्टादशाक्षर मन्त्र का उद्धार - 'ऐं ह्रीं श्रीं बन्दि अमुष्य बन्ध मोक्षं कुरु कुरु स्वाहा' (१८) । इसका प्रयोग चित्र में स्पष्ट है ॥ ६७ ॥

इस प्रकार १८ अक्षरों से परिवेष्टित साध्यनाम वाले अपूप पर देवी की पूजा कर जिस अपने मित्र को कारागार से मुक्त करंना हो उसे खिला दे । बन्दी रहने वाला साध्य शुद्ध होकर मौन हो उस अपूप को खा जावे तो उसके भक्षण करने से वह शीघ्र ही कारागार से मुक्त हो जाता है । यह बन्दी देवी ऐसी हैं कि स्मरण मात्र से बन्धन से मुक्त कर देती हैं ॥ ६७-६९ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमन्महीधर विरचित मन्त्रमहोदधि के षष्ठ तरङ्ग की महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत 'अरित्र' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ ६ ॥



अथ सप्तमः तरङ्गः

अथ सर्वेष्टसंसिद्धये प्रवक्ष्ये वटयक्षिणीम् ।

सर्वेष्टसिद्धिदोवटयक्षिणीमन्त्रः

पद्मनाभो वियद्वायूझिण्टीशस्थौ सदृग्वियत् ॥ १ ॥
यक्षि यक्षि महायक्षि वटतोयं सनासिकम् ।
क्षनिवासिनि शीघ्रं मे सर्वसौख्यं कुरुद्वयम् ॥ २ ॥
स्वाहा द्वात्रिंशदर्णोऽयं मन्त्रोऽखिलसमृद्धिदः ।
ऋषिः [1]स्याद्विश्रवाश्छन्दोऽनुष्टुब्देवीं तु यक्षिणी ॥ ३ ॥

---

* नौका *

अथ वटयक्षिणीमाह – **पद्मनाभ** इति । पद्मनाभ ए । झिंटीशस्थौ वियद्वायू एस्थितौ हकारयकारौ ह्ये । सदृक् वियत् हि ॥ १ ॥ यक्षीत्यादि स्वरूपम् । सनासिकं तोयम् ऋयुतो वः । वृक्षेत्यादि स्वरूपं स्पष्टम् । यथा – एह्येहि यक्षियक्षिमहायक्षिवटवृक्षनिवासिनि शीघ्रं मे सर्वसौख्यं कुरु कुरु

---

* अरित्र *

अब **सभी मनोरथों की सिद्धि के लिए वटयक्षिणी मन्त्र** कहता हूँ -

पद्मनाभ (ए) झिण्टीशस्थ (ए) वियद् और वायु ह्य (ह्ये) सदृक् (इकारसहित) वियत् (ह) अर्थात् हि तदनन्तर 'यक्षि यक्षि महायक्षि वट' पद फिर सनासिक ऋकार सहित तोय व् (अर्थात् वृ) तदनन्तर 'क्षनिवासिनी शीघ्रं मे सर्वसौख्यं' इतना पद फिर दो बार कुरु (कुरु कुरु) इसके अन्त में 'स्वाहा' लगाने से सर्वसमृद्धिदायक बत्तीस अक्षरों का मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ १-३ ॥

विमर्श - वटयक्षिणी मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'एह्येहि यक्षि यक्षि महायक्षि वटवृक्षनिवासिनी शीघ्रं मे सर्वसौख्यं कुरु कुरु स्वाहा' (३२) ॥ १-३ ॥

इस मन्त्र के विश्रवा ऋषि हैं, अनुष्टुप छन्द है, तथा यक्षिणी देवता हैं ॥ ३॥

विमर्श - विनियोग विधि - 'ॐ अस्य श्रीवटयक्षिणीमन्त्रस्य विश्रवा-ऋषिरनुष्टुप्छन्दः यक्षिणीदेवतात्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थं जपे विनियोगः' ॥ १-३ ॥

मन्त्र के क्रमशः ३, ४, ४, ८, ७, एवं ६ अक्षरों से अङ्गन्यास करना

---

१. अस्य श्रीवटयक्षिणीमन्त्रस्य विश्रवाऋषिरनुष्टुप्छन्द् यक्षिणीदेवताममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यासोऽङ्गन्यासश्च

वह्निभिः श्रुतिभिर्वेदैर्वसुभिः सप्तभी रसैः ।
प्रकुर्वीत षडङ्गानि मन्त्रवर्णान्न्यसेत्तनौ ॥ ४ ॥
मस्तके नेत्रयोर्वक्त्रे नासाकर्णांसयुग्मतः ।
स्तनयोः पार्श्वयोर्द्वन्द्वे हृदि नाभौ शिवोदरे ॥ ५ ॥
कट्यूरूनाभिर्जङ्घासु जानुनोर्मणिबन्धयोः ।
हस्तयोर्मूर्ध्नि विन्यस्य ध्यायेद् देवीं वटस्थिताम् ॥ ६ ॥

ध्यानजपहोमावरणदेवतादिकथनम्

अरुणचन्दनवस्त्रविभूषितां
सजलतोयतुल्यतनूरुचम् ।

स्वाहा । द्वात्रिंशदर्णः ॥ २–४ ॥ वर्णन्यासमाह – **मस्तक** इति । नेत्रयोर्द्वौ । नासाकर्णांसस्तनपार्श्वकट्यूरूजङ्घाजानुमणिबन्धहस्तेषु द्वौ द्वौ । अन्यत्रैकः । शिवं लिङ्गम् ॥ ५–६ ॥ ध्यानमाह – **अरुणेति** । क्रमुकं पूगीफलं दक्षे ॥ ७ ॥

चाहिए । फिर मस्तक, दोनों नेत्र, मुख, नासिकाद्वय, दोनों कान, दोनों कन्धे, दोनों स्तन, दोनों पार्श्वभाग, हृदय-नाभि, लिङ्ग, उदर, कटि, ऊरु, नाभि, दोनों जंघा, दोनों जानु, दोनों मणिबन्ध, दोनों हाथ तथा शिर में मन्त्र के प्रत्येक वर्णों से न्यास कर वटवृक्ष में स्थित देवी का ध्यान करना चाहिए ॥ ४-६ ॥

विमर्श – प्रयोग विधि - 'एह्येहि हृदयाय नमः, यक्षि यक्षि शिरसे स्वाहा, महायक्षि शिखायै वषट्, वटवृक्षनिवासिनि कवचाय हुं, शीघ्रं में सर्वसौख्यं नेत्रत्रयाय वौषट्, कुरु कुरु स्वाहा अस्त्राय फट् ।

सर्वाङ्गन्यास - ॐ ऐं नमः मस्तके, ह्रीं नमः दक्षनेत्रे, हिं नमः वामनेत्रे,
यं नमः मुखे, क्षिं नमः दक्षनासायाम्, यं नमः वामनासायाम्,
क्षिं नमः दक्षकर्णे, में नमः वामकर्णे, हां नमः दक्षांसे,
यं नमः वामांसे, क्षि नमः दक्षिणस्तने वं नमः वामस्तने,
टं नमः दक्षिणपार्श्वे, वृं नमः वामपार्श्वे, क्षं नमः हृदि,
निं नमः नाभौ, वां नमः लिङ्गे, सिं नमः उदरे,
निं नमः दक्षिणकट्याम्, शीं नमः वामकट्याम्, घ्रं नमः दक्षिणउरौ,
में नमः वामउरौ, सं नमः नाभौ, र्वं नमः दक्षिणजंघायाम्,
सौं नमः वामजंघायाम्, ख्यं नमः दक्षिणजानौ, कुं नमः वामजानौ,
रुं नमः दक्षिणमणिबन्धे, कुं नमः वाममणिबन्धे, रुं नमः दक्षिणहस्ते
स्वां नमः वामहस्ते हां नमः शिरसि ॥ ४-६ ॥

अब **देवी का ध्यान** कहते हैं - लाल चन्दन एवं लाल वस्त्रों से विभूषित

स्मरकुरङ्गदृशं वटयक्षिणीं
क्रमुकनागलतादलयुक्कराम् ॥ ७ ॥
लक्षद्वयं जपेन्मन्त्रं बन्धूकैस्तद्दशांशतः ।
हुत्वा पीठे यजेद्देवीमुच्यन्ते पीठशक्तयः ॥ ८ ॥
कामदामानदानक्तामधुरा मधुरानना ।
नर्मदाभोगदानन्दाप्राणदा पीठशक्तयः ॥ ९ ॥
मनोहराय यक्षिण्या योगपीठाय[1] हृन्मनुः ।
पीठस्योक्तस्तत्र देवीं पूजयेद्वटयक्षिणीम् ॥ १० ॥

शरीर वाली, विशाल जलधर बादल के समान कान्ति वाली, मदमत्त हरिणी के समान चञ्चल नेत्रों वाली, अपने दो हाथों में पूगीफल एवं नागवल्ली दल लिए हुये वटयक्षिणी का मैं ध्यान करता हूँ ॥ ७ ॥

इस मन्त्र का २ लाख जप करना चाहिए तथा बन्धूक पुष्पों से उसका दशांश होम करना चाहिए । अब पीठशक्तियों का वर्णन करता हूँ ॥ ८ ॥

१. कामदा, २. मानदा, ३. नक्ता, ४. मधुरा, ५. मधुरानना, ६. नर्मदा, ७. भोगदा, ८. नन्दा और ९. प्राणदा ये पीठ की नव शक्तियाँ कहीं गई हैं । 'मनोहराय यक्षिणी योगपीठाय नमः' यह पीठ मन्त्र है, इसी पूजित पीठ पर वटयक्षिणी का पूजन करना चाहिए ॥ ९-१० ॥

विमर्श - प्रयोग विधि - पूर्वोक्त श्लोक (७) के अनुसार देवी का ध्यान कर मानसोपचार से पूजन करने के अनन्तर अर्घ्यपत्र इस प्रकार स्थापित करना चाहिए । यथा - 'फट्' से अर्घ्यपात्र प्रक्षालित कर ॐ से, जल, गन्ध, पुष्पादि डाल कर 'गंगे च यमुने चैव' इस मन्त्र से उस जल में तीर्थ का आवाहन करना चाहिए । तदनन्तर धेनुमुद्रा प्रदर्शित कर अर्घ्यपात्र पर हाथ रखकर मूल मन्त्र का दश बार जप करना चाहिए फिर अर्घ्यपात्र से कुछ जल प्रोक्षणी पात्र में डालकर मूलमन्त्र पढकर ३ बार अपने शरीर का तथा पूजन सामग्री का प्रोक्षण करना चाहिए । तदनन्तर वृत्ताकार कर्णिका, उसके बाद अष्टदल कमल, तदनन्तर भूपुर इस प्रकार का यन्त्र बनाकर यक्षिणी देवी का पूजन करना चाहिए ।

इसके बाद **पीठ पूजा** इस प्रकार करनी चाहिए - ॐ आधार शक्तये नमः,
ॐ प्रकृतये नमः, ॐ कूर्माय नमः, ॐ अनन्ताय नमः,
ॐ पृथिव्यै नमः, ॐ क्षीरसमुद्राय नमः, ॐ रत्नद्वीपाय नमः,
ॐ कल्पवृक्षाय नमः, ॐ स्वर्णसिंहासनाय नमः, ॐ आनन्दकन्दाय नमः,
ॐ संविन्नालाय नमः, ॐ सर्वतत्त्वात्मकपद्माय नमः, ॐ सं सत्त्वाय नमः,
ॐ रं रजसे नमः, ॐ तं तमसे नमः, ॐ आं आत्मने नमः,
ॐ अं अन्तरात्मने नमः, ॐ पं परमात्मने नमः, ॐ ह्रीं ज्ञानात्मने नमः ।

---

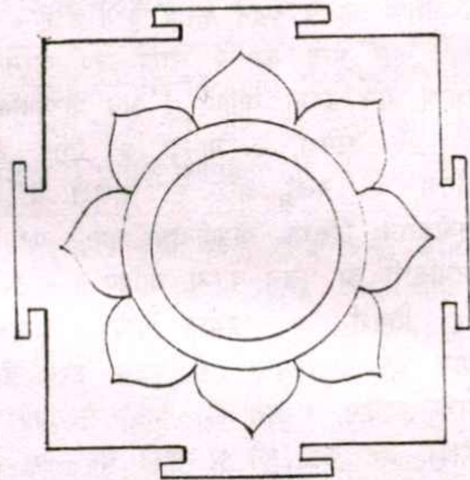
१. मनोहराय यक्षिणीयोगपीठाय नमः ।

कर्णिकायां षडङ्गानि पत्रेष्वेता यजेत्पुनः ।
सुनन्दाचन्द्रिकाहासा सुलापामदविह्वला ॥ ११ ॥
आमोदा च प्रमोदापि वसुदेत्यष्टशक्तयः ।
इन्द्रादीनथ वज्रादीन् सम्पूज्य लभते सुखम् ॥ १२ ॥

इसके बाद पूर्वादिदिशाओं के क्रम से नव शक्तियों की पूजा करनी चाहिए । यथा - ॐ कामदायै नमः, ॐ मानदायै नमः, ॐ नक्तायै नमः, ॐ मधुरायै नमः, ॐ मधुराननायै नमः, ॐ नर्मदायै नमः, ॐ भोगदायै नमः, ॐ नन्दायै नमः, ॐ प्राणदायै नमः ।

तदनन्तर 'ॐ मनोहराय यक्षिणी योगपीठाय नमः', इस मन्त्र से पीठ पूजा कर, देवी के यन्त्र में देवी की कल्पना कर श्लोक ७ में वर्णित देवी के स्वरूप का ध्यान कर, पूजोपचार से उनका पूजन कर, 'आज्ञापय आवरणं ते पूजयामि' इस मन्त्र से आज्ञा ले आवरण पूजन करनी चाहिए ॥ ६-१० ॥

वटयक्षिणीपूजन यन्त्रम्



अब **आवरण पूजा का विधान** करते हैं -

कर्णिका में षडङ्गपूजा तथा पत्रों में १. सुनन्दा, २. चन्द्रिका. ३. हासा, ४. सुलापा, ५. मदविस्वला, ६. आमोदा, ७. प्रमोदा एवं ८. वसुदा इन आठ शक्तियों का पूजन करना चाहिए । इसके बाद भूपुर में इन्द्रादि दश दिक्पालों का तथा भूपुर से बाहर उनके वज्रादि आयुधों का पूजन करने से साधक सुख प्राप्त करता है ॥ ११-१२ ॥

विमर्श - आवरण पूजा प्रयोग - प्रथमावरण में वृत्ताकार कर्णिका में
एह्येहि हृदयाय नमः, यक्षियक्षि शिरसे स्वाहा,
महायक्षि शिखायै वषट् वटवृक्षनिवासिनि कवचाय हुम्
शीघ्रं मे सर्वसौख्यं नेत्रत्रयाय वौषट् कुरु कुरु स्वाहा अस्त्राय फट् ।

द्वितीयावरण में अष्टदलों में - ॐ सुनन्दायै नमः, ॐ चन्द्रिकायै नमः,
ॐ हासायै नमः, ॐ सुलापायै नमः, ॐ मदविह्वलायै नमः,
ॐ आमोदायै नमः, ॐ प्रमोदायै नमः, ॐ वसुदायै नमः,

इसके बाद **तृतीयावरण** में भूपुर के भीतर पूर्वादि दिशाओं के क्रम से
ॐ इन्द्राय नमः, पूर्वे, ॐ अग्नये नमः, आग्नेये,
ॐ यमाय नमः, दक्षिणे, ॐ निर्ऋतये नमः, नैर्ऋत्ये,

एवमाराधितो मन्त्रः प्रयोगेषु क्षमो भवेत्।

देव्याः प्रत्यक्षदर्शनादिफलकथनम्

निर्मनुष्ये वने गत्वा न्यग्रोधाधस्तले जपेत् ॥ १३ ॥
प्रतिघस्रं तमस्विन्यां सहस्रं नियतेन्द्रियः।
सप्तमे दिवसे प्राप्ते कृत्वा चन्दनमण्डलम् ॥ १४ ॥
तत्राज्यदीपं कृत्वास्मिन्पूजयेद्वटयक्षिणीम्।
तदग्रे प्रजपेन्मन्त्रमानिशीथं समाहितः ॥ १५ ॥
शृणोति नूपुरारावं मन्त्रीगीतध्वनिं ततः।
श्रुत्वैव प्रजपेन्मन्त्रं वीतत्रासश्च तां स्मरेत् ॥ १६ ॥
ततः प्रत्यक्षतो देवीमीक्षते सुरतार्थिनीम्।
तत्कामपूरणात् सा तु ददातीष्टानि मन्त्रिणे ॥ १७ ॥

ॐ वरुणाय नमः, पश्चिमे, ॐ वायवे नमः, वायव्ये,
ॐ सोमाय नमः, उत्तरे ॐ ईशानाय नमः, ऐशान्ये,
ॐ ब्रह्मणे नमः, पूर्वेशानयोर्मध्ये, ॐ अनन्ताय नमः, पश्चिमनैर्ऋत्ययोर्मध्ये,

इसके बाद **चतुर्थावरण** में भूपुर के बाहर वज्रादि आयुधों का पूजन करना चाहिए -

ॐ वज्राय नमः, पूर्वे, ॐ शक्तये नमः, आग्नेये,
ॐ दण्डाय नमः, दक्षिणे, ॐ खड्गाय नमः नैर्ऋत्ये,
ॐ पाशाय नमः पश्चिमे, ॐ अकुंशाय नमः वायव्ये,
ॐ गदायै नमः उत्तरे, ॐ त्रिशूलाय नमः ऐशान्ये,
ॐ पद्माय नमः पूर्वेशानयोर्मध्ये,
ॐ चक्राय नमः निर्ऋतिपश्चिमयोर्मध्ये।

इस प्रकार आवरण पूजा कर पञ्चोपचारों से देवी का पूजन कर चार पुष्पाञ्जलि समर्पित कर विधिवत् जप प्रारम्भ करना चाहिए ॥ ११-१२ ॥

इस प्रकार आराधना करने से साधक काम्य प्रयोग का अधिकारी हो जाता है । किसी निर्जन वन में जाकर वट वृक्ष के नीचे प्रतिदिन रात्रि में संयम पूर्वक जप करना चाहिए । तदनन्तर सातवें दिन चन्दन से मण्डल बनाकर उसमें घी का दीपक प्रज्वलित कर मण्डल में वटयक्षिणी का पूजन करना चाहिए । अत्यन्त सावधानी से मध्य रात्रिपर्यन्त उसके सामने जप करते रहने से साधक को नूपुर की ध्वनि सुनाई पड़ने लगती है । शब्द को सुनते हुये साधक को देवी का स्मरण करते हुये जप में निर्भय होकर लगे रहना चाहिए । ऐसा करते रहने से कुछ क्षणों के बाद मदविह्वला यक्षिणी देवी रति की इच्छा करती हुई साधक के सामने प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ने लगती है । साधक द्वारा उसकी

किं बहूक्तेन सर्वेष्टपूरणीवटयक्षिणी।

सर्वसौख्यप्रदोऽपरो यक्षिणीमन्त्रः

पद्माद्वयं यक्षिणीति सचन्द्रं गगनत्रयम् ॥ १८ ॥
वैश्वानरप्रियान्तोऽयं दशवर्णो[1] मनुर्मतः।
ऋषिः पूर्वोदितश्छन्दः पंक्तिर्देवो[2] तु यक्षिणी ॥ १९ ॥
चन्द्रैकत्रित्रियुग्मेन सर्वेणाङ्गक्रिया मता।
स्मरेच्चम्पककान्तारे रत्नसिंहासनस्थिताम् ॥ २० ॥
सुवर्णप्रभां रत्नभूषाभिरामां
जपापुष्पसच्छायवासो युगाढ्याम्।
चतुर्दिक्षु दासीगणैः सेविताङ्घ्रिं
भजे सर्वसौख्यप्रदां यक्षिणीं ताम् ॥ २१ ॥

पद्मेति । पद्माद्वयं श्रीं श्रीं । यक्षिणी स्वरूपम् । सचन्द्रं गगनत्रयं हं हं हं ॥ १८ ॥ वैश्वानरप्रिया स्वाहा ॥ १९ ॥ चम्पकानां कान्तारे वने ॥ २० ॥

कामना पूर्ति किये जाने पर वह उसे वर प्रदान करती है इस विषय में बहुत क्या कहें, वह साधकों के सारे मनोरथों को पूर्ण कर देती हैं ॥ १३-१७ ॥

अब **वटयक्षिणी का अन्य मन्त्र** कहते हैं -

पद्माद्वय (श्रीं श्रीं) फिर 'यक्षिणी' पद फिर सचन्द्र गगनत्रय (हं हं हं) इसके बाद वैश्वानर प्रिया (स्वाहा) लगाने से वटयक्षिणी का दूसरा दशाक्षर मन्त्र निष्पन्न हो जाता है ॥ १८-१९ ॥

विमर्श - वटयक्षिणी देवी के इस **दशाक्षर मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - 'श्रीं श्रीं यक्षिणी हं हं हं स्वाहा' ।

इस मन्त्र के पूर्वोक्त विश्रवा ऋषि हैं, पंक्ति छन्द है तथा यक्षिणी देवता हैं ॥ १९ ॥ मन्त्र के १, १, ३, ३ और २ अक्षरों से न्यास करे तथा समस्त मन्त्राक्षरों से षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ २० ॥

अब **यक्षिणी देवी का ध्यान** कहते हैं -

चम्पक वन में रत्नसिंहासन पर विराजमान सुवर्ण के समान कान्तिवाली, रत्ननिर्मित आभूषणों से सुशोभित जपा, कुसुम के समान लाल वर्ण के युगल वस्त्र धारण करने वाली दासियों द्वारा चारों दिशाओं में सेव्यमान चरणयुगलों वाली एवं अपने साधकों को समस्त सुख प्रदान करने वाली यक्षिणी देवी का ध्यान करता हूँ ॥ २०-२१ ॥

---

१. श्रीं श्रीं यक्षिणी हं हं हं स्वाहेति दशार्णः ।

२. अस्य वटयक्षिणीमन्त्रस्य विश्रवाऋषिः पंक्तिश्छन्दः यक्षिणीदेवता ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षं जपापुष्पैर्दशांशतः।
जुहुयात् पूर्ववत् पीठे पूर्वोक्ते प्रयजेदिमाम् ॥ २२ ॥

भूमिगतनिधिदर्शनदो मेखलायक्षिणीमन्त्रः

क्रोधीशवह्नीमन्विन्दुयुक्तौ मदनमेखले[1]।
हृदयाग्निप्रियान्तोऽयं ताराद्यो द्वादशाक्षरः ॥ २३ ॥
अस्येज्यापूर्ववत्सर्वा मेखलायक्षिणी त्वियम्।
चतुर्दशाहपर्यन्तं मधूकावनिरुट्तले ॥ २४ ॥
प्रजपेदयुतं नित्यं सहस्रं हवनं चरेत्।
मधूकपुष्पैर्मध्वक्तैस्तत्काष्ठैश्च हुताशने ॥ २५ ॥

मन्त्रान्तरमाह – **क्रोधीशेति** । मन्बिन्दुयुक्तौ । औ बिन्दुयुक्तौ क्रोधीशवह्नीकर तेन क्रौं । मदनमेखले स्वरूपम् । हृदयं नमः । अग्निप्रिया स्वाहा ॥ २३ ॥ मधूकावनिरुट्तले । मधूकवृक्षाधस्तात् ॥ २४–२६ ॥

इस प्रकार ध्यान कर उक्त दशाक्षर मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिए । फिर जपा कुसुम से दशांश होम करना चाहिए । पुनः पूर्वोक्त पीठ पर देवी का पूजन करना चाहिए ॥ २२ ॥

विमर्श - प्रयोग विधि - 'ॐ अस्य श्रीवटयक्षिणीमन्त्रस्य विश्रवाऋषिः, पक्तिंश्छन्दः वटयक्षिणीदेवता आत्मनोऽभीष्टसिद्धये मन्त्रजपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास - श्रीं हृदयाय नमः, श्रीं शिरसे स्वाहा, यक्षिणी शिखायै वषट् हं हं हं कवचाय हुम्, स्वाहा नेत्रत्रयाय वौषट् श्रीं श्रीं श्रीं यक्षिणी हं हं हं स्वाहा अस्त्राय फट् । आगे की पूजा विधि ७-८-१२ के अनुसार करनी चाहिए ॥ २१-२२ ॥

अब **मेखला यक्षिणी मन्त्र** कहते हैं -

औ एवं बिन्दु युक्त क्रोधीश एवं वह्नि (क्रौं) तदनन्तर 'मदनमेखले' यह पद फिर हृद् (नमः) अन्त में अग्निप्रिया (स्वाहा) तथा आदि में तार (ॐ) लगाने से १२ अक्षरों का मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ २३ ॥

विमर्श - मेखलायक्षिणी मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ॐ क्रौं मदन मेखले नमः स्वाहा' ॥ २३ ॥

यह **मेखलायक्षिणी मन्त्र** है । इसके भी पूजन का विधान पूर्ववत् है ।

महुआ के वृक्ष के नीचे निरन्तर १४ दिन पर्यन्त १० हजार की संख्या में प्रतिदिन के क्रम से जप करना चाहिए तथा महुए की लकडी से प्रज्वलित अग्नि में मधुमिश्रित महुये के फूलों की एक हजार आहुतियाँ देनी चाहिए । इस प्रकार

---

१. ॐ क्रौं मदनमेखले नमः स्वाहेति द्वादशार्णः ।

सन्तुष्टैवं कृते देवी प्रयच्छेदञ्जनं शुभम् ।
येनाक्तनयनो मन्त्री निधिं पश्येद्धरागतम् ॥ २६ ॥

रोगनाशको विशालायक्षिणीमन्त्रः

प्रणवो वाग्विशाले च माया पद्मा मनोभवः ।
ठद्वयान्तो दशार्णोऽयं[1] विशालायक्षिणी मनुः ॥ २७ ॥
मुन्यादि पूजापर्यन्तं पूर्ववत्समुदीरितम् ।
चिन्तातरोरधःस्थित्वा शुचिर्लक्षं जपेन्मनुः ॥ २८ ॥
शतपत्रैर्दशांशेन जुहुयात्तोषिता ततः ।
रसं ददाति येनासौ नीरोगायुरवाप्नुयात् ॥ २६ ॥

वाराहीमन्त्र शत्रुनिग्रहकरः

वाक्चन्द्रशेखरौ शार्ङ्गी पिनाकीशौ मनुस्थितौ ।

मन्त्रान्तरमाह – **प्रणव** इति । वाक् ऐं । विशाले स्वरूपं । माया ह्रीं । पद्मा श्रीं। मनोभवः क्लीं । ठद्वयं स्वाहा ॥ २७–२६ ॥ वाराहीमाह – **वागिति** ।

जब साधक यक्षिणी को संतुष्ट करता है तब देवी एक दिव्य अञ्जन साधक को प्रदान करती हैं, जिसे आँखों में लगाने से जमीन में गड़े हुये सारे खजाने निश्चित रूप से दिखाई पडने लगते हैं ॥ २४-२६ ॥

अब **विशालायक्षिणी मन्त्र** कहते है -

प्रणव (ॐ), वाग (ऐं), फिर 'विंशाले' पद, फिर माया (ह्र), पद्मा (श्रीं), मनोरथ (क्लीं), तदनन्तर ठद्वय (स्वाहा) लगाने से १० अक्षरों का विशालायक्षिणी मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ २७ ॥

विमर्श - **दशाक्षर विशालायक्षिणी मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - 'ॐ ऐं विशाले ह्रीं श्रीं क्लीं स्वाहा' ॥ २७ ॥

अब **प्रयोग विधि** कहते हैं - इस मन्त्र के विनियोग से लेकर पूजा पर्यन्त समस्त विधान पूर्वोक्त समझना चाहिए ॥ २८ ॥

चिञ्चा नामक वृक्ष के नीचे बैठकर पवित्रता पूर्वक नियमतः एक लाख जप करना चाहिए । तदनन्तर शतपत्र से दशांश होम करना चाहिए । ऐसा करने से संतुष्ट हुई देवी रस प्रदान करती हैं जिसके पीने से साधक निरोग रह कर आयुष्मान् होता है ॥ २८-२६ ॥

अब **वार्त्ताली (वाराही अथवा शत्रुघाती) मन्त्र** कहते हैं -

वाक् (ऐं) मनुस्थितौ चन्द्रशेखरौ (ओ बिन्दुयुतौ) शार्ङ्गी पिनाकीश (ग्ल)

---

१. ॐ ऐं विशाले ह्रीं श्रीं क्लीं स्वाहेति दशार्णः ।

लाङ्गलित्रितयं[1] सेन्दुवर्मदीर्घं शुचिप्रिया ॥ ३० ॥
वस्वक्षरमनोः शत्रुघातिनः कपिलो मुनिः[2] ।
छन्दोऽनुष्टुप् च वाराहीवार्तालीदेवतोदिता ॥ ३१ ॥
द्विचन्द्रभूमिचन्द्रैकयुग्मार्णैरङ्गकल्पना ।
वाराहीं चेतसि ध्यायेच्छत्रुनिग्रहकारिणीम् ॥ ३२ ॥

वाराहीध्यानम्

विद्युद्रोचिर्हस्तपद्मैर्दधाना
पाशं शक्तिं मुद्गरं चाङ्कुशं च ।
नेत्रोद्भूतैर्वीतिहोत्रैस्त्रिनेत्रा
वाराही नः शत्रुवर्गं क्षिणोतु ॥ ३३ ॥

मनुस्थितौ चन्द्रशेखरौ शार्ङ्गीपिनाकीशौ । औ बिन्दुयुतौ ग्लौं । ग्लौं । सेन्दुलाङ्गलित्रयं ठत्रयं ठं ठं ठं । दीर्घवर्म हूं । शुचिप्रिया स्वाहा ॥ ३०–३२ ॥ ध्यानमाह – **विद्युदिति** । पाशमुद्गरा दक्षयोः । अंकुशशक्ती वामयोरूर्ध्वाधःस्थयोः । नेत्रजैर्वीतिहोत्रैरग्निभिरस्माकमरिसमूहं नाशयतु ॥ ३३ ॥

अर्थात् ग्लौं, सेन्दुलाङ्गलित्रयं (ठं ठं ठं) दीर्घ वर्म (हूँ) तथा अन्त में शुचिप्रिया (स्वाहा) इस प्रकार आठ अक्षरों का यह मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ ३०-३१ ॥

इस शत्रुघाती मन्त्र के कपिल ऋषि हैं, अनुष्टुप् छन्द है, तथा वाराही वार्ताली देवता हैं ॥ ३१ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ऐं ग्लौं ठं ठं ठं हूँ स्वाहा' ।

विनियोग विधि - 'ॐ अस्य श्रीशत्रुघातिनः मन्त्रस्य कपिलऋषिरनुष्टुप्छन्दः वाराहीवार्त्तालीदेवताऽत्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे मन्त्र जपे विनियोगः' ॥ ३०-३१ ॥

इस मन्त्र के २, १, १, १, १, एवं २ वर्णों से षडङ्गन्यास करना चाहिए । तदनन्तर शत्रुनिग्रहकारिणी वार्त्ताली देवता का ध्यान करना चाहिए ।

विमर्श - षडङ्गन्यास विधि - ॐ एं ग्लौं हृदयाय नमः, ठं शिरसे स्वाहा, ठं शिखायै वषट्, ठं कवचाय हुम्, हूं नेत्रत्रयाय वौषट्, स्वाहा अस्त्राय फट् ॥ ३२॥

अब **वार्त्ताली का ध्यान** कहते हैं -

विद्युत के समान कान्तिवाली अपने चारों करकमलों में क्रमशः पाश, शक्ति मुद्गर एवं अंकुश धारण किये हुये त्रिनेत्रा वाराही देवी हमारे शत्रुओं को अपने नेत्रों से निकलने वाली अग्नि से भस्म कर दें ॥ ३३ ॥

---

१. ऐं ग्लौं ठं ठं ठं हं स्वाहा ।

१. अस्य शत्रुघातिनः मन्त्रस्य कपिलऋषिरनुष्टुप्छन्दः वाराहीवार्तालीदेवता ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

वसुलक्षं जपित्वान्ते बिल्वपत्रैर्हयारिजैः ।
धात्रीफलैर्भृङ्गराजैः कुशैर्हूयाद् दशांशतः ॥ ३४ ॥
पूर्वोदिते यजेत्पीठे षडङ्गैर्दिगिनायुधैः ।
एवं सिद्धं मनुं मन्त्री यो जपेच्छत्रुनिग्रहे ॥ ३५ ॥
सृणिना शत्रुमानीय बद्ध्वा पाशेन तं दृढम् ।
मुद्गरेण ध्नतीं मूर्ध्नि तां स्मरन्नयुतं जपेत् ॥ ३६ ॥
जुहुयादयुतं शुद्धैर्वनशुष्कैस्तु गोमयैः ।
प्रक्षिपेद्धोमजं भस्मवापीकूपादिपाथसि ॥ ३७ ॥
तत्पानीयस्य पातारो भ्रियन्ते रिपवो ध्रुवम् ।
निर्यान्ति हित्वा स्थानं वा विद्विषन्तः परस्परम् ॥ ३८ ॥
शत्रुनिग्रहणे दक्षा स्मरणादपि मन्त्रिणाम् ।
प्रकीर्तितेयं वाराही धूमावत्यधुनोच्यते ॥ ३९ ॥

धूमावतीविधाने धूमावत्यष्टार्णमन्त्रः

सात्वतत्रितयं सार्धि तत्राद्यौ चन्द्रशेखरौ ।

वसुलक्षमष्टलक्षं हयारिजैः करवीरैः । हूयादित्याशीर्लिङ् ॥ ३४ ॥ दिगिना दिक्पालाः ॥ ३५ ॥ सृणिनांकुशेन ॥ ३६ ॥ पाथसि जले ॥ ३७ ॥ * ॥ ३८–३९ ॥ ज्येष्ठामन्त्रमाह – **सात्वतेति** । सार्धि उयुतं । सात्वतत्रितयं धत्रयं । तेषु द्वौ

उक्त मन्त्र का ८ लाख जप करना चाहिए । तदनन्तर विल्वपत्र, कनेर, आँवला, भृङ्गराज एवं कुशाओं से दशांश होम करना चाहिए ॥ ३४ ॥

अब **प्रयोग विधि** कहते हैं – पूर्वोक्त पीठ पर षडङ्ग, दिक्पाल एवं उनके आयुधों का पूजन करना चाहिए । इस प्रकार मन्त्र सिद्ध हो जाने पर, साधक इस मन्त्र का शत्रुनिग्रह के लिए जप करें । अंकुश से शत्रु को पकड़ कर उसे पाश से दृढ़तापूर्वक बाँधकर, गदा से शत्रु के शिर पर बार बार प्रहार करती हुई वार्त्ताली का ध्यान कर १० दश हजार जप करना चाहिए । इस प्रकार जप करने के पश्चात् वन में सूखे गोबर के कण्डों से १० हजार की संख्या में हवन करना चाहिए । फिर हवन के भस्म को वापी कूँओं आदि के जल में फेंक देना चाहिए । इस प्रकार के पानी को पीने वाले शत्रु निश्चित रूप से मर जाते हैं । अथवा वे आपस में लड़ झगड़ कर उस स्थान को छोड़कर अन्यत्र भाग जाते हैं ॥ ३५-३८ ॥

यह देवी साधक द्वारा स्मरण करने मात्र से शत्रु विनाश के लिए उद्यत हो जाती हैं । यहाँ तक हमने शत्रुघातिनी वाराही के विषय में बतलाया अब धूमावती के विषय में बतलाता हूँ ॥ ३९ ॥

बैकुण्ठोनन्तसंयुक्तो जलं नेत्रयुतो हरिः ॥ ४० ॥
अष्टार्णो[1] वह्निजायान्तो मन्त्रः शत्रुविनाशनः ।

धूमावतीमन्त्रस्यर्षिदेवतादिकथनम्

पिप्पलादो निचृज्ज्येष्ठा मुनिश्छन्दोऽस्य देवता[2] ॥ ४१ ॥
आद्यबीजद्वयान्तस्थैः षड्वर्णैरङ्गमीरितम् ।
श्मशाने संस्थितां ध्यायेज्ज्येष्ठां वायससंस्थिताम् ॥ ४२ ॥
अत्युच्चामलिनाम्बराखिलजनोद्वेगावहादुर्मना
रूक्षाक्षित्रितया विशालदशना सूर्योदरी चञ्चला ।
प्रस्वेदाम्बुचिताक्षुधाकुलतनुः कृष्णातिरूक्षप्रभा
ध्येया मुक्तकचा सदाप्रियकलिर्धूमावती मन्त्रिणा ॥ ४३ ॥

सबिन्दू । धूं धूं धूं । अनन्तसंयुतो बैकुण्ठः आयुतो मः मा । जलं वः । नेत्रयुतो हरिः । इयुतस्तः ॥ ४० ॥ वह्निजाया स्वाहा ॥ ४१ ॥ *॥ ४२–४५ ॥

अब **धूमावती (ज्येष्ठा) मन्त्र का स्वरूप** कहते हैं -

सर्धि (ऊकार से युक्त) सात्वतत्रितयधकार (धू धू धू), इसके आदि में रहने वाले दो धू पर दो चन्द्रशेखर (धूं धूं धू), फिर अनन्तर संयुक्त वैकुण्ठ (मा), फिर जल (व), फिर नेत्रयुत हरि (ति), तदनन्तर वह्निजाया (स्वाहा) लगाने से आठ अक्षरों का शत्रुविनाशक धूमावती मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ ४० ॥

विमर्श - धूमावती (ज्येष्ठा) मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'धूँ धूँ धूमावति स्वाहा' ॥ ४० ॥

इस मन्त्र के पिप्लाद ऋषि हैं, निचृद् छन्द है तथा ज्येष्ठा देवता हैं ॥ ४१॥

जप के प्रारम्भ में मन्त्र के आदि में रहने वाले मात्र दो वर्णो से षडङ्गन्यास करना चाहिए । फिर श्मशान में वायस (कौआ) पर विराजमान ज्येष्ठा देवी का ध्यान करना चाहिए ॥ ४२ ॥

विमर्श - विनियोग विधि - 'ॐ अस्य श्रीधूमावतीमन्त्रस्य पिप्पलाद ऋषिर्निचृच्छन्दः ज्येष्ठादेवता शत्रुविनाशार्थे जपे विनियोगः' ॥ ४१-४२ ॥

षडङ्गन्यास विधि - धूं धूं हृदयाय नमः, धूं धूं शिरसे स्वाहा, धूं धूं शिखायै वषट् धूं धूं कवचाय हुं, धूं धूं नेत्रत्रयाय वौषट्, धूं धूं अस्त्राय फट् ॥ ४१-४२ ॥

अब **ध्यान विधि** कहते हैं - जो कद में बहुत ऊँची (लम्बी) हैं मैला कुचैला वस्त्र धारण करने वाली जिस देवी के दर्शन मात्र से मनुष्य उद्विग्न हो

---

१. धूं धूं धूमावति स्वाहेत्यष्टार्णः ।

२. अस्य धूमावतीमन्त्रस्य पिप्पलादऋषिः निचृच्छन्दः ज्येष्ठादेवता ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

धूमावतीमन्त्रफलम्

एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षं श्मशाने विगताम्बरः ।
निशाभोजी दशांशेन तिलैर्हवनमाचरेत् ॥ ४४ ॥
पूर्वोक्ते पूजयेत्पीठे ज्येष्ठां शत्रुविनष्टये ।
केसरेषु षडङ्गानि पत्रस्था अष्टशक्तयः ॥ ४५ ॥
क्षुधातृष्णारतिर्निद्रानिर्ऋतिर्दुर्गतीरुषा ।
अक्षमेति ततो देवा इन्द्राद्या आयुधानि च ॥ ४६ ॥
एवं ज्येष्ठां समाराध्य सिद्धमन्त्रः प्रजायते ।
उपोष्य कृष्णभूताहे नग्नो मुक्तशिरोरुहः ॥ ४७ ॥
शून्यागारे श्मशाने वा कान्तारे भूधरेऽथवा ।
प्रत्यहं प्रजपेन्निर्भीर्ध्यायन्देवीं क्षपाशनः ॥ ४८ ॥

रुषा । अक्षमा ॥ ४६–४७ ॥ क्षपाशनो रात्रिभोजी ॥ ४८–४९ ॥

जाता है । खिन्न मन वाली जिस देवी के तीन रुखे (क्रोध युक्त) नेत्र हैं, दाँत बहुत बड़े बड़े हैं सूर्य के समान जिनका पेट बहुत गोल एवं बड़ा है, जो स्वभावतः चञ्चल हैं, पसीने से लथपथ कृष्णवर्णा जिन देवी के शरीर की कान्ति अत्यन्त रुक्ष है । भूख से तड़पती हुई सर्वदा कलहकारिणी, विशीर्ण केशो वाली ऐसी धूमावती देवी का ध्यान साधक को करना चाहिए ॥ ४३ ॥

इस प्रकार देवी का ध्यान करते हुये श्मशान स्थल में विवस्त्र (नंगा) होकर रात्रि में भोजन करते हुये एक लाख जप करना चाहिए । तदनन्तर उसका दशांश तिलों से होम करना चाहिए ॥ ४४ ॥

शत्रुनाश के लिए पूर्वोक्त पीठ पर ज्येष्ठा देवी का पूजन करना चाहिए। केशरों में षडङ्गों की पूजा करनी चाहिए, तथा पत्रों में आठ शक्तियों की पूजा करनी चाहिए ॥ ४५ ॥

१. क्षुधा, २. तृष्णा, ३. रति, ४. निर्ऋति, ५. निद्रा, ६. दुर्गति, ७. रूषा और ८. अक्षमा ये अष्ट शक्तियाँ हैं, तदनन्तर इन्द्रादि दश दिक्पालों की, फिर उनके वज्रादि आयुधों की पूजा करे । इस प्रकार ज्येष्ठा (धूमावती) की आराधना कर साधक शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त कर लेता है ॥ ४६-४७ ॥

अब **ज्येष्ठा की आराधना विधि** कहते हैं -

ज्येष्ठा मास के कृष्ण पक्ष में चतुर्दशी तिथि को उपवास करते हुए नग्नावस्था में शिर के बालों को विकीर्ण विखरा हुआ कर किसी शून्य घर में, श्मशान में, किसी गहन वन में अथवा किसी गुफा में देवी (धूमावती) का ध्यान कर रात्रि में भोजन करते हुए प्रतिदिन नियतसंख्या में जप करें । साधक इस

एवं लक्षं जपन्मन्त्री नाशयेदचिरादरिम् ।
जुह्वता लवणोपेतां राजिकां निशि तत्फलम् ॥ ४६ ॥

कर्णपिशाचिनीमन्त्रस्तद्विधानवर्णनम्

तारो मायाकर्णपिशा सदृशौ कूर्मधान्तिमौ[1]।
कर्णे मे विधिदण्डीरो ठद्वयं षोडशार्णकम्[2] ॥ ५० ॥
मनुर्ऋष्यादिपूर्वोक्तं देवता तु पिशाचिनी ।
एकैकाङ्गाग्निरामाक्षिवर्णैरङ्गं मनो मतम् ॥ ५१ ॥

कर्णपिशाचिनीमाह – **तार** इति । तार ॐ । माया ह्रीं । कर्णपिशा स्वरूपम् । कूर्मधान्तिमौ चनौ । सद्दृशौ इयुतौ । 'चिनि' कर्णे मे स्वरूपम् । विधिः कः । दण्डी थः । इरो यः । ठद्वयं स्वाहा ॥ ५० ॥ षडङ्गमाह – **एकेति** । अङ्गानि षट् । अग्नयस्त्रयो रामाश्च ॥ ५१ ॥ *॥ ५२–५५ ॥

प्रकार एक लाख जप कर लेने पर शीघ्र ही अपने शत्रुओं का विनाश कर देता है । किन्तु उसे वह फल तब होता है जब वह रात्रि के समय नमक युक्त राई का प्रतिदिन हवन करे ॥ ४७-४६ ॥

अब **कर्णपिशाचिनी मन्त्र का उद्धार** कहते हैं -

तार (ॐ), माया (ह्रीं), फिर 'कर्णपिशा', फिर सदृक् कूर्मघान्तिम (चिनि), फिर 'कर्णे' 'मे', फिर विधि (क), दण्डी (थ), फिर इ (य) और अन्त में ठद्वय (स्वाहा) लगाने से सोलह अक्षरों का मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ ५० ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ॐ ह्रीं कर्णपिशाचिनि कर्णे मे कथय स्वाहा' ॥ ५० ॥

इस मन्त्र के ऋषि छन्द पूर्वोक्त (द्र० ७-४१) हैं तथा कर्णपिशाचिनी देवता हैं । इस मन्त्र के १, १, ६, ३, ३ और दो इन मन्त्राक्षरों से षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ ५१ ॥

विमर्श - विनियोग - अस्य श्रीकर्णपिशाचिनीमन्त्रस्य पिप्लादऋषिः निचृद-छन्दः कर्णपिशाचिनीदेवता अभीष्टसिद्ध्यर्थ मन्त्र जपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास - ॐ हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा,
ॐ कर्णपिशाचिनि शिखायै वषट्, ॐ कर्णे में कवचाय हुम्
ॐ कथय नेत्रत्रयाय वौषट् ॐ स्वाहा अस्त्राय फट् ॥ ५१ ॥

---

१. ॐ ह्रीं कर्णविशाचिनि कर्णे मे कथय स्वाहेति षोडशार्णः ।

२. अस्य कर्णपिशाचिनीमन्त्रस्य पिप्पलादऋषिः निचृच्छन्दः कर्णपिशाचिनीदेवता ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

चितासनस्थां नरमुण्डमालां
विभूषितामस्थिमणीन्कराब्जैः।
प्रेतां नरान्त्रैर्दधतीं कुवस्त्रां
भजामहे कर्णपिशाचिनीं ताम् ॥ ५२ ॥

श्मशानस्थः शवस्थो वा जपेल्लक्षं समाहितः।
दशांशं जुहुयाद्वह्नौ बिभीतकसमिद्वरैः ॥ ५३ ॥
यजेत् पूर्वोदिते पीठे षडङ्गामरहेतिभिः।
सिद्धमन्त्रे जपं कुर्यादधस्ताद् बदरोतरोः ॥ ५४ ॥
अशुचिर्लक्षसंख्यातं तेन तुष्टा पिशाचिनी।
परचित्तस्थितां वार्तां भाविनीं च वदेच्छ्रुतौ ॥ ५५ ॥

शीतलामन्त्रस्तद्विधानवर्णनम्

ध्रुवः शिवारमाशीतलायै हार्द नवाक्षरः[1]।
उपमन्युश्च बृहतीं शीतला मुनिपूर्विका[2]।
षड्दीर्घयुक्छिवालक्ष्मीबीजाभ्यां स्यात्षडङ्गकम् ॥ ५६ ॥

शीतलामाह – **ध्रुव** इति । ध्रुव ॐ । शिवा ह्रीं । रमा श्रीं । शीतलायै स्वरूपम् । हार्दं नमः । षडङ्गमाह – **षडिति** । ह्रीं श्रीं हृत् । ह्रीं श्रीं शिर इति ॥ ५६ ॥

अब **कर्णपिशाचिनि देवी का ध्यान** कहते हैं -

चिता पर आसन लगाकर कर बैठी हुई नर मुण्ड माला से विभूषित अपने कर कमलों में अस्थि की मणियों को धारण की हुई मनुष्य की आँतों से प्रसन्न रहने वाली मैला, कुचैला, फटा कुवस्त्र धारण करने वाली कर्णपिशाचिनी का मैं ध्यान करता हूँ ॥ ५२ ॥

श्मशान में अथवा शव पर बैठकर एकाग्र मन से पिशाचिनी मन्त्र का एक लाख जप करें । तदनन्तर बिभीतक (बहेडा) की समिधाओं से दशांश हवन करें ॥ ५३ ॥

पूर्वोक्त पीठ पर षडङ्ग पूजा, दिक्पाल एवं उनके वज्रादि आयुधों सहित देवी का पूजन करना चाहिए । इस प्रकार मन्त्र सिद्ध हो जाने पर बेर के पेड़ के नीचे अपवित्रतापूर्वक लक्ष संख्या में जप करना चाहिए । इस क्रिया से संतुष्ट पिशाचिनी दूसरों की मन की बातें तथा भावी घटनाओं को कान में बतला देती हैं ॥ ५४-५५ ॥

अब **शीतला देवी के मन्त्र का उद्धार** कहते हैं -

---

१. ह्रीं श्रीं शीतलायै नम इति नवार्णं ।

२. अस्य शीतलामन्त्रस्य उपमन्युऋषिः बृहतीछन्दः शीतलादेवता ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

दिग्वाससं मार्जनिका च शूर्पं
करद्वये सन्दधतीं घनाभाम्।
श्रीशीतलां सर्वरुजार्तिनष्टौ
रक्ताङ्गरागस्रजमर्चयामि ॥ ५७ ॥
अयुतं प्रजपेन्मन्त्रं पायसेन सहस्रकम्।
जुहुयात्पूर्ववत्पीठे स्फोटानां नाशिनी त्वियम् ॥ ५८ ॥
नाभिमात्रे जले स्थित्वा यः सहस्रं जपेन्मनुम्।
तेन सम्मार्जितास्तीव्राः स्फोटा नश्यन्ति तत्क्षणात् ॥ ५९ ॥

स्वप्नेश्वरीमन्त्रस्तद्विधानवर्णनम्

प्रणवः कमला स्वप्नेश्वरिकार्यं च मे वद।
स्वाहा त्रयोदशार्णोऽयं[1] मन्त्रो मुन्यादिपूर्ववत् ॥ ६० ॥

ध्यानमाह – **दिगिति** । मार्जनी दक्षे । शूर्पं वामे ॥ ५७ ॥ * ॥ ५८–५९ ॥ स्वप्नेश्वरीमाह – **प्रणव** इति । प्रणव ॐ । कमला श्रीं । स्वरूपमन्यत् ॥ ६० ॥

ध्रुव (ॐ) शिवा (ह्रीं) रमा (श्रीं) फिर शीतलायै इसके अन्त में हृदय (नमः) लगाने से नवाक्षर शीतला मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ ५६ ॥

विमर्श - इस **मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - ॐ ह्रीं श्रीं शीतलायै नमः ।

इस मन्त्र के उपमन्यु ऋषि हैं वृहती छन्द है तथा शीतला देवता हैं । ६ व दीघ्रवर्ण से युक्त शिवा माया बीज और लक्ष्मीबीज (श्रीं) से षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ ५६ ॥ **विमर्श** - ॐ ह्रां श्रीं हृदयाय नमः ॐ ह्रीं श्रीं शिरसे स्वाहा,
ॐ ह्रूँ श्रीं शिखायै वषट्, ॐ ह्री श्रीं कवचाय हुं,
ॐ ह्रौं श्री नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ ह्रः श्रीं अस्त्राय फट् ॥ ५६ ॥

अब **शीतला देवी का ध्यान** कहते हैं -

दिगम्बरा (नग्ना) अपने दोनों हाथों में क्रमशः झाड़ू और सूप लिए हुये बादलों के समान काले आभा वाली, रक्तवर्ण का अङ्गराग तथा रक्तवर्ण की मालाधारण की हुई श्री शीतला देवी का समस्त रोगों के विनाश के लिए मैं ध्यान करता हूँ ॥ ५७ ॥

शीतला मन्त्र का दश हजार की संख्या में जप करना चाहिए । तदनन्तर खीर की एक हजार आहुतियाँ देनी चाहिए । यह देवी स्फोट (फोटका) की जाति के समस्त घावों को अच्छा कर देने वाली मानी गई है ॥ ५८ ॥

जो व्यक्ति नाभि मात्र जल में स्थित होकर इस मन्त्र का एक हजार जप करता है उस व्यक्ति के द्वारा संस्मार्जित कुशा से सभी प्रकार के भयानक स्फोट (फोटका) आदि तत्काल नष्ट हो जाते हैं ॥ ५९ ॥

---

१. ॐ श्रीं स्वप्नेश्वरिकार्यं मे वद स्वाहेति त्रयोदशार्णः ।

अक्षिवेदाक्षिभूयुग्मनेत्रार्णैरङ्गकं मनोः।
विन्यस्य देवतां ध्यायेत्स्वप्नेशीमिष्टसिद्धये ॥ ६१ ॥
वराभयेपद्मयुगं दधानां
करैश्चतुर्भिः कनकासनस्थाम्।
सिताम्बरां शारदचन्द्रकान्तिं
स्वप्नेश्वरीं नौमि विभूषणाढ्याम् ॥ ६२ ॥
लक्षं जपेद्बिल्वपत्रैर्जुहुयात्तद्दशांशतः।
पूर्वोदिते यजेत्पीठे षडङ्गत्रिदशायुधैः ॥ ६३ ॥
रात्रौ सम्पूज्य देवेशीमयुतं पुरतो जपेत्।
शयीतब्रह्मचर्येण भूमौ दर्भास्थिताजिनैः ॥ ६४ ॥

॥ ६१ ॥ ध्यानमाह – **वरेति** । वरो दक्षे ॥ ६२ ॥ त्रिदशा इन्द्रादयः ॥ ६३ ॥

अब **स्वप्नेश्वरी का मन्त्रोद्धार** कहते हैं -

प्रणव (ॐ), कमला (श्रीं), फिर 'स्वप्नेश्वरि कार्यं मे वद', इसके बाद स्वाहा लगाने से तेरह अक्षरों का स्वप्नेश्वरी मन्त्र निष्पन्न होता है - इसके मुनि आदि पूर्ववत् हैं ॥ ६० ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ॐ श्रीं स्वप्नेश्वरि कार्यं में वद स्वाहा' ।

विनियोग - 'अस्य श्रीस्वप्नेश्वरीमन्त्रस्य उपमन्युऋषिः बृहतीछन्दः स्वप्नेश्वरीदेवता ममाभीष्टसिद्ध्यर्थं जपे विनियोगः ॥ ६० ॥

इस मन्त्र के २, ४, २, १, २ और २ अक्षरों से षडङ्गन्यास करना चाहिए। न्यास करने के पश्चात् स्वप्नेश्वरी का ध्यान करना चाहिए ॥ ६१ ॥

विमर्श - षडङ्गन्यास - ॐ श्रीं हृदयाय नमः, ॐ स्वप्नेश्वरि शिरसे स्वाहा,
ॐ कार्यं शिखायै वषट् मे कवचाय हुं, वद नेत्रत्रयाय वौषट्,
ॐ स्वाहा अस्त्राय फट् ॥ ६१ ॥

अब **स्वप्नेश्वरी देवी का ध्यान** कहते हैं -

अपने चारों हाथों में वर, अभय एवं दो कमलों को धारण की हुई स्वर्णरचित आसन पर विराजमान, श्वेत वस्त्र धारण करने वाली तथा शरत्कालीन चन्द्रमा के समान कान्तिमती, विविध आभूषणों से अलंकृत भगवती स्वप्नेश्वरी का मैं ध्यान करता हूँ ॥ ६२ ॥

इस मन्त्र का एक लाख जप करें तथा विल्वपत्रों से तद्दशांश हवन करना चाहिए। पूर्वोक्त पीठ पर षडङ्ग, दिक्पाल एवं उनके आयुधों का पूजन करें ॥ ६३॥

इस प्रकार पुरश्चरण द्वारा मन्त्र सिद्ध हो जाने पर रात्रि में देवी की पूजाकर उनके आगे दश हजार जप करना चाहिए । जप काल में ब्रह्मचर्य व्रत का

देव्यै निवेद्य स्वहार्दं सा स्वप्ने वदति ध्रुवम् ।
यक्षिण्याद्या इति प्रोच्य मातङ्गी गद्यतेऽधुना ॥ ६५ ॥

मातङ्गीमन्त्रविधानवर्णनम्

तारो मायाच वाग्लक्ष्मीहृन्निद्रास्मृतिलान्तिमाः ।
सनेत्रो हरिरुच्छिष्टचाण्डानेत्रयुता क्रिया ॥ ६६ ॥
श्रीमातङ्गेश्वरिपदं सर्वशूलीनलान्तशम्[1] ।
करिवह्निप्रियामन्त्रो द्वात्रिंशद्वर्णवानयम्[2] ॥ ६७ ॥
मतङ्गो मुनिरस्योक्तोऽनुष्टुप्छन्दस्तु देवता ।
मातङ्गीसर्वजनता वशीकरणतत्परा ॥ ६८ ॥
चतुर्भिः षड्भिरङ्गैश्च षडष्टनयनैरपि ।
मन्त्रोऽस्य वर्णैरङ्गानि न्यस्य देवीं विचिन्तयेत् ॥ ६९ ॥

॥ *॥ ६४–६५ ॥ मातंगीमाह – **तार** इति । तार ॐ । माया ह्रीं । वाक् ऐं । लक्ष्मीः श्रीं । हृत् नमः । निद्रा भः । स्मृतिर्गः । लान्तिमो वः । सनेत्रो हरिः ति । 'उच्छिष्टचाण्डा' स्वरूपम् । नेत्रयुता क्रिया लि ॥ ६६ ॥ श्रीं मातंगेश्वरि सर्वेति स्वरूपम् । शूली जः । न स्वरूपम् । लान्तो वः । 'शं' स्वरूपम् । 'करि' स्वरूपम् । वह्निप्रिया स्वाहा ॥ ६७ ॥ *॥ ६८–७२ ॥

पालन करते हुये कुशाओं पर मृगचर्म बिछा कर सोना चाहिए । सोते समय देवी को अपने हृदय की बात निवेदन करना चाहिये । ऐसा करने से वह स्वप्न में उसका उत्तर अवश्य दे देती हैं । यहाँ तक यक्षिणी के विषय में कहा अब मातङ्गी के विषय में कहता हूँ ॥ ६४-६५ ॥

अब **मातङ्गी मन्त्र का उद्धार** कहते हैं -

तार (ॐ), माया (ह्रीं), वाग् (ऐं), लक्ष्मी (श्रीं), हृद् (नमः), निद्रा (भ), स्मृति (ग), लान्तिम (व), नेत्रो हरि (ति), फिर 'उच्छिष्ट चाण्डा' फिर नेत्रायुत क्रिया (लि), फिर 'श्रीमातंगेश्वरि सर्व' पद, इसके बाद शूली (ज), फिर न, फिर लान्त (व), फिर 'शङ्करि', इसके बाद वह्निप्रिया (स्वाहा) लगाने से बत्तीस अक्षरों का मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ ६६-६७ ॥

विमर्श - इस **मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - 'ॐ ह्रीं ऐं श्रीं नमो भगवति उच्छिष्टचाण्डालि श्रीमातंगेश्वरि सर्वजनवशंकरि स्वाहा ॥ ६६-६७ ॥

इस मन्त्र के मतङ्ग ऋषि हैं, अनुष्टुप् छन्द है तथा सब लोगों को वश में करने में तत्पर मातङ्गी देवता है । मन्त्र के ४, ६, ६, ६, ८ एवं २ वर्णों से

---

१. ॐ ह्रीं ऐं श्रीं नमो भगवति उच्छिष्टचाण्डालिश्रीमातङ्गेश्वरि सर्वजनवशङ्करि स्वाहा ।
२. अस्य मन्त्रस्य मतङ्गऋषिरनुष्टुप्छन्दो मातङ्गीदेवता ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

घनश्यामलाङ्गीं स्थितां रत्नपीठे
शुकस्योदितं शृण्वतीं रक्तवस्त्राम् ।
सुरापानमत्तां सरोजस्थितां श्री
भजे वल्लकीं वादयन्तीं मतङ्गीम् ॥ ७० ॥

जपोयुतं सहस्रं तु होमः पुष्पैर्मधूकजैः ।
मध्वक्तैः पूजयेत्पीठे वक्ष्यमाण विधानतः ॥ ७१ ॥
त्रिकोणाष्टदलद्वन्द्वं कलास्रचतुरस्रकम् ।
पीठं कृत्वा यजेत्तस्मिन्पीठशक्तीर्नवेष्टदाः ॥ ७२ ॥
विभूतिरुन्नतिः कान्तिः सृष्टिः कीर्तिश्च सन्नतिः ।
व्युष्टिरुत्कृष्टिऋद्धी च मातंग्यन्ताः समीरिताः ॥ ७३ ॥

मातङ्ग्यन्ता इमाः । विभूत्यै नम इत्यादिकाः ॥ ७३ ॥

षडङ्गन्यास कर देवी का ध्यान करना चाहिए ॥ ६८-६६ ॥

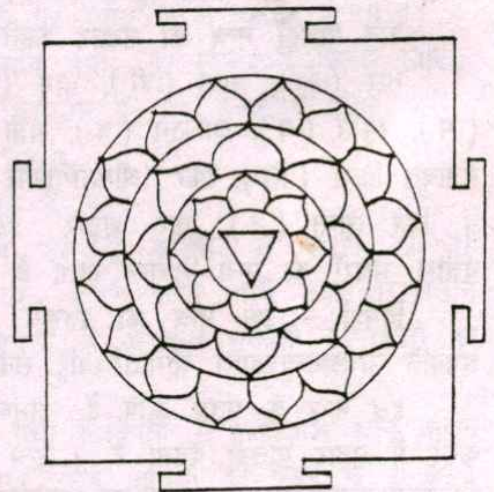
विमर्श - **विनियोग** - 'अस्य श्रीमातङ्गीमन्त्रस्य मतङ्गऋषिरनुष्टुप्छन्दः श्रीमातङ्गीदेवता ममाऽभीष्टसिद्धिद्ध्यर्थं जपे **विनियोगः** ।

षडङ्गन्यास - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं हृदयाय नमः, ॐ नमो भगवति शिरसे स्वाहा, ॐ उच्छिष्टचाण्डालि शिखायै वषट्, ॐ श्री मातङ्गेश्वरि कवचाय हुम्, ॐ सर्वजनवशङ्करि नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ स्वाहा अस्त्राय फट् ॥ ६८-६६ ॥

अब **मातङ्गी देवी का ध्यान** कहते हैं -

मेघ के समान श्याम वर्णो वाली रत्नपीठ पर विराजमान, शुक की बोली सुनने में तत्पर, रक्त वस्त्र धारण करने वाली सुरापान से उन्मत्त सरोज पर स्थित वल्लकी वीणा बजाती हुई श्री मातङ्गी का मैं ध्यान करता हूँ ॥ ७० ॥

मातङ्गीपूजनयन्त्रम्



उपर्युक्त मन्त्र का १० हजार जप करना चाहिए, तथा मधु सहित मधूक (महुआ) के पुष्पों से एक हजार आहुतियाँ देनी चाहिए । तदनन्तर पूर्वोक्त पीठ पर वक्ष्यमाण रीति से देवी का पूजन करना चाहिए ॥ ७१ ॥

अब **मातङ्गी यन्त्र का प्रकार** कहते हैं - त्रिकोण के बाद दो अष्ट दल कमल फिर १६ दल का कमल उसके ऊपर चतुरस्त्र और भूपुर युक्त पीठ रचना कर उस पर अभीष्टदायिनी नौ शक्तियों की पूजा करनी चाहिए ॥ ७२ ॥

पीठमन्त्रपीठपूजाविधिवर्णनम्

सर्वशक्तिकमस्यान्ते लासनायहृदयन्तिकः ।
तारमायावाग्रमाद्यः पीठमन्त्रः कलार्णकः ॥ ७४ ॥
विश्राण्यासनमेतेन पाद्यादीनि प्रकल्पयेत् ।
मूलेन पुष्पपूजान्ते कुर्यादावरणार्चनम् ॥ ७५ ॥
त्रिकोणेष्वर्चयेत् तिस्रो रतिप्रीतिमनोभवाः ।
केसरेषु षडङ्गानि मातृश्च दलमध्यगाः ॥ ७६ ॥
द्वितीयेऽष्टदले पूज्या असिताङ्गादिभैरवाः ।
षोडशाख्ये तु वामाख्या ज्येष्ठारौद्रीप्रशान्तिका ॥ ७७ ॥
श्रद्धामाहेश्वरी चापि क्रियाशक्तिश्च सप्तमी ।
सुलक्ष्मीः सृष्टिमोहिन्यौ प्रमथाश्वासिनी तथा ॥ ७८ ॥

पीठमन्त्रमाह – **सर्वेति** । ॐ ह्रीं ऐं श्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय नम इति ॥ ७४ ॥ विश्राण्य दत्त्वा ॥ ७५ ॥ *॥ ७६–७९ ॥

---

१. विभूति, २. उन्नति, ३. कान्ति, ४. सृष्टि, ५. कीर्ति, ६. सन्नति, ७. व्युष्टि, ८. उत्कृष्टिऋद्धि और ९. मातङ्गी ये नौ शक्तियाँ कही गई हैं ॥ ७३ ॥

'सर्वशक्तिकम' इस पद के बाद 'लासनाय नमः' तथा प्रारम्भ में तार (ॐ), माया (ह्रीं), वाग (ऐं), तथा रमा (श्रीं), लगाने से सोलह अक्षर का 'ॐ ह्रीं ऐं श्रीं सर्वशक्तिकमलासनायै नमः' यह मन्त्र बनता है । इस मन्त्र से देवी को आसन देकर मूल मन्त्र से मूर्ति की कल्पना कर पाद्य आदि सपर्या के बाद पुष्पाञ्जलि समर्पित करनी चाहिए । फिर अनुज्ञा लेकर आवरण पूजा प्रारम्भ करना चाहिए ॥ ७४-७५ ॥

विमर्श – पीठ पूजा विधि - (द्र० ७. ८-१०) । इसके बाद निम्नलिखित विधि से पूर्व आदि दिशाओं में आठ शक्तियों की तथा मध्य में मातङ्गी की इस प्रकार की पूजा करनी चाहिए - ॐ विभूत्यै नमः, पूर्वे,

ॐ उन्नत्यै नमः, आग्नेये, ॐ कान्त्यै नमः, दक्षिणे, ॐ सृष्ट्यै नमः, नैर्ऋत्ये,
ॐ कीर्त्यै नमः, पश्चिमे, ॐ सन्नत्यै नमः, वायव्ये, ॐ व्युष्ट्यै नमः, उत्तरे
ॐ उत्कृष्टिऋद्धिभ्यां नमः, ईशाने, ॐ मातङ्ग्यै नमः, मध्ये ॥ ७४-७५ ॥

अब **आवरण पूजा का विधान** कहते हैं -

त्रिकोण में रति, प्रीति एवं मनोभवा इन तीन देवियों का अर्चन करें, केशरों में षडङ्ग, तदनन्तर प्रथम अष्टदल मे मातृकाओं की और दूसरे अष्टदल में असिताङ्गादि अष्ट भैरवों की पूजा करनी चाहिए । फिर षोडश दल में - १. वामा, २. ज्येष्ठा, ३. रौद्री, ४. प्रशान्तिका, ५. श्रद्धा, ६. माहेश्वरी, ७.

विद्युल्लता च चिच्छक्तिः सुन्दरीनन्दया सह ।
नन्दबुद्धिः षोडशी तु पूजनीयाः प्रयत्नतः ॥ ७९ ॥
चतुरस्रे चतुर्दिक्षु मातङ्गी सामहादिका ।
महालक्ष्मीस्तथासिद्धं पुनर्वह्न्यादिकोणतः ॥ ८० ॥
विघ्नेश दुर्गाबटुकक्षेत्रेशादिग्धवास्ततः ।
वज्राद्याः पूजनीयाः स्युरित्थं सिद्धिर्मनोर्भवेत् ॥ ८१ ॥
ध्रुवं भवानी वाग्बीजं रमामादौ प्रयोजयेत् ।
सर्वावरणदेवानां मातङ्गीपदमन्ततः ॥ ८२ ॥

सा महादिका महामातंगी ॥ ८०–८१ ॥ ध्रुवमिति । आवरणदेवता–नामादौ ध्रुवादीन अन्ते मातंगीपदञ्च योजयेत् । ॐ ह्रीं ऐं श्रीं रत्यै मातंग्यै नम इत्यादि ॥ ८२ ॥ * ॥ ८३ ॥

क्रियाशक्ति, ८. सुलक्ष्मी, ९. सृष्टि, १०. मोहिनी, ११. प्रमथा, १२. श्वासिनी, १३. विद्युल्लता, १४. चिच्छक्ति, १५. नन्दसुन्दरी, एवं १६. नन्दबुद्धि - इन सोलह शक्तियों का प्रयत्न पूर्वक पूजन करना चाहिए ॥ ७६-७९ ॥

चतुरस्त्र में चारों दिशाओं में १. महामातङ्गी, २. महालक्ष्मी, ३. महासिद्धि एवं ४. महादेवी का, तथा आग्नेयादि चार कोणों में १. विघ्नेश, २. दुर्गा, ३. बटुक एवं ४. क्षेत्रपाल का पूजन करना चाहिए । उसके बाद दिक्पाल, उनके वज्रादि आयुधों का पूजन करना चाहिए । इस प्रकार पूजन करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है ॥ ८१ ॥

समस्त आवरण देवताओं के आदि में ध्रुव (ॐ), भवानी (ह्रीं), वाग् (ऐं), रमा (श्रीं) तथा अन्त में चतुर्थ्यन्त मातङ्गी पद लगाकर पूजनमन्त्रों की कल्पना करनी चाहिए ॥ ८२ ॥

विमर्श - आवरण पूजाविधि - प्रथमावरण त्रिकोण में - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं रत्यै मातङ्ग्यै नमः, ॐ ह्रीं ऐं श्रीं प्रीत्यै मातङ्गी नमः, ॐ ह्रीं ऐं श्रीं मनोभवायै मातङ्ग्यै नमः ।

इसके बाद **प्रथम अष्टदल** में पूर्वादिक्रम से अष्टमातृकाओं का इस प्रकार पूजन करना चाहिए -

१ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं ब्राह्म्यै मातङ्ग्यै नमः, पूर्वे
२ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं माहेश्वर्यै मातङ्ग्यै नमः, आग्नेये
३ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं कौमार्यै मातङ्ग्यै नमः, दक्षिणे
४ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं वैष्णव्यै मातङ्ग्यै नमः, नैर्ऋत्ये
५ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं वाराह्यै मातङ्ग्यै नमः, पश्चिमे
६ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं इन्द्राण्यै मातङ्ग्यै नमः, वायव्ये

७ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं चामुण्डायै मातङ्ग्यै नमः, उत्तरे

८ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं महालक्ष्म्यै मातङ्ग्यै नमः, ऐशान्यै

इसके बाद **द्वितीय अष्टदल** में पूर्वादि दिशाओं के क्रम से असिताङ्गादि भैरवों का इस प्रकार पूजन करना चाहिए -

१ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं असिताङ्गभैरवाय मातङ्गीरूपाय नमः पूर्वे

२ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं रुरुभैरवाय मातङ्गीरूपाय नमः आग्नेये

३ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं चण्डभैरवाय मातङ्गीरूपाय नमः दक्षिणे

४ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं क्रोधभैरवाय मातङ्गीरूपाय नमः, नैर्ऋत्ये

५ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं उन्मत्तभैरवाय मातङ्गीरूपाय नमः, पश्चिमे

६ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं कपालीभैरवाय मातङ्गीरूपाय नमः, वायव्ये

७ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं भीषणभैरवाय मातङ्गीरूपाय नमः, उत्तरे

८ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं संहारभैरवाय मातङ्गीरूपाय नमः, ऐशान्यै

इसके अनन्तर **सोलह दलों में** प्रदक्षिण क्रम से वामा आदि सोलह शक्तियों की इस प्रकार पूजा करें -

१ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं वामायै मातङ्गीस्वरूपिण्यै नमः,

२ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं ज्येष्ठायै मातङ्गीस्वरूपिण्यै नमः,

३ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं रोद्रायै मातङ्गीस्वरूपिण्यै नमः,

४ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं प्रशान्तिकायै मातङ्गीस्वरूपिण्यै नमः,

५ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं श्रद्धायै मातङ्गीस्वरूपिण्यै नमः,

६ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं माहेश्वर्यै मातङ्गीस्वरूपिण्यै नमः,

७ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं क्रियाशक्त्यै मातङ्गीस्वरूपिण्यै नमः,

८ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं सुलक्ष्म्यै मातङ्गीस्वरूपिण्यै नमः,

९ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं सृष्टयै मातङ्गीस्वरूपिण्यै नमः,

१० - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं मोहिन्यै मातङ्गीस्वरूपिण्यै नमः,

११ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं प्रमथायै मातङ्गीस्वरूपिण्यै नमः,

१२ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं श्वासिन्यै मातङ्गीस्वरूपिण्यै नमः,

१३ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं विद्युल्लतायै मातङ्गीस्वरूपिण्यै नमः,

१४ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं चिच्छक्त्यै मातङ्गीस्वरूपिण्यै नमः,

१५ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं नन्दसुन्दर्यै मातङ्गीस्वरुपिण्यै नमः,

१६ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं नन्दबुद्ध्यै मातङ्गीस्वरुपिण्यै नमः,

इसके बाद **चतुरस्त्र भूपुर** से पूर्वादि दिशाओं के क्रम से महामातङ्गी आदि का पूजन करना चाहिए -

१ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं महामातङ्ग्यै मातङ्ग्यै नमः, पूर्वे

२ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं महालक्ष्म्यै मातङ्ग्यै नमः, दक्षिणे

३ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं महासिद्ध्यै मातङ्ग्यै नमः, पश्चिमे

४ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं महादेव्यै मातङ्ग्यै नमः, उत्तरे

इसके बाद पुनः **चतुरस्र** में आग्नेयादि त्रिकोणों में क्रम से विघ्नेशादि का पूजन करना चाहिए -

१ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं विघ्नेशाय मातङ्गीस्वरूपायै नमः, आग्नेये

२ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं दुर्गायै मातङ्गीस्वरूपायै नमः, नैर्ऋत्ये

३ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं बटुकाय मातङ्गीस्वरूपायै नमः, वायव्ये

४ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं क्षेत्रपालाय मातङ्गीस्वरूपायै नमः, ऐशान्ये ।

इसके बाद पुनः **भूपुर में** पूर्वादि दिशाओं क्रम में, इन्द्र आदि दश दिक्पालों की पूजा करनी चाहिए -

१ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं इन्द्राय मातङ्गीरूपाय नमः, पूर्वे

२ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं अग्नये मातङ्गीरूपाय नमः, अग्नेये

३ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं यमाय मातङ्गीरूपाय नमः, दक्षिणे

४ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं निर्ऋतये मातङ्गीरूपाय नमः, नैर्ऋत्ये

५ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं वरुणाय मातङ्गीरूपाय नमः, पश्चिमे

६ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं वायवे मातङ्गीरूपाय नमः, वायव्ये

७ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं सोमाये मातङ्गीरूपाय नमः, उत्तरे

८ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं ईशानाय मातङ्गीरूपाय नमः, ईशाने

९ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं ब्रह्मणे मातङ्गीरूपाय नमः, पूर्वेशानयोर्मध्ये

१० - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं अनन्ताय मातङ्गीरूपाय नमः, नैर्ऋत्य पश्चिमयोर्मध्ये

पुनः अन्त में भूपुर के बाहर पूर्वादि दिशाओं के क्रम से वज्रादि आयुधों की पूजा करनी चाहिए -

१ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं वज्राय मातङ्गीस्वरूपाय नमः, पूर्वे

२ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं शक्तये मातङ्गीस्वरूपाय नमः, आग्नेये

३ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं दण्डाय मातङ्गीस्वरूपाय नमः, दक्षिणे

४ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं खड्गाय मातङ्गीस्वरूपाय नमः, नैर्ऋत्ये

५ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं पाशाय मातङ्गीस्वरूपाय नमः, पश्चिमे

६ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं अंकुशाय मातङ्गीस्वरूपाय नमः, वायव्ये

७ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं गदायै मातङ्गीस्वरूपाय नमः, उत्तरे

८ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं शूलायै मातङ्गीस्वरूपाय नमः, वायव्ये

९ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं पद्माय मातङ्गीस्वरूपाय नमः, पूर्वेशानयोर्मध्ये

१० - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं चक्राय मातङ्गीरुस्वरूपाय नमः, पश्चिमनैर्ऋत्ययोर्मध्ये

इस प्रकार प्रत्येक आवरण पूजा के अनन्तर एक एक पुष्पाञ्जलि समर्पित कर यन्त्र में देवी की विधिवदुपचारों से पूजा कर उक्त मन्त्र का जप करना चाहिए ॥ ८१-८२ ॥

मल्लिकाकुसुमैर्होमाद् भोगो राज्यं च बिल्वजैः ।
पत्रैः फलैर्वा वश्यास्याज्जनताब्रह्मवृक्षजैः ॥ ८३ ॥
रोगनाशोमृताखण्डैर्निम्बैः श्रीस्तण्डुलैरपि ।
आकृष्टिर्लवणैर्विद्यात्तगरैर्वेतसैर्जलम् ॥ ८४ ॥
लवणैर्निम्बतैलाक्तैः शत्रुनाशोऽन्धसाशनम् ।
निशाचूर्णयुतैर्लोणैर्होमात्स्यात्स्तम्भनं नृणाम् ॥ ८५ ॥
रक्तचन्दनकर्चूरमांसीकुंकुमरोचनाः ।
चन्दनागुरुकर्पूरैर्गन्धाष्टकमुदीरितम् ॥ ८६ ॥
एतद्धोमाज्जगद्वश्यं जायते मन्त्रिणो ध्रुवम् ।
एतत्पिष्ट्वा शतं जप्त्वा तिलकेन जगत्प्रियः ॥ ८७ ॥
कदलीफलहोमेन सर्वेष्टं समवाप्नुयात् ।
किंबहूक्तेन मातङ्गी पूजिता कामदा नृणाम् ॥ ८८ ॥
मध्वक्तलोणरचितां पुत्तलीं दक्षिणांघ्रितः ।
हूयादष्टोत्तरशतं खादिराग्नौ वशं निशि ॥ ८६ ॥
शालिपिष्टमयीं तां तु भक्षयेत्स्त्रीवशीकृतो ।
कृष्णभूतनिशि ध्वाङ्क्षोदरे क्षिप्त्वा समुद्रजम् ॥ ६० ॥

अमृताखण्डैर्गुडूची शकलैः ॥ ८४ ॥ अन्धसाऽन्नेन हुतेनाशनमन्नं प्राप्यते ॥ ८५ ॥ *॥ ८६–६१ ॥

अब **काम्य प्रयोग में होम की विधि** कहते हैं -

मल्लिका पुष्पों के होम से भोग, विल्वपत्रों के होम से राज्य, ब्रह्मवृक्ष के पत्र या फल के होम से सभी लोग वश में हो जाते हैं । अमृता (गुरुचा) के टुकडो के होम से रोगों का विनाश, नीम या चावल के होम से लक्ष्मी, लोण के होम से आकर्षण, तगर तथा बेतस के होम से जल, निम्ब के तेल में डुबोये गये लोण के होम से शत्रु का नाश, भात के होम से उत्तम भोजन, हरदी के चूर्णयुत लोण के होम से मनुष्यों का स्तम्भन हो जाता है ॥ ८३-८५ ॥

लाल चन्दन, कर्चूर, जटामाँसी, कुंकुम, गोरोचन, चन्दन, अगरु, कर्पूर - ये गन्धाष्टक कहे गये हैं । इनके होम से सारा जगत् उस साधक के वश में हो जाता है । इस गन्धाष्टक को पीसकर उक्त मन्त्र का जप कर तिलक लगावे तो व्यक्ति सर्वलोक प्रिय हो जाता है । कदलीफल के होम से व्यक्ति अपना समस्त अभीष्ट प्राप्त कर लेता है । इस विषय में विशेष क्या कहें - मातङ्गी देवी की उपासना से सारी कामनायें पूर्ण हो जाती हैं ॥ ८६-८८ ॥

मध्वक्तलोण से बनी पुतली को प्रदक्षिण क्रम से खैर की प्रज्वलित अग्नि में रात्रि के समय मूल मन्त्र से १०८ बार होम करें तो वशीकरण प्राप्त होता है ।

नीलसूत्रेण संवेष्ट्य चिताग्नौ प्रदहेदमुम्।
सहस्रजप्तं तद्भस्मं यस्मै दद्यात् स दासवत्॥ ६१॥

बाणेशीमन्त्रस्तद्विधानवर्णनम्

सत्योऽग्नियुक्तोऽनन्तेन्दुसंयुक्तं बीजमादिमम्।
एतस्यानन्तसंस्थाने शान्तियुक्तो द्वितीयकम्॥ ६२॥
ब्रह्मेन्द्रशान्तिबिन्द्वाढ्यस्तृतीयं बीजमीरितम्।
भूधरो वसुधोर्घीशचन्द्राढ्यस्तत्तुरीयकम्[1]॥ ६३॥
सर्गी हंसः पञ्चमः स्यात् पञ्चबीजात्मको मनुः।
ऋषिः[2] सम्मोहनश्छन्दो गायत्रीदेवता पुनः॥ ६४॥

बाणेशीमाह – सत्य इति । सत्यो दः अग्नियुक्तो रेफयुतः । अनन्तेन्दुसंयुतः आबिन्दुयुतश्च तेन द्रामित्यादि बीजम् । स एव रेफयुतो दः । आस्थाने शान्तिरी तेन युतो द्रीं ॥ ६२ ॥ इन्द्रशान्ति बिन्द्वाढ्यो ब्रह्मा लईबिन्दुयुतः कः क्लीं । वसुधार्घीश चन्द्राढ्यो लऊ । बिन्दुयुतो भूधरो वः । ब्लूं ॥ ६३ ॥ सर्गी हंसः सः ॥ ६४ ॥ व्यस्तवर्णेन पञ्चबीजैः पञ्चाङ्गानि सर्वेणास्त्रम् । पञ्चबीजाद्या द्राविण्याद्या

चावल के आँटे की बनी पुतली को, स्त्री को वश में करने के इस मन्त्र का जप कर जिस स्त्री को खिलावे तो वह वश में हो जाती है ॥ ८९-९० ॥

कृष्णपक्ष की चतुर्दशी की रात्रि में समुद्री नमक कौवे के पेट में खिलाकर काले धागे से लपेटकर चिता की अग्नि में उसे जला दे । फिर उस भस्म को इस मन्त्र से एक सहस्त्र बार अभिमन्त्रित करें, तो जिसे वह भस्म दिया जाता है वह दास के समान हो जाता है ॥ ९०-९१ ॥

अब **बाणेशी मन्त्र का उद्धार** कहते हैं -

अनन्त (आकार) इन्द्र अनुस्वार सहित सत्य (दकार) एवं अग्निरकार (अर्थात् द्रां) यह बाणेशी का **प्रथम बीज** है इस बीज मन्त्र में अनन्त के स्थान में शान्ति (ईकार) लगाने से **द्वितीय बीज** पुनः इन्द्र शान्ति एवं बिन्दु सहित ब्रह्मा (क्लीं) यह **तृतीय बीज**, वसुधा अर्घीश, चन्द्रसहिता भूधर अर्थात् ब्लूं यह **चतुर्थ बीज** है । सर्गी हंसः विसर्ग सहित सकार (सः) यह **पाँचवाँ बीज** है । इस प्रकार पञ्च बीजात्मक मन्त्र बनता है ॥ ९२-९३ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'द्रां द्रीं क्लीं ब्लूँ सः' ॥ ९२-९३॥

इस मन्त्र के सम्मोहन ऋषि हैं, गायत्री छन्द है तथा बाणेशी देवता हैं ।

---

१. द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः ।

२. अस्य बाणेशीमन्त्रस्य संमोहनऋषिः गायत्रीछन्दः बाणेशीदेवता ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

बाणेशी व्यस्तवर्णेन मन्त्रेणोक्तं षडङ्गकम् ।
मूर्ध्नि पादे मुखे गुह्ये हृदये पञ्चदेवताः ॥ ६५ ॥
न्यस्तव्याः पञ्चबीजाद्या द्राविणीक्षोभिणी पुनः ।
वशीकरण्याकर्षण्यौ सम्मोहिन्यपि पञ्चमी ॥ ६६ ॥

बाणेशीध्यानम्

उद्यद्भास्वत्सन्निभा रक्तवस्त्रा
नानारत्नालंकृताङ्गी वहन्ती ।
हस्तैः पाशं चांकुशं चापबाणौ
बाणेशी नः कामपूर्तिं विधत्ताम् ॥ ६७ ॥
एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षपञ्चकं तद्दशांशतः ।
हुत्वा बाणेश्वरीं देवीं पूजयेद्विधिपूर्वकम् ॥ ६८ ॥

देवतामूर्द्धादौ न्यस्याः । द्रां द्राविण्यै नमो मूर्ध्नीत्यादि ॥ ६५–६६ ॥ ध्यानमाह – उद्यदिति । बाणांकुशौ दक्षयोः ॥ ६७ ॥ *॥ ६८–१०१ ॥

मन्त्र के बीजों के विलोमक्रम से तदनन्तर समस्त मन्त्र से षडङ्गन्यास करना चाहिए। फिर षडङ्गन्यास के अनन्तर उक्त पाँच बीजों के साथ द्राविणी, क्षोभिणी, वशीकरणी, आकर्षणी एवं सम्मोहिनी इन पाँच देवताओं को क्रमशः सिर पैर मुख गुप्ता एवं हृदय में इस प्रकार न्यास करना चाहिए ॥ ६४-६६ ॥

विमर्श - विनियोग - 'ॐ अस्य श्रीबाणेशीमन्त्रस्य सम्मोहनऋषिर्गायत्रीछन्दः बाणेशीदेवता ममाऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास - सः हृदयाय नमः, ब्लूँ शिरसे स्वाहा, ब्लीं शिखायै वषट्, द्रीं कवचाय हुम्, द्रां नेत्रत्रयाय वौषट् द्रां द्रीं ब्लीं ब्लूँ सः अस्त्राय फट् ।

सर्वाङ्गन्यास - द्रां द्राविण्यै नमः, मूर्ध्नि, द्रीं क्षोभिण्यै नमः, पादयोः,
ब्लीं वशीकरिण्यै नमः, मुखे, ब्लूँ आकर्षिण्यै नमः, गुह्ये,
सः सम्मोहिन्यै नमः, हृदि ॥ ६४-६६ ॥

अब बाणेशी देवी का ध्यान कहते हैं -

बाणेशी का ध्यान उदीयमान सूर्य के समान आभावाली रक्त वस्त्र धारण की हुई, अनेक प्रकार के रत्नजटित आभूषणों से जगमगाती हाथों में क्रमशः पाश, अंकुश, धनुष, एवं बाण धारण की हुई बाणेशी हमारी मनोकामना पूर्ण करें ॥ ६७ ॥

इस प्रकार ध्यान कर प्रतिदिन नियमतः उक्तमन्त्र का ५ लाख जप करना चाहिए । फिर तद्दशांश हवन करना चाहिए । तदनन्तर वाणेशी का विधि पूर्वक पूजन करना चाहिए ॥ ६८ ॥

मोहिनीक्षोभिणीत्रासीस्तम्भिन्याकर्षिणी तथा ।
द्राविण्याह्लादिनी क्लिन्नाक्लेदिनीपीठशक्तयः ॥ ९९ ॥
बाणेशी योगपीठाय नमो मूलादिको मनुः ।
दत्त्वा तेनासनं मन्त्री तस्मिन्देवीं प्रपूजयेत् ॥ १०० ॥
आदौ षडङ्गान्याराध्य दिक्ष्वग्रे द्राविणीमुखाः ।
दलेष्वनङ्गरूपा स्यादनङ्गमदना तथा ॥ १०१ ॥

अनङ्गाद्या कुसुमापरा अनङ्गकुसुमेत्यर्थः ॥ १०२ ॥ *॥ १०३–१०५ ॥

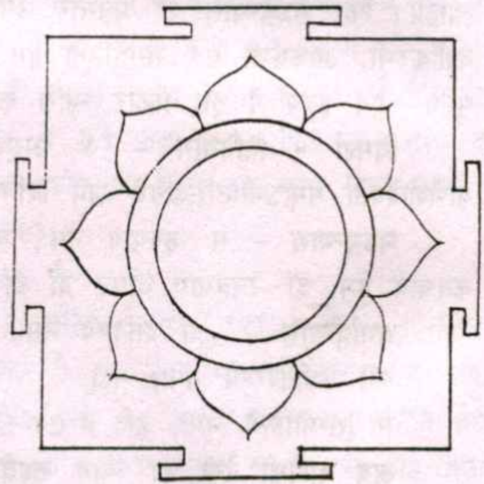
---

१. मोहिनी, २. क्षोभिणी, ३. त्रासी, ४. स्तम्भिनी, ५. आकर्षिणी, ६. द्राविणी, ७. आह्लादिनी, ८. क्लिन्ना तथा ९. क्लेदिनी - ये पीठ की ९ शक्तियाँ कहीं गई हैं ॥ ९९ ॥

'बाणेशीयोगपीठाय नमः' इस मन्त्र के प्रारम्भ में मूलमन्त्र लगाने से पीठ मन्त्र निष्पन्न हो जाता है । प्रारम्भ में पीठ पूजा कर इस मन्त्र से आसन देकर साधक पीठ पूजा करे ॥ १०० ॥

यन्त्र निर्माण - वृत्ताकार कर्णिका अष्टदल एवं भूपुर सहित यन्त्र का निर्माण करें फिर (७.८-१०) के अनुसार पीठ पूजा करें । इसके बाद यन्त्र पर मोहिनी आदि पीठ शक्तियों की तथा मध्य में क्लेदिनी शक्ति की इस प्रकार पूजा करें -

बाणेशीपूजनयन्त्रम्



१ - ॐ मोहिन्यै नमः, पूर्वे
२ - ॐ क्षोभिण्यै नमः, आग्नेये
३ - ॐ त्रास्यै नमः, दक्षिणे
४ - ॐ स्तम्भिन्यै नमः, नैर्ऋत्ये
५ - ॐ आकर्षिण्यै नमः, पश्चिमे
६ - ॐ द्राविण्यै नमः, वायव्ये
७ - ॐ आह्लादिन्यै नमः, उत्तरे
८ - ॐ क्लिन्नायै नमः, ऐशान्ये
९ - ॐ क्लेदिन्यै नमः, मध्ये

तदनन्तर 'द्रां द्रीं क्लीं ब्लूँ सः बाणेशीयोगपीठाय नमः' मन्त्र से बाणेशी देवी को आसन देकर श्लोक ९७ में वर्णित देवी के स्वरूप का ध्यान कर मूलमन्त्र से पुष्पाञ्जलि दे । तदनन्तर निम्न मन्त्र पढ़कर प्रार्थना करनी चाहिए -

'देवेशि भक्तिसुलभे परिवारसमन्विते ।
यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिरा भव' ॥ ९९-१०० ॥

यन्त्र में सर्वप्रथम षडङ्गपूजा कर, तदनन्तर पूर्वादि दिशाओं में १. द्राविणी आदि का एवं २. क्षोभिणी, ३. वशीकरणी, ४. आकर्षणी का तथा मध्य में ५.

अनङ्गमन्मथानङ्गकुसुमामदनापरा ।
अनङ्गाद्या तथानङ्गशिशिरानङ्गमेखला ॥ १०२ ॥
अनङ्गदीपिकेत्यष्टौ शक्राद्या आयुधान्यपि ।
एवं सिद्धं मनुं मन्त्री काम्येषु विनियोजयेत् ॥ १०३ ॥
दधियुक्तैरशोकस्य पुष्पैर्यो दिवसत्रयम् ।
सहस्रं जुहुयात्तस्य वश्याः स्युः प्राणिनोऽखिलाः ॥ १०४ ॥
लाजैर्दधियुतैर्होमान् मन्त्री कन्यामवाप्नुयात् ।
कन्यापि वरमाप्नोति मासद्वितयमध्यतः ॥ १०५ ॥

सम्मोहिनी का बीज मन्त्र के एक एक अक्षर को आदि में लगाकर पूजन करना चाहिए । तदनन्तर अष्टदल में १. अनङ्गरूपा, २. अनङ्गमदना, ३. अनङ्गमन्मथा, ४. अनङ्गकुसुमा, ५. अनङ्गवदना, ६. अनङ्गशिशिरा, ७. अनङ्गमेखला, ८. अनङ्गदीपिका आदि आठ देवियों का, फिर इन्द्रादि दश दिक्पालों का, फिर उनके वज्रादि आयुधों का पूजन करना चाहिए । इस प्रकार मन्त्र सिद्ध हो जाने पर साधक को अन्य काम्य प्रयोगों में उसका विनियोग करना चाहिए ॥ १०१-१०३ ॥

विमर्श - आवरण पूजा - सर्वप्रथम वृत्ताकार कर्णिका में विलोम रीति से

सः हृदयाय नमः, ब्लूँ शिरसे स्वाहा, ब्लीं शिखायै वषट्,
द्रां कवचाय हुम्, द्रां नेत्रत्रयाय वौषट् द्रां द्रीं ब्लीं ब्लूँ सः अस्त्राय फट्

तदनन्तर पूर्वादि दिशाओं में - द्रां द्राविण्यै नमः पूर्वे,
द्रीं क्षोभिण्यै नमः दक्षिणे, ब्लीं वशीकरण्यै नमः पश्चिमे,
ब्लूँ, आकर्षण्यै नमः उत्तर, सः सम्मोहिन्यै नमः अग्रे ।

तदनन्तर अष्टदल में पूर्वादि दिशओं के क्रम से इस प्रकार पूजा करें -

ॐ अनङ्गरूपायै नमः, पूर्वे, ॐ अनङ्गमदनायै नमः आग्नेये,
ॐ अनङ्गमन्मथायै नमः दक्षिणे, ॐ अनङ्गकुसुमायै नमः नैर्ऋत्ये,
ॐ अनङ्गमदनायै नमः पश्चिमे, ॐ अनङ्गशिशिरायै नमः वायव्ये,
ॐ अनङ्गमेखालायै नमः वायव्ये, ॐ अनङ्गदीपिकायै नमः ऐशान्ये ।

तत्पश्चात् भूपुर के भीतर पूर्व आदि दिशाओं में पूववर्त् इन्द्रादि दश दिक्पालों की, तथा भूपुर के बाहर उनके वज्रादि आयुधों की पूर्वावत् पूजा करें । उपर्युक्त रीति से देवी के आवरणों की पूजा कर मूलमन्त्र से यथोपलव्ध उपचारों द्वारा देवी की पूजा कर जप प्रारम्भ करें, पुरश्चरण करने से मन्त्र सिद्ध हो जाने पर साधक काम्य प्रयोगों के लिए उसका उपयोग करे ॥ १०१-१०३ ॥

अव **काम्य प्रयोग** कहते हैं - जो व्यक्ति ३ दिन तक दधिमिश्रित अशोक पुष्पों से प्रतिदिन १००० आहुतियाँ देता है, उसके वश में समस्त प्राणी हो जाते हैं ॥ १०४॥

दही सहित लाजा के होम से उतनी ही संख्या में होम करने से साधक को पत्नी प्राप्त होती है, तथा कन्या भी इसके प्रयोग से दो मास के भीतर उत्तम

गव्याज्येन ससम्पातं हुत्वा साऽष्टशतं नरः।
आज्यं सम्पातितं दद्यात्स्त्रियै विश्राणितश्रियै ॥ १०६ ॥
सा तदाज्यं निजं कान्तं भोजयित्वा वशं नयेत्।
सुगन्धकुसुमैर्हुत्वा धनमाप्नोति वाञ्छितम् ॥ १०७ ॥

कामेशीमन्त्रस्तद्विधानवर्णनम्

मायामन्मथावाग्बीजे ब्लूं स्त्रीं पञ्चाक्षरो मनुः[1] ।
ऋषिश्छन्दश्च पूर्वोक्ते कामेशीदेवतास्मृता[2] ॥ १०८ ॥

ससम्पातम् आहुतिशेषस्य पात्रान्तरे प्रक्षेपः सम्पातः, तद्युतं हुत्वा सम्पाताज्यं स्त्रियै दद्यात् । किम्भूतायै । विश्राणितश्रियै दत्तदक्षिणायै । दक्षिणामादावादाय पश्चाद् आज्यं दद्यादित्यर्थः । अन्यथा फलाभावात् ॥ १०६–१०७ ॥ कामेशीमाह – **मायेति** । माया ह्रीं । मन्मथः क्लीं । वाग्बीजं ऐं । ब्लूं स्त्रींस्वरूपम् ॥ १०८ ॥

वर प्राप्त करती है ॥ १०५ ॥

गोघृत से संपात हुत शेष सुवस्थित धी का प्रोक्षणी पात्र में गिराना पूर्वक १०८ आहुतियाँ देकर शेष संस्रव वाले घृत को दक्षिणा लेकर स्त्री को दे देवें, वह स्त्री उस संस्रव को अपने पति को खिलावे तो पति वश में हो जाता है । सुगन्धित पुष्पों के होम से साधक मनोवाञ्छित फल प्राप्त कर लेता है ॥ १०६-१०७ ॥

अब **कामेशी मन्त्र का उद्धार** कहते हैं -

माया (ह्रीं), मन्मथ (क्लीं), वाग्वीज (ऐं), फिर ब्लूँ, तदनन्तर स्त्रीं लगाने से ५ अक्षरों का कामेशी मन्त्र बनता है । इस मन्त्र के ऋषि और छन्द पूर्वोक्त (द्र० ७.४६) कामेशी देवता हैं ॥ १०८ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ह्रीं क्लीं ऐं ब्लूँ स्त्रीं' ।

विनियोग विधि - अस्य श्रीकामेशीमन्त्रस्य सम्मोहनऋषिर्गायत्रीछन्दः कामेशीदेवता ममाऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

मन्त्र के विलोम क्रम से षडङ्गन्यास करना चाहिए ।

षडङ्गन्यास - ॐ स्त्रीं हृदयाय नमः, ॐ ब्लूँ शिरसे स्वाहा,
ॐ ऐं शिखायै वषट्, ॐ क्लीं कवचाय हुम्,
ॐ ह्रीं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ ह्रीं क्लीं ऐं ब्लूं अस्त्राय फट् ॥ १०८ ॥

---

१. ह्रीं क्लीं ऐं ब्लूँ स्त्रीं । इति पञ्चार्णः । अस्य कामेशीमन्त्रस्य सम्मोहनऋषिः गायत्रीछन्दः कामेशीदेवता ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

२. ऐं क्लीं सौः इति त्रिवर्णः । अस्य बालामन्त्रस्य दक्षिणमूर्तिर्ऋषिः पंक्तिश्छन्दः त्रिपुराबालादेवता मध्यं क्लीं शक्तिः अन्ते सौः बीजं ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

कामेशीध्यानम्

पाशांकुशाविक्षुशरासबाणौ
करैर्वहन्तीमरुणांशुकाढ्यम् ।
उद्यत्पतङ्गाभिरुचिं मनोज्ञां
कामेश्वरीं रत्नचितां प्रणौमि ॥ १०६ ॥

भूतलक्षं जपित्वैनामर्धलक्षं पलाशजैः ।
कुसुमैर्जुहुयात्पीठे पूर्वोक्ते पूजयेदिमाम् ॥ ११० ॥
आदावङ्गानि सम्पूज्य दिक्षु मध्ये मनोभवम् ।
मकरध्वजकन्दर्पो मन्मथं कामदेवकम् ॥ १११ ॥
ततो ह्यनङ्गरूपाद्यां इन्द्राद्यस्त्राणि तद्बहिः ।
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री पूर्वोक्तं योगमाचरेत् ॥ ११२ ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचिते मन्त्रमहोदधौ यक्षिण्यादिमन्त्रकथनं नाम सप्तमस्तरङ्गः ॥ ७ ॥



ध्यानमाह – **पाशांकुशेति** । पाशेक्षुचापो वामयोः । उद्यन्यः सहस्रांशुरादित्यस्तत्समकान्तिरत्नैश्चितां व्याप्तां प्रणौमि प्रकर्षेण स्तौमि ॥ १०६ ॥ भूतलक्षं पञ्चलक्षम् ॥ ११० ॥ कामदेवं मध्ये ॥ १११ ॥ योगं प्रयोगम् ॥ ११२ ॥

इति श्रीमन्महीधरविरचितायां मन्त्रमहोदधिव्याख्यायां नौकायां यक्षिण्यादिकथनं नाम सप्तमस्तरङ्गः ॥ ७ ॥



अब **कामेशी देवी का ध्यान** कहते हैं -

अपने चारों हाथो में क्रमशः पाश, अंकुश, इक्षुचाप एवं बाण धारण की हुई, लाल वर्ण का वस्त्र पहने हुये, उदीयमान सूर्य के समान कान्ति वाली, रत्नों से विभूषित महासुन्दरी कामेश्वरी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १०६ ॥

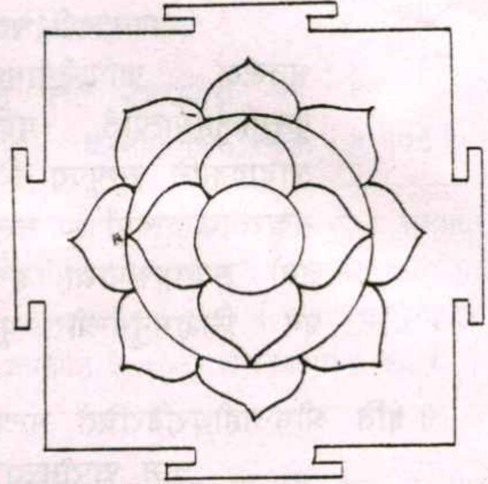
इस मन्त्र का पाँच लाख जप करे । पलाश के फूलों से ५० हजार की संख्या में आहुति देवे तथा पूर्वोक्त पीठ पर इनकी पूजा करे ॥ ११० ॥

फिर पूर्वादि दिशाओं में १. मनोभव, २. मकरध्वज, ३. कन्दर्प, ४. मन्मथ एवं मध्य में ५. कामदेव का पूजन करें ॥ १११ ॥

फिर अनङ्गरूपा आदि शक्तियों का, तदनन्तर इन्द्रादि दश दिक्पालों का, तथा भूपुर के बाहर उनके वज्रादि आयुधों का पूजन करना चाहिए । इस प्रकार मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर साधक पूर्वोक्त काम्य प्रयोगों को करे ॥ ११२ ॥

विमर्श - आवरण पूजा विधि -

कामेशीपूजनयन्त्रम्



वृत्ताकार कर्णिका उसके ऊपर चतुर्दल कमल फिर अष्टदल कमल एवं भूपुर से बने यन्त्र पर कामेशी का पूजन करें ।

१०६ श्लोक में वर्णित कामेशी का ध्यान करें तथा मानसोपचार से पूजन करें । फिर उपर्युक्त पीठ पर श्लोक ७-९९-१०० में बतलायी गई रीति से पीठ पूजन तथा देवी का पूजन कर उनकी अनुज्ञा प्राप्त कर इस प्रकार आवरण पूजा करें । सर्वप्रथम वृत्ताकार कर्णिका में षडङ्गपूजन निम्न रीति से करें । यथा -

ॐ स्त्रीं हृदयाय नमः, ॐ ब्लूँ शिरसे स्वाहा, ॐ ऐं शिखायै वषट्,
ॐ क्लीं कवचाय हुम्, ॐ ह्रीं नेत्रत्रयाय वौषट्,
ॐ ह्रीं क्लीं ऐं ब्लूं स्त्रीं अस्त्राय फट् ।

तदनन्तर चतुर्दल में पूर्व आदि दिशाओं के क्रम से मनोभाव आदि का पूजन इस प्रकार करना चाहिए । यथा -

ॐ मनोभवाय नमः, पूर्वदले, ॐ मकरध्वजाय नमः दक्षिणदिग्दले,
ॐ कन्दर्पाय नमः पश्चिमदिग्दले, ॐ मन्मथाय नमः उत्तरदले,
ॐ कामदेवाय नमः मध्ये,

पुनः ७. २०१-२०३ में बतलायी गई विधि से अनङ्गरूपा आदि ८ शक्तियों का पूजन कर भूपुर के भीतर इन्द्रादि दश दिक्पालों का तथा बाहर उनके वज्रादि आयुधों का पूर्ववत् पूजन कर पुष्पाञ्जलि समर्पित करें । फिर कामेशी देवी का यथोपलब्ध उपचारों से पूजन कर जप प्रारम्भ करें ॥ १११-११२ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमन्महीधर विरचित मन्त्रमहोदधि के सप्तम तरङ्ग की महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत 'अरित्र' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ ७ ॥



अथ अष्टमः तरङ्गः

अथ बालां प्रवक्ष्यामि मन्त्री संसेव्य यां द्रुतम् ।
बृहस्पतिः कुबेरश्च जायते विद्यया धनैः ॥ १ ॥

बालात्रिपुरामन्त्रकथनम्

दामोदरश्चन्द्रयुत आद्यं वाग्बीजमीरितम् ।
विधिर्वासवशान्तीन्दुयुक्तं कामाभिधं परम् ॥ २ ॥
संकर्षणविसर्गाढ्योभृगुस्तार्तीयमीरितम् ।
त्रिबीजीगदिता बाला[१] जगत्त्रितयमोहिनी ॥ ३ ॥

---

* नौका *

॥ १ ॥ बालामन्त्रमाह – **दामोदर** इति । दामोदर ऐ । चन्द्रयुतो बिन्दुयुतः ऐं । वागिति संज्ञास्य । विधिः कः । वासवः शान्तीन्दुयुतः लईबिन्दुयुतः क्लीं । भृगुः सः । संकर्षण औ । तेन विसर्गेण च युतः सौः ॥ २–३ ॥

---

* अरित्र *

अब बाला के विषय में बतलाता हूँ जिनकी उपासना कर साधक शीघ्र ही विद्या में बृहस्पति के समान तथा धन में कुबेर के समान हो जाता है ॥ १ ॥

अब बाला मन्त्र का उद्धार कहते हैं -

चन्द्र (अनुस्वार) के सहित दामोदर (ऐ) अर्थात् ऐं यह प्रथम वाग्बीज, वासव (ल), शान्ति (ई) तथा इन्द्र (अनुस्वार) से युक्त विधि (क्) अर्थात् क्लीं यह दूसरा कामबीज सङ्कर्षण (औ) तथा विसर्ग युक्त भृगु (सः) अर्थात् सौः यह तृतीय बीज इस प्रकार **'ऐं क्लीं सौः'** इन तीनों बीजों से युक्त बाला का मन्त्र है जो तीनों लोकों का मोहन करने वाली है ॥ २-३ ॥

---

१. 'ऐं क्लीं सौः' – इति त्रिवर्णः ।

दक्षिणामूर्तिपंक्ती च [1] मुनिश्छन्दः क्रमात्स्मृतम् ।
देवता त्रिपुराबाला मध्यान्ते शक्तिबीजके ॥ ४ ॥

न्यासविधिवर्णनम्

नाभेरापादमाद्यं तु नाभ्यन्तं हृदयात् परम् ।
मूर्ध्निहृदन्तं तार्तीयं क्रमाद् देहे प्रविन्यसेत् ॥ ५ ॥
आद्यं वामकरे दक्षकरेऽन्यदुभयोः परम् ।
पुनर्बीजत्रयं न्यस्येन्मूर्ध्नि गुह्ये च वक्षसि ॥ ६ ॥
नवयोन्यभिधे न्यासे नवकृत्वो मनुं न्यसेत् ।
कर्णयोश्चिबुके न्यस्येच्छंखयोर्मुखपंकजे ॥ ७ ॥

मध्यान्ते मध्यं शक्तिः अन्ते बीजम् ॥ ४ ॥ नाभेः पादान्तमाद्यं बीजं न्यस्येत् । एवमग्रेपि ॥ ५ ॥ दक्षकरेऽन्यदद्वितीयम् । परं तृतीयं तूभयोः करयोर्न्यस्येत् ॥ ६ ॥ कर्णौ चिबुकमित्याद्यवयवानां त्रिकोणाकारत्वाद्योनिन्यासोऽयम् ॥ ७–६ ॥

इस मन्त्र के दक्षिणामूर्ति ऋषि, पंक्ति छन्द एवं त्रिपुरा बाला देवता हैं । मन्त्र का मध्य वर्ण (क्लीं) शक्ति तथा अन्तिम (सौः) 'बीज' कहा गया है ॥ ४ ॥

विमर्श – विनियोग - 'अस्य श्रीत्रिपुराबालामन्त्रस्य दक्षिणामूर्त्तिर्ऋषिः पंक्तिश्छन्दः त्रिपुराबालादेवता क्लीं शक्तिः सौः बीजं ममाऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ॥ ४ ॥

शरीर के नाभि से लेकर पाद पर्यन्त प्रथम बीज का, हृदय से लेकर नाभिपर्यन्त द्वितीय बीज का, तथा शिर से आरम्भ कर हृदय पर्यन्त तृतीय बीज का न्यास करना चाहिए ॥ ५ ॥

इसके बाद बायें हाथ में प्रथम बीज का, द्वितीय हाथ में द्वितीय बीज का, तदनन्तर दोनों हाथों में तृतीय बीज का न्यास करना चाहिए । फिर मस्तक, गुह्यस्थान एवं वक्षःस्थल में क्रमशः एक एक के क्रम से तीनों बीजों का न्यास करना चाहिए ॥ ६ ॥

विमर्श – प्रथम न्यास विधि - ॐ ऐं नमः, नाभेः पादान्तम्,
ॐ क्लीं नमः, हृदयान्नाभिपर्यन्तम्, ॐ सौः नमः, मूर्ध्नि हृदयान्तम् ।

द्वितीय न्यास विधि - ॐ ऐं नमः, वामकरे,
ॐ क्लीं नमः, दक्षिण करे, ॐ सौः नमः, उभयोः करयोः ।

तृतीय न्यास विधि - ॐ ऐं नमः, मूर्ध्नि,
ॐ क्लीं नमः, गुह्ये, ॐ सौः नमः, वक्षसि ।

अब **नवयोनि संज्ञक न्यास** कहते हैं - इस न्यास में एक एक मन्त्र को नौ बार न्यस्त करना चाहिए । १. दोनों कान

---

१. अस्य श्रीबालमन्त्रस्य दक्षिणामूर्तिर्ऋषिः पंक्तिश्छन्दः त्रिपुराबालादेवता मध्यं क्लीं शक्तिः अन्ते सौः बीजं ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

नेत्रयोर्नासिकायां च स्कन्धयोरुदरे तथा ।
न्यसेत्कूर्परयोर्नाभौ जानुनोर्लिङ्गमस्तके ॥ ८ ॥
पादयोरपि गुह्ये च पार्श्वयोर्हृदये पुनः ।
स्तनयोः कण्ठदेशे च वामाङ्गादि प्रविन्यसेत् ॥ ६ ॥
वाग्भवाद्या रतिं गुह्ये प्रीतिमन्त्यादिका हृदि ।
कामबीजादिकां न्यस्येद् भ्रूमध्ये तु मनोभवा ॥ १० ॥
पुनर्वाङ्गत्यकामाद्यास्तिस्र एष्वेव विन्यसेत् ।
अमृतेशीं च योगेशीं विश्वयोनिं तृतीयकाम् ॥ ११ ॥

वागिति । ऐं रत्यै नमो गुह्ये । अन्त्यादिकाम् । सौः प्रीत्यै नमो हृदि । क्लीं मनोभवायै नमो भ्रूमध्ये ॥ १० ॥ पुनर्वाक् । अन्त्यकामाद्या अमृतेशीयोगेशी–विश्वयोनी एष्वेवगुह्यहृद्भ्रूमध्येषु न्यसेत् । ऐं अमृतेश्यै नम इत्यादि ॥ ११ ॥

एवं दोनों चिबुक, २. दोनों गण्ड एवं मुख, ३. दोनों नेत्र एवं नासिका, ४. दोनों कन्धे एवं उदर, ५. दोनों कूर्पर एवं नाभि, ६. दोनों जानु एवं लिङ्ग, ७. दोनों पैर एवं गुप्ताङ्ग, ८. दोनों पार्श्व एवं हृदय, तदनन्तर ६. दोनों स्तन एवं कण्ठ में न्यास करें । इसमें वामाङ्गक्रम से न्यास करना चाहिए ॥ ७-६ ॥

विमर्श - नव योनि न्यास विधि इस प्रकार है -

ॐ ऐं नमः, वामकर्णे	ॐ क्लीं नमः, दक्षिण कर्णे	ॐ सौः नमः, चिबुके
ॐ ऐं नमः, वाम चिबुके	ॐ क्लीं नमः, दक्षिण चिबुके	ॐ सौः नमः, मुखे
ॐ ऐं नमः, वाम नेत्रे	ॐ क्लीं नमः, दक्षिण नेत्रे	ॐ सौः नमः, नासिकायाम्
ॐ ऐं नमः, वाम स्कन्धे	ॐ क्लीं नमः, दक्षिण स्कन्धे	ॐ सौः नमः, उदरे
ॐ ऐं नमः, वाम कूर्परे	ॐ क्लीं नमः, दक्षिण कूर्परे	ॐ सौः नमः, नाभौ
ॐ ऐं नमः, वाम जानौ	ॐ क्लीं नमः, दक्षिण जानौ	ॐ सौः नमः, लिङ्गोपरि
ॐ ऐं नमः, वाम पादे	ॐ क्लीं नमः, दक्षिण पादे	ॐ सौः नमः, गुह्ये
ॐ ऐं नमः, वाम पार्श्वे	ॐ क्लीं नमः, दक्षिण पार्श्वे	ॐ सौः नमः, हृदि
ॐ ऐं नमः, वाम स्तने	ॐ क्लीं नमः, दक्षिण स्तने	ॐ सौः नमः, कण्ठे

अब **रतिन्यास** कहते हैं -

वाग्भव बीज सहित रति को मूलाधार में, अन्तिम बीज सहित प्रीति को हृदय में, कामबीज सहित मनोभवा को भ्रूमध्य में न्यस्त करना चाहिए । इसी प्रकार वाग काम को आदि में कर अन्त्य बीज कर अमेतंशी योगिनी तथा विश्वयोनि को न्यास करना चाहिए ॥ १०-११ ॥

विमर्श - रतिन्यास विधि इस प्रकार है -

ऐं रत्यै नमः, गुह्ये, ॐ सौः प्रीत्यै नमः, हृदि,
ॐ क्लीं मनोभवायै नमः, भ्रूमध्ये, ॐ ऐं अमृतेश्यै नमः, गुह्ये,

मूर्ध्नि[1] वक्त्रे हृदि न्यस्येद् गुह्ये चरणयोरपि।
कामेशीपञ्चबीजाद्यान्स्मरान् मनोभवादिकान् ॥ १२ ॥
शिरः पन्मुखगुह्येषु हृदये पञ्चदेवताः।
द्राविण्याद्याः क्रमान् न्यस्येद् बाणेशीबीजपूर्विकाः ॥ १३ ॥
तार्तीयवाग्मध्यगेन कामेन स्यात् षडङ्ककम्।
षड्दीर्घस्वरयुक्तेन ततो देवीं विचिन्तयेत् ॥ १४ ॥

मूर्ध्नीति । कामेशी पञ्चबीजानि ह्रीं क्लीं ऐं ब्लूं स्त्रीमित्युक्तानि । तदाद्यान्मनोभवादिकान् । मनोभव मकरध्वजकन्दर्पमन्मथकामदेवाख्यान् स्मरान् शिरोमुखहृद्गुह्यपत्सु न्यसेत् । ह्रीं मनोभवाय नम इत्यादि ॥ १२ ॥ **शिर इति** । बाणेशीबीजानि । द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं स इति । तत्पूर्वा द्राविण्याद्या द्राविणी क्षोभणी वशीकरण्याकर्षणी सम्मोहनी संज्ञाः बाणदेवताः शिरः पादमुखगुह्यहृत्सु न्यसेत् । द्रां द्राविण्यै नमः शिरसीत्यादि ॥ १३ ॥ षडङ्गमाह – **तार्तीयेति** ॥ तार्तीयं सौः । वाक् ऐं । तन्मध्यगतेन दीर्घाढ्येन कामेन षडङ्गम् । सौः क्लीं ऐं हृत् । सौ, क्लीं ऐं शिरः । सौः क्लूं ऐं शिखेत्यादि ॥ १४ ॥

ॐ क्लीं योगेश्यै नमः, हृदि, ॐ सौः विश्वयोन्यै नमः, भ्रूमध्ये ॥ १०-११ ॥

अब **मूर्तिन्यास** कहते हैं -

रत्यादिन्यास के बाद कामेशी के पाँचों बीजों (द्र० - ७. १०८) के साथ मनोभव आदि पाँच कामदेवों का न्यास क्रमशः शिर, मुख, हृदय, गुप्ताङ्ग और पैरों पर करना चाहिए ॥ १२ ॥

विमर्श – मूर्तिन्यास की विधि इस प्रकार है - ॐ ह्रीं मनोभवाय नमः, शिरसि,
ॐ क्लीं मकरध्वजाय नमः, गुह्ये, ॐ ऐं कन्दर्पाय नमः, हृदि,
ॐ ब्लूं मन्मथाय नमः, गुह्ये, ॐ स्त्रीं कामदेवाय नमः, चरणयोः ॥ १२ ॥

अब **कामेशी का न्यास** कहकर बाणेशी के न्यास का प्रकार कहते हैं -

बाणेशी के बीजों को प्रारम्भ में लगाकर द्राविणी आदि का क्रमशः शिर, पैर, मुख, गुप्ताङ्ग एवं हृदय में न्यास करे ॥ १३ ॥

विमर्श – बाणन्यास विधि इस प्रकार है -
द्रां द्राविण्यै नमः, शिरसि, द्रीं क्षोभिण्यै नमः, पादयोः,
क्लीं वशीकरण्यै नमः, मुखे, ब्लूं आकर्षण्यै नमः, गुह्ये,
सः सम्मोहन्यै नमः, हृदि ॥ १३ ॥

अब **षडङ्गन्यास** कहते हैं - तार्तीय (सौः) वाग्भव (ऐं) इन दोनों के मध्य में ६ दीर्घ संयुक्त काम बीज (क्लीं) से षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ १४ ॥

---

१. ह्रीं मनोभवाय नमः शिरसि । ह्रीं मकरध्वजाय नमः मुखे । ऐं कन्दर्पाय नमः हृदि । ब्लूं मन्मथाय नमः गुह्ये । स्त्रीं कामदेवाय नमः चरणयोः ।

ध्यानकथनम्

रक्ताम्बरां चन्द्रकलावतंसां
समुद्यदादित्यनिभां त्रिनेत्राम् ।
विद्याक्षमालाभयदानहस्तां
ध्यायामि बालामरुणाम्बुजस्थाम् ॥ १५ ॥
लक्षत्रयं जपेन्मन्त्रं दशांशं किंशुकोद्भवैः ।
पुष्पैर्हयारिजैर्वापि जुहुयान्मधुरान्वितः ॥ १६ ॥

पूजायन्त्रवर्णनम्

नवयोन्यात्मकं यन्त्रं बहिरष्टदलावृतम् ।
भूगृहेण पुनर्वीतं पूजनाय लिखेत् सुधीः ॥ १७ ॥

ध्यानमाह – **रक्तेति** । विद्याभये वामयोः । अन्ययोरन्ये ॥ १५ ॥ *॥ १६ ॥ पूजायन्त्रमाह – **नवेति** । स्पष्टम् ॥ १७–२० ॥

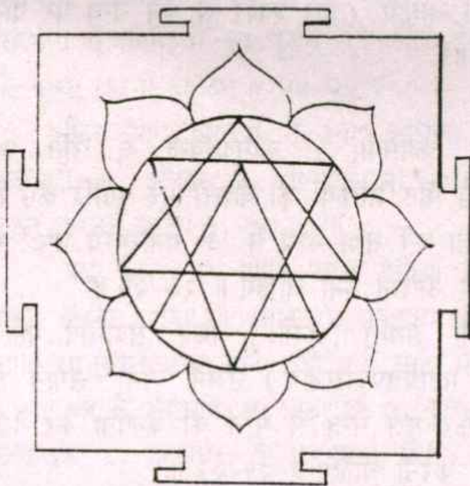
विमर्श – **षडङ्गन्यास विधि** इस प्रकार है –

सौः क्लां ऐं हृदयाय नमः, सौः क्लीं ऐं शिरसे स्वाहा,
सौः क्लूं ऐं शिखायै वषट्, सौः क्लैं ऐं कवचाय हुम्,
सौः क्लौं ऐं नेत्रत्रयाय वौषट्, सौः क्लः ऐं अस्त्राय फट् ॥ १४ ॥

अब **बाला देवी का ध्यान** कहते हैं –

लाल वस्त्र वाली मस्तक पर चन्द्रकला से सुशोभित, उदीयमान सूर्य के समान आभा से युक्त चारों हाथों में क्रमशः पुस्तक, अक्षमाला, अभय एवं वरद मुद्रा धारण की हुई रक्त कमल पर विराजमान बाला देवी का मैं ध्यान करता हूँ ॥ १५ ॥

बालापूजनयन्त्रम्



इस मन्त्र का तीन लाख जप करना चाहिए तथा मधु सहित पलाश या कनेर के पुष्पों से दशांश होम करना चाहिए ॥ १६ ॥

अब **बाला यन्त्र निर्माण विधि** कहते हैं – विद्वान् साधक नव योनि वाले यन्त्र के बाहर अष्टदल को भूपुर से वेष्टित कर पूजा के लिए यन्त्र लिखे ।

मध्य योनि में तृतीय (सौः) बीज तथा शेष आठ योनियों में काम बीज (क्लीं) केशरों में स्वर एवं आठ दलों में आठ वर्ग लिखना चाहिए । दलों के अग्रभाग में त्रिशूलादि पद्म आदि लिखकर अष्टदल के

मध्ययोनौ तु तार्तीयमष्टयोनिषु मन्मथम् ।
केसरेषु स्वरान्न्यस्येद्वर्गानष्टौ दलेष्वपि ॥ १८ ॥
दलाग्रेषु त्रिशूलानि पद्मं मातृकयावृतम् ।
एवं विलिखिते यन्त्रे पीठशक्तीः प्रपूजयेत् ॥ १९ ॥
इच्छाज्ञानक्रिया चैव कामिनी कामदायिनी ।
रतीरतिप्रियानन्दामनोन्मन्यपि चान्तिमा ॥ २० ॥
पीठशक्तीरिमा इष्ट्वा पीठं तं मनुना दिशेत् ।

पीठमन्त्रकथनम्

व्योमपूर्वं तु तार्तीयं सदाशिवमहापदम् ॥ २१ ॥
प्रेतपद्मासनं ङेन्तं नमोन्तः पीठमन्त्रकः ।
षोडशार्णस्ततो मूर्त्तौ क्लृप्तायां मूलमन्त्रतः ॥ २२ ॥
आवाह्य पूजयेद् देवीमुपचारैः पृथग्विधैः ।
देवीमिष्ट्वा मध्ययोनौ त्रिकोणे रतिपूर्विकाः ॥ २३ ॥
वामकोणे रतिं दक्षे प्रीतिमग्रे मनोभवाम् ।

अङ्गपूजाकथनम्

योन्यन्तर्वह्निकोणादावङ्गानि परिपूजयेत् ॥ २४ ॥

पीठमन्त्रमाह – **व्योम** हः तत्पूर्वं तृतीयम् । ह्सौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नम इति ॥ २१–२३ ॥ अङ्गपूजामाह – **योनीति** । मध्ये योनिमध्ये एवाग्निनिर्ऋति–वाय्वीशानेषु हृच्छिरः शिखावर्माणि सम्पूज्याग्नेयादि त्रिदिक्ष्वस्त्रं यजेत् ॥ २४ ॥

चारों ओर मातृका (वर्णमाला) से घेर देना चाहिए । इस प्रकार से बने यन्त्र पर पीठ शक्तियों का पूजन करना चाहिए ॥ १७-१९ ॥

अब **पीठशक्तियाँ** कहते हैं -

१. इच्छा, २. ज्ञान, ३. क्रिया, ४. कामिनी, ५. कामदायिनी, ६. रति, ७. रतिप्रिया, ८. नन्दा एवं ९. मनोन्मनी इन नौ पीठ शक्तियों की केशरों पर पूर्वादि क्रम से चतुर्थ्यन्त नमः लगाकर आठ दिशाओं में पूजा करें तथा मध्य में 'ॐ मनोन्मन्यै नमः' से पूजा करें - पूजा कर पीठ मन्त्र से देवी को आसन देना चाहिए ॥ २०-२१ ॥

व्योम (ह्) पूर्वक तृतीय बीज 'सौ' अर्थात् (ह्सौः), फिर 'सदाशिव महा', तदनन्तर चतुर्थ्यन्त प्रेतपद्मासन (सदाशिव महाप्रेतपद्मासनाय) उसमें 'नमः' लगाने से सोलह अक्षरों का पीठ मन्त्र बनता है । फिर मूल मन्त्र से मूर्त्ति की कल्पना कर देवी की आवाहनादि द्वारा पृथक् विधान से पूजा करनी चाहिए ॥ २१-२३ ॥

देवी की पूजा के अनन्तर मध्य योनि के त्रिकोण में रति आदि का पूजन इस प्रकार करना चाहिए । वामकोण मे रति दक्षिण में प्रीति तथा अग्रभाग में मनोभवा का

मध्ययोनेर्बहिः पूर्वा दिक्षु चाग्रे स्मरानपि।
बाणदेवीस्तद्वदेवं शक्तीरष्टसु योनिषु ॥ २५ ॥
सुभगाख्या भगापश्चात् तृतीयाभगसर्पिणी।
भगमाली तथानङ्गानङ्गाद्याकुसुमापरा ॥ २६ ॥
अनङ्गमेखलानङ्गमदनेत्यष्टशक्तयः ।
पद्मकेसरगाब्राह्मीमुखाः पत्रेषु भैरवाः ॥ २७ ॥
दीर्घाद्यामातरः पूज्या ह्रस्वाद्याश्चाष्टभैरवाः।
दलाग्रेष्वष्टपीठानि कामरूपाख्यमादिमम् ॥ २८ ॥
मलयं कोल्लगिर्य्याख्यं चौहाराख्यं कुलान्तकम्।
जालन्धरं तथोड्यानं कोढ्ढपीठमथाष्टमम् ॥ २९ ॥
भूगृहे दशदिक्ष्वर्चेद्धेतुकं त्रिपुरान्तकम्।
वेतालमग्निजिह्वं च कालान्तककपालिनौ ॥ ३० ॥

मध्ययोनेर्बहिर्भागे दिक्षुचतुरः– पञ्चममग्रे एवं कामान् यजेत् । बाणदेवी द्राविण्याद्यास्तद्वत् कामवत् । दिक्ष्वग्रे च शक्तीः सुभगाद्या दीर्घाद्या मातरः । आं ब्राह्म्यै नम इत्यादि । ह्रस्वाद्या भैरवाः अं असिताङ्गाय नम इत्यादि ॥ २५ ॥ *॥ २८–२९ ॥ दशदिक्षु हेतुकादयो गणाः ॥ ३० ॥

पूजन करना चाहिए ॥ २३-२४ ॥

अब **अङ्गपूजा** कहते हैं - मध्य योनि के मध्य में एवं अग्निनिर्ऋति वायव्य ईशान कोण में क्रमशः हृदय, शिर, शिखा तथा कवच का पूजन कर पुनः आग्नेय, वायव्य और ईशान में अस्त्र का पूजन करना चाहिए । मध्य योनि के बाहर पूर्वादि दिशाओं में एवं अग्रभाग में कामदेवों का पूजन करे और इसी प्रकार बाणदेवियों (द्राविणी आदि) का भी पूजन करना चाहिए ॥ २४-२५ ॥

फिर आठ योनियों में आठ शक्तियों १. सुभगा, २. भगा, ३. भगसर्पिणी, ४. भगमाली, ५. अनङ्गा, ६. अनङ्गकुसुमा, ७. अनङ्गमेखला एवं ८. अनङ्गमदना आदि का पूजन करना चाहिए ॥ २५-२७ ॥

पद्म केसर पर ब्राह्मी आदि देवियों का, तथा पत्रों पर असिताङ्गादि भैरवों का, पूजन करना चाहिए । आदि में अनुस्वार तथा दीर्घ स्वर लगाकर मातृकाओं का, तथा आदि सानुस्वार ह्रस्व स्वर लगा कर आठ भैरवों का पूजन करना चाहिए ॥ २७-२८ ॥

दल के अग्रभाग पर आठ पीठ १. कामरूप, २. मलय, ३. कोल्लगिरि, ४. चोहार, ५. कुलान्तक, ६. जालन्धर, ७. उड्डयान, एवं ८. कोट्ट का पूजन करना चाहिए ॥ २८-२९ ॥

भूपुर के दश दिशाओं में १. हेतुक, २. त्रिपुरान्तक, ३. वेताल, ४. अग्निजिह्वा, ५. कालान्तक, ६. कपाली, ७. एकपाद, ८. भीमरूप, ९. मलय एवं १०. हाटकेश्वर का

एकपादं भीमरूपं मलयं हाटकेश्वरम्।
शक्राद्यानायुधैः सार्द्धं स्वस्वदिक्षु समर्चयेत्॥ ३१॥
तद्बहिर्दिक्षु बटुकं योगिनीक्षेत्रपालकम्।
गणेशं विदिशास्वर्चेद् वसून् सूर्याञ्छिवांस्ततः॥ ३२॥
भूतांश्चेत्थं भजेद् बालानीशः स्याद् धनविद्ययोः।

शक्राद्यान् स्वस्वदिक्ष्वित्युक्तेः पूर्वावरणानि कल्पितदिक्ष्वेव । एवं सर्वत्र॥ ३१॥ विदिशासु । अग्न्यादिषु वस्वादयः । वसुभ्यो नम इत्यादि॥ ३३॥

पूजन करना चाहिए॥ ३०-३१॥

इसी प्रकार वज्रादि आयुधों के साथ इन्द्रादि दश दिक्पालों का अपनी अपनी दिशाओं में पूजन करना चाहिए । इसके बाद दिशाओं में वटुक, योगिनी, क्षेत्रपाल एवं गणेश का तथा चारों कोणों में वसु, सूर्य, शिवा एवं भूतों का पूजन करना चाहिए । इस प्रकार धन और विद्या की स्वामिनी बाला की पूजा करनी चाहिए॥ ३१-३३॥

विमर्श - आवरण पूजा विधि - पीठ की पूजा कर मूल मन्त्र से देवी की मूर्ति की कल्पना कर ध्यान करें । तदनन्तर आवाहनादि उपचार से आरम्भ कर पुष्पाञ्जलि दान पूर्वक उनकी पूजा करें । तदनन्तर सर्वप्रथम मध्ययोनि में त्रिकोण में रति आदि की पूजा करें । यथा - ऐं रत्यै नमः, वामकोणे, क्लीं प्रीत्यै नमः, दक्षिण कोणे,
सौः मनोभवायै नमः, अग्रे ।

पुनः मध्य योनि के आग्नेय कोण से प्रारम्भ कर ईशान कोण तक मध्य में एवं दिशाओं में षडङ्ग पूजा इस प्रकार करें -

सौंः क्लां ऐं हृदयाय नमः, सौः क्लीं ऐं शिरसे स्वाहा,
सौः क्लूं ऐं शिखायै वषट्, सौः क्लैं ऐं कवचाय हुम्,
सौः क्लौं ऐं नेत्रत्रयाय वौषट् पुनः सौः क्लः ऐं अस्त्राय फट् (चतुःकोणेषु)

तत्पश्चात् मध्य योनि के बाहर पूर्वादि चारों दिशाओं में तथा अग्रभाग में इस प्रकार पूजा करें - ह्रीं कामाया नमः, क्लीं मन्मथाय नमः,
ऐं कन्दर्पाय नमः, ब्लूं मकरध्वजाय नमः, स्त्रीं मीनकेतने नमः,

पुनः उन्हीं स्थानो में द्राविणी आदि देवियों की पूजा करे -
द्रां द्राविण्यै नमः, द्रीं क्षोभिण्यै नमः, क्लीं वशीकरण्यै नमः,
ब्लूं आकर्षण्यै नमः, सः सम्मोहन्यै नमः, ।

तदनन्तर अष्टयोनियों में सुभगा आदि आठ शक्तियों की पूजा करे -
१ - ॐ ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः सुभगायै नमः,
२ - ॐ ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः भगायै नमः,
३ - ॐ ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः भगसर्पिण्यै नमः,
४ - ॐ ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः भगमालिन्यै नमः,

५ - ॐ ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः अनङ्गायै नमः,
६ - ॐ ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः अनङ्गकुसुमायै नमः,
७ - ॐ ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः अनङ्गमेखलायै नमः,
८ - ॐ ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः अनङ्गमदनायै नमः,

तदनन्तर पद्मकेशरों में पूर्वादि दिशाओं के क्रम से ब्राह्मी आदि मातृकाओं की -
ॐ आं ब्राह्म्यै नमः, ॐ ईं माहेश्वर्यै नमः ॐ ऊं कौमार्यै नमः
ॐ ॠं वैष्णव्यै नमः ॐ लॄं वाराह्यै नमः ॐ ऐं इन्द्राण्यै नमः,
ॐ औं चामुण्डायै नमः, ॐ अः महालक्ष्म्यै नमः,

तत्पश्चात् दलों में उसी प्रकार पूर्वादि क्रम से असिताङ्गादि अष्ट भैरवों का -
१. ॐ अं असिताङ्गभैरवाय नमः, २. ॐ इं रुरुभैरवाय नमः,
३. ॐ उं चण्डभैरवाय नमः, ४. ॐ ऋं क्रोधभैरवाय नमः,
५. ॐ लृँ उन्मत्तभैरवाय नमः, ६. ॐ एं कपालीभैरवाय नमः,
७. ॐ ओं भीषणभैरवाय नमः, ८. ॐ अः संहारभैरवाय नमः ।

इसके बाद दलों के अग्रभाग में पूर्वादि क्रम से आठ पीठों का -
१ - ॐ कामरूपपीठाय नमः, २ - ॐ मलयगिरिपीठाय नमः,
३ - ॐ कोल्लागिरिपीठाय नमः, ४ - ॐ चौहारपीठाय नमः,
५ - ॐ कुलान्तकपीठाय नमः ६ - ॐ जालन्धरपीठाय नमः,
७ - ॐ उड्डयानपीठाय नमः, ८ - ॐ कोट्टपीठाय नमः,

इसके पश्चात् भूपुर में पूर्व आदि दिशाओं के क्रम से दश दिशाओं मे हेतुक आदि दश गणों का यथा - ॐ हेतुकाय नमः, ॐ त्रिपुरान्तकाय नमः,
ॐ वेतालाय नमः, ॐ अग्निजिह्वाय नमः, ॐ कालान्तकाय नमः,
ॐ कपालिने नमः, ॐ एकपादाय नमः, ॐ भीमरूपाय नमः,
ॐ मलयाय नमः, ॐ हाटकेश्वराय नमः, ।

पुनः भूपुर के पूर्वादि दिशाओं में वज्रादि आयुधों के सहित इन्द्रादि दश दिक्पालों का यथा - ॐ वज्रसहिताय इन्द्राय नमः, पूर्वे, ॐ शक्तिसहिताय अग्नये नमः, आग्नेये,
ॐ दण्डसहिताय यमाय नमः, दक्षिणे, ॐ खड्गसहिताय निर्ऋतये नमः, नैर्ऋत्ये,
ॐ पाशसहिताय वरुणाय नमः, पश्चिमे, ॐ अंकुशसहिताय वायवे नमः, वायव्ये,
ॐ गदासहिताय सोमाय नमः उत्तरे ॐ शूलसहिताय ईशानाय नमः, ऐशान्ये,
ॐ पद्मसहिताय ब्रह्मणे नमः, पूर्वेशानयोर्मध्ये,
ॐ चक्रसहिताय अनन्ताय नमः, निर्ऋति पश्चिमयोर्मध्ये ।

भूपुर के बाहर पूर्वादिदिशाओं के क्रम से बटुक आदि का
ॐ बं बटुकाय नमः, पूर्वे, ॐ क्षं क्षेत्रपालाय नमः, दक्षिणे,
ॐ यं योगिनीभ्यो नमः, पश्चिमे, ॐ गं गणपतये नमः, उत्तरे,
पुनः ॐ वसुभ्यो नमः, आग्नेये, ॐ शिवाभ्यो नमः, नैर्ऋत्ये,
ॐ आदित्येभ्यो नमः, वायव्ये, ॐ भूतेभ्यो नमः, ऐशान्ये ।

फलानुसारेण प्रयोगकल्पना

रक्ताम्भोजैर्हुतेनार्यो वश्याः स्युः सर्षपैर्नृपाः ॥ ३३ ॥
नन्द्यावर्तराजवृक्षैः कुन्दैः पाटलचम्पकैः ।
पुष्पैर्बिल्वफलैर्वापि होमाल्लक्ष्मीः स्थिरा भवेत् ॥ ३४ ॥
अपमृत्युं जयेन्मन्त्री गुडूच्यादुग्धयुक्तया ।
पयोक्तदूर्वाहोमात्तु नीरोगायुः समश्नुते ॥ ३५ ॥
ज्ञानं कवित्वं लभते चन्द्रागुरुपुरैर्हुतैः ।
द्विजेन्द्रा वश्यतां यान्ति कुसुमैरपराजितैः ॥ ३६ ॥
कल्हारैः क्षत्रियाः कर्णिकारजैः क्षितिपाङ्गनाः ।
कोरण्टकुसुमैर्वैश्याः पादजाः पाटलैर्हुतैः ॥ ३७ ॥
पालाशपुष्पैर्वाक्सिद्धिरन्नाप्तिर्भक्तहोमतः ।
सारघक्षीरदध्यक्ताल्लाँजान् हुत्वा रुजो जयेत् ॥ ३८ ॥

नन्द्यावर्तस्तगरः ॥ ३४–३५ ॥ चन्द्रः कर्पूरः ॥ पुरं गुग्गुलु ॥ अपराजिता योन्याकारपुष्पवल्ली तदीयान्यपराजितानि तैः ॥ ३६–३७ ॥ सारघं मधु ॥ ३८ ॥

इस प्रकार आवरण पूजा कर पुष्पाञ्जलि समर्पित करें । तदनन्तर देवी की षोडशोपचार से पूजा करनी चाहिए । नैवेद्य समर्पित करते समय श्री विद्यापद्धति के अनुसार चारो बलि उसी समय देनी चाहिए । इस विधि से पूजन कर यथाशक्ति प्रतिदिन जप करना चाहिए ॥ २३-३३ ॥

अब **काम्य प्रयोग** कहते हैं - लाल कमलों के होम से स्त्रियाँ वश में हो जाती हैं तथा सरसों के होम से राजा वश में हो जाते हैं ॥ ३३ ॥

तगर, राजवृक्ष, कुन्द, गुलाब या चम्पा के फूलों से अथवा विल्व फलों से होम करने से लक्ष्मी स्थिर रहती हैं ॥ ३४ ॥

दूध वाली गुडूची होम करने से साधक अपमृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेता है । दूध में डुबोई गई दूर्वा के होम से साधक निरोग रहकर अपनी आयु व्यतीत करता है ॥ ३५ ॥

चन्दन, अगर एवं गुग्गुल के होम से ज्ञान एवं कवित्वशक्ति प्राप्त होती है तथा अपराजिता नामक लता के पुष्पों के होम से श्रेष्ठ ब्राह्मण वश में हो जाते हैं । कल्हार पुष्पों के हवन से क्षत्रिय तथा कर्णिकार के होम से क्षत्रियों की स्त्रियाँ, कुरण्ट पुष्पों के होम से वैश्य तथा गुलाब के होम से शूद्र वश में हो जाते हैं ॥ ३६-३७ ॥

पलाश पुष्प के होम से वाक्सिद्धि तथा भात के होम से अन्न प्राप्ति होती है । मधु, दूध एवं दही मिश्रित लाजा होम से समस्त रोग दूर हो जाते हैं ॥ ३८ ॥

एक भाग लाल चन्दन १ भाग कपूर, १ भाग कर्चूर, ६ भाग अगर, ४ भाग गोरोचन, १० भाग चन्दन, ७ भाग केशर तथा ४ भाग जटामांसी एक में मिला लेना

वश्यकरतिलककथनम्

रक्तचन्दनकर्पूरकर्चूरागुरुरोचनाः ।
चन्दनं केसरं मांसी क्रमाद् भागैर्नियोजयेत् ॥ ३९ ॥
भूमिचन्द्रैकनन्दाब्धिदिक्सप्तनिगमोन्मितः ।
श्मशाने कृष्णभूतस्य निशि नीहारपाथसा ॥ ४० ॥
कुमार्या पेषयेत्तानि मन्त्रेणाप्यभिमन्त्रयेत् ।
विदध्यात्तिलकं तेन दर्शनाद् वशयेज्जनान् ॥ ४१ ॥
गजसिंहादिभूतानि राक्षसाञ्छाकिनीरपि ।
प्रयोगेष्वेषु कथ्यन्ते क्रमाद् ध्यानानि सिद्धये ॥ ४२ ॥

फलान्तरानुरोधाद्ध्यानभेदेन वर्णनम्

मातुलिङ्गपयोजन्महस्तां कनकसन्निभाम् ।
पद्मासनगतां बालां लक्ष्मीप्राप्तौ विचिन्तयेत् ॥ ४३ ॥
वरपीयूषकलशपुस्तकाभीतिधारिणीम् ।
सुधां स्रवन्तीं ज्ञानाप्तौ ब्रह्मरन्ध्रे विचिन्तयेत् ॥ ४४ ॥

तिलकमाह – **रक्तेति** । मांसी जटामांसी ॥ ३९ ॥ भागानाह – **भूमिरेकः** । नन्दा नव। अब्धयश्चत्वारः। दिशो दश। निगमाश्चत्वारः। रक्तचन्दनमेकभाग-मित्यादि। एतान्येकीकृत्य कृष्णचतुर्दशी रात्रौ कुमार्या संपेष्य मूलेनाभिमन्त्र्य तिलकं कुर्यात्। वशयेदिति शाकिन्यन्तानित्यर्थः ॥ ४०–४२ ॥ ध्यानभेदानाह – **मातुलिङ्गेति**। मातुलिङ्गबीजपूरं तद्दक्षे ॥ ४३ ॥ रोगनाशध्याने । वरामृतकुम्भौ दक्षयोः ॥ ४४–४५ ॥

चाहिए । फिर कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को श्मशान या चौराहे पर ओस के जल से कुमारी कन्या द्वारा पिसवा कर उसके उक्त मन्त्र द्वारा अभिमन्त्रित कर तिलक लगावे तो मनुष्य की कौन कहे हाथी, सिंह, भूत, राक्षस एवं शाकिनी आदि सभी उसके वश में हो जाते हैं ॥ ३९-४२ ॥

अब विविध प्रयोगों में सिद्धि के लिए देवी के विविध ध्यानों का क्रमशः निर्देश करते हैं ॥ ४२ ॥

लक्ष्मी प्राप्ति के लिए ध्यान - अपने दोनों हाथों में बीजपूर तथा कमल धारण करने वाली सुवर्ण के समान जगमगाती हुई पद्मासन पर विराजमान बाला का लक्ष्मी प्राप्ति के लिए ध्यान करना चाहिए ॥ ४३ ॥

ज्ञान प्राप्ति के लिए ध्यान - अपने चारों हाथों में वरद मुद्रा, अमृत कलश, पुस्तक एवं अभयमुद्रा धारण करने वाली, अमृत की धारा बहाने वाली (त्रिपुरा) बाला का ज्ञानप्राप्ति के लिए ब्रह्मरन्ध्र में ध्यान करना चाहिए ॥ ४४ ॥

शुक्लाम्बरां शशांकाभां रोगनाशे स्मरेच्छिवाम् ।
अकारादिक्षकारान्तवर्णावयवरूपिणीम् ॥ ४५ ॥
सृणिपाशधरां देवीं रत्नालङ्कारभूषिताम् ।
प्रसन्नामरुणां ध्यायेद् वशीकरणसिद्धये ॥ ४६ ॥
अथ प्रत्येकमन्त्रस्य जपध्यानविधिं ब्रुवे ।
शापोद्धारप्रकारं च बीजानां दीपिनीरपि ॥ ४७ ॥

वाग्बीजध्यानम्

विद्याक्षमालासुकपालमुद्रा–
राजत्करां कुन्दसमानकान्तिम् ।
मुक्ताफलालङ्कृतिशोभिताङ्गीं
बालां स्मरेद् वाङ्मयसिद्धिहेतोः ॥ ४८ ॥
ध्यात्वैवं वाग्भवं लक्षत्रयं शुक्लाम्बरावृतः ।
शुक्लचन्दनलिप्ताङ्गो मौक्तिकाभरणान्वितः ॥ ४९ ॥
जपित्वा तद्दशांशेन पालाशकुसुमैर्नवैः ।
जुहुयान्मधुराक्तैर्यः स कविर्युवतिप्रियः ॥ ५० ॥

वशीकरणध्याने पाशो दक्षे ॥ ४६ ॥ **बीजानामिति** । त्रयाणामित्यर्थः ॥ ४७ ॥ वाग्बीजध्यानमाह – **विद्येति** । अक्षमालाज्ञानमुद्रे दक्षयोः ॥ ४८ ॥ * ॥ ४९–५० ॥

रोगनाश के लिए ध्यान - शुक्ल वर्ण का अम्बर धारण की हुई, चन्द्रमा के समान कान्तिमती, अकार से लेकर क्षकार पर्यन्त वर्णरूप अङ्गावयवों वाली त्रिपुरा बालाम्बा का रोगनाश के लिए ध्यान करना चाहिए ॥ ४५ ॥

वशीकरण के लिए ध्यान - दोनों हाथों में अंकुश एवं पाश धारण किये हुए, रत्नों के आभूषणों से देदीप्यमान, प्रसन्नवदना, अरुण कान्ति वाली बाला का वशीकरण के लिए ध्यान करना चाहिए ॥ ४६ ॥

अब एक एक **बीज के जप एवं ध्यान की विधि** कहते हैं तथा शापोद्धार का प्रकार एवं बीजों की उद्दीपन विधि कहते हैं ॥ ४७ ॥

वाग्बीज का ध्यान - पुस्तक अक्षमाला, न्टकपाल एवं ज्ञानमुद्रा से सुशोभित चतुर्भुजा, कुन्दपुष्प के समान कान्तिमती, मोती के अलङ्कारों से सुशोभित अङ्गों वाली **त्रिपुरा बाला का वाङ्मय सिद्धि के लिए** ध्यान करना चाहिए ॥ ४८ ॥

श्वेत वस्त्र पहन कर, श्वेत चन्दन लगाकर, मुक्ता निर्मित आभूषण धारण कर, साधक बाला का ध्यान कर वागूभव बीज (ऐं) का तीन लाख जप करें तथा जप के अनन्तर मधुमिश्रित नवीन पालाश पुष्पों से जप के दशांश से होम करें तो वह श्रेष्ठ कवि एवं समस्त युवतियों का प्रिय हो जाता है ॥ ४९-५० ॥

भजेत् कल्पवृक्षाध उद्दीप्तरत्ना–
सने सन्निषण्णां मदाघूर्णिताक्षीम् ।
करैर्बीजपूरं कपालेषु चापं
सपाशांकुशां रक्तवर्णां दधानाम् ॥ ५१ ॥
ध्यात्वा देवीं जपेल्लक्षत्रयं यो मध्यबीजकम् ।
रक्तवस्त्रावृतो रक्तभूषणो रक्तलेपनः ॥ ५२ ॥
दशांशं मालतीपुष्पैश्चन्द्रचन्दनलोलितैः ।
जुहुयात्तस्य वश्याः स्युस्त्रिलोकीजनताः क्षणात् ॥ ५३ ॥

तृतीयबीजध्यानम्

व्याख्यानमुद्रामृतकुम्भविद्या–
मक्षस्रजं सन्दधतीं कराग्रैः ।
चिद्रूपिणीं शारदचन्द्रकान्तिं
बालां स्मरेन् मौक्तिकभूषिताङ्गीम् ॥ ५४ ॥
ध्यात्वैवं चरमं बीजं जपेल्लक्षत्रयं सुधीः ।
सितवस्त्रानुलेपाढ्यमात्मानां देवतां स्मरेत् ॥ ५५ ॥
मालतीकुसुमैर्हुत्वा चन्दनाक्तैर्दशांशतः ।
लक्ष्मीं विद्यासुकीर्तीनामाधारो जायतेऽचिरात् ॥ ५६ ॥

कामबीजध्यानमाह – **कल्पेति** । बीजपूरबाणांकुशां दक्षेषु । कपालचापपाशा वामेषु । निषण्णां स्थिताम् । षड्ढस्तेयम् ॥ ५१–५३ ॥ तृतीयबीजध्यानमाह – **व्याख्यानेति** । व्याख्यानमुद्राक्षस्रजौ दक्षयोः ॥ ५४ ॥ *॥ ५५–५७ ॥

अब **कामबीज का ध्यान** कहते हैं - कल्पवृक्ष के नीचे देदीप्यमान रत्नसिंहासन पर विराजमान मद के कारण मदमत्त नेत्रों वाली, अपने छः हाथों में वीजपूर (विजौरा) कपाल, धनुष, बाण तथा पाश और अंकुश धारण करने वाली रक्तवर्णा देवी का मैं ध्यान करता हूँ॥ ५१॥

लाल वस्त्र और लाल आभूषण धारण कर एवं रक्तचन्दन का तिलक लगाकर देवी के उक्त स्वरूप का ध्यान कर जो साधक काम बीज का तीन लाख जप करता है तथा कपूर एवं लाल चन्दन मिश्रित मालती पुष्पों से दशांश होम करता है उसके वश में त्रिलोकी के समस्त जीव अपने आप हो जाते हैं ॥ ५२-५३ ॥

अब **तृतीय बीज का ध्यान** कहते हैं - चारों हाथों में क्रमशः व्याख्यान मुद्रा, अमृतकलश, पुस्तक और अक्षमाला धारण की हुई, चित्स्वरूपा, शरच्चन्द्र के समान आभा वाली तथा मुक्ताभरण मण्डित श्री बाला का ध्यान करना चाहिए ॥ ५४ ॥

श्वेत वस्त्र पहन कर, श्वेत चन्दन का अनुलेप कर, अपने को स्वयं देवता मानते हुये जो साधक देवी के उक्त स्वरूप का ध्यान कर बाला के तृतीय बीज का तीन लाख

देव्या शप्ता कीलिता च विद्येयं तन्न सिद्धिदा ।
शापोद्धारमथोत्कीलं विधाय जपमाचरेत् ॥ ५७ ॥
योजयेदादिबीजेन वराहभृगुपावकान् ।
मध्यमादौ नभोहंसौ मध्यमा तेन पावकम् ॥ ५८ ॥
आदावन्ते च तार्तीये क्रमात् खं धूमकेतनम् ।
एवं जप्ता शतं विद्या शापहीना फलप्रदा ॥ ५९ ॥
यद्वाद्ये चरमे बीजे नैव रेफं नियोजयेत् ।
शापोद्धारप्रकारोऽन्यो यद्वायं कीर्तितो बुधैः ॥ ६० ॥
आद्यमाद्यं च तार्तीयं कामः कामोऽथ वाग्भवम् ।
अन्त्यमन्त्यमनङ्गं च नवार्णः कीर्तितो मनुः ॥ ६१ ॥

शापोद्धारप्रकारमाह – **योजयेदिति** । आद्ये एतान् योजयेत् । वाराहो हः । भृगुः सः । पावको रः । तेन ह्स्रौः द्वितीयस्यादौ नभो हंसौहसौ । अन्ते रेफः । तेन हसकलरीमिति कूटम् तृतीयस्यादौं । खं हः । अन्ते धूमकेतनो रेफः तेन ह्सौः एवं भैरवीजाता । अस्यां शतं जप्तायां बाला शापहीना स्यात् ॥ ५८–५९ ॥ यद्वाऽत्रैवाऽद्येन्त्ये च बीजे रेफयोगाभावः । तेन ह्सौः । मध्यमं तदेव ॥ ६० ॥ शापोद्धारप्रकारान्तरम् । नवार्णजपमाह – **आद्यमिति** । ऐं ऐं सौः क्लीं क्लीं ऐं सौः

जप करता है तदनन्तर श्वेत चन्दन मिश्रित मालती पुष्पों से दशांश होम करता है वह शीघ्र ही लक्ष्मी, विद्या और कीर्ति का सत्पात्र हो जाता है ॥ ५५-५६ ॥

अतः यह विद्या (मन्त्र) देवी के द्वारा शापग्रस्त एवं कीलित है । इस कारण यह सिद्धिदायक नहीं है । इसलिए जप करने से पूर्व इसका शापोद्धार एवं उत्कीलन अवश्य कर लेना चाहिए ॥ ५७ ॥

अब **शापोद्धार का प्रकार** कहते हैं - प्रथम बीज के आगे वराह (ह्), भृगु (स) एवं पावक (र) जोड़ देना चाहिए । इस प्रकार यह बीज 'ह्स्रौ' बन जाता है, मध्यम द्वितीय बीज के आगे नम (ह्) हंस (स्) तथा मध्यमा के अन्त में पावक (र्) जोड़ देना चाहिए । इस प्रकार द्वितीय बीज 'हस्कल रीम' कूट बन जाता है । तृतीय बीज के आदि में ख (ह्) तथा अन्त में धूमकेतन (र्) लगाना चाहिए । इस प्रकार यह बीज ह्स्रौ' बन जाता है । इस मन्त्र का १०० बार जप कर बाला का शाप दूर करना चाहिए ॥ ५८-५९ ॥

अथवा आद्य एवं अन्त्य बीज से रेफ् निकाल देना चाहिए और मध्यम बीज को यथावत् रखना चाहिए । इस प्रकार निष्पन्न मन्त्र का जप बाला के शाप का उद्धार कर देता है ऐसा विद्वानों ने कहा है ॥ ६० ॥

आद्य (ऐं), आद्य (ऐं), तार्तीय (सौः), काम (क्लीं), काम (क्लीं), तदनन्तर वाग्भव (ऐं), अन्त्य (सौः), अन्त्य (सौः), तथा अनङ्ग (क्लीं), इन ९

जप्तोऽयं शतधा शापं बालाया विनिवर्तयेत् ।
चेतन्याह्लादिनीमन्त्रौ जप्तौ निष्कीलताकरौ ॥ ६२ ॥
त्रिस्वराश्चेतनीमन्त्रोधरः शान्तिरनुग्रहः ।
तारादिहृदयान्तः स्यात् काम आह्लादिनी मनुः ॥ ६३ ॥
तथा त्रयाणां बीजानां दीपनैर्मनुभिस्त्रिभिः ।
सुदीप्तानि विधायादौ जपेत्तानीष्टसिद्धये ॥ ६४ ॥
वदयुग्मं सदीर्घाम्बुस्मृति बालावनन्तगौ ।
सत्यः सनेत्रो नस्ताद्दग्वाङ्नवार्णाद्यदीपिनी[1] ॥ ६५ ॥

सौः क्लीं – एवं नवार्णः । शतं जप्तः शापनिवर्तकः ॥ ६१–६२ ॥ चेतनीमन्त्रमाह – **त्रीति** । अधर ऐं । शान्तिरी । अनुग्रह औ । एते त्रयः स्वराः केवलाश्चेतनी मन्त्रः । शतं जप्तो बालां निष्कीलां करोति । आह्लादिनीमन्त्रमाह – **तारादीति** । ॐ क्लीं नम इति । अयमप्युत्कीलनकरः ॥ ६३–६४ ॥ वाग्बीजस्य दीपिनीविद्या–माह – **वदेति** । सदीर्घाम्बु वा अनन्त गौ स्मृति बालौ । आस्थितौ गवौ । तेन ग्वा । सनेत्रः सत्यो दि । तादृग् नः निः । वाक् ऐं । इयमाद्यस्य बीजस्य दीपिनी प्रकाशकर्त्री ॥ ६५ ॥

अक्षरों से निष्पन्न मन्त्र (ऐं ऐं सौः क्लीं क्लीं ऐं सौः सौः क्लीं) को १०० बार जप करने से बाला का शाप दूर हो जाता है ॥ ६१-६२ ॥

विमर्श - शापोद्धार के लिए कहे गये मन्त्र का निष्कर्ष - 'हस्रौ हृ स्वलरौ हस्रोः' त्रिपुर भैरवी के इस मन्त्र का १०० बार जप करने से बाला का शाप नहीं लगता अथवा हसौं, हस्वलीं हृसौं' इस मन्त्र का १०० बार जप बाला के शाप को दूर कर देता है । तृतीय मन्त्र स्वरूप है ॥ ६१-६२ ॥

चेतनी एवं आह्लादिनी मन्त्रों का जप करने से इस विद्या का उत्कीलन हो जाता है । अधर (ऐं) शान्ति (ई) अनुग्रह (औ) इस प्रकार त्रिस्वर 'ऐं ई औं' यह चेतनी मन्त्र है । आदि में तार (ॐ) तथा अन्त में हृदय (नमः) के सहित काम बीज (क्लीं) लगाने से आह्लादिनी मन्त्र बन जाता है ॥ ६२-६३ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है -

१. ॐ ऐं ई औं - **चेतनी मन्त्र** है ।

२. ॐ क्लीं नमः - **आह्लादिनी मन्त्र** है ॥ ६२-६३ ॥

इस प्रकार ६०-६३ श्लोक पर्यन्त शपोद्धार, फिर चेतनी और आह्लादिनी दो मन्त्रों से उत्कीलन विधि कहकर मूल मन्त्र के **उद्दीपन का विधान** कहते हैं ।

जप से पहले आगे वक्ष्यमाण तीन दीपन मन्त्रों से तीनों बीजों को उद्दीपित कर फिर अभीष्ट सिद्धि के लिए मूल मन्त्र का जप करना चाहिए ॥ ६४ ॥

---

१. वदवदवाग्वादिनि ऐं ।

क्लिन्ने क्लेदिनि बैकुण्ठो दीर्घं खं सद्यगोन्तिमः ।
निद्रासचन्द्राकुर्वताशिवार्णामध्यदीपिनी [1] ॥ ६६ ॥
तारो मोक्षं च कुर्वन्तापञ्चार्णान्त्यस्य दीपिनी [2] ।
दीपिनीमन्तराबालाराधितापि न सिध्यति ॥ ६७ ॥
इदं रहस्यं नाख्येयं कृतघ्ने कितवे शठे ।
परीक्षिताय दातव्यमन्यथा दातृदोषदम् ॥ ६८ ॥
वागन्त्यकामान् प्रजपेदरीणां क्षोभहेतवे ।
कामवागन्त्यबीजानि त्रैलोक्यस्य वशीकृतौ ॥ ६९ ॥

कामबीजस्य दीपिनीमाह – **क्लिन्ने** इति । स्वरूपम् । बैकुण्ठो मः । दीर्घं खं हाः । अन्तिमः क्षः सद्यगः ओगतः क्षो सचन्द्रानिद्राभं । कुरुस्वरूपम् । शिवार्णा एकादशवर्णा मध्यबीजस्य दीपिनी ॥ ६६ ॥ **तार** इति । तारः प्रणवः । मोक्षं कुर्विति स्वरूपम् । अन्त्यस्य बीजस्य दीपिनी । उक्तां दीपिनीम् अन्तरा विना आराधितापि बाला न सिद्ध्यति ॥ ६७॥ *॥ ६८ ॥ जपभेदान् कामभेदेनाह – **वागिति** । ऐं सौं क्लीमित्यरि नाशाय । क्लीं ऐं सौरिति वशीकरणे॥ ६९ ॥

वदयुग्म (वद वद), सदीर्घाम्बु (वा), अनन्तग स्मृति एवं बाला (ग्वा) पुनः सनेत्र सत्य (दि) पुनः तादृश 'न' (नि) तदनन्तर वागूबीज (ऐं) लगाने से 'वद वद वाग्वादिनी ऐं' - यह नौ अक्षरों का बाला के आद्य बीज (वाग्भवबीज) का उद्दीपक मन्त्र बनता है ॥ ६५ ॥

'क्लिन्ने क्लेदिनि', फिर वैकुण्ठ (म), दीर्घ ख (हा), सद्यग अन्तिम (क्षो), सचन्द्रा निद्रा (भं) और कुरु इस प्रकार 'क्लिन्ने क्लेदिनि महाक्षोभं कुरु' यह ग्यारह अक्षरों का मन्त्र (मध्य काम बीज) का उद्दीपक है ॥ ६६ ॥

तार (ॐ) मोक्षं कुरु इस प्रकार 'ॐ मोक्षं कुरु' यह पाँच अक्षरों का मन्त्र अन्तिम बीज का उद्दीपक हैं । उक्त उद्दीपनी मन्त्रों के बिना आराधना करने पर भी बाला सिद्ध नहीं होती हैं॥ ६७॥ **विमर्श** – अतः तीनों बीजों के साथ उक्त तीनों दीपनी (प्रकाशक) मन्त्रों का प्रारम्भ में ७, ७ बार जप करना आवश्यक है ॥ ६७ ॥

कृतघ्न, धूर्त्त एवं शठ व्यक्ति को ऊपर कहे गये मन्त्र, चेतनी, उत्कीलन तथा उद्दीपन मन्त्रों का उपदेश नहीं करना चाहिए । केवल परीक्षित शिष्य को ही यह रहस्य वतलाना चाहिए । अन्यथा बतलाने वाला पाप का भागी होता है ॥ ६८ ॥

कामना के भेद से मन्त्रों का स्वरूप - शत्रु नाश के लिए प्रथम वाग्भव, तदनन्तर तृतीय, फिर काम बीज 'ऐं सौः क्लीं' का जप करना चाहिए । तीनों लोकों को वश में करने के लिए प्रथम काम बीज, तदनन्तर वाग्भव, फिर तृतीय बीज 'क्लीं ऐं सौः' का

---

१. क्लिन्ने क्लेदिनि महाक्षोभं कुरु ।
२. ॐ मोक्षं कुरु ।

कामान्त्यवाणीबीजानि मुक्तये नियतो जपेत् ।
पूजाविधौ तु बालायास्त्रिविधानर्चयेद् गुरून् ॥ ७० ॥

सप्तदिव्यौघगुरुवर्णनम्

दिव्यौघश्चेति सिद्धौघो मानवौघ इति त्रिधा ।
परप्रकाशः परमेशानः परशिवस्तथा ॥ ७१ ॥
कामेश्वरस्ततो मोक्षः षष्ठः कामोमृतोन्तिमः ।
एते सप्तैव दिव्यौघा आनन्दपदपश्चिमाः ॥ ७२ ॥

पञ्चसिद्धौघगुरुवर्णनम्

ईशानाख्यस्तत्पुरुषो घोराख्यो वामदेवकः ।
सद्योजात इमे पञ्चसिद्धौघाख्याः स्मृता बुधैः ॥ ७३ ॥
मानवौघः प्रविज्ञेयः स्वगुरोः सम्प्रदायतः ।

त्रैपुराख्ययन्त्रकथनम्

नवयोन्यात्मके यन्त्रे विलिखेन्मध्ययोनितः ॥ ७४ ॥

क्लीं सौः ऐमिति मुक्त्यै ॥ ७० ॥ दिव्यौघानाह – **परप्रकाश** इति । आनन्दपदपश्चिमा इति वक्ष्यमाणत्वात् परप्रकाशानन्दाय नम इत्यादि प्रयोगः ॥ ७१–७२ ॥ सिद्धौघानाह – **ईशानाख्य** इति ॥ ७३ ॥ यन्त्रमाह – **नवेति** । गायत्र्यास्त्रिपुरागायत्र्या वक्ष्यमाणाया वर्णत्रयं प्रतियन्त्रं लिखेत् ॥ ७४–७५ ॥

जप करना चाहिए । मुक्ति के लिए पहले कामबीज, फिर तृतीय बीज, तदनन्तर वाग्भव बीज 'क्लीं ऐं सौः' का जप करना चाहिए ॥ ६९-७० ॥

अब बाला के अनुष्ठान में **गुरुपूजन का विधान** कहते हैं - दिव्यौघ, सिद्धौघ और मानवौघ भेद से गुरु तीन प्रकार के कहे गये हैं । १. पारप्रकाशानन्द, २. परमेशानानन्द, ३. परशिवानन्द, ४. कामेश्वरानन्द, ५. मोक्षानन्द, ६. कामानन्द एवं ७. अमृतानन्द - ये सात दिव्यौघ नाम के गुरु कहे गये हैं ॥ ७०-७२ ॥

विद्वानों ने **पाँच सिद्धौघगुरु** इस प्रकार बतलाए हैं - १. ईशान, २. तत्पुरुष, ३. घोर, ४. वामदेव और ५. सद्योजात । इसके अतिरिक्त अपने गुरु के सम्प्रदायानुसार मानवौघ गुरुओं के नामों को जानना चाहिए ॥ ७३-७४ ॥

विमर्श - गुरुओं के नाम के आगे चतुर्थ्यन्त लगाकर पश्चात् नमः उच्चारण करने से गुरु मन्त्र निष्पन्न होता है । यथा - 'परप्रकाशाननदाय नमः' इत्यादि ।

शारदातिलक के अनुसार पीठ पूजा के बाद पूर्व योनि एवं मध्य योनि के बीच गुरुपूजन करना चाहिए । **श्रीविद्यार्णव** तन्त्र के अनुसार गुरु पंक्ति का पूजन कर वहीं दिव्यौघ, सिद्धौघ एवं मानवौघ गुरुओं का पूजन करना चाहिए ॥ ७३-७४ ॥

प्रादक्षिण्येन बीजानि त्रिवारं साधकोत्तमः ।
त्रींस्त्रीन् वर्णांस्तु गायत्र्या अष्टपत्रेषु संलिखेत् ॥ ७५ ॥
बहिर्मातृकया वेष्ट्य तद्बहिर्भूपुरद्वयम् ।
कामबीजलसत्कोणं व्यतिभिन्नं परस्परम् ॥ ७६ ॥
यन्त्रं त्रैपुरमाख्यातं जप्तं सम्पातसाधितम् ।
बाहुना विधृतं दद्याद्धनं कीर्तिः सुखं सुतान् ॥ ७७ ॥

बालात्रिपुरागायत्रीमन्त्रोद्धारः

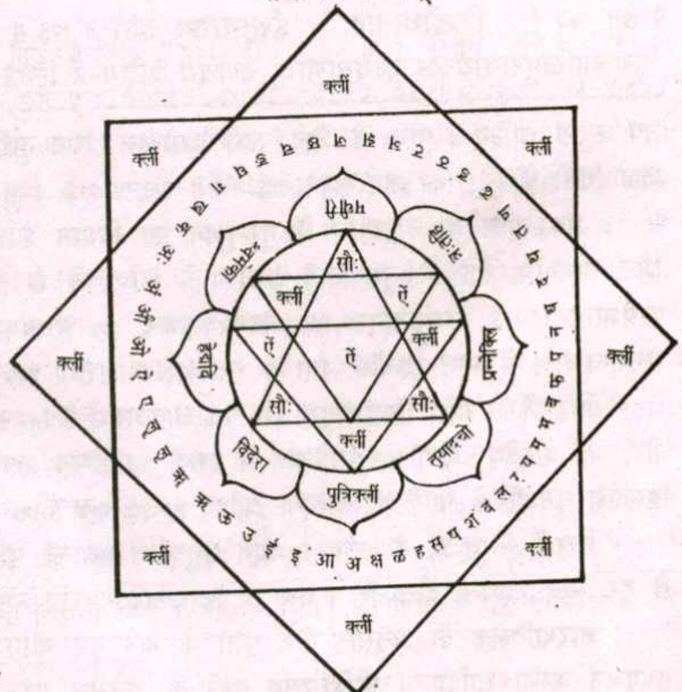
कामान्ते त्रिपुरा देवि विद्महेकाविषम्भगि ।
बक्रः खड्गीशमारूढः सनेत्रोऽग्निश्च धीमहि ॥ ७८ ॥

भूपुरद्वयं चतुष्कोणद्वयम् । कीदृशं परस्परं व्यतिभिन्नम्। एकं विदिग्गत–कोणम् । अपरं दिग्गतकोणमित्यर्थः ॥ ७६ ॥ सम्पातसाधितम् आहुतिशेषघृतेन संयोजितम् ॥ ७७ ॥ गायत्रीमुद्धरति – **कामान्त इति** । कामः क्लीं । भगि एयुतं विषं मः मे। बकः शः खड्गीशं बकामारूढः श्वः। सनेत्रः अग्निः रि । स्वरूपमन्यत् ॥ ७८–७६ ॥

अब धारण करने के लिए बाला यन्त्र का विधान कहते हैं –

नवयोन्यात्मक यन्त्र में उत्तम साधक को मध्य योनि से प्रदक्षिण क्रम से प्रारम्भ कर तीन आवृत्तियों में तीन बीजों को लिखना चाहिए । फिर अष्टदल में त्रिपुरा गायत्री के तीन तीन अक्षरों को लिखकर तत्पश्चात् अष्टदल के बाहर लिखित वर्णमाला से उसे वेष्टित करें । फिर परस्पर विलोम रूप में लिखे दो चतुरस्र भूपुर के कोणों में आठ बार काम बीज लिखे । यह त्रिपुरा यन्त्र कहा जाता है । इसे त्रिपुरा के होम के आहुति शेष घृत द्वारा संयोजित कर भुजा में धारण करने से धन, कीर्ति, सुख एवं पुत्र प्राप्त होता है ॥ ७४-७७ ॥

बालाधारणयन्त्रम्



तन्नः क्लिन्ने प्रचोदान्ते यादन्ता कीर्तिता बुधैः [1] ।
गायत्री त्रैपुरी सर्वसिद्धिदा सुरसेविता ॥ ७९ ॥

तन्त्रान्तरगुप्तानां चतुर्दशबालाभेदानां चतुर्दशमन्त्रकथनम्

अथ वक्ष्यामि बालाया भेदानागमगोपितान् ।
मायाकामोम्बरारूढं तार्तीयं त्र्यक्षरो [2] मनुः ॥ ८० ॥
अनुलोमप्रतिलोमाभ्यां बालामन्त्रः षडक्षरः ।
बालाश्रीकामहृल्लेखा सम्पुटोऽयं नवाक्षरः [3] ॥ ८१ ॥
बालान्ते बालात्रिपुरे स्वाहान्तो दशवर्णवान् [4] ।
वाक्कामो व्योमभृग्बिन्दुयुङ्मनुर्दीर्घभूधरः ॥ ८२ ॥

बालाभेदे प्रथमं मन्त्रान्तरमाह – **मायेति** । माया ह्रीं । कामः क्लीं तार्तीयं सौः अम्बरारूढं हयुतं ह्सौः प्रथमः ॥ ८० ॥ मात्रान्तरमाह – **अनुलोमेति** । ऐं क्लीं सौः – सौः क्लीं ऐं द्वितीयः । मन्त्रान्तरमाह – **बालेति** । श्रीं क्लीं ह्रीं ऐं क्लीं सौः ह्रीं क्लीं श्रीमिति तृतीयः ॥ ८१ ॥ मन्त्रान्तरमाह – **बालेति** । ऐं क्लीं सौः बाला–त्रिपुरे स्वाहेति चतुर्थः । पञ्चममाह – **वागिति** । वाक् ऐं । कामः क्लीं । व्योम–भृग्विन्दुयुक् मनुः ह सबिन्दुयुत औ ह्सौं । दीर्घ भूधरः बा । पिनाकी ला ॥ ८२ ॥

अब **त्रिपुरा गायत्री मन्त्र का उद्धार** कहते हैं -

काम (क्लीं) उसके बाद 'त्रिपुरा देवि विद्महे का' यह पद, फिर भगि विष (मे), फिर खड्गीश वक (श्व), फिर सनेत्र अग्नि (रि), फिर 'धीमहि', तदनन्तर 'तन्नः क्लिन्ने प्रचोदयात्' इसी को बुद्धिमानों ने सुरसेवित सर्वसिद्धिप्रदा त्रिपुरागायत्री कहा है ॥ ७८-७९ ॥

विमर्श - इस **मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - 'क्लीं त्रिपुरादेवि विद्महे कामेश्वरि धीमहि । तन्नः क्लिन्ने प्रचोदयात् ॥ ७८-७९ ॥

इसके बाद मैं आगम शास्त्र में अत्यन्त गोपनीय माने जाने वाले बाला मन्त्रों के भेद कहता हूँ - माया (ह्रीं), काम (क्लीं), तथा अम्बरारूढ़ तार्तीय बीज (ह्सौः) इन तीन अक्षरों का **प्रथम भेद** है । यथा - 'ह्रीं क्लीं ह्सौः' ॥ ८० ॥

अनुलोम एवं विलोम क्रम से बाला मन्त्र छः अक्षरों का बन जाता है यथा - 'ऐं क्लीं सौः सौः क्लीं ऐं' यह षडक्षर **द्वितीय भेद** है । पुनः बाला मन्त्र को श्रीबीज, कामबीज एवं मायाबीज से सम्पुटित करने पर नौ अक्षरों का **तीसरा भेद** बन जाता है - यथा - 'श्रीं क्लीं ह्रीं - ऐं क्लीं सौः - ह्रीं क्लीं श्रीं' ॥ ८१ ॥

---

१. क्लीं त्रिपुरादेवि विद्महे कामेश्वरि धीमहि । तन्नः क्लिन्ने प्रचोदयात् ।
२. ह्रीं क्लीं ह्सौः इति त्र्यक्षरः ।
३. श्रीं क्लीं ह्रीं ऐं क्लीं सौः ह्रीं क्लीं श्रीं ।
४. ऐं क्लीं सौः बालात्रिपुरे स्वाहा ।

पिनाकी त्रिपुरे सिद्धिं देहि हृन्मनुवर्णवान्[1] ।
मायालक्ष्मीर्मनोजन्मा त्रिपुरान्ते तु भारती ॥ ८३ ॥
कवित्वं देहि ठद्वन्द्वं षोडशार्णो[2] मनुः स्मृतः ।
कमलापार्वतीकामस्त्रिपुरान्ते च मालती ॥ ८४ ॥
मह्यं सुखं ततो देहि स्वाहा सप्तदशाक्षरः ।
भृगुर्ब्रह्माक्रियावह्निनयुक्ता शान्तिस्स रात्रिया ॥ ८५ ॥
दहनान्त्यमहाकालभुजङ्गपुरुषोत्तमाः ।
मन्वर्घीशेन्दुसंयुक्ता द्वितीयं बीजमीरितम् ॥ ८६ ॥
वाग्बीजं त्रिपुरे सर्वं वाञ्छितं देहि हृत्ततः ।
वह्निप्रिया सप्तदशवर्णोऽयं[3] कीर्तितो मनुः ॥ ८७ ॥

स्वरूपमन्यत् । षष्ठमाह – **मायेति** । माया ह्रीं । लक्ष्मीः श्रीं । मनोजन्मा क्लीं । ठद्वयं स्वाहा । स्वरूपमन्यत् । सप्तममाह – **कमलेति** । कमला श्रीं । पार्वती ह्रीं । कामः क्लीं । स्वरूपमन्यत् ॥ ८३–८४ ॥ अष्टममाह – **भृग्विति** । भृगुः सः । ब्रह्मा कः । क्रिया लः । वह्नी रः । एतैर्युक्ता शान्तिरीकारः (सरात्रिया) सबिन्दुः स्क्ल्रीं ॥ ८५ ॥ दहनो रः । अन्त्यः क्षः । महाकालो मः । भुजङ्गो रः पुरुषोत्तमो यः । एते मन्वर्घीशेन्दुसंयुक्ता औ बिन्दुयुताः तेन क्ष्म्य्रौं ॥ ८६ ॥ वाग्बीजं ऐं । हृत् नमः । स्वरूपं शेषम् । वह्निप्रिया स्वाहा ॥ ८७ ॥

बाला मन्त्र के बाद 'बालात्रिपुरे स्वाहा' लगाने से दश अक्षरों का **चतुर्थ भेद** बन जाता है । यथा - 'ऐं क्लीं सौः बाला त्रिपुरे स्वाहा' । वाग्बीज (ऐं) कामबीज (क्लीं) व्योम इन्दुयुक् भृगु (ह्सौः) दीर्घयुक्त भूधर (वा) दीर्घयुक्त पिनाकी (ला) फिर 'त्रिपुरे सिद्धिं देहि' इसके अन्त में हृदय (नमः) लगाने से चौदह अक्षरों का **पञ्चम भेद** बन जाता है । यथा - 'ऐं क्लीं ह्सौ बालात्रिपुरे सिद्धिं देहि नमः' यह पञ्चम भेद है ॥ ८२-८३ ॥

लक्ष्मी बीज (श्रीं), पार्वती बीज (ह्रीं), कामबीज (क्लीं) के बाद 'त्रिपुराभारती कवित्वं देहि' के बाद ठद्वय 'स्वाहा' लगाने से सोलह अक्षरों का **षष्ठ भेद** निष्पन्न होता है । यथा - 'ह्रीं श्रीं क्लीं त्रिपुराभारती कवित्वं देहि स्वाहा' ।

लक्ष्मी बीज (श्रीं), पार्वती बीज (ह्रीं), कामबीज (क्लीं) के बाद 'त्रिपुरामालती मह्यं सुखं देहि स्वाहा' लगाने से सत्रह अक्षरों का सप्तम भेद होता है । यथा - 'श्रीं ह्रीं क्लीं त्रिपुरामालती मह्यं सुखं देहि स्वाहा' यह **सप्तम भेद** है ॥ ८३-८५ ॥

अब **आठवाँ भेद** कहते हैं - भृगु (स्) ब्रह्मा (क्) क्रिया (ल्) एवं वह्नि (र्) से युक्त शान्ति ईकार सरात्रिया स विन्दुः (स्क्ल्रीं), फिर दहन (र), अन्त्य (क्ष्), महाकालो

---

१. ऐं क्लीं ह्सौं बालात्रिपुरे सिद्धिं देहि नम इति चतुर्दशार्णः ।
२. ह्रीं श्रीं क्लीं त्रिपुराभारती कवित्वं देहि स्वाहेति षोडशार्णः ।
३. स्क्ल्रीं क्ष्म्य्रौं ऐ त्रिपुरे सर्ववाञ्छितं देहि नमः स्वाहेति सप्तदशार्णः ।

हल्लेखात्रितयं प्रौढत्रिपुरेनन्तारोग्यमै ।
श्वर्यं देहि प्रियावह्नेर्मनुरष्टादशाक्षरः[1] ॥ ८८ ॥
मायारमामन्मथान्ते त्रिपुरामदने पदम् ।
सर्वं शुभं साधयाग्नेः प्रियान्तोऽष्टादशाक्षरः[2] ॥ ८९ ॥
हल्लेखाकमलानङ्गो बालान्ते त्रिपुरेपदम् ।
मदायत्तां ततो विद्यां कुरु हृद्वह्निवल्लभा ॥ ९० ॥
मन्त्रो विंशतिवर्णोऽयं[3] मायापद्मामनोभवः ।
परापरेन्ते त्रिपुरे सर्वमीप्सितमुच्यताम् ॥ ९१ ॥

नवममाह – **हल्लेखेति** । हल्लेखात्रितयं ह्रीं ॥ ३ ॥ अनन्त आ । स्वरूपमपरम् ॥ ८८ ॥ दशममाह – **मायेति** । माया ह्रीं । रमा श्रीं । मन्मथः क्लीं । स्वरूपं शेषम् ॥ ८९ ॥ एकादशमाह – **हल्लेखेति** । हल्लेखा ह्रीं । कमला श्रीं । अनङ्गः क्लीं हृत् नमः । वह्निवल्लभा स्वाहा । शेषं स्वरूपम् ॥ ९० ॥ द्वादशमाह – **मायेति** । माया ह्रीं । पद्मा श्रीं मनोभवः क्लीं ॥ ९१ ॥

(म्) भुजङ्ग (र्), पुरुषोत्तम (य), मनु अर्धीश इन्द्र से संयुक्त (औ) क्ष्म्रौं यह द्वितीय बीज हुआ । फिर वाग्बीज (ऐं), तदनन्तर 'त्रिपुरे सर्ववाञ्छितं देहि' इसके बाद 'नमः' एवं स्वाहा लगाने से सत्रह अक्षरों का **अष्टम भेद** बनता है । यथा - 'स्क्लीं क्ष्म्रौं ऐं त्रिपुरे सर्ववाञ्छितं देहि नमः स्वाहा' ॥ ८५-८७ ॥

हल्लेखा त्रितय (ह्रीं ह्रीं ह्रीं), फिर 'प्रौढ़ त्रिपुरे' के बाद अनन्त (आ), फिर 'रोग्यमैश्वर्यं देहि', फिर वह्निप्रिया (स्वाहा), यह अष्टादशाक्षर बाला का **नवम भेद** निष्पन्न होता है । यथा - 'ह्रीं ह्रीं ह्रीं प्रौढ़त्रिपुरे आरोग्यमैश्वर्यं देहि स्वाहा' ॥ ८८ ॥

अब **दशम भेद** कहते हैं - माया (ह्रीं), रमा (श्रीं), मन्मथ (क्लीं) के बाद 'त्रिपुरामदने सर्वशुभं साधय' के बाद अग्निप्रिया (स्वाहा) लगाने से अष्टादशाक्षर दशम भेद हो जाता है । यथा - 'ह्रीं श्रीं क्लीं त्रिपुरामदने सर्वशुभं साधय स्वाहा' ॥ ८८-८९ ॥

अब **एकादश भेद** कहते हैं - हल्लेखा (ह्रीं), कमला (श्रीं), अनङ्ग (क्लीं) के बाद 'बालात्रिपुरे' यह पद, फिर 'मदायत्तां विद्यां कुरु', तदनन्तर हृत् (नमः) फिर वह्निवल्लभा (स्वाहा) लगाने से बीस अक्षरों का ग्यारहवाँ भेद होता है यथा - 'ह्रीं श्रीं क्लीं बालात्रिपुरे मदायत्तां विद्यां कुरु नमः स्वाहा' ॥ ९० ॥

अब **द्वादश भेद** कहते हैं - माया (ह्रीं), पद्मा (श्रीं), मनोभव (क्लीं) के बाद 'परापरे त्रिपुरे सर्वमीप्सितं साधय' के बाद अनलकान्ता (स्वाहा) यह बीस वर्ण का बारहवाँ भेद है ।

---

१. ह्रीं ह्रीं ह्रीं प्रौढत्रिपुरे आरोग्यमैश्वर्यं देहि स्वाहेत्वा हेत्यष्टादशार्णः ।
२. ह्रीं श्रीं क्लीं त्रिपुरामदने शुभं साधय स्वाहेत्यष्टादशाक्षरः ।
३. ह्रीं श्रीं क्लीं बालत्रिपुरे मदायत्तां विद्यां कुरु नमः स्वाहेति विंशत्यर्णः ।

साधयानलकान्तायमन्यो विंशतिवर्णकः[1] ।
कामद्वन्द्वं रमायुग्मं मायायुक्त्रिपुरापदम् ॥ ६२ ॥
ललितेन्ते मदीप्सीति तामन्ते योषितं पदम् ।
देहि वाञ्छितमित्युक्त्वा कुरु ज्वलनकामिनी ॥ ६३ ॥
अष्टाविंशतिवर्णोऽयं मनुरिष्टप्रियाप्रदः[2] ।
कामपद्माद्रिपुत्रीणां प्रत्येकं त्रितयं वदेत् ॥ ६४ ॥
त्रिपुरान्ते सुन्दरीति सर्वं जग दिनद्वयम् ।
वशं कुरु द्वयं मह्यं बलं देह्यनलाङ्गना ॥ ६५ ॥
सर्वाभीष्टप्रदो मन्त्र उक्तो बाणगुणाक्षरः[3] ।
चतुर्दशानामेतेषां मनूनामृषिरीरितः ॥ ६६ ॥

अनलकान्ता स्वाहा । अन्यत् स्वरूपम् । त्रयोदशमाह – **कामेति** । कामद्वन्द्वं क्लीं क्लीं रमायुग्मं श्रीं श्रीं । मायायुक् ह्रीं । त्रिपुराललिते मदीप्सितां योषितं देहि वाञ्छितं कुरु इति स्वरूपम् । ज्वलनकामिनी स्वाहा ॥ ६२–६३ ॥ चतुर्दशमाह – **कामेति** । कामपद्माद्रिपुत्रीणां प्रत्येकं त्रयं क्लीं क्लीं क्लीं श्रीं श्रीं श्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ॥ ६४ ॥ इनद्वयं मद्वयं मम । अनलाङ्गना स्वाहा । स्वरूपमपरम् ॥ ६५ ॥ एते चतुर्दशबालाभेदाः । तेषाम् ॥ ६६ ॥

यथा - 'ह्रीं श्रीं क्लीं परापरे त्रिपुरे सर्वमीप्सितं साधय स्वाहा' ॥ ६१-६२ ॥

अब **तेरहवाँ भेद** कहते हैं - काम द्वन्द्व (क्लीं क्लीं), रमायुग्म (श्रीं श्रीं), मायायुग्म (ह्रीं ह्रीं), फिर 'त्रिपुरा ललिते मदीप्सितां योषितं देहि वाञ्छितं कुरु', इसके बाद 'ज्वलन कामिनी स्वाहा' लगाने से बाला का अट्ठाइस अक्षरों का **तेरहवाँ भेद** निष्पन्न होता है । यथा - 'क्लीं क्लीं श्रीं श्रीं ह्रीं ह्रीं त्रिपुराललिते मदीप्सितां योषितं देहि वाञ्छितं कुरु स्वाहा' ॥ ६२-६३ ॥

अब **चौदहवाँ भेद** कहते हैं - कामबीज, पद्मबीज और अद्रिपुत्री बीज का तीन तीन बीज (क्लीं क्लीं क्लीं श्रीं श्रीं श्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं) इसके बाद 'त्रिपुरसुन्दरि सर्वजगत्' के बाद इन द्वय (मम), फिर 'वशं', तदनन्तर कुरु द्वय (कुरु कुरु), फिर मह्यं बलं देहि, के बाद अनलाङ्गना (स्वाहा) लगाने से समस्त अभीष्टदायक पैंतीस अक्षरों का **चौदहवाँ भेद** बनता है । यथा - 'क्लीं क्लीं क्लीं श्रीं श्रीं श्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं त्रिपुरसुन्दरि सर्वजगन्मम वशं कुरु कुरु मह्यं बलं देहि स्वाहा' ॥ ६४-६५ ॥

इस प्रकार इन चौदह बाला के मन्त्रों के भेदों को कहा है ॥ ६६ ॥

---

१. ह्रीं श्रीं क्लीं परापरे त्रिपुरे सर्वमीप्सितं साधय स्वाहेति विंशत्यर्णः ।

२. क्लीं क्लीं श्रीं ह्रीं त्रिपुराललिते मदीप्सितां योषितं देहि वाञ्छितं कुरु स्वाहेत्यष्टाविंशत्यर्णः

३. क्लीं क्लीं क्लीं श्रीं श्रीं श्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं त्रिपुरसुन्दरि सर्वजगन्ममवशं कुरु कुरु मह्यं बलं देहि स्वाहेति पञ्चत्रिंशदर्णः ।

तेषां मन्त्राणामृष्यादिकथनम्

दक्षिणामूर्तिसंज्ञस्तु च्छन्दो गायत्रमुच्यते।
त्रिपुरादेवता बाला षडङ्गं मातृकासमम्[1] ॥ ९७ ॥

ध्यानवर्णनम्

पाशांकुशौ पुस्तकमक्षसूत्रं
करैर्दधाना सकलामरार्च्या।
रक्ता त्रिनेत्रा शशिशेखरे यं
ध्येयाखिलर्द्ध्यै त्रिपुरात्र बाला ॥ ९८ ॥
जपेल्लक्षं दशांशेन होमः पुष्पैर्हयारिजैः।
पूजापूर्वोदिते पीठेङ्गैः रत्याद्यैश्च सायकैः ॥ ९९ ॥
मातृभिर्दिगधीशास्त्रैः प्रयोगाः पूर्ववन्मताः।
लघुश्यामामथो वक्ष्ये स्मरणादिष्टदायिनीम् ॥ १०० ॥

ऋष्याद्याह – **दक्षिणेति** ॥ ९७ ॥ ध्यानमाह – **पाशेति** । अंकुशाक्षसूत्रे दक्षयोः ॥ ९८ ॥ हयारिः करवीरः । सायकैः पञ्चबाणदेवताभिः ॥ ९९ ॥ दिगधीशास्त्रैरिति। दिशामीशैस्तदस्त्रैश्चेत्यर्थः ॥ १०० ॥

इन सभी चौदह मन्त्रों के दक्षिणामूर्त्ति ऋषि हैं, गायत्री छन्द है तथा त्रिपुरा बाला देवता हैं, इनका षडङ्गन्यास मातृका के समान है ॥ ९६-९७ ॥

विमर्श - शारदातिलक के अनुसार इनका बीज वाग्भव, शक्ति तार्तीय एवं कीलक कामबीज है ।

विनियोग - ॐ अस्य श्रीबालामन्त्रस्य दक्षिणामूर्तिर्ऋषिः गायत्रीछन्दः त्रिपुराबालादेवता ऐं बीजं सौः शक्तिः क्लीं कीलकं ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ॥ ९७ ॥

अब इनके **अनुष्ठान के लिए ध्यान** कहते हैं - अपने चारों हाथों में पाश अंकुश, पुस्तक तथा अक्षसूत्र धारण करने वाली, रक्तवर्ण वाली, त्रिनेत्रा, मस्तक पर चन्द्रकला धारण किये त्रिपुरा बाला का समस्त अभीष्ट सिद्धि के लिए ध्यान करना चाहिए ॥ ९८ ॥

उक्त मन्त्रों का एक लाख जप करना चाहिए । फिर हयारिज (कनेर) के फूलों से दशांश होम करना चाहिए । पूर्वोक्त पीठ पर षडङ्गपूजा, रत्यादि की, पञ्चबाणदेवताओं की, मातृकाओं की, दिक्पालों एवं उनके अस्त्रों की पूजा कर देवी का पूजन पूर्वोक्त रीति से करना चाहिए । इसी प्रकार इनका प्रयोग भी पूर्व की भाँति करना चाहिए ॥ ९९-१०० ॥

अब स्मरण मात्र से मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाली लघुश्यामा का मन्त्र कहता हूँ ॥ १०० ॥

---

१. अस्य बालामन्त्रस्य दक्षिणामूर्तिर्ऋषिः गायत्री छन्दः त्रिपुराबालादेवता ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

लघुश्यामामन्त्रकथनम्

वाग्बीजं हृदयं कर्ण एकनेत्रः सनेत्रकः ।
वृषो मुकुन्दमारूढो कूर्मो दीर्घेन्दुसंयुतः ॥ १०१ ॥
नन्दीदीर्घोलिमातङ्गिसर्वान्ते स्याद्वशङ्करि ।
वैश्वानरप्रियान्तोऽयं मन्त्रो विंशतिवर्णवान्[1] ॥ १०२ ॥
मदनोऽस्य मुनिः[2] प्रोक्तो गायत्रीनिचृदादिका ।
छन्दो देवीलघुश्यामा बीजं वाग्वह्निवल्लभा ॥ १०३ ॥
शक्तिरुक्ताखिलाऽभीष्टसाधने विनियोजनम् ।

न्यासकथनम्

वाक्पूर्विकां रतिं मूर्ध्नि प्रीतिं मायादिकां हृदि ॥ १०४ ॥
पादयोर्विन्यसेन्मन्त्री कामपूर्वां मनोभवाम् ।
इच्छाशक्तिं ज्ञानशक्तिं क्रियाशक्तिं क्रमान्न्यसेत् ॥ १०५ ॥

बालामुक्त्वा लघुश्यामामाह – **वाग्बीजमिति** । वाग्बीजं ऐं । हृदयं नमः । कर्ण उ । सनेत्रक एकनेत्रः इयुतश्छिः च्छि । मुकुन्दमारुढो वृषः टस्थितः षः ष्ट। दीर्घेन्दु संयुतः कूर्मः चः चां ॥ १०१ ॥ दीर्घो नन्दी डाः । लिमातङ्गि सर्ववशंकरि स्वरूपम् । वैश्वानरप्रिया स्वाहा ॥ १०२ ॥ ऐं बीजं स्वाहा शक्तिः ॥ १०३ ॥ न्यासानाह – **वागिति** । ऐं रत्यै नमः मूर्ध्नि । ह्रीं प्रीत्यै नमो हृदि ॥ १०४ ॥ क्लीं मनोभवायै नमः पादयोः । इच्छेति । ऐं इच्छाशक्त्यै नमो मुखे । ह्रीं ज्ञानशक्त्यै नमः कण्ठे । क्लीं क्रियाशक्त्यै नमो लिङ्गे ॥ १०५ ॥

वाग्वीज (ऐं), हृदय (नमः), कर्ण (उ), सनेत्र एक नेत्र (च्छि), मुकुन्दमारूढ वृष (ष्ट), दीर्घेन्दु संयुत कूर्म (चां), दीर्घनन्दी (डा), फिर 'लिमातङ्गि' 'सर्ववशंकरि' यह पद, तदनन्तर वैश्वानर प्रिया (स्वाहा) लगाने से बीस अक्षरों का लघुश्यामा मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ १०१-१०२ ॥

विमर्श - इस मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ऐं नमः उच्छिष्टचाण्डालि मातङ्गि सर्ववशंकरि स्वाहा' ॥ १०१-१०२ ॥

इस मन्त्र के मदन ऋषि हैं, निचृद गायत्री छन्द है तथा लघु श्यामा देवता हैं, वाग्भवबीज (ऐं) एवं वह्निवल्लभा (स्वाहा) शक्ति है । समस्त अभीष्ट साधन में इसका विनियोग किया जाता है ॥ १०३-१०४ ॥

प्रारम्भ में वाग्बीज लगाकर रति का शिर में, माया वीज सहित प्रीति का हृदय में,

---

१. ऐं नम उच्छिष्टचाण्डालि मातङ्गि सर्ववशङ्करि स्वाहेति विंशत्यर्णः ।

२. अस्य लघुश्यामामन्त्रस्य मदनऋषिः निचृद्गायत्रीच्छन्दः देवीलघुश्यामादेवता ऐंबीजं स्वाहाशक्तिः ममाखिलाऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

वाङ्मायाकामबीजाद्यां मुखे कण्ठे शिवे तथा ।

बाणेशीबीजानि

द्रावणं शोषणं बाणं तापनं मोहनाभिधम् ॥ १०६ ॥
उन्मादनं क्रमात् पञ्चबाणेशीबीजपूर्वकान् ।
कास्यहृद्गुह्यपादेषु न्यस्य कुर्यात् षडङ्गकम् ॥ १०७ ॥
रामाग्निगुणरामाङ्गनेत्रवर्णैर्मनूत्थितैः ।

अष्टमातृकान्यासः

ङेनमोन्ताः कन्यकान्ता ब्राह्म्याद्या अष्टमातरः ॥ १०८ ॥

बाणेशीबीजानि – द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः इति । तत्पूर्वकान् । द्रावणाद्यान् बाणान् कास्यहृदगुह्यपादे न्यसेत् । द्रां द्रावण बाणाय नम इत्यादि । कं शिरः । आस्यं मुखम् ॥ १०६–१०७ ॥ षडङ्गमाह – **रामेति** । मातृकान्यासमाह – **ङे** इति। दीर्घस्वरा आद्यास्येदृशं विलोमतो दीर्घक्षादीनाष्टकमाद्यं यासां ता मातरो मूर्द्धादिषु न्यस्याः । तथा कीदृश्यो मातरः । ङे नमोन्ताः कन्यकान्ताः चतुर्थी नमोन्तं कन्यकापदमन्ते यासां ताः । यथा – आं क्षां ब्राह्मीकन्यकायै नमो मूर्ध्नि । ई लां

कामबीज सहित मनोभवा का पैर में न्यास करना चाहिए, फिर वाग्बीज सहित इच्छाशक्ति का मुख में, मायाबीज सहित ज्ञानशक्ति का कण्ठ में, दोनों ओर कामबीज सहित क्रियाशक्ति का लिङ्ग में न्यास करना चाहिए ॥ १०४-१०५ ॥

विमर्श - विनियोग - अस्य श्रीलघुश्यामामन्त्रस्य मदनऋषिः निचृदगायत्रीछन्दः लघुश्यामादेवता ऐं बीजं स्वाहाशक्तिः ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

रत्यादिन्यास विधिः -

ॐ ऐं रत्यै नमः, मूर्ध्नि, ॐ ह्रीं प्रीत्यै नमः, हृदि,
ॐ क्लीं मनोभवायै नमः, पादयोः, ॐ ऐं इच्छाशक्त्यै नमः, मुखे,
ॐ ह्रीं ज्ञानशक्त्यै नमः, कण्ठे, ॐ क्लीं क्रियाशक्त्यै नमः, लिङ्गे ॥ १०४-१०५॥

अब **वाणन्यास** कहते हैं - वाणेशी के बीजों को प्रारम्भ में लगाकर द्रावण, शोषण, तापन, मोहन एवं उन्मादन इन ५ बाणों का क्रमशः शिर, मुख, हृदय, गुह्याङ्ग एवं पैरों पर न्यास करना चाहिए । यथा - ॐ द्रां द्रावणवाणाय नमः, शिरसि,
ॐ द्रीं शोषणवाणाय नमः, मुखे, ॐ क्लीं तापबाणाय नमः, हृदये,
ॐ ब्लूं मोहनबाणाय नमः, गुह्ये, ॐ सः उन्मादन बाणाय नमः, पादयोः ।

इसके बाद मूल मन्त्र के ३, ३, ३, ३, ६ एवं २ वर्णो से इस प्रकार षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ १०७॥ **विमर्श** - ॐ ऐं नमः, हृदयाय नमः, ॐ उच्छिष्ट शिरसे स्वाहा,
ॐ चाण्डालि शिखायै वषट्, ॐ मातङ्गि कवचाय हुम्
ॐ सर्ववशङ्करि नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ स्वाहा अस्त्राय फट् ॥ १०६-१०८॥

दीर्घस्वराद्यदीर्घक्षाद्यष्टकाद्याविलोमतः ।
विन्यस्य मूर्ध्नि वामांसे वामपार्श्वेषु नाभितः ॥ १०६ ॥
दक्षपार्श्वे दक्षिणांसे ककुद्धृदययोरपि ।
तारवागादिका अष्टौ सिद्धयः कन्यकान्तिमाः ॥ ११० ॥
चतुर्थी नमसायुक्ता न्यस्याः कालिकचिल्लिषु ।
कण्ठे च हृदये नाभावाधारे लिङ्गमूर्द्धनि ॥ १११ ॥
अणिमा महिमा चापि लघिमा गरिमेशिता ।
वशिता चाथ प्राकाम्यं प्राप्तिरित्यष्ट सिद्धयः ॥ ११२ ॥

माहेश्वरीकन्यकायै नमो वामांसे । ऊं हां कौमारीकन्यकायै नमो वामपार्श्वे। ॠं सां वैष्णवीकन्यकायै नमो नाभौ । लृं षां वाराहीकन्यकायै नमो दक्षपार्श्वे । एं शां इन्द्राणीकन्यकायै नमो दक्षांसे । औं वां चामुण्डाकन्यकायै नमो ककुदि । अः लां महालक्ष्मीकन्यकायै नमो हृदि । सिद्धिन्यासमाह – **तारेति** । ॐ ऐं अणिमासिद्धि-कन्यकायै नमो मूर्ध्नीत्यादि । **सिद्धय इति** । अनुपदं वक्ष्यमाणाः ॥ १०८–११० ॥ अलिकं ललाटम्, चिल्लिर्भ्रूः ॥ १११ ॥ अष्टसिद्धीराह – **अणिमेत्यादि** ॥ ११२ ॥

तदनन्तर दीर्घ अष्टस्वर सहित विलोम क्रम से दीर्घ आकार सहित क्षकार आदि अष्टक वर्णो को चतुर्थ्यन्त ब्राह्मीकन्यका आदि अष्ट मातृकाओं के साथ लगाकर मूर्धा, वामांस, वामपार्श्व, नाभि, दक्षपार्श्व, दक्षांस ककुद तथा हृदय में न्यास करें ॥ १०८-११० ॥

विमर्श – मातृकान्यास - यथा -

ॐ आं क्षां ब्राह्मीकन्यकायै नमः, मूर्ध्नि,
ॐ ईं लां माहेश्वरीकन्यकायै नमः, वामांसे,
ॐ हां कौमारीकन्यकायै नमः, वामपार्श्वे,
ॐ ॠं सां वैष्णवीकन्यकायै नमः, नाभौ,
ॐ लृं षां वाराहीकन्यकायै नमः, दक्षपार्श्वे
ॐ ऐं शां इन्द्राणीकन्यकायै नमः, दक्षांसे,
ॐ ओं वां चामुण्डाकन्यकायै नमः, ककुदि,
ॐ अः लां महालक्ष्मीकन्यकायै नमः, हृदि ॥ १०८-११० ॥

तार (ॐ) वाग्बीज (ऐं) प्रारम्भ में लगाकर अष्ट सिद्धियों के नाम को चतुर्थ्यन्त कन्यका के साथ जोड़कर अन्त में 'नमः' लगाकर 'क' (शिरे), अलिक (ललाट), चिल्लि (भ्रू), कण्ठ, हृदय, नाभि, मूलाधार और लिङ्ग के ऊपर न्यास करें ॥ ११०-१११ ॥

१. अणिमा, २. महिमा, ३. लघिमा, ४. गरिमा, ५. ईशिता, ६. वशिता, ७. प्राकाम्य एवं ८. प्राप्ति - ये आठ सिद्धियाँ कही गयी हैं ॥ ११२ ॥

विमर्श - अष्टसिद्धियों का न्यास इस प्रकार है -

ॐ ऐं अणिमासिद्धिकन्यकायै नमः, शिरसि,

अष्टाप्सरसां नामानि न्यासश्च

कामाद्याः कन्यकाः प्रीता अष्टावप्सरसो न्यसेत् ।
के भाले नेत्रयोर्वक्त्रे कर्णयोः काकुदेऽपि च ॥ ११३ ॥
उर्वशी मेनका रम्भा घृताची पुञ्जकस्थला ।
सुकेशी मञ्जुघोषा च महारङ्गवतीरिताः ॥ ११४ ॥

यक्षादिकन्यान्यासकथनम्

यक्षगन्धर्वसिद्धानां कन्यका नरनागयोः ।
विद्याधरः किंपुरुषः पिशाचानामपीहताः ॥ ११५ ॥
अंसयोर्हृदये न्यस्येत् स्तनयोर्जठरे क्रमात् ।
गुह्येऽप्याधारदेशे च नमोन्ता मदनादिकाः ॥ ११६ ॥

अप्सरो न्यासमाह – **कामाद्या** इति । क्लीं उर्वशीकन्यकायै नमो मूर्ध्नि इत्यादि । नेत्रयोर्द्वे । कर्णयोर्द्वे । अप्सरस आह – **उर्वशीति** । कन्यान्यासमाह – **यक्षेति** । नमोन्ता मदनादिकाः । कामबीजाद्या यक्षादीनां कन्यका अंसादिषु

ॐ ऐं महिमासिद्धिकन्यकायै नमः, ललाटे,
ॐ ऐं लघिमासिद्धिकन्यकायै नमः, भ्रुवोः,
ॐ ऐं गरिमासिद्धिकन्यकायै नमः, कण्ठे,
ॐ ऐं ईशितासिद्धिकन्यकायै नमः, हृदये,
ॐ ऐं वशितासिद्धिकन्यकायै नमः, नाभौ,
ॐ ऐं प्राकाम्यसिद्धिकन्यकायै नमः, मूलाधारे,
ॐ ऐं प्राप्तिसिद्धिकन्यकायै नमः, लिङ्गोपरि ॥ ११०-११२ ॥

अब **अप्सरान्यास** कहते हैं –

प्रारम्भ में कामबीज लगाकर प्रसन्न चित्त वाली उर्वशी आदि आठ अप्सराओं को चतुर्थ्यन्त कन्यका शब्द के साथ जोड़कर (शिर) भाल (ललाट), दक्षिण नेत्र, वामनेत्र, मुख, दक्षिण कर्ण, वामकर्ण, एवं ककुद स्थानों में न्यास करें ॥ ११३ ॥

१. उर्वशी, २. मेनका, ३. रम्भा, ४. घृताची, ५. पुंजकस्थला, ६. सुकेशी, ७. मञ्जुघोषा एवं ८. महारङ्गवती ये आठ अप्सरायें कहीं गई हैं ॥ ११४ ॥

विमर्श – अप्सरान्यास विधि – क्लीं उर्वशीकन्यकायै नमः, मूर्ध्नि,
क्लीं मेनकाकन्यकायै नमः, ललाटे, क्लीं रम्भाकन्यकायै नमः, दक्षिणनेत्रे,
क्लीं घृताचीकन्यकायै नमः, वामनेत्रे क्लीं सुकेशीकन्यकायै नमः, दक्षिणकर्णे
क्लीं मञ्जुघोषाकन्यकायै नमः, वामकर्णे,
क्लीं महारङ्गवतीकन्यकायै नमः, ककुदि ॥ ११३-११४ ॥

तदनन्तर यक्षकन्या, गन्धर्वकन्या, सिद्धकन्या, नरकन्या, नागकन्या, विद्याधरकन्या,

ताराद्यान्नमसायुक्तान् मूलवर्णान्सबिन्दुकान् ।
न्यसेत् सन्धिषु साग्रेषु करयोः पादयोरपि ॥ ११७ ॥
न्यासानेवंविधान् कृत्वा मातङ्गीमासने स्मरेत् ।
सुरार्णवान्तरीपस्थरत्नमन्दिरमध्यगे ॥ ११८ ॥

न्यसेत्। अंसयोर्द्ध्वं स्तनयोर्द्ध्वं एकैकान्यत्र । क्लीं यक्षकन्यकायै नमो दक्षांसे – क्लीं गन्धर्वकन्यकायै नमो वामांसे – इत्यादिप्रयोगः ॥ ११३–११६ ॥ वर्णन्यासमाह – **तारेति** । प्रणवाद्यान् । नमोन्तान् सबिन्दुकान् । मन्त्रवर्णान् करपादसिन्धषु साग्रेषु न्यसेत् । ॐ क्लीं नमो दक्षेंसे । ॐ नमो दक्षकूर्परे इत्यादि ॥ ११७ ॥ सुरार्णवस्यान्तरीपं द्वीपं तत्र यद् रत्नमन्दिरं तन्मध्यगे सिंहासने स्थितां ध्यायेत् ॥ ११८ ॥

किंपुरुषकन्या और पिशाचकन्या को चतुर्थ्यन्त कर अन्त में नमः, तथा प्रारम्भ में काम बीज लगाकर दोनों कन्धे, हृदय, दोनों स्तन, जठर, गुह्य एवं मूलाधार में न्यास करें ॥ ११५-११६ ॥

विमर्श – यथा – १. ॐ क्लीं यक्षकन्यकायै नमः, दक्षांसे
२. ॐ क्लीं गन्धर्वकन्यकायै नमः, वामांसे ३. ॐ क्लीं सिद्धकन्यकायै नमः, हृदि
४. ॐ क्लीं नरकन्यकायै नमः, दक्षिणस्तने ५. ॐ क्लीं नागकन्यकायै नमः, वामस्तने
६. ॐ क्लीं विद्याधरकन्यकायै नमः, जठरे ७. ॐ क्लीं किंपुरुषकन्यकायै नमः, गुह्ये
८. ॐ क्लीं पिशाचाकन्यकायै नमः, मूलाधारे ॥ ११५-११६ ॥

अब **मन्त्र वर्ण का न्यास** कहते हैं – प्रारम्भ में तार (ॐ) तथा अन्त में 'नमः' लगाकर सानुस्वार मूल मन्त्र के प्रत्येक वर्ण से हाथ एवं पैरों की संधियों में तथा अग्रभाग में न्यास करे ॥ ११७ ॥

विमर्श – यथा – ॐ ऐं नमः, दक्षांसे, ॐ नं नमः, दक्षकूर्परे,
ॐ मं नमः, दक्षमणिबन्धे, ॐ उं नमः, दक्षाङ्गुलिमूले,
ॐ च्छिं नमः, दक्षाङ्गुल्यग्रे, ॐ ष्टं नमः, वामांसे
ॐ चां नमः, वामकूर्परे, ॐ डां नमः, वाममणिबन्धे,
ॐ लिं नमः, वामाङ्गुलि मूले, ॐ मां नमः, वामाङ्गुल्यग्रे,
ॐ तं नमः, दक्षपादमूले, ॐ ङ्गिं नमः, दक्षजंघायाम्,
ॐ सं नमः, दक्षगुल्फे, ॐ वैं नमः, दक्षपादाङ्गुलिमूले,
ॐ वं नमः, दक्षपादाङ्गुल्यग्रे, ॐ शं नमः, वामपादमूले,
ॐ कं नमः, वामजंघायाम, ॐ रिं नमः, वामगुल्फे,
ॐ स्वां नमः, वामपादाङ्गुलिमूले, ॐ हां नमः, वामपादागुल्यग्रे ॥ ११७ ॥

अब **मातङ्गी देवी का ध्यान** –

इस प्रकार उपरोक्त सभी न्यास कर मातङ्गी का ध्यान उनके आसन पर इस प्रकार करें, जो सुरा के सागर के मध्य में स्थित द्वीप में रत्नमन्दिर के मध्य में सिंहासन पर विराज रही हैं, माणिक्य के आभूषणों से सुशोभित मन्द मन्द हास

मातङ्गीध्यानकथनम्

माणिक्याभरणान्वितां स्मितमुखीं नीलोत्पलाभाम्बरां,
रम्यालक्तकलिप्तपादकमलां नेत्रत्रयोल्लासिनीम्।
वीणावादनतत्परां सुरनतां कीरच्छदश्यामलां
मातङ्गीं, शशिशेखरामनुभजेत्ताम्बूलपूर्णाननाम्॥ ११९॥

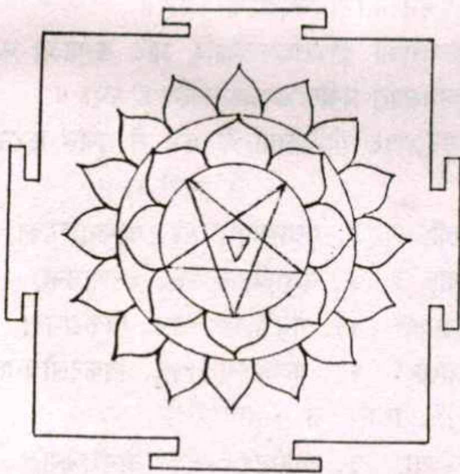
प्रयोगकथनम्

लक्षं जपेन्मधूकोत्थैर्जुहुयादयुतं शुभैः।
मातङ्गीप्रोदिते पीठे लघुश्यामां प्रपूजयेत्॥ १२०॥
त्रिकोणपञ्चकोणाऽष्टदलषोडशपत्रके ।
वेदद्वारधरागेहावृत्ते यन्त्रे विधानतः॥ १२१॥
देव्या अग्रे पार्श्वयोश्च तिस्रोर्चेद्रतिपूर्विकाः।
इच्छाज्ञानक्रियाशक्तीः कोणेष्वग्रादिषु त्रिषु॥ १२२॥

माणिक्येति । कीरच्छदश्यामलां शुकपिच्छनीलाम्॥ ११९–१२१॥ रतिपूर्विका रतिप्रीतिमनोभवाः॥ १२२–१२३॥

करती हुई नील कमल के समान कान्तिमती है, जिसके शरीर पर नीले वस्त्र तथा चरणकमलों में अलक्तक सुशोभित हो रहे हैं, ऐसी त्रिनेत्रा, वीणावादन में तत्पर, देवताओं द्वारा वन्दित, तोता के पंखो के समान नील वर्णवाली, मस्तक पर चन्द्र धारण किये, पान का बीडा मुख में लिए मातङ्गी भगवती का मैं ध्यान करता हूँ॥ ११८-११९॥

लघुश्यामापूजनयन्त्रम्



उक्त मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिए तथा महुये के पुष्प या फल से दश हजार आहुतियाँ देनी चाहिए। पूर्वोक्त मातङ्गी पीठ पर **लघुश्यामा** का पूजन करना चाहिए (द्र० ७. ७३-७४)॥ १२०॥

अब **पूजन यन्त्र का विधान** कहते हैं - त्रिकोण पञ्चकोण अष्टदल एवं षोडशदल को चार द्वार वाले भूपुर से वेष्टित करें। इस प्रकार निर्मित मन्त्र पर लघुश्यामा का पूजन करें॥ १२१॥

देवी के अग्रभाग में एवं दोनों पार्श्वभाग में रति, प्रीति एवं मनोभाव का, त्रिकोण के अग्र त्रिभाग में इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति का पूजन करना चाहिए॥ १२२॥

बाणान्पञ्चसु कोणेषु केसरेष्वङ्गदेवताः ।
ब्राह्म्याद्या अष्टपत्रेषु पत्राग्रेष्वणिमादिकाः ॥ १२३ ॥
यजेत् षोडशपत्रेषूर्वश्याद्याः कन्यका अपि ।
प्रयोगान्न्यासवत्कुर्याद् रत्यादीनां प्रपूजने ॥ १२४ ॥
भूगृहस्य चतुर्दिक्षु योगिनीः परिपूजयेत् ।

चतुःषष्टियोगिनीकथनम्

गजानना सिंहमुखी गृध्रास्या काकतुण्डिका ॥ १२५ ॥
उष्ट्रग्रीवा हयग्रीवा वाराही शरभानना ।
उलूकिका शिवारावा मयूरी विकटानना ॥ १२६ ॥
अष्टवक्त्रा कोटराक्षी कुब्जा विकटलोचना ।
समर्चयेद्दिशि प्राच्यामेताः षोडशयोगिनीः ॥ १२७ ॥
शुष्कोदरी ललज्जिह्वाश्वदंष्ट्रा वानरानना ।
ऋक्षाक्षी केकराक्षी च बृहत्तुण्डा सुराप्रिया ॥ १२८ ॥

उर्वश्याद्या अष्टौ । कन्या अष्टौ यक्षादीनाम् । न्यासवत् प्रयोगान् । न्यासे यथा प्रयोगास्तथा पूजायामपि ॥ १२४ ॥ योगिनीराह – **गजाननेत्यादि** ॥ १२५ ॥ प्रतिदिशं षोडशं यथार्थनाम्न्यः सर्वाः ॥ १२६–१२६ ॥

पञ्चकोण के पाँच कोणों में द्रावण, शोषण, तापन, मोहन एवं उन्माद इन पाँच बाणों का तथा केशरों में षडङ्ग पूजन करना चाहिए । अष्टदल में ब्राह्मी आदि शक्तियों का तथा दलाग्रभाग में अणिमादिसिद्धयों का पूजन करना चाहिए ॥ १२३ ॥

तदनन्तर षोडशदलों में उर्वशी आदि अप्सराओं का तथा यक्षादि आठ कन्याओं का पूजन करना चाहिए । रति आदि के पूजन में न्यासवत् प्रयोग करना चाहिए ॥ १२४ ॥

तदनन्तर भूपुर के चारों दिशाओं में १६, १६ योगिनियों के क्रम से पूजन करना चाहिए । **पूर्व दिशा में** -

१. गजानना,	२. सिंहमुखी,	३. गृध्रास्या,	४. काकतुण्डिका,
५. उष्ट्रग्रीवा,	६. हयग्रीवा,	७. वाराही,	८. शरभानना,
९. उलूकिका,	१०. शिवारावा,	११. मयूरी,	१२. विकटानना,
१३. अष्टवक्त्रा,	१४. कोटराक्षी	१५. कुब्जा एवं	१६. विकटलोचना

दक्षिण दिशा में -

१. शुष्कोदरी,	२. ललज्जिह्वा,	३. श्वदंष्ट्रा	४. वानरानना,
५. ऋक्षाक्षी,	६. केकराक्षी,	७. बृहत्तुण्डा,	८. सुराप्रिया,
९. कपालहस्ता,	१०. रक्ताक्षी,	११. शुकी,	१२. श्येनी,
१३. कपोतिका,	१४. पाशहस्ता,	१५. दण्डहस्ता एवं	१६. प्रचण्डा

कपालहस्ता रक्ताक्षी शुकी श्येनी कपोतिका ।
पाशहस्ता दण्डहस्ता प्रचण्डेत्यपि षोडश ॥ १२९ ॥
पूज्या कीनाशदिग्भागे प्रतीच्यां चण्डविक्रमा ।
शिशुघ्नी पापहन्त्री च काली रुधिरपायिनी ॥ १३० ॥
वसाधया गर्भभक्षा शवहस्तान्त्रमालिनी ।
स्थूलकेशी बृहत्कुक्षिः सर्पास्या प्रेतवाहना ॥ १३१ ॥
दन्तशूककरा क्रौञ्ची मृगशीर्षेति षोडश ।
सम्पूज्या उत्तरस्यां तु षोडशैव वृषानना ॥ १३२ ॥
व्यात्तास्या धूमनिःश्वासा व्योमैकचरणोर्ध्वदृक् ।
तापनी शोषणी दृष्टिः कोटरी स्थूलनासिका ॥ १३३ ॥
विद्युत्प्रभा बलाकास्या मार्जारी कटपूतना ।
अट्टाट्टहासा कामाक्षेत्यर्चनीया अभीष्टदाः ॥ १३४ ॥
नश्यन्ति भूतशाकिन्य आसां नाम श्रुतेरपि ।
भूमन्दिरस्य कोणेषु वह्न्यादिषु यजेत्क्रमात् ॥ १३५ ॥
स्वस्वमन्त्रेण बटुकं गणेशं क्षेत्रपालकम् ।
दुर्गां तद्बहिरिन्द्रादीन् वज्रादीनपि पूजयेत् ॥ १३६ ॥

कीनाशदिग्भागे दक्षिणस्याम् ॥ १३० ॥ *॥ १३१–१३५ ॥ **स्वस्वमन्त्रेणेति** । बटुकादीनां मन्त्रा उक्ताः ॥ १३६ ॥ *॥ १३७–१३८ ॥

पश्चिम दिशा में -

१ चण्डविक्रमा,	२ शिशुघ्नी,	३ पापहन्त्री,	४ काली,
५ रुधिरपायिनी,	६ वसाधया,	७ गर्भभक्षा,	८ शवहस्ता,
९ अन्त्रमालिनी,	१० स्थूलकेशी,	११ वृहत्कुक्षी,	१२ सर्पास्या,
१३ प्रेतवाहना,	१४ दन्तशूककरा	१५ क्रौञ्ची एवं	१६ मृगशीर्षा

उत्तर दिशा में -

१ वृषानना,	२ व्यात्तास्या,	३ धूमनिश्वासा,	४ व्योमैकचरणा,
५ ऊर्ध्वदृक्,	६ तापनी,	७ शोषणी,	८ दृष्टि,
९ कोटरी	१० स्थूलनासिका,	११ विद्युत्प्रभा,	१२ वलाकास्या,
१३ मार्जारी	१४ कटपूतना	१५ अट्टाट्टहासा एवं	१६ कामाक्षी

इन योगिनियों का नाम सुनते ही भूतगण तथा शाकिनियाँ नष्ट हो जाती हैं ॥ १२५-१३५ ॥

पुनः भूपुर के आग्नेयादि कोणों में क्रमशः तत्तन्मन्त्रों से बटुक, गणेश, क्षेत्रपाल एवं दुर्गा का पूजन करना चाहिए । भूपुर के बाहर पूर्वादि दिक् क्रम से इन्द्रादि दश दिक्पालों का तथा उनके वज्रादि आयुधों का भी पूजन करना चाहिए ॥ १३५-१३६ ॥

भूगृहस्य चतुर्दिक्षु चतुर्वाद्यानि पूजयेत् ।
तत्तत्संज्ञं च विततं घनं च सुषिराभिधम् ॥ १३७ ॥
द्वादशावरणैरेवं लघुश्यामां यजेत्तु यः ।
सर्वासां सम्पदां पात्रमचिराज्जायते स ना ॥ १३८ ॥

पुनः भूपुर के चारों दिशाओं में १. वीणा, २. वितत, ३. घन एवं ४. सुषिर आदि चारों वाद्यों का पूजन करना चाहिए । जो व्यक्ति इस प्रकार बारह आवरणों के साथ लघुश्यामा का पूजन करता है वह शीघ्र ही समस्त सम्पत्तियों का आश्रय बन जाता है ॥ १३७-१३८ ॥

विमर्श - आवरण पूजा विधान - प्रथमतः ११८-११९ श्लोक में वर्णित देवी का ध्यान कर मानसोपचार से पूजन करें । ७. ७३-७४ श्लोक में बतलाई गई विधि से मूल मन्त्र से पीठ पूजन कर उस पीठ पर मूल मन्त्र से देवी की मूर्त्ति की कल्पना कर उनका विधिवत् पूजन करें । फिर पुष्प समर्पण के उपरान्त उनकी अनुज्ञा ले कर यन्त्र में इस प्रकार आवरण पूजा करें -

प्रथम आवरण में देवी के आगे तथा दोनों पार्श्व में निम्न मन्त्रों से पूजन करना चाहिए -

ऐं रत्यै नमः, अग्रे,
ह्रीं प्रीत्यै नमः, दक्षिणपार्श्वे, क्लीं मनोभवायै नमः, वामपार्श्वे,

द्वितीय आवरण में त्रिकोण के अग्रभाग से प्रारम्भ कर प्रदक्षिणा क्रम से इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति का पूजन निम्न मन्त्रों से करना चाहिए -

ऐं इच्छाशक्त्यै नमः, ह्रीं ज्ञानशक्त्यै नमः, क्लीं क्रियाशक्त्यै नमः,

तृतीयावरण में पञ्चकोण में द्रावण आदि पञ्चबाणों की पूजा करनी चाहिए -

द्रां द्रावणबाणाय नमः, द्रीं शोषणबाणाय नमः,
क्लीं तापनबाणाय नमः, ब्लूं मोहनबाणाय नमः,
सः उन्मादनबाणाय नमः, ।

चतुर्थावरण में केशरों में षडङ्ग पूजा करनी चाहिए -

ऐं नमः, हृदयाय नमः, उच्छिष्ट शिरसे स्वाहा,
चाण्डालि शिखायै वषट्, मातङ्गि कवचाय हुम्,
सर्ववशङ्करि नेत्रत्रयाय वौषट्, स्वाहा अस्त्राय फट्

पञ्चम आवरण में अष्टदल में पूर्वादि क्रम से ब्राह्मी आदि आठ मातृकाओं का पूजन करना चाहिए -

आं क्षां ब्राह्मीकन्यकायै नमः, ईं लां माहेश्वरीकन्यकायै नमः,
ऊं हां कौमारीकन्यकायै नमः, ॠं सां वैष्णवीकन्यकायै नमः,
ॡं षां वाराहीकन्यकायै नमः, ऐं शां इन्द्राणीकन्यकायै नमः,
औ वां चामुण्डाकन्यकायै नमः, अः लां महालक्ष्मीकन्यकायै नमः, ।

षष्ठ आवरण में अष्टदल के अग्रभाग में वाग्वीज पूर्वक अष्टसिद्धियों की पूजा करनी चाहिए ।

१ - ॐ ऐं अणिमासिद्धिकन्यकायै नमः, २ - ॐ ऐं महिमासिद्धिकन्यकायै नमः,
३ - ॐ ऐं लघिमासिद्धिकन्यकायै नमः, ४ - ॐ ऐं गरिमासिद्धिकन्यकायै नमः,
५ - ॐ ऐं ईशितासिद्धिकन्यकायै नमः, ६ - ॐ ऐं वशितासिद्धिकन्यकायै नमः,
७ - ॐ ऐं प्राकाम्यसिद्धिकन्यकायै नमः, ८ - ॐ ऐं प्राप्तिसिद्धिकन्यकायै नमः,

सप्तम आवरण में कामवीजपूर्वक उर्वशी आदि आठ अप्सराओं की निम्न नाममन्त्रों से पूजा करनी चाहिए -

१ - ॐ क्लीं उर्वशीकन्यकायै नमः, २ - ॐ क्लीं मेनकाकन्यकायै नमः
३ - ॐ क्लीं रम्भाकन्यकायै नमः, ४ - ॐ क्लीं घृताचीकन्यकायै नमः
५ - ॐ क्लीं पुञ्जकस्थलाकन्यकायै नमः, ६ - ॐ क्लीं सुकेशीकन्यकायै नमः,
७ - ॐ क्लीं मञ्जुघोषाकन्यकायै नमः ८ - ॐ क्लीं महारङ्गवतीकन्यकायै नमः,

इसी प्रकार सप्तम आवरण में ही यक्षादि आठ कन्यकाओं की पूजा भी तत्तन्नाममन्त्रों से करनी चाहिए -

१ - ॐ क्लीं यक्षकन्यकायै नमः २ - ॐ क्लीं गन्धर्वकन्यकायै नमः
३ - ॐ क्लीं सिद्धकन्यकायै नमः ४ - ॐ क्लीं नरकन्यकायै नमः
५ - ॐ क्लीं नागकन्यकायै नमः ६ - ॐ क्लीं विद्याधरकन्यकायै नमः
७ - ॐ क्लीं किंपुरुषकन्यकायै नमः ८ - ॐ क्लीं पिशाचकन्यकायै नमः

अष्टम आवरण में भूपुर के चारों दिशाओं में १६, १६ योगिनियों की पूजा करनी चाहिए ।

भूपुर के पूर्वदिशा में -

१. ॐ गजाननायै नमः, २. ॐ सिंहमुख्यै नमः, ३. ॐ गृध्रास्यायै नमः
४. ॐ काकतुण्डायै नमः ५. ॐ उष्ट्रग्रीवायै नमः ६. ॐ हयग्रीवायै नमः
७. ॐ वाराह्यै नमः ८. ॐ शरभाननायै नमः ९. ॐ उलूकिकायै नमः
१०. ॐ शिवारावायै नमः ११. ॐ मयूर्यै नमः १२. ॐ विकटाननायै नमः
१३. ॐ अष्टवक्त्रायै नमः १४. ॐ कोटराक्ष्यै नमः १५. ॐ कुब्जायै नमः
१६. ॐ विकटलोचनायै नमः

भूपुर के दक्षिणदिशा में -

१. ॐ शुष्कोदर्यै नमः, २. ॐ ललज्जिह्वायै नमः, ३. ॐ श्वदंष्ट्रायै नमः
४. ॐ वानराननायै नमः ५. ॐ ऋक्षाक्ष्यै नमः ६. ॐ केकराक्ष्यै नमः
७. ॐ बृहत्तुण्डायै नमः ८. ॐ सुराप्रियायै नमः ९. ॐ कपालहस्तायै नमः
१०. ॐ रक्ताक्ष्यै नमः ११. ॐ शुक्यै नमः १२. ॐ श्येन्यै नमः
१३. ॐ कपोतिकायै नमः १४. ॐ पाशहस्तायै नमः १५. ॐ दण्डहस्तायै नमः
१६. ॐ प्रचण्डायै नमः

भूपुर के पश्चिम दिशा में -

१. ॐ चण्डविक्रमायै नमः, २. ॐ शिशुघ्न्यै नमः ३. ॐ पापहन्त्र्यै नमः
४. ॐ काल्यै नमः ५. ॐ रुधिरपायिन्यै नमः ६. ॐ वसाधयायै नमः
७. ॐ गर्भभक्षायै नमः ८. ॐ शवहस्तायै नमः ९. ॐ अन्त्रमालिन्यै नमः
१०. ॐ स्थूलकेश्यै नमः ११. ॐ बृहत्कुक्ष्यै नमः १२. ॐ सर्पास्यायै नमः
१३. ॐ प्रेतवाहनायै नमः १४. ॐ दन्तशूक्करायै नमः १५. ॐ क्रौञ्च्यै नमः
१६. ॐ मृगशीर्षायै नमः

भूपुर के उत्तर दिशा में -

१. ॐ वृषाननायै नमः, २. ॐ व्यात्तास्यायै नमः ३. ॐ धूमनिश्वासायै नमः
४. ॐ व्योमैकचरणायै नमः ५. ॐ ऊर्ध्वदृशे नमः ६. ॐ तापिन्यै नमः
७. ॐ शोषिण्यै नमः ८. ॐ दृष्ट्यै नमः ९. ॐ कोटर्यै नमः
१०. ॐ स्थूलनासिकायै नमः ११. ॐ विद्युत्प्रभायै नमः १२. ॐ बलाकास्यायै नमः
१३. ॐ मार्जार्यै नमः १४. ॐ कटपूतनायै नमः
१५. ॐ अट्टाट्टहासकायै नमः १६. ॐ कामाक्ष्यै नमः

तदनन्तर **नवम आवरण में** पुनः भूपुर के चारों दिशाओं में पूर्वादि से बटुक, गणपति, क्षेत्रपाल और दुर्गा की पूजा करनी चाहिए ।

ॐ बं बटुकाय नमः, पूर्वे ॐ गं गणपतये नमः, दक्षिणे
ॐ क्षं क्षेत्रपालाय नमः, पश्चिमे ॐ दुं दुर्गायै नमः, उत्तरे

इसके बाद **दशम आवरण में** भूपुर के बाहर इन्द्रादि दश दिक्पालों की पूजा करनी चाहिए ।

१ - ॐ इन्द्राय नमः, पूर्वे २ - ॐ अग्नये नमः, आग्नेये
३ - ॐ यमाय नमः, दक्षिणे ४ - ॐ निर्ऋतये नमः, नैर्ऋत्ये
५ - ॐ वरुणाय नमः, पश्चिमे ६ - ॐ वायवे नमः, वायव्ये
७ - ॐ सोमाय नमः, उत्तरे ८ - ॐ ईशानाय नमः, ऐशान्ये
९ - ॐ ब्रह्मणे नमः, पूर्वेशानयोर्मध्ये,
१० - ॐ अनन्ताय नमः, पश्चिमनैर्ऋत्ययोर्मध्ये,

इसके बाद **एकादश आवरण में** पुनः भूपुर के बाहर दश दिक्पालों के समीप उनके वज्रादि आयुधों की पूजा करनी चाहिए ।

१ - ॐ वज्राय नमः, पूर्वे २ - ॐ शक्तये नमः, आग्नेये
३ - ॐ दण्डाय नमः, दक्षिणे ४ - ॐ खड्गाय नमः, नैर्ऋत्ये
५ - ॐ पाशाय नमः, पश्चिमे ६ - ॐ अंकुशाय नमः, वायव्ये
७ - ॐ गदायै नमः, उत्तरे ८ - ॐ त्रिशूलाय नमः, ऐशान्ये
९ - ॐ पद्माय नमः, पूर्वेशानयोर्मध्ये,
१० - ॐ चक्राय नमः, पश्चिमनैर्ऋत्ययोर्मध्ये,

लघुश्यामायाः द्वादशावरणपूजागायत्रीकथनं च

वाणीशुक्रप्रिया ङेन्ता विद्महे मीनकेतनः ।
कामेश्वरीं धीमहीति तन्नः श्यामाप्रचोदयात्[1] ॥ १३६ ॥
एषोदिता तु मातङ्गीगायत्री सर्वसिद्धिदा ।
अनया यागवस्तूनि प्रोक्षेत्तस्यास्समर्चने ॥ १४० ॥
मातङ्गीमन्त्रसम्प्रोक्ताः प्रयोगाः तत्र कीर्तिताः ।
राजानो राजपुत्राश्च सुदृशो मदमन्थराः ॥ १४१ ॥
दासामनोवचःकायैर्भवन्त्यस्या उपासितुः ।
शाकिनीप्रेतभूताश्च धर्षितुं तं न शक्नुयुः ॥ १४२ ॥

तद्गायत्रीमाह – **वाणीति** । वाणी ऐं । शुकप्रिया ङेन्ता शुकप्रियायै । मीनकेतनः क्लीं । स्वरूपं शेषः ॥ १३६ ॥ * ॥ १४०–१४१ ॥

पुनः **बारहवें आवरण में** भूपुर के बाहर पूर्वादि दिशाओं में वाद्यों की पूजा करे -

ॐ वीणाय नमः, पूर्वे, ॐ वितताय नमः, दक्षिणे,
ॐ घनाय नमः, पश्चिमे, ॐ सुषिराय नमः, उत्तरे,

इस प्रकार आवरण पूजा सम्पादन कर धूप दीपादि उपचारों से देवी का पूजन कर पुनः जप करना चाहिए ॥ १२५-१३८ ॥

अब **मातङ्गी गायत्री का उद्धार** कहते हैं -

वाणी (ऐं) चतुर्थ्यन्त शुकप्रिया (शुकप्रियायै), फिर 'विद्महे', तदनन्तर मीनकेतन कामबीज (क्लीं), फिर 'कामेश्वरीं धीमहि', इसके बाद 'तन्नः श्यामा प्रचोदयात्' लगाने से सर्वाभीष्टप्रदायिनी मातङ्गी गायत्री निष्पन्न होती है । मातङ्गी की अर्चना में इसी गायत्री से समस्त यज्ञ सामग्री अभिषिञ्चित करें ॥ १३६-१४० ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है -

ऐं शुकप्रियायै विद्महे क्लीं कामेश्वरीं धीमहि । तन्नः श्यामा प्रचोदयात् ।

सप्तम तरङ्ग (६६-६८) में हमने मातङ्गी के मन्त्र तथा उसके समस्त प्रयोगों को ७. ८३-६१ में कहा है ।

राजा, राजपुत्र, मदविह्वला, सुन्दरी स्त्रियाँ ये सभी मातङ्गी की उपासना करने वाले साधक के मन वचन और कार्य से वश में हो जाते हैं । किं बहुना शाकिनी अथवा प्रेत या भूत आदि उसे किसी प्रकार भयभीत नहीं कर सकते ॥ १४१-१४२ ॥

इस विषय में विशेष कहने की आवश्यकता नही है, यह देवी अपने उपासकों के

---

१. ऐं शुकप्रियायै विद्महे क्लीं कामेश्वरि धीमहि । तन्नः श्यामा प्रचोदयात् ।

भूरिणा किमिहोक्तेन देवीयमखिलेष्टदा ।
यन्मनुस्मरणादेव नरो देवोपमो भवेत् ॥ १४३ ॥
देव्याउपासकैः पुम्भिः स्त्रियो निन्द्या न जातुचित् ।
देवीवन्माननीयास्ता मनोऽभीष्टमभीप्सुभिः ॥ १४४ ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचिते मन्त्रमहोदधौ बालालघुश्यामा-
निरूपणमष्टमस्तरङ्गः ॥ ८ ॥



---

* ॥ १४०–१४१ ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचितायां मन्त्रमहोदधिव्याख्यायां नौकायां
बालालघुश्यामानिरूपणमष्टमस्तरङ्गः ॥ ८ ॥



सारे अभीष्ट पूर्ण करती है । इन देवी के मन्त्र के स्मरण मात्र से मनुष्य देवता के समान बन जाता है ॥ १४३ ॥

देवी के उपासकों को कभी किसी भी हालत में स्त्री निन्दा नहीं करनी चाहिए । अपना अभीष्ट चाहने वालों को उनका सत्कार देवी की तरह ही करना चाहिए ॥ १४४ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमन्महीधर विरचित मन्त्रमहोदधि के अष्टम तरङ्ग की महाकवि
पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय
कृत 'अरित्र' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ ८ ॥



अथ नवमः तरङ्गः

अन्नपूर्णेश्वरीमन्त्रं वक्ष्येऽभीष्टप्रदायकम् ।
कुबेरो यामुपास्याशु लब्धवान्निधिनाथताम् ॥ १ ॥
शम्भोः सख्यं दिगीशत्वं कैलासाधीशतामपि ।

अन्नपूर्णेश्वरी मन्त्रः

वेदादिर्गिरिजापद्मामन्मथो हृदयं भग ॥ २ ॥
वतिमाहेश्वरि प्रान्तेऽन्नपूर्णे दहनाङ्गना ।
प्रोक्ताविंशतिवर्णोयं विद्या स्याद् द्रुहिणो मुनिः ॥ ३ ॥
कृतिश्छन्दोऽन्नपूर्णेशी देवता परिकीर्तिता ।
षड्दीर्घाढ्येन हृल्लेखाबीजेन स्यात्षडङ्गकम् ॥ ४ ॥

---

* नौका *

अन्नपूर्णेश्वरी मन्त्रवक्तुं प्रतिजानीते । फलं कथयन् मन्त्रमुद्धरति – **वेदादिरिति** । वेदादिः प्रणवः । गिरिजा ह्रीं । पद्मा श्रीं । मन्मथः क्लीं । हृदयं नमः। भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वरूपम् । दहनाङ्गना स्वाहा । द्रुहिणो ब्रह्मा ॥ १–५ ॥

---

* अरित्र *

अब अभीष्ट फल देने वाले अन्नपूर्णेश्वरी के मन्त्रों को कहता हूँ, जिनकी उपासना से कुबेर ने निधिपतित्व, सदाशिव से मित्रता, दिगीशत्व एवं कैलाशाधिपतित्व प्राप्त किया ॥ १-२ ॥

अब **भगवती अन्नपूर्णेश्वरी का मन्त्रोद्धार** कहते हैं -

वेदादि (ॐ), गिरिजा (ह्रीं), पद्मा (श्रीं), मन्मथ (क्लीं), हृदय (नमः), तदनन्तर 'भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे' पद, फिर अन्त में दहनाङ्गना (स्वाहा), लगाने से बीस अक्षरों का अन्नपूर्णा मन्त्र बनता है ॥ २-३ ॥

इस मन्त्र के द्रुहिण (ब्रह्मा) ऋषि हैं, कृति छन्द हैं तथा अन्नपूर्णेशी देवता कही गई हैं । षड्दीर्घ सहित हृल्लेखा बीज से षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ ३-४ ॥

मुखनासाक्षिकर्णान्धुगुदेषु नवसु न्यसेत् ।
पदानि नवतद्वर्णसंख्येदानीमुदीर्यते ॥ ५ ॥
भूमिचन्द्रधरैकाक्षिवेदाब्धियुगबाहुभिः ।
पदसंख्यामितैर्वर्णैस्ततो ध्यायेत् सुरेश्वरीम् ॥ ६ ॥

ध्यानवर्णनम्

तप्तस्वर्णनिभा शशाङ्कमुकुटा रत्नप्रभाभासुरा
नानावस्त्रविराजिता त्रिनयना भूमीरमाभ्यां युता ।
दर्वीहाटकभाजनं च दधती रम्याच्च पीनस्तनी
नृत्यन्तं शिवमाकलय्य मुदिता ध्येयान्नपूर्णेश्वरी ॥ ७ ॥

भूमीत्यादितद्वर्णसंख्या ॥ ६ ॥ ध्यानमाह – दर्वीदक्षे स्वर्णपात्रं वामे ॥ ७–१० ॥

विमर्श – मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है – 'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा' ।

विनियोग – 'अस्य श्रीअन्नपूर्णामन्त्रस्य द्रुहिणऋषिः कृतिश्छन्दः अन्नपूर्णेशी देवता ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः' ।

षडङ्गन्यास – ह्रां हृदयाय नमः, ह्रीं शिरसे स्वाहा, ह्रूँ शिखायै वषट्,
ह्रैं कवचाय हुं, ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ह्रः अस्त्राय फट् ॥ ३-४ ॥

मुख, दोनों नासिका, दोनों नेत्र, दोनों कान, अन्धु (लिङ्ग) और गुदा में मन्त्र के १, १, १, १, २, ४, ४, ४, एवं २ वर्णों से नवपदन्यास कर सुरेश्वरी का ध्यान करना चाहिए ॥ ५-६ ॥

विमर्श – नव पदन्यास विधि – ॐ नमः मुखे, ह्रीं नमः दक्षनासायाम्,
श्रीं नमः वामनासायाम्, क्लीं नमः दक्षिणनेत्रे, नमः, नमः वामनेत्रे,
भगवति नमः दक्षकर्णे, माहेश्वरि नमः वामकर्णे, अन्नपूर्णे नमः अन्धौ (लिङ्गे),
स्वाहा नमः मूलाधारे ॥ ५-६ ॥

अब **अन्नपूर्णा भगवती का ध्यान** कहते हैं – तपाये गये सोने के समान कान्तिवाली, शिर पर चन्द्रकला युक्त मुकुट धारण किये हुये, रत्नों की प्रभा से देदीप्यमान, नाना वस्त्रों से अलंकृत, तीन नेत्रों वाली, भूमि और रमा से युक्त, दोनों हाथ में दर्वी एवं स्वर्णपात्र लिए हुये, रमणीय एवं समुन्नत स्तनमण्डल से विराजित तथा नृत्य करते हुये सदाशिव को देख कर प्रसंन्न रहने वाली अन्नपूर्णेश्वरी का ध्यान करना चाहिए ॥ ७ ॥

विमर्श – मेरुतन्त्र के अनुसार भगवती अन्नपूर्णा का ध्यान इस प्रकार है –

तप्तकाञ्चनसंकाशां बालेन्दुकृतशेखराम् ।
नवरत्नप्रभादीप्त मुकुटां कुङ्कुमारुणाम् ॥

जपहोमपूजादिकथनम्

लक्षं जपोऽयुतं होमश्चरुणा घृतसंयुतः ।
जयादिनवशक्त्याढ्ये पीठे पूजा समीरिता ॥ ८ ॥
त्रिकोण–वेदपत्राष्टपत्र–षोडशपत्रके ।
भूपुरेण युते यन्त्रे प्रदद्यान्माययासनम् ॥ ९ ॥

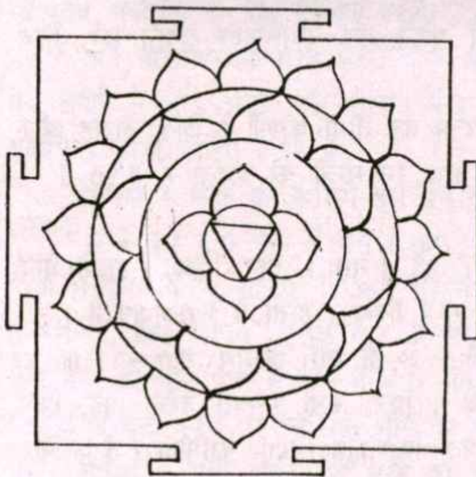
चित्रवस्त्रपरीधानां मीनाक्षीं कलशस्तनीम् ।
नृत्यन्तमीशमनिशं दृष्ट्वाऽऽनन्दमयीं पराम् ॥
सानन्दमुखलोलाक्षीं मेखलाढ्यनितम्बिनीम् ।
अन्नदानरतां नित्यां भूमिश्रीभ्यां नमस्कृताम् ॥
दुग्धान्नभरितं पात्रं सरत्नं वामहस्तके ।
दक्षिणे तु करं देव्या दर्वी ध्यायेत् सुवर्णजाम् ॥

'तपाए हुए सुवर्ण के समान कान्ति वाली, मुकुट में बालचन्द्र धारण किए हुए, नवीन रत्न की प्रभा से प्रदीप्त मुकुट धारण किए हुए, कुङ्कुम सी लाली युक्त, चित्र-विचित्र वस्त्र पहने हुए, मीनाक्षी एवं कलश के समान स्तनों वाली, नृत्य करते हुए ईश को देखकर आनन्दित परा भगवती अन्नपूर्णा का ध्यान करना चाहिए ।

आनन्द युक्त मुख वाली एवं चञ्चल नेत्रों वाली, नितम्ब पर मेखला बाँधे हुए, अन्न दान में तल्लीन भूमि एवं लक्ष्मी दोनों से नित्य नमस्कृत देवी अन्नपूर्णा का ध्यान करना चाहिए ।

दुग्ध एवं अन्न से परिपूर्ण पात्र और रत्न से युक्त पात्रों को वाम हाथों में धारण करने वाली और दाहिने हाथ में सूप लिए हुए सुवर्ण के समान प्रभा वाली देवी का ध्यान करना चाहिए ॥ ७ ॥

अन्नपूर्णेश्वरीयन्त्रम्



पुरश्चरण - अन्नपूर्णा मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिए तथा घृत मिश्रित चरु से दश हजार आहुतियाँ देनी चाहिए । जयादि नव शक्तियों से युक्त पीठ पर इनकी पूजा करनी चाहिए ॥ ८ ॥

पूजा यन्त्र - त्रिकोण - चतुर्दल, अष्टदल, षोडशदल एवं भूपुर सहित निर्मित यन्त्र पर मायाबीज से आसन देवी को देना चाहिए ॥ ९ ॥

विमर्श - पीठ पूजा - प्रथमतः ६. ७ में वर्णित देवी के स्वरूप का ध्यान करे और फिर मानसोपचारों से उनका पूजन करे तथा शंख का अर्घ्यपात्र स्थापित करे । फिर

अग्न्यादिकोणत्रितये शिववाराहमाधवान् ।
अर्चयेत् स्वस्वमन्त्रैस्तु प्रोच्यन्ते मनवस्तु ते ॥ १० ॥

शिववाराहमाधवमन्त्रकथनम्

प्रणवो मनुचन्द्राढ्यं गगनं हृदयं शिवा ।
मारुतः शिवमन्त्रोऽयं सप्तार्णः[1] शिवपूजने ॥ ११ ॥
तारं नमो भगवते वराहार्घीशयुग्वसुः ।
पायभूर्भुवरन्तेस्वोथ शूरः कामिका च ये ॥ १२ ॥
भूपतित्वं च मे देहि ददापय शुचिप्रिया ।
त्रयस्त्रिंशद्वर्णमन्त्रः[2] प्रोक्तो वाराहपूजने ॥ १३ ॥

शिवमन्त्रमाह – **प्रणव** इति । गगनं हकारः । मनुचन्द्राढ्यम् औ बिन्दुयुतं हौं हृदयं नमः । शिवा स्वरूपम् । मारुतो यः ॥ ११ ॥ वराहमन्त्रमाह – **तार** इति । तार ॐ। नमो भगवते वराह स्वरूपम् । अर्घीशयुग्वसुः । ऊयुतो रः । रूपाय भूर्भुवः स्वः स्वरूपम् । शूरः पः । कामिका । 'तये भूपतित्वं मे देहि ददापय'

'आधारशक्तये नमः' से 'ह्रीं ज्ञानात्मने नमः' पर्यन्त मन्त्रों से पीठ देवताओं का पूजन कर पीठ के पूर्वादि दिशाओं एवं मध्य में जयादि ९ शक्तियों का इस प्रकार पूजन करे -

ॐ जयायै नमः, ॐ विजयायै नमः, ॐ अजित्यै नमः,
ॐ अपराजितायै नमः, ॐ विलासिन्यै नमः, ॐ दोर्मध्यै नमः,
ॐ अघोरायै नमः, ॐ मङ्गलायै नमः ॐ नित्यायै नमः, मध्ये,

इसके पश्चात् मूल मन्त्र से मूर्ति कल्पित कर 'ह्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः' से देवी को आसन देकर विधिवत् आवाहन एवं पूजन कर पुष्पाञ्जलि प्रदान करे, फिर अनुज्ञा ले आवरण पूजा करे ॥ ९ ॥

सर्वप्रथम त्रिकोण में आग्नेयकोण से प्रारम्भ कर तीनों कोणों में शिव, वाराह और माधव की अपने अपने मन्त्रों से पूजा करे । अब उन मन्त्रों को कहता हूँ ॥ १० ॥

अब **शिव के मन्त्र** कहता हूँ -

प्रणव (ॐ), मनुचन्द्राढ्य गगन (हौं), हृद् (नमः), फिर 'शिवा', इसके बाद मारुत (य), लगाने से सात अक्षरों का शिव मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ १०-११ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है -'ॐ हौं नमः शिवाय' ॥ १०-११ ॥

अब **वराह मन्त्र** कहते हैं - तार (ॐ), फिर 'नमो भगवते वराह' पद, फिर अर्घीशयुग्वसु (रू), फिर 'पाय भूर्भुवः स्वः' पद, फिर शूर (प), कामिका (त), फिर

---

१. ॐ हौं नमः शिवायेति सप्तार्णः ।
२. ॐ नमो भगवते वराहरूपाय भूर्भुवःस्वःपतये भूपतित्वं मे देहि ददापय स्वाहेति त्रयस्त्रिंशदर्णः ।

प्रणवो हृदयं नारायणाय वसुवर्णकः ।
नारायणार्चने मन्त्रः षडङ्गानि ततोऽर्चयेत् ॥ १४ ॥
धरां वामे स्वमनुना दक्षभागे श्रियं तथा ।
अन्नं मह्यन्नमित्युक्त्वा मेदेह्यन्नाधिपार्णका ॥ १५ ॥
तये ममान्नं प्रार्णान्ते दापयानलसुन्दरी ।
द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रो[1] भूमिष्टौ भूमिसम्पुटः ॥ १६ ॥

श्रीबीजभूबीजादिकथनं मन्त्रफलकथनं च

लक्ष्मीपुटस्तत्पूजायां स्मृतिर्लमनुचन्द्रयुक् ।
भुवोबीजंवह्निशान्तिबिन्दुयुक्तो बकः श्रियः ॥ १७ ॥

स्वरूपम् । शुचिप्रिया स्वाहा ॥ १२–१३ ॥ नारायणमन्त्रमाह – **प्रणव** इति । हृदयं नमः । नारायणायस्वरूपम् । वसुवर्णोऽष्टार्णः ॥ १४ ॥ धरा श्रियोर्मन्त्रमाह – **अन्नमिति** । अन्नं मह्यन्नं मे देह्यन्नाधिपतये ममान्नं प्रदापय स्वरूपम् । अनल–सुन्दरी स्वाहा । अयं मन्त्रो भूमीष्टौ भूमिपूजने भूमिबीजेन सम्पुटः ॥ १५–१६ ॥ श्रीपूजायां श्रीबीजेन सम्पुटितः । भूबीजमाह – **स्मृतिरिति** । स्मृतिर्गः । लमनुचन्द्रयुक् । लऔ । बिन्दुयुतः । ग्लौं एतद्भुवो बीजम् । श्रीबीजमाह – **वह्नीति** । रेफ ई । बिन्दुयुतो बकः शः । श्रीं इति श्रियो बीजम् ॥ १७ ॥

'ये मे भूपतित्वं देहि ददापय' पद, इसके अन्त में शुचिप्रिया (स्वाहा) लगाने से तैंतीस अक्षरों का वराह मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ १२-१३ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ॐ नमो भगवते वराहरूपाय भूर्भुवः स्वःपतये भूपतित्वं मे देहि ददापय स्वाहा' (३३) ॥ १२-१३ ॥

अब **नारायणार्चन मन्त्र** कहते हैं - प्रणव (ॐ), हृदय (नमः), फिर 'नारायणाय' पद, लगाने से आठ अक्षरों का नारायण मन्त्र निष्पन्न होता है । तीनों देवों के पूजन के बाद षडङ्गपूजा करनी चाहिए ॥ १४ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ॐ नमो नारायणाय' (८) ॥ १४ ॥

इसके बाद वाम भाग में धरा (भूमि) तथा दाहिने भाग में महालक्ष्मी का अपने अपने मन्त्रों से पूजन करना चाहिए । 'अन्नं मह्यन्नं' के बाद, 'मे देहि अन्नाधिप', इसके बाद 'तये ममान्नं प्र', फिर 'दापय', इसके बाद अनलसुन्दरी (स्वाहा) लगाकर बाईस अक्षरों के इस भूमि मन्त्र को भूमि पूजा में भूमि बीज से सम्पुटित करे । स्मृति (ग), फिर ल् को मनुच्चन्द्र (औं) से युक्त करने पर ग्लौं यह भूमि का बीज है ॥ १५-१७ ॥

विमर्श - भूमि पूजन हेतु मन्त्र का स्वरूप - 'ग्लौं अन्नं मह्यन्नं मे देह्यन्नाधिपतये

---

१. ग्लौं अन्नं मह्यन्नं मे देह्यन्नाधिपतये ममान्नं प्रदापय स्वाहा ग्लौमिति द्वाविंशत्यर्णः ।

मन्त्रादिस्थचतुर्बीजपूर्विकाः परिपूजयेत् ।
शक्तीश्चतस्रो वेदास्रेपरा च भुवनेश्वरी ॥ १८ ॥
कमलासुभगाचेति ब्राह्म्याद्या अष्टपत्रगाः ।
षोडशारेऽमृता चैव मानदातुष्टिपुष्टयः ॥ १९ ॥
प्रीतीरतिर्ह्रीः श्रीश्चापि स्वधास्वाहादशम्यथ ।
ज्योत्स्नाहैमवतीछाया पूर्णिमाः सहनित्यया ॥ २० ॥
अमावास्येति सम्पूज्या मन्त्रशेषार्णपूर्विकाः ।
भूपूरे लोकपालाः स्युस्तदस्त्राणि तदग्रतः ॥ २१ ॥

वेदास्रे चतुरस्रे मन्त्राद्यचतुर्बीजाद्याश्चतस्रः शक्तीः पूजयेत् । ता एवाह – **परेति** । ॐ परायै नमः । ह्रीं भुवनेश्वर्यै ॥ १८ ॥ श्रीं कमलायै । क्लीं सुभगायै । मन्त्रस्य शेषा ये वर्णाः चतुर्बीजव्यतिरिक्ताः । तत्पूर्विका अमृताद्याः षोडशदले पूज्याः। अं अमृतायै नमः । मां मानदायै इत्यादि ॥ १९ ॥ * ॥ २०–२१ ॥

ममान्नं प्रदापय स्वाहा ग्लौं' (२२)।

लक्ष्मी पूजन में उक्त मन्त्र को लक्ष्मी बीज से संपुटित करना चाहिए ॥ १७ ॥

'वह्नि (र), शान्ति (ई), बिन्दु सहित वक (श) इस प्रकार श्रीं यह श्री बीज बनता है ॥ १७ ॥

श्रीबीज संपुटित श्रीपूजन मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है – 'श्रीं अन्नं मह्यन्नं मे देह्यन्नाधिपतये ममान्नं प्रदापय स्वाहा श्रीं' ॥ १७ ॥

आद्य वेदास्र (चतुरस्र) चतुर्दल में आदि के चार बीज लगाकर कर चार शक्तियों का पूजन करना चाहिए । १. परा, २. भुवनेश्वरी, ३. कमला एवं ४. सुभगा ये चार शक्तियाँ हैं । अष्टदल में ब्राह्मी आदि अष्टमातृकाओं का पूजन करना चाहिए । तदनन्तर षोडशदल में मूल मन्त्र के शेष वर्णो को आदि में लगाकर १. अमृता, २. मानदा, ३. तुष्टि, ४. पुष्टि, ५. प्रीति, ६. रति, ७. ह्री (लज्जा), ८. श्री, ९. स्वधा, १०. स्वाहा, ११. ज्योत्स्ना, १२. हैमवती, १३. छाया, १४. पूर्णिमा, १५. नित्या एवं १६. अमावस्या का 'अन्नपूर्णायै नमः' लगा कर पूजन करना चाहिए । तदनन्तर भूपुर के भीतर लोकपालों की तथा उसके बाहर उनके अस्त्रों की पूजा करनी चाहिए ॥ १८-२१ ॥

विमर्श – आवरण पूजा विधि –

प्रथमावरण में त्रिकोणाकार कर्णिका में आग्नेय कोण से ईशान कोण तक शिव, वाराह एवं नारायण की पूजा यथा – ॐ नमः शिवाय, आग्नेये, ॐ नमो भगवते वराहरूपाय भूर्भुवःस्वःपतये भूपतित्वं मे देहि ददापय स्वाहा (अग्रे) पुनः ॐ नमो नारायणाय, ईशाने ।

द्वितीयावरण में केसरों में षडङ्गपूजा इस प्रकार करनी चाहिए –

ॐ ह्रां हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा, ॐ ह्रूं शिखायै वषट्,
ॐ ह्रैं कवचाय हुम्, ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ ह्रः अस्त्राय फट्

फिर ऊपर कहे गये भूमिबीज संपुटित मन्त्र से देवी के वाम भाग में भूमि का, मध्य में शुद्ध अन्नपूर्णा मन्त्र से अन्नपूर्णा का तथा उपर्युक्त श्रीबीजसंपुटित मन्त्र से महाश्री का दक्षिण भाग में पूजन करना चाहिए । यथा - ग्लौं अन्नं मह्यन्नं देह्यन्नाधिपतये ममान्नं प्रदापय स्वाहा ग्लौं भूम्यै नमः । वामभागे - यथा - 'श्रीं अन्नं मह्यन्नं मे देह्यन्नाधिपतये ममान्न प्रदापय स्वाहा श्रीं श्रियै नमः' से श्री का । फिर मध्य में अन्नपूर्णा का यथा - 'अन्नं मह्यन्नं मे देह्यन्नाधिपतये ममान्नं प्रदापय स्वाहा अन्नपूर्णायै नमः ।

तृतीयावरण में चतुर्दल में पूर्व से आरम्भ कर उत्तर पर्यन्त चारों दिशाओं में परा आदि चार शक्तियों का पूजन करना चाहिए । यथा -

ॐ ऐं परायै नमः पूर्वे, ॐ ह्रीं भुवनेश्वर्यै नमः दक्षिणे,
ॐ श्रीं कमलायै नमः पश्चिमे, ॐ क्लीं सुभगायै नमः उत्तरे ।

चतुर्थावरण में अष्टदल पर पूर्वादि अष्ट दिशाओं में ब्राह्मी आदि अष्टमातृकाओं का पूजन करनी चाहिए । यथा -

ॐ ब्राह्मयै नमः, ॐ माहेश्वर्यै नमः, ॐ कौमार्यै नमः,
ॐ वैष्णव्यै नमः, ॐ वाराह्यै नमः, ॐ इन्द्राण्यै नमः,
ॐ चामुण्डायै नमः, ॐ महालक्ष्म्यै नमः

पञ्चमावरण में षोडशदलों में प्रदक्षिण क्रम से अमृता आदि सोलह शक्तियों का पूजन करना चाहिए । यथा -

ॐ नं अमृतायै अन्नपूर्णायै नमः ॐ श्वं स्वधायै अन्नपूर्णायै नमः
ॐ मों मानदायै अन्नपूर्णायै नमः ॐ रिं स्वाहायै अन्नपूर्णायै नमः
ॐ भं तुष्ट्यै अन्नपूर्णायै नमः ॐ अं ज्योत्स्नायै अन्नपूर्णायै नमः
ॐ गं पुष्ट्यै अन्नपूर्णायै नमः ॐ न्नं हैमवत्यै अन्नपूर्णायै नमः
ॐ वं प्रीत्यै अन्नपूर्णायै नमः ॐ पूं छायायै अन्नपूर्णायै नमः
ॐ तिं रत्यै अन्नपूर्णायै नमः ॐ र्णें पूर्णिमायै अन्नपूर्णायै नमः
ॐ मां ह्रियै अन्नपूर्णायै नमः ॐ स्वां नित्यायै अन्नपूर्णायै नमः
ॐ हें श्रियै अन्नपूर्णायै नमः ॐ हां अमावस्यायै अन्नपूर्णायै नमः

षष्ठावरण में भूपुर के भीतर अपने अपने दिशाओं में इन्द्रादि दश दिक्पालों का पूजन करना चाहिए - ॐ इन्द्राय नमः पूर्वे, ॐ अग्नये नमः आग्नेये, ॐ यमाय नमः दक्षिणे, ॐ निर्ऋतये नमः, नैर्ऋत्ये, ॐ वरुणाय नमः पश्चिमे, ॐ वायवे नमः वायव्ये, ॐ सोमाय नमः उत्तरे, ॐ ईशानाय नमः ऐशान्ये, ॐ ब्रह्मणे नमः पूर्वेशानयोर्मध्ये, ॐ अनन्ताय नमः पश्चिमनैर्ऋत्ययोर्मध्ये ।

सप्तमावरण में भूपुर के बाहर पूर्वादि दिशाओं में वज्रादि आयुधों की पूजा करे

ॐ वज्राय नमः पूर्वे, ॐ शक्तये नमः आग्नेये, ॐ दण्डाय नमः दक्षिणे,
ॐ खडगाय नमः नैर्ऋत्ये, ॐ पाशाय नमः पश्चिमे, ॐ अंकुशाय नमः वायव्ये,
ॐ गदायै नमः उत्तरे, ॐ त्रिशूलाय नमः ऐशान्ये,
ॐ पद्माय नमः पूर्वेशानयोर्मध्ये, ॐ चक्राय नमः पश्चिमनैर्ऋत्ययोर्मध्ये ।

इत्थं जपादिभिः सिद्धे मन्त्रेऽस्मिन् धनसञ्चयैः ।
कुबेरसदृशो मन्त्री जायते जनवन्दितः ॥ २२ ॥

माहेश्वर्यन्नपूर्णामन्त्रः

अयं रमाकामबीजरहितोऽष्टादशाक्षरः ।
द्विनेत्रवेदवेदाब्धिनेत्रार्णैरङ्गमीरितम् ॥ २३ ॥

मन्त्रान्तरमाह – **अयमिति** । अयं विंशत्यर्णः । श्रीकामहीनः । षडङ्गमाह – **द्वीति** ॥ २२–२३ ॥

इस प्रकार यथोपलब्ध उपचारों से आवरण पूजा करने के पश्चात् जप प्रारम्भ करना चाहिए ॥ १८–२१ ॥

इस प्रकार जपादि से मन्त्र सिद्ध हो जाने पर साधक धन संचय में कुबेर के समान धनी होकर लोकवन्दित हो जाता है ॥ २२ ॥

अब **अन्नपूर्णा का अन्य मन्त्र** कहते हैं - रमा (श्रीं) और कामबीज (क्लीं) से रहित पूर्वोक्त मन्त्र अष्टादश अक्षरों का होकर अन्य मन्त्र बन जाता है । इस मन्त्र के दो, दो, चार, चार, चार एवं दो अक्षरों से षडङ्गन्यास की विधि कही गई है ॥ २३ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ॐ ह्रीं नमः भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा' (१८)। इसका विनियोग एवं ध्यान पूर्वमन्त्र के समान है ।

षडङ्गन्यास इस प्रकार है - ॐ ह्रीं हृदयाय नमः, ॐ नमः शिरसे स्वाहा, ॐ भगवति शिखायै वषट्, ॐ माहेश्वरि कवचाय हुम, ॐ अन्नपूर्णे नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ स्वाहा अस्त्राय फट् ।

शारदातिलक १०. १०६-११० में मन्त्र और ध्यान इस प्रकार हैं -

माया हृद्भगवत्यन्ते माहेश्वरिपदं ततः । अन्नपूर्णे ठयुगलं मनुः सप्तदशाक्षरः ॥
अङ्गानि मायया कुर्यात् ततो देवीं विचिन्तयेत् ।

रक्तां विचित्रवसनां नवचन्द्रचूडा-
मन्नप्रदाननिरतां स्तनभारनम्राम् ।
नृत्यन्तमिन्दुशकलाभरणं विलोक्य
हृष्टां भजे भगवतीं भवदुःखहर्त्रीम् ॥

मन्त्र - माया (ह्रीम्), हृत् (नमः), तदनन्तर 'भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे' तीन पद, तदनन्तर दो ठकार (स्वाहा) लिखे । इस प्रकार १७ अक्षरों का अन्नपूर्णा मन्त्र का उद्धार कहा गया । इसका स्वरूप - 'ह्रीं नमः भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा' हुआ ।

ध्यान - जिनका शरीर रक्तवर्ण है, जिन्होने नाना प्रकार के चित्र विचित्र वस्त्र धारण किए हैं, जिनके शिखा में नवीन चन्द्रमा विराजमान है, जो निरन्तर त्रैलोक्यवासियों को अन्न

अपरो मन्त्रः

पूर्वोक्तमन्त्रे मन्वर्णान्ममाभिमतमुच्चरेत् ।
अन्नं देहि युगं चापि भवेदेकगुणार्णवान् ॥ २४ ॥
युगाङ्गवेदसप्ताब्धिषडर्णैरङ्गकल्पनम् ।

प्रसन्नपारिजातेश्वर्यन्नपूर्णामन्त्रः

प्रणवः कमलाशक्तिर्नमो भगवतीति च ॥ २५ ॥
प्रसन्नपारिजातेश्वर्यन्नपूर्णेऽनलाङ्गना ।
चतुर्विंशतिवर्णात्मा मन्त्रः सर्वेष्टसाधकः ॥ २६ ॥
रामाक्षिवेदनिधिभिर्वेदद्व्यर्णैः षडङ्गकम् ।

मन्त्रान्तरमाह – **पूर्वोक्तेति** । विंशत्यर्णे मन्वर्णाच्चतुर्दशाक्षरात् । माहेश्वरी–त्यन्ते । ममाभिमतमन्नं देहि देहीति वर्णानुच्चारयेत् । अन्नपूर्णे स्वाहेत्यन्तेऽस्त्येव । तत एकगुणार्णवानेकत्रिंशदर्णः ॥ २४ ॥ षडङ्गमाह – **युगेति** । मन्त्रान्तरमाह – **प्रणव** इति । कमला श्रीं । शक्तिः ह्रीं । अनलाङ्गना स्वाहा ॥ २५–२६ ॥

प्रदान करने में निरत हैं - स्तनभार से विनम्र भगवान् सदाशिव को अपने सामने नाचते देख कर प्रसन्न रहने वाली संसार के समस्त पाप तापों को दूर करने वाली भगवती अन्नपूर्णा का इस प्रकार ध्यान करना चाहिए ॥ २३ ॥

अन्नपूर्णा देवी का अन्य मन्त्र - पूर्वोक्त विंशत्यक्षर मन्त्र में चौदह अक्षर के बाद - 'ममाभिमतमन्नं देहि देहि अन्नपूर्णे स्वाहा' यह सत्रह अक्षर मिला देने से कुल इकत्तीस अक्षरों का एक अन्य अन्नपूर्णा मन्त्र बन जाता है । इस मन्त्र के ४, ६, ४, ७, ४ एवं ६ अक्षरों से षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ २४-२५ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं नमः भगवति माहेश्वरि ममाभिमतमन्नं देहि देहि अन्नपूर्णे स्वाहा' (३१)।

इसका विनियोग एवं ध्यान पूर्ववत् समझना चाहिए ।

षडङ्गन्यास - ॐ ॐ ह्रीं श्री क्लीं हृदयाय नमः, ॐ नमो भगवति शिरसे स्वाहा, ॐ माहेश्वरि शिखायै वषट्, ॐ ममाभिमतमन्नं कवचाय हुं, ॐ देहि देहि नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ अन्नपूर्णे स्वाहा अस्त्राय फट् ॥ २४-२५ ॥

अन्नपूर्णा देवी का अन्य मन्त्र - प्रणव (ॐ), कमला (श्रीं), शक्ति (ह्रीं), फिर 'नमो भगवति प्रसन्नपरिजातेश्वरि अन्नपूर्णे, फिर अनलाङ्गना (स्वाहा) लगाने से अभीष्ट साधक चौबीस अक्षरों का अन्नपूर्णा मन्त्र बनता है - इस मन्त्र के ३, २, ४, ६, ४ एवं २ अक्षरों से षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ २५-२७ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ॐ श्रीं ह्रीं नमो भगवति

प्रसन्नवरदान्नपूर्णामन्त्रः

तारश्रीशक्तिहृदयं भगाम्भः कामिकासदृक् ॥ २७ ॥
माहेश्वरीप्रसन्नेति वरदेपदमुच्चरेत् ।
अन्नपूर्णेग्निपत्नीति पञ्चविंशतिवर्णवान्[1] ॥ २८ ॥
रामषड्युगषड्वेदनेत्रार्णैः स्यात् षडङ्गकम् ।
एषां चतुर्णां मन्त्राणामन्यत्सर्वं तु पूर्ववत् ॥ २९ ॥

त्रैलोक्यमोहनगौरीमन्त्रः

त्रैलोक्यमोहनो गौरीमन्त्रः संकीर्त्यतेऽधुना ।
मायानमोऽन्ते ब्रह्मश्रीराजिते राजपूजिते ॥ ३० ॥

षडङ्गमाह – **रामेति** । निधयो नव । मन्त्रान्तरमाह – **तारेति** । तार ॐ। श्रीः श्रीं । शक्तिः ह्रीं । हृदयं नमः । भगस्वरूपम् । अम्भो वः । सद्दृक्कामिका ति ॥ २७ ॥ अग्निपत्नी स्वाहा। स्वरूपमन्यत् ॥ २८ ॥ षडङ्गमाह – **रामेति** । अन्यत्तु ध्यानपूजाप्रयोगाः पूर्ववत् ॥ २९ ॥ गौरीमन्त्रमाह – **मायेति**। माया ह्रीं ॥ ३० ॥

प्रसन्नपारिजातेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा' ।

षडङ्गन्यास - ॐ ॐ श्रीं ह्रीं हृदयाय नमः, ॐ नमः शिरसे स्वाहा,
ॐ भगवति शिखायै वषट्, ॐ प्रसन्नपारिजातेश्वरि कवचाय हुम्,
ॐ अन्नपूर्णे नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ स्वाहा अस्त्राय फट्

इसका विनियोग एवं ध्यान पूर्ववत् है ॥ २५-२७ ॥

अन्य मन्त्र - तार (ॐ), श्री (श्रीं), शक्ति (ह्रीं), हृदय (नमः), फिर 'भग', फिर अम्भ (व), फिर सदृक् कामिका (ति), फिर 'महेश्वरि प्रसन्नवरदे', तदनन्तर 'अन्नपूर्णे', इसके अन्त में अग्निपत्नी (स्वाहा) लगाने से पच्चिस अक्षरों का अन्नपूर्णा मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ २७-२८ ॥

मन्त्र के राग षट्युग षड् वेद, नेत्र ३, ६, ४, ६, ४, एवं २ अक्षरों से षडङ्गन्यास करना चाहिए । उपर्युक्त चार मन्त्रों का विनियोग और ध्यान आदि समस्त कृत्य पूर्ववत् हैं ॥ २९ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ॐ श्रीं ह्रीं नमो भगवति माहेश्वरि प्रसन्नवरदे अन्नपूर्णे स्वाहा' ।

षडङ्गन्यास - ॐ ॐ श्रीं ह्रीं हृदयाय नमः, ॐ नमो भगवति शिरसे स्वाहा
ॐ महेश्वरि शिखायै वषट्, ॐ प्रसन्न वरदे कवचाय हुम्
ॐ अन्नपूर्णे नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ स्वाहा अस्त्राय षट् ॥ २७-२९ ॥

---

१. ॐ श्रीं ह्रीं नमः भगवति माहेश्वरि प्रसन्नवरदे अन्नपूर्णे स्वाहेति पञ्चविंशत्यर्णः ।

जयेति विजये गौरीगान्धारीति वदेत्पदम् ।
त्रिभुतोयं मेषवशङ्करिसर्वससद्यलः ॥ ३१ ॥
कवशङ्करिसर्वस्त्रीपुरुषान्ते वशङ्करि ।
सुद्वयं दुद्वयं घेयुग्वायुग्मं हरवल्लभा ॥ ३२ ॥
स्वाहान्त एकषष्ट्यर्णो मन्त्रराजः[1] समीरितः ।
अजो मुनिर्निचृच्छन्दो गौरीत्रैलोक्यमोहिनी[2] ॥ ३३ ॥
देवताबीजशक्ती तु मायास्वाहापदे क्रमात् ।

षडङ्गकथनप्रकारोऽपरः

चतुर्दशदशाष्टाष्टदशैकादशवर्णकैः ॥ ३४ ॥
दीर्घाढ्यमाययायुक्तैः षडङ्गानि समाचरेत् ।
मूलेन व्यापकं कृत्वा ध्यायेत् त्रैलोक्यमोहिनीम् ॥ ३५ ॥

तोयं वः । मेषो नः । ससद्य लः लो ॥ ३१ ॥ सुदुघेवा एषां युग्मं सुसु दुदु घेघे वावा हरवल्लभा ह्रीं स्वरूपं शेषम् ॥ ३२ ॥ अजो ब्रह्मा ॥ ३३ ॥ षडङ्गमाह – **चतुर्दशेति** । दीर्घषट्कयुक्तैश्चतुर्दशाद्यक्षरैः षडङ्गम् ॥ ३४–३५ ॥

अब **त्रैलोक्यमोहन गौरी मन्त्र** कहते हैं - माया (ह्रीं), उसके अन्त में 'नमः' पद, फिर 'ब्रह्म श्री राजिते राजपूजिते जय', फिर 'विजये गौरि गान्धारि', फिर 'त्रिभु', इसके बाद तोय (व), मेष (न), फिर 'वशङ्करि', फिर 'सर्व' पद, फिर ससद्यल (लो), फिर 'क वशङ्करि', फिर 'सर्वस्त्रीं पुरुष' के बाद 'वशङ्करि', फिर 'सु द्वय' (सु सु), दु द्वय (दु दु), घे युग् (घे घे), वायुग्म (वा वा), फिर हरवल्लभा (ह्रीं), तथा अन्त में 'स्वाहा' लगाने से ६१ अक्षरों का यह मन्त्रराज कहा गया है ॥ ३०-३३॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ह्रीं नमः ब्रह्मश्रीराजिते राजपूजिते जयविजये गौरि गान्धारि त्रिभुवनवशङ्करि, सर्वलोकवशङ्करि सर्वस्त्रीपुरुषवशङ्करि सु सु दु दु घे घे वा वा ह्रीं स्वाहा' ॥ ३०-३३ ॥

अब इसका **विनियोग** कहते हैं - इस मन्त्र के अज ऋषि हैं, निचृद गायत्री छन्द है, त्रैलोक्यमोहिनी गौरी देवता है, माया बीज है एवं स्वाहा शक्ति है । षड् दीर्घयुक्त मायाबीज से युक्त इस मन्त्र के १४, १०, ८, ८, १० एवं ११ अक्षरों से षडङ्गन्यास करना चाहिए । फिर मूलमन्त्र से व्यापक कर त्रैलोक्यमोहिनी का ध्यान करना चाहिए ॥ ३३-३५ ॥

---

१. ह्रीं नमो ब्रह्मश्रीराजिते राजपूजिते जयविजयेगौरिगान्धारि त्रिभुवनवशंकरि सर्वलोकवशंकरि सर्वस्त्रीपुरुषवशंकरि सुसु दुदु घेघे वा वा ह्रीं स्वाहेत्येकषष्ट्यर्णः ।

२. ॐ अस्य मन्त्रस्य अजऋषिः निचृद्गायत्रीच्छन्दः गौरीत्रैलोक्यमोहिनीदेवता ह्रीं बीजं स्वाहा शक्तिः ममाऽखिलकामसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

ध्यानजपहोमाद्यनुष्ठानं फलकथनं च

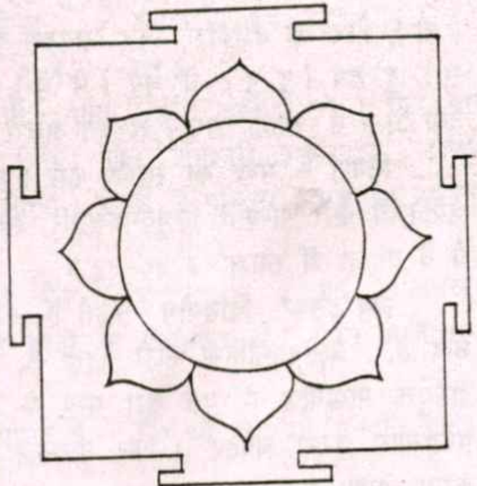
गीर्वाणसङ्घार्चितपादपङ्कजा–
रुणप्रभाबालशशाङ्कशेखरा ।
रक्ताम्बरालेपनपुष्पऽङ् मुदे
सृणिं सपाशं दधती शिवास्तु नः ॥ ३६ ॥
अयुतं प्रजपेन्मन्त्रं सहस्रं घृतसंयुतैः ।
पायसैर्जुहुयात्पीठे प्रागुक्ते गिरिजां यजेत् ॥ ३७ ॥
केसरेष्वङ्गमाराध्य ब्रह्मयाद्याः पत्रमध्यगाः ।
लोकेश्वरास्तदस्त्राणि तद्बहिः परिपूजयेत् ॥ ३८ ॥

ध्यानमाह – **गीर्वाणेति** । गीर्वाणा देवास्तत्समूहैः पूजितं पादपद्मं यस्याः । अंकुशं दक्षे ॥ ३६–४१ ॥

विमर्श – विनियोग – 'अस्य श्रीत्रैलोक्यमोहनगौरीमन्त्रस्य अजऋषिर्निचृद्गायत्री छन्दः त्रैलोक्यमोहिनीगौरीदेवता ह्रीं बीजं स्वाहा शक्ति ममाऽभीष्टसिद्ध्यर्थं जपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास – ह्रां ह्रीं नमो ब्रह्मश्रीराजिते राजपूजिते हृदयाय नमः, ह्रीं जयविजये गौरिगान्धारि शिरसे स्वाहा, ह्रूँ त्रिभुवनवशङ्करि शिखायै वषट्, ह्रैं सर्वलोक वशङ्करि कवचाय हुं, ह्रौं सर्वस्त्रीपुरुष नेत्रत्रयाय वशङ्करि वौषट् ह्रः सुसु दुदु घेघे वावा ह्रीं स्वाहा, ह्रीं नमोः ब्रह्मश्रीराजिते राजपूजिते जयविजये गौरिगान्धारि त्रिभुवनवशङ्करि सर्वलोकवशङ्करि सर्वस्त्री-पुरुष वशङ्करि सुसु दुदु घेघे वावा ह्रीं स्वाहा, सर्वाङ्गे ॥ ३३-३५ ॥

त्रैलोक्यमोहिनीपूजनयन्त्रम्



अब **उक्त मन्त्र का ध्यान** कहते हैं

देव समूहों से अर्चित पाद कमलों वाली, अरुण वर्णा, मस्तक पर चन्द्र कला धारण किये हुये, लाल चन्दन, लाल वस्त्र एवं लाल पुष्पों से अलंकृत अपने दोनों हाथों में अंकुश एवं पाश लिए हुये शिवा (गौरी) हमारा कल्याण करें ॥ ३६ ॥

उक्त मन्त्र का दश हजार जप करे, तदनन्तर घृत मिश्रित पायस (खीर) से उसका दशांश होम करे, अन्त में पूर्वोक्त पीठ पर श्रीगिरिजा का पूजन करे ॥ ३७ ॥

अब **आवरण पूजा** कहते हैं – केशरों पर षडङ्गपूजा कर अष्टदलों में ब्राह्मी आदि

इत्थामाराधिता देवी प्रयच्छेत्सुखसम्पदः।
तन्दुलैस्तिलसम्मिश्रैर्लवणैर्मधुरान्वितैः ॥ ३६ ॥
फलै रम्यै रक्तपद्मैर्जुहुयाद्यो दिनत्रयम्।
तस्य विप्रादयो वर्णा वश्याः स्युर्मासमध्यतः ॥ ४० ॥

मातृकाओं की, भूपुर में लोकपालों की तथा बाहर उनके आयुधों की पूजा करनी चाहिए॥ ३८॥

विमर्श - पीठ देवताओं एवं पीठशक्तियों का पूजन कर पीठ पर मूलमन्त्र से देवी की मूर्त्ति की कल्पना कर आवाहनादि उपचारों से पुष्पाञ्जलि समर्पित कर उनकी आज्ञा से इस प्रकार आवरण पूजा करे ।

सर्वप्रथम केशरों में षडङ्गमन्त्रों से षडङ्गपूजा करनी चाहिए । यथा -

ह्रीं ह्रीं नमो ब्रह्मश्रीराजिते राजपूजिते हृदयाय नमः,
ह्रीं जयविजये गौरि गान्धारि शिरसे स्वाहा,
हूँ त्रिभुवनवशङ्करि शिखायै वषट्,
हैं सर्वलोकवशङ्करि कवचाय हुम्,
ह्रौं सर्वस्त्रीपुरुषवशङ्करि नेत्रत्रयाय वौषट्,
ह्रः सुसु दुदु घेघे वावा ह्रीं स्वाहा अस्त्राय फट्,

फिर अष्टदल में पूर्वादि दिशाओं के क्रम से ब्राह्मी आदि का पूजन करनी चाहिए ।

१. ॐ ब्राह्मयै नमः, पूर्वदले — २. ॐ माहेश्वर्यै नमः, आग्नेये
३. ॐ कौमार्यै नमः, दक्षिणे — ४. ॐ वैष्णव्यै नमः, नैर्ऋत्ये
५. ॐ वाराह्यै नमः, पश्चिमे — ६. ॐ इन्द्राण्यै नमः, वायव्ये
७. ॐ चामुण्डायै नमः, उत्तरे — ८. ॐ महालक्ष्म्यै नमः, ऐशान्ये

तत्पश्चात् भूपुर के भीतर अपनी अपनी दिशाओं में इन्द्रादि दश दिक्पालों की पूजा करनी चाहिए । इन्द्राय नमः, पूर्वे, अग्नये नमः, आग्नेये, यमाय नमः, दक्षिणे नैर्ऋत्याय नमः, नैर्ऋत्ये, वरुणाय नमः, पश्चिमे, वायवे नमः, वायव्ये, सोमाय नमः, उत्तरे, ईशानाय नमः, पश्चिमनैर्ऋत्ययोर्मध्ये ।

पुनः भूपुर के बाहर वज्रादि आयुधों की पूजा करनी चाहिए ।

वज्राय नमः, पूर्वे, शक्तये नमः, आग्नेये, दण्डाय नमः, दक्षिणे,
खडगाय नमः, नैर्ऋत्ये, पाशाय नमः, पश्चिमे, अंकुशाय नमः, वायव्ये,
गदायै नमः, उत्तरे, त्रिशूलाय नमः, ऐशान्ये, पद्माय नमः, पूर्वेशानयोर्मध्ये,
चक्राय नमः, पश्चिमनैर्ऋत्ययोर्मध्ये ॥ ३८ ॥

अब **काम्य प्रयोग** कहते हैं -

इस प्रकार आराधना करने से देवी सुख एवं संपत्ति प्रदान करती हैं तिल मिश्रित तण्डुल (चावल), सुन्दर फल, त्रिमधु (घी, मधु, दूध) से मिश्रित लवण और मनोहर लालवर्ण के कमलों से जो व्यक्ति तीन दिन तक हवन करता है, उस व्यक्ति के ब्राह्मणादि सभी वर्ण एक महीने के भीतर वश में हो जाते हैं ॥ ३६-४० ॥

रविमण्डलमध्यस्थां देवीं ध्यायञ्जपेन्मनुम्।
अष्टोत्तरशतं तावद्धुत्वाग्नौ वशयेज्जगत्॥ ४१॥

रविमण्डलमध्यस्थदेव्यनुष्ठानं फलं च

नभोहंसानलयुतमैकारस्थं शशाङ्कयुक्।
तोयं वाय्वग्निकर्णेन्दुयुतं राजमुखीति च॥ ४२॥
राजाधिमुखिवश्यान्ते मुखिमायारमात्मभूः।
देवि देवि महादेवि देवाधिदेवि सर्व च॥ ४३॥
जनस्य च मुखं पश्चान्मम वशं कुरुद्वयम्।
वह्निप्रियान्तो मन्त्रोऽष्टचत्वारिंशल्लिपिर्मतः[1]॥ ४४॥
ऋषिच्छन्दो देवतास्तु पूर्ववत्परिकीर्तिताः।
हृदेकादशभिः प्रोक्तं शिरः स्यात्सप्तवर्णकैः॥ ४५॥

गौर्या मन्त्रान्तरमाह – **नभ** इति । नभो हकारः । कीदृक् नभः हसानलयुतम् । हसः सः । अनलो रः । ताभ्यां युतम् । ऐस्थं बिन्दुयुतम् । तेन ह्स्रैं । तोयं वः । कीदृक् वायुर्यः । अग्नी रः । कर्णः ऊः । इन्दुर्बिन्दुः । तैर्युतम् । व्यरूं । स्वरूपमन्यत् । माया ह्रीं । रमा श्रीं । आत्मभूः क्लीं । अन्यत्स्वरूपम् । वह्निप्रिया स्वाहा॥ ४२–४६॥

सूर्यमण्डल में विराजमान देवी के उक्त स्वरूप का ध्यान करते हुये जो व्यक्ति जप करता है अथवा १०८ आहुतियाँ प्रदान करता है वह व्यक्ति सारे जगत् को अपने वश में कर लेता है॥ ४१॥

अव **गौरी का अन्य मन्त्र** कहते हैं - हंस (स्), अनल (र), ऐकारस्थ शशांकयुत् (ऐं) उससे युक्त नभ (ह्) इस प्रकार ह्स्रैं, फिर वायु (य्), अग्नि (र), एवं कर्णेन्दु (ऊ) सहित तोय (व्), अर्थात् 'व्यूरुँ', फिर 'राजमुखि', 'राजाधिमुखिवश्य' के बाद 'मुखि', फिर माया (ह्रीं), रमा (श्रीं), आत्मभूत (क्लीं), फिर 'देवि देवि महादेवि देवाधिदेवि सर्वजनस्य मुखं' के बाद 'मम वशं' फिर दो बार 'कुरु कुरु' और इसके अन्त में वह्निप्रिया (स्वाहा) लगाने से अड़तालिस अक्षरों का मन्त्र निष्पन्न होता है॥ ४२-४३॥

विमर्श – मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ह्स्रैं व्यूरूँ राजमुखि राजाधि मुखि वश्यमुखि ह्रीं श्रीं क्ली दवि देवि महादेवि देवाधिदेवि सर्वजनस्य मुखं मम वशं कुरु कुरु स्वाहा'॥ ४२-४३॥

इस मन्त्र के ऋषि छन्द देवता आदि पूर्व में कह आये हैं मन्त्र के ग्यारह वर्णो से हृदय सात वर्णो से शिर चार वर्णो से शिखा चार वर्णो से कवच पाँच वर्णो से नेत्र

१. ह्स्रैं व्यूरूँ राजमुखि राजाधिमुखि वश्यमुखि ह्रीं श्रीं क्लीं देवि देवि महादेवि देवाधिदेवि सर्वजनस्य मुखं मम वशं कुरु कुरु स्वाहेत्यष्टचत्वारिंशदर्णः ।

शिखावर्मापि वेदार्णैः पञ्चभिर्नेत्रमीरितम् ।
अस्त्रं सप्तदशार्णैः स्याद्ध्यानजप्यादिपूर्ववत् ॥ ४६ ॥

वश्यकरमन्त्रषट्ककथनम्

अङ्गमन्त्रास्तु दीर्घाढ्य भुवनेशीपरा मताः ।
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगान् कर्तुमर्हति ॥ ४७ ॥
कुर्यात् सर्वजनस्थाने मनोः साध्याभिधानकम् ।
जपे होमे तर्पणे च वशीकरणकर्मणि ॥ ४८ ॥
ससम्पातं घृतं हुत्वा सहस्रं सप्तवासरम् ।
सम्पाताज्यं तु साध्यस्य प्राशितं वश्यकारकम् ॥ ४६ ॥

अङ्गमन्त्राः – षट् । दीर्घयुक्मायाबीजं परं येषामीदृशाः ॥ ४७॥ मनोर्मन्त्रस्य सर्वजनस्थाने सर्वजनस्येति पदस्थाने साध्याऽभिधानकं साध्यनामोच्चरेत् देवदत्तस्य मुखमित्यादि ॥ ४८ ॥ *॥ ४६ ॥

तथा सत्रह वर्णो से अस्त्र न्यास करना चाहिए । पूवर्वत् जप ध्यान एवं पूजा भी करनी चाहिए । षड्दीर्घयुत् माया बीज प्रारम्भ में लगाकर षडङ्गन्यास के मन्त्रों की कल्पना कर लेनी चाहिए । इस प्रकार मन्त्र सिद्ध हो जाने पर साधक काम्य प्रयोग का अधिकारी होता है ॥ ४४-४७ ॥

विमर्श - विनियोग - 'अस्य श्रीगौरीमन्त्रस्य अजऋषिर्निचृद्गायत्रीछन्दः गौरीदेवता, ह्रीं बीजं स्वाहा शक्तिः ममाखिलकामनासिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः' ।

षडङ्गन्यास - ह्रां स्त्रैं व्यूँ राजमुखि राजाधिमुखि हृदयाय नमः,
ह्रीं वश्यमुखि ह्रीं श्रीं क्लीं शिरसे स्वाहा,
हूँ देवि देवि शिखायै वषट्, हैं महादेवि कवचाय हुम,
ह्रौं देवाधिदेवि नेत्रत्रयाय वौषट्,
ह्रः सर्वजनस्य मुखं मम वशं कुरु कुरु स्वाहा अस्त्राय फट् ।

पूजाविधि - पहले श्लोक ६ - ३६ में वर्णित देवी के स्वरूप का ध्यान करे । अर्घ्य स्थापन, पीठशक्तिपूजन, देवी पूजन तथा आवरण देवताओं के पूजन का प्रकार पूर्वोक्त है ॥ ४५-४७ ॥

अब **वशीकरण के कुछ मन्त्र** कहते हैं -

वशीकरण मन्त्र के पूजन जप होम एवं तर्पण में मूल मन्त्र के 'सर्वजनस्य' पद के स्थान पर जिसे अपने वश में करना हो उस साध्य के षष्ठ्चन्त रूप को लगाना चाहिए । सात दिन तक सहस्र-सहस्र की संख्या में संपातपूर्वक (हुतावशेष स्रुवावस्थित घी का प्रोक्षणी में स्थापन) घी से होमकर उस संपात (संस्रव) घृत को साध्य व्यक्ति को पिलाने से वह वश में हो जाता है ॥ ४८-४६ ॥

साध्यनक्षत्रवृक्षे साध्याकृतिप्रयोग

साध्यनक्षत्रवृक्षेण कुर्यात्साध्याकृतिं शुभाम् ।
तस्यामसून् प्रतिष्ठाप्य प्राङ्गणे निखनेच्च ताम् ॥ ५० ॥
तत्रानलं समाधाय रक्तचन्दनसंयुतैः ।
जपापुष्पैर्निशीथिन्यां जुहुयात्सप्तवासरम् ॥ ५१ ॥
सहस्रं प्रत्यहं पश्चात्तां निष्कास्य सरित्तटे ।
निखनेत्साधकस्तस्य साध्यो दासो भवेद् ध्रुवम् ॥ ५२ ॥

प्रयोगान्तरमाह – **साध्यनक्षत्रेति** । साध्यस्य यन्नक्षत्रम् । जन्मनक्षत्रं तत्सम्बन्धी यो वृक्षस्तेन साध्याकृतिं साध्यप्रतिमां कुर्यात् । तत्र प्राणान् प्रतिष्ठाप्य । तामङ्गणे खात्वा तदुपर्यग्निं निधाय रक्तचन्दनाक्तैर्जपापुष्पैः सहस्रं हुत्वा तां निष्कास्य नदीतटे निखनेत् । स दासः स्यात् । 'नक्षत्रवृक्षा यथाः –

कारस्कारोथ धात्री स्यादुदुम्बरतरुः पुनः ।
जम्बूः खादिर कृष्णाख्यौ वंशपिप्पलसंज्ञकौ ।
नागरोहिणनामानौ पलाशप्लक्षसंज्ञकौ ।
अम्बष्ठबिल्वार्जुनाख्य यविकंकतमहीरुहाः ।
बकुलः सरलः सर्जोवंजुलः पनसार्ककौ ।
शमीकदम्बनिम्बाम्रामधूका वृक्षशाखिनः । इति शारदोक्ताः ॥ ५०–५२ ॥

साध्य व्यक्ति के जन्म नक्षत्र सम्बन्धी लकड़ी लेकर उसी से साध्य की प्रतिमा निर्माण करावे, फिर उसमें प्राणप्रतिष्ठा कर उस प्रतिमा को आँगन में गाड़ देवे ॥ ५० ॥

पुनः उसके ऊपर अग्निस्थापन कर मध्य रात्रि में सात दिन तक रक्तचन्दन मिश्रित जपा कुसुम के फूलों से प्रतिदिन इस मन्त्र से एक हजार आहुतियाँ प्रदान करे । इसके बाद उस प्रतिमा को उखाड़ कर किसी नदी के किनारे गाड़ देनी चाहिए, ऐसा करने से साध्य निश्चित रूप से वश में हो कर दासवत् हो जाता है ॥ ५०-५२ ॥

विमर्श – जन्म नक्षत्रों के वृक्षों की तालिका –

नक्षत्र	वृक्ष	नक्षत्र	वृक्ष
१ – अश्विनी	कारस्कर	९ – आश्लेषा	नाग
२ – भरणी	धात्री	१० – मघा	रोहिणी
३ – कृत्तिका	उदुम्बर	११ – पू.फा.	पलाश
४ – रोहिणी	जम्बू	१२ – उ.फा.	प्लक्ष
५ – मृगशिरा	खदिर	१३ – हस्त	अम्बष्ठ
६ – आर्द्रा	कृष्ण	१४ – चित्रा	विल्व
७ – पुनर्वसु	वंश	१५ – स्वाती	अर्जुन
८ – पुष्य	पिप्पल	१६ – विशाखा	विकंकत

ज्येष्ठालक्ष्मीमन्त्रः

ज्येष्ठालक्ष्मी महामन्त्रः प्रोच्यते धनवृद्धिदः ।
वाग्बीजं भुवनेशानी श्रीरनन्तोद्यलक्ष्मि च ॥ ५३ ॥
स्वयम्भुवे शम्भुजाया ज्येष्ठायै हृदयान्तिकः ।
मनुः[1] सप्तदशार्णोऽयं मुनिर्ब्रह्मास्य[2] कीर्तितः ॥ ५४ ॥
छन्दोऽष्टिर्ज्येष्ठलक्ष्मीस्तु देवता शक्तिबीजके ।
श्रीमाये मूलतो हस्तौ प्रमृज्याङ्गं समाचरेत् ॥ ५५ ॥

ज्येष्ठालक्ष्मीमन्त्रमाह – **वागिति** । वाग्बीजं ऐं । भुवनेशानी ह्रीं । श्रीः श्रीं । अनन्त आ । द्यलक्ष्मिस्वरूपम् ॥ ५३ ॥

स्वयम्भुवे स्वरूपम् । शम्भुजाया ह्रीं । ज्येष्ठायै स्वरूपम् । हृदयं नमः ॥ ५४ ॥ श्रीं शक्तिः ॥ ह्रीं बीजं ॥ ५५ ॥

---

१७ - अनुराधा	वकुल	२३ - धनिष्ठा	शमी
१८ - ज्येष्ठा	सरल	२४ - शतभिषा	कदम्ब
१९ - मूल	सर्ज	२५ - पू.भा.	निम्ब
२० - पू.षा.	वञ्जुल	२६ - उ.भा.	आम्र
२१ - उ.षा.	पनस	२७ - रेवती	मधूक
२२ - श्रवण	अर्क		

अब **ज्येष्ठा लक्ष्मी का मन्त्रोद्धार** कहते हैं -

वाग्बीज (ऐं), भुवनेशी (ह्रीं), श्री (श्रीं), अनन्त (आ), फिर 'द्यलक्ष्मि', फिर 'स्वयंभुवे', फिर शम्भुजाया (ह्रीं), तदनन्तर 'ज्येष्ठायै' अन्त में हृदय (नमः) लगाने से सत्रह अक्षरों का धन की वृद्धि करने वाला मन्त्र बनता है ॥ ५३-५४ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ऐं ह्रीं श्रीं आद्यलक्ष्मि स्वयंभुवे ह्रीं ज्येष्ठायै नमः'॥ ५३-५४ ॥

अब **विनियोग** कहते हैं - इस मन्त्र के ब्रह्मा ऋषि हैं, अष्टि छन्द है, ज्येष्ठा लक्ष्मी देवता हैं, श्री बीज है तथा माया शक्ति है । मूल मन्त्र से हस्त प्रक्षालन कर बाद में अङ्गन्यास करना चाहिए ॥ ५४-५५ ॥

विमर्श - विनियोग का स्वरूप इस प्रकार है -

'अस्य श्रीज्येष्ठालक्ष्मीमन्त्रस्य ब्रह्माऋषिरष्टिच्छन्दः ज्येष्ठालक्ष्मीदेवता ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः' ॥ ५४-५५ ॥

---

१. ऐं ह्रीं श्रीं ज्येष्ठालक्ष्मीस्वयंभुवे ह्रीं ज्येष्ठायै नम इतिसप्तदशार्ण ।

२. अस्य श्रीज्येष्ठालक्ष्मीमन्त्रस्य ब्रह्माऋषिरष्टिच्छन्दः ज्येष्ठालक्ष्मीदेवता ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

मन्त्राक्षरन्यासकथनम्

रामवेदयुगैकत्रिनेत्रार्णैर्मनुसम्भवैः ।
पदानामष्टकं न्यस्येच्छिरो भ्रूमध्यवक्त्रके ॥ ५६ ॥
हृन्नाभ्याधारके जानुपादयोस्तत्पदोन्मितिः ।
भूचन्द्रैकचतुर्वेदभूमिरामाक्षिवर्णकैः ॥ ५७ ॥

ध्यानं पीठदेवतागायत्र्यादिकथनम्

उद्यद्भास्करसन्निभा स्मितमुखी रक्ताम्बरालेपना,
सत्कुम्भं धनभाजनं सृणिमथो पाशङ्करैर्बिभ्रती ।
पद्मस्था कमलेक्षणा दृढकुचा सौन्दर्यवारांनिधि–
र्ध्यातव्या सकलाभिलाषफलदा श्रीज्येष्ठलक्ष्मीरियम् ॥ ५८ ॥
लक्षं जपेत् पायसेन जुहुयात् तद्दशांशतः ।
आज्याक्तेन यजेत्पीठे वक्ष्यमाणे महाश्रियम् ॥ ५९ ॥

पदोन्मितिः पदवर्णसंख्याभूरित्यादिवर्णैर्ज्ञेया ॥ ५६–५७ ॥ ध्यानमाह – उद्यदिति । धनपात्रांकुशौ दक्षिणयोः कुम्भपाशौ वामयोः ॥ ५८–५९ ॥

मन्त्र के ३, ४, ४, १, ३ एवं २ वर्णो से षडङ्गन्यास करना चाहिए तथा १, १, १, ४, ४, १, ३, एवं दो वर्णो से शिर भ्रूमध्य, मुख, हृदय, नाभि मूलाधार जानु एवं पैरों का न्यास करना चाहिए ॥ ५६-५७ ॥

विमर्श – षडङ्गन्यास – ऐं ह्रीं श्रीं हृदयाय नमः, आद्यलक्ष्मी शिरसे स्वाहा, स्वयंभुवे शिखायै वषट् ह्रीं कवचाय हुम् ज्येष्ठायै नेत्रत्रयाय वौषट् नमः अस्त्राय फट् ।

सर्वाङ्गन्यास यथा – ऐं नमः शिरसि, ह्रीं नमः भ्रूमध्ये,
श्रीं नमः मुखे, आद्यलक्ष्मि नमः हृदि स्वयंभुवे नमः नाभौ
ह्रीं नमः मूलाधारे, ज्येष्ठायै नमः जान्वोः नमोः नमः पादयोः ॥ ५६-५७ ॥

अव **ज्येष्ठा लक्ष्मी का ध्यान** कहते हैं – उदीयमान सूर्य के समान लाल आभावाली, प्रहसितमुखी, रक्त वस्त्र एवं रक्त वर्ण के अङ्गरागों से विभूषित, हाथों में कुम्भ धनपात्र, अंकुश एवं पाश को धारण किये हुये, कमल पर विराजमान, कमलनेत्रा, पीन स्तनों वाली, सौन्दर्य के सागर के समान, अवर्णनीय सुन्दरता से युक्त, अपने उपासकों के समस्त अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाली श्री ज्येष्ठा लक्ष्मी का ध्यान करना चाहिए ॥ ५८ ॥

उक्त मन्त्र का एक लाख जप करे तथा घी मिश्रित खीर से उसका दशांश होम करे फिर वक्ष्यमाण पीठ पर महागौरी का पूजन करना चाहिए ॥ ५९ ॥

लोहिताक्षीविरूपा च करालीनीललोहिता ।
समदावारुणीपुष्टिरमोघाविश्वमोहिनी ॥ ६० ॥
तत्पीठशक्तयः प्रोक्ता दिक्षु मध्ये च ता यजेत् ।
प्रयच्छेदासनं तस्यै गायत्र्या वक्ष्यमाणया ॥ ६१ ॥
प्रणवो रक्तज्येष्ठायै विद्महे पदमन्ततः ।
नीलज्येष्ठापदं पश्चाद्यै धीमहि ततः पदम् ॥ ६२ ॥
तन्नो लक्ष्मीः पदं प्रोच्य चोदयादिति चोच्चरेत् ।
गायत्र्येषा[1] समाख्याता केसरेष्वङ्गपूजनम् ॥ ६३ ॥
मातरः पत्रमध्येषु बाह्ये लोकेशहेतयः ।
इत्थं जपादिभिः सिद्धो मनुर्दद्यादभीप्सितम् ॥ ६४ ॥

पीठशक्तीराह – **लोहिताक्षीति** ॥ ६०–६१ ॥ गायत्रीमाह – **प्रणव** इति । स्पष्टम् ॥ ६२–६३ ॥ लोकेशा इन्द्रादयः । हेतयो वज्राद्याः ॥ ६४ ॥

---

१. लोहिताक्षी, २. विरूपा, ३. कराली, ४. नीललोहिता, ५. समदा, ६. वारुणी, ७. पुष्टि, ८. अमोघा, एवं ९. विश्वमोहिनी - ये ज्येष्ठापीठ की नवशक्तियाँ कही गयी हैं । इनका पूजन आठ दिशाओं में तथा मध्य में करना चाहिए । तदनन्तर वक्ष्यमाण गायत्री मन्त्र से ज्येष्ठा को आसन देना चाहिए ॥ ६०-६१ ॥

प्रणव (ॐ) फिर 'रक्तज्येष्ठायै विद्महे' तदनन्तर 'नीलज्येष्ठा' पद के पश्चात् 'यै धीमहि', उसके बाद 'तन्नो लक्ष्मी' पद, फिर 'प्रचोदयात्' - यह ज्येष्ठा का गायत्री मन्त्र कहा गया है ॥ ६२-६३ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ॐ रक्तज्येष्ठायै विद्महे नीलज्येष्ठायै धीमहि । तन्नो लक्ष्मी प्रचोदयात्' ॥ ६२-६३ ॥

केशरों में अङ्गपूजा, अष्टपत्रों पर मातृकाओं की, फिर उसके बाहर लोकपालों एवं उनके अस्त्रों की पूजा करनी चाहिए । इस प्रकार जप आदि से सिद्ध मन्त्र मनोवाञ्छित फल देता है (द्र० ९. ३८) ॥ ६३-६४ ॥

विमर्श - पीठ पूजा विधि - साधक ९. ५८ में वर्णित ज्येष्ठा लक्ष्मी के स्वरूप का ध्यान करे, फिर मानसोपचार से पूजन कर प्रदक्षिण क्रम से पीठ की शक्तियों का पूर्वादि आठ दिशाओं में एवं मध्य में इस प्रकार पूजन करे ।

ॐ लोहिताक्ष्यै नमः पूर्वे, ॐ दिव्यायै नमः आग्नेये,
ॐ कराल्यै नमः दक्षिणे, ॐ नीललोहितायै नमः नैर्ऋत्ये,
ॐ समदायै नमः पश्चिमे, ॐ वारुण्यै नमः वायव्ये,
ॐ पुष्टयै नमः उत्तरे, ॐ अमोघायै नमः ऐशान्ये,

---

१. ॐ रक्तज्येष्ठायै विद्महे नीलज्येष्ठायै धीमहि । तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात् ।

अन्नदमन्त्रकथनम्

अथान्नदमनोर्वक्ष्ये साधनं यः पुरोदितः ।
अन्नपूर्णावृतौ भूमिश्रीयागे द्वियमाक्षरः ॥ ६५ ॥
तारभूश्रीपुटो[1] जप्यो मुनिरस्य[2] चतुर्मुखः ।
छन्दो निचृतिराख्यातं देवते वसुधाश्रियौ ॥ ६६ ॥
भूबीजं बीजमस्योक्तं श्रीबीजं शक्तिरीरिता ।
अन्नं महीति हृदयमन्नं मे देहि मस्तकम् ॥ ६७ ॥

अन्नदमन्त्रमाह – **अथेति** । यो मन्त्रः अन्नपूर्णावरणपूजने भूमिश्रियोः पूजने द्वियमाक्षरो द्वाविंशत्यर्णः पुरा कथितः सोन्नदो मनुः । अन्नं मह्यन्नं मे देह्यन्नाधिपतये ममान्नं प्रदापय स्वाहेति सप्रणव भूबीजश्रीबीजसम्पुटोऽ–ष्टाविंशतिवर्णः ॥ ६५–६६ ॥

ॐ विश्वमोहिन्यै नमः मध्ये

तदनन्तर 'ॐ रक्तज्येष्ठायै विद्महे नीलज्येष्ठायै धीमहि । तन्नो लक्ष्मी प्रचोदयात्' इस गायत्री मन्त्र से उक्त पूजित पीठ पर देवी को आसन देवे । फिर यथोपचार देवी का पूजन कर पुष्पाञ्जलि प्रदान कर उनकी अनुज्ञा ले आवरण पूजा करे । सर्वप्रथम केशरों में षडङ्गपूजा -

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हृदयाय नमः, आद्यलक्ष्मि शिरसे स्वाहा, स्वयंभुवे शिखायै वषट्, ह्रीं कवचाय हुम् ज्येष्ठायै नेत्रत्रयाय वौषट्, स्वाहा अस्त्राय फट् । तदनन्तर अष्टदल में ब्राह्मी आदि देवताओं की, भूपुर के भीतर इन्द्रादि दश दिक्पालों की तथा बाहर उनके वज्रादि आयुधों की पूर्ववत् पूजा करनी चाहिए (द्र. ६. ३८) । आवरण पूजा के पश्चात् देवी का धूप दीपादि से उपचारों से पूजन कर जप प्रारम्भ करे ।

इस प्रकार पूजन सहित पुरश्चरण करने से मन्त्र सिद्ध होता है और साधक को अभिमत फल प्रदान करता है ॥ ६३-६४ ॥

अब **अन्नपूर्णा के अन्य मन्त्र** को कहता हूँ - अन्नपूर्णा के आवरण पूजा में भूमि एवं श्री के पूजनार्थ बाइस अक्षरों का मन्त्र हम पहले कह चुके हैं (द्र. ९. १६-१७) ॥ ६५ ॥

उसी को तार (ॐ), भू (ग्लौं), एवं श्री (श्रीं) से संपुटित कर जप करना चाहिए । इस अन्नदायक मन्त्र की साधना का प्रकार कहते हैं । इस मन्त्र के ब्रह्मा ऋषि हैं, निचृद् गायत्री छन्द है, श्री एवं वसुधा इसके देवता हैं, ग्लौं इसका बीज है तथा श्रीं

---

१. ॐ ग्लौं श्रीं अन्नं मह्यन्नं मे देह्यन्नाधिपतये ममान्नं प्रदापय स्वाहा श्रीं ग्लौं श्रीमित्यष्टाविंशत्यर्णः ।

२. अस्य श्रीज्येष्ठालक्ष्मीमन्त्रस्य ब्रह्माऋषिः निचृद्गायत्रीछन्दः वसुधाश्रियौदेवते ग्लौंबीजंह्रीं शक्तिः ममाभीष्ट प्राप्तौ जपे विनियोगः ।

शिखात्वन्नाधिपतये ममान्नं च प्रदापय।
वर्मोक्तं स्वाहया चास्त्रमङ्गमन्त्राध्रुवादिकाः ॥ ६८ ॥
षड्दीर्घारूढभूमिश्रीबीजान्ताः परिकीर्तिताः।
विनेत्रा अपदुग्धाब्धौ स्वर्णदीपे तु ते स्मरेत् ॥ ६६ ॥
कल्पद्रुमाधोमणिवेदिकायां
समास्थिते वस्त्रविभूषणाढ्ये ।
भूमिश्रियौ वाञ्छितवामदक्षे
संचिन्तयेद् देवमुनीन्द्रवन्द्ये ॥ ७० ॥

षडङ्गमाह – अन्नं महीति । षडङ्गमन्त्राः । घ्रुवादिकाः प्रणवाद्याः । दीर्घयुक्ते भूश्रीबीजे अन्ते येषां ते । विनेत्रा नेत्रहीनाः पञ्चैव । पञ्चाङ्गानि मनोर्यत्र तत्र नेत्रमनुं त्यजेदित्युक्तेः । ॐ अन्नं महि ग्लां श्रीं हृत् । ॐ अन्नं देहि ग्लीं श्रीं शिर इत्यादि ॥ ६७–७१ ॥

शक्ति है ॥ ६६-६७ ॥

विमर्श – मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है – 'ॐ ग्लौं श्रीं अन्नं मह्यन्नं मे देह्यन्नाधिपतये ममान्नं प्रदापय स्वाहा श्रीं ग्लौं ॐ ।'

विनियोग – 'ॐ अस्य श्रीज्येष्ठालक्ष्मीमन्त्रस्य ब्रह्माऋषिर्निचृद्गायत्रीछन्दः वसुधाश्रियौ देवते ग्लौं बीजं श्रीं शक्तिः मनोकामनासिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः' ॥ ६६-६७ ॥

अब **न्यास विधि** कहते हैं – 'अन्नं महि' से हृदय, 'अन्नं मे देहि' से शिर, 'अन्नाधिपतये' से शिखा, 'ममान्नं प्रदापय' से कवच तथा 'स्वाहा' से अस्त्र का न्यास करना चाहिए । इन मन्त्रों के प्रारम्भ में ध्रुव (ॐ) तथा अन्त में षड्दीर्घ सहित भूमिबीज एवं श्री बीज लगाना चाहिए । यह न्यास नेत्र को छोड़कर मात्र पाँच अङ्गों में किया जाता है । न्यास के बाद क्षीरसागर में स्वर्णद्वीप में वसुधा एवं श्री का ध्यान वक्ष्यमाण (६. ७०) श्लोक के अनुसार करे ॥ ६८-६६ ॥

विमर्श – पञ्चाङ्गन्यास विधि – 'पञ्चाङ्गानि मनोर्यत्र तत्र नेत्रमनुं त्यजेत्' जहाँ पञ्चाङ्गन्यास कहा गया हो वहाँ नेत्रन्यास न करे । इस नियम के अनुसार नेत्र को छोड़कर इस प्रकार पञ्चाङ्गन्यास करना चाहिए ।

ॐ अन्नं महि ग्लां श्रीं हृदयाय नमः, ॐ अन्नं मे देहि ग्लीं श्रीं शिरसे स्वाहा,
ॐ अन्नाधिपतये ग्लूं श्रीं शिखायै वषट्, ॐ ममान्नं प्रदापय ग्लैं श्रीं कवचाय हुं,
ॐ स्वाहा ग्लौं ग्लः श्रीं अस्त्राय फट् ॥ ६८-६६ ॥

अब **भूमि एवं श्री का ध्यान** कहते हैं –

कल्पद्रुम के नीचे मणिवेदिकापर ज्येष्ठा लक्ष्मी के बायें एवं दाहिने भाग में विराजमान वस्त्र एवं आभूषणों से अलंकृत तथा देवता एवं मुनिगणों से वन्दित भूमि का एवं श्री का ध्यान करना चाहिए ॥ ७० ॥

लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं घृतप्लुतैः ।
अन्नैर्हुत्वा यजेत् पीठे वैष्णवे वसुधाश्रियौ ॥ ७१ ॥

वैष्णवीया अष्टपीठशक्तयः

विमलोत्कर्षिणी ज्ञानक्रियायोगाभिधा तथा ।
प्रह्वी सत्या तथेशानानुग्रहापीठशक्तयः ॥ ७२ ॥
तारं नमो भगवते विष्णवे सर्ववर्णकाः ।
भूतात्मसयोगपदं योगपद्मपदं ततः ॥ ७३ ॥
पीठात्मने नमोऽन्तोऽयं पीठस्य मनुरीरितः ।
दद्यादासनमन्तेन मूलेनावाहनादिकम् ॥ ७४ ॥

वैष्णवीपीठशक्तीराह – **विमलेति** ॥ ७२ ॥ पीठमन्त्रमाह – **तारमिति** । ॐ नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मसंयोगयोगपद्मपीठात्मने नमः ॥ ७३ ॥ * ॥ ७४–७६ ॥

उक्त मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिए तथा घी मिश्रित अन्न से उसका दशांश होम करना चाहिए । तदनन्तर वैष्णव पीठ पर वसुधा एवं श्री का पूजन करना चाहिए ॥ ७१ ॥

१. विमला, २. उत्कर्षिणी, ३. ज्ञाना, ४. क्रिया, ५. योगा, ६. प्रह्वी, ७. सत्या, ८. ईशाना एवं ९. अनुग्रहा ये नव पीठशक्तियाँ हैं ॥ ७२ ॥

तार (ॐ), फिर 'नमो भगवते विष्णवे सर्व' के बाद 'भूतात्मसंयोग' पद, फिर 'योगपद्म' पद, तदनन्तर 'पीठात्मने नमः' यह पीठ पूजा का मन्त्र कहा गया है । इस मन्त्र से आसन देकर मूल मन्त्र से आवाहनादि पूजन करना चाहिए ॥ ७३-७४ ॥

विमर्श - पीठ पर आसन देने के **मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - 'ॐ नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मसंयोगयोगपद्मपीठात्मने नमः' ।

पीठ पूजा करने के बाद उसके केशरों में पूर्वादि आठ दिशाओं के प्रदक्षिण क्रम से आठ पीठ शक्तियों की तथा मध्य में नवम अनुग्रह शक्ति की इस प्रकार पूजा करे ।

१ - ॐ विमलायै नमः पूर्वे
२ - ॐ उत्कर्षिण्यै नमः आग्नेये
३ - ॐ ज्ञानायै नमः दक्षिणे
४ - ॐ क्रियायै नमः नैर्ऋत्ये
५ - ॐ योगायै नमः पश्चिमे
६ - ॐ प्रह्व्यै नमः वायव्ये
७ - ॐ सत्यायै नमः उत्तरे
८ - ॐ ईशानायै नमः ऐशान्ये
९ - ॐ अनुग्रहायै नमः मध्ये

इस प्रकार पीठ के आठों दिशाओं में तथा मध्य में पूजन करने के बाद ॐ नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मसंयोगयोगपद्मपीठात्मने नमः इस मन्त्र से भूमि और श्री इन दोनों देवियों को उक्त पूजित पीठ पर आसन देवे । फिर (९. ७०) में वर्णित उनके स्वरूप का ध्यान कर, मूलमन्त्र से आवाहन कर, मूर्त्ति की कलपना कर, पाद्य आदि

अङ्गानीष्ट्वार्चयेद्दिक्षु भूवह्निजलमारुतान्।
विवृतिं च प्रतिष्ठां च विद्यां शान्तिविदिक्षु च ॥ ७५ ॥

बलाकादयोऽन्या अष्टशक्तयः

अष्टशक्तीर्बलाका च विमलाकमला तथा।
वनमालाबिभीषा च मालिका शाङ्करी पुनः ॥ ७६ ॥
पूर्वादिदिक्षु प्रयजेदष्टमीं वसुमालिका।
शक्राद्यानायुधैर्युक्तान् स्वस्वदिक्षु समर्चयेत् ॥ ७७ ॥

उपचार संपादन कर, पुष्पाञ्जलि प्रदान कर उनकी अनुज्ञा ले आवरण पूजा प्रारम्भ कर, प्रदक्षिणा क्रम से प्रथम केशरों में अङ्गपूजा करे ॥ ७३-७४ ॥

प्रथम केशरों में अङ्गपूजा करने के पश्चात् पूर्वादि दिशाओं में प्रदक्षिण क्रम से भूमि, अग्नि, जल और वायु की पूजा करे । तदनन्तर चारों कोणों में निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या और शान्ति की पूजा करे ॥ ७५ ॥

फिर १. बलाका, २. विमला, ३. कमला, ४. वनमाला, ५. विभीषा, ६. मालिका, ७. शाकंरी और ८. वसुमालिका की पूर्वादि दिशाओं में स्थित अष्टदल में पूजा करे । तदनन्तर भूपुर के भीतर आठों दिशाओं में इन्द्रादि दश दिक्पालों की और भूपुर के बाहर आठों दिशाओं में उनके वज्रादि आयुधों की पूजा करनी चाहिए ॥ ७६-७७ ॥

विमर्श - आवरण पूजा विधि - सर्वप्रथम केशरों में अङ्गपूजा यथा -

१ - ॐ अन्नं महि ग्लां श्रीं हृदयाय नमः
२- ॐ अन्नं देहि ग्लूं श्रीं शिखायै वषट्
३- ॐ अन्नं देहि ग्लीं श्रीं शिरसे स्वाहा
४- ॐ ममान्नं प्रदापय ग्लै श्रीं कवचाय हुम
५- ॐ स्वाहा ग्लौं ग्लः श्रीं अस्त्राय फट् ।

फिर यन्त्र के पूर्वादि दिशाओं में भूमि आदि की पूजा यथा -

ॐ लं भूम्यै नमः पूर्वे   ॐ रं अग्नेये नमः दक्षिणे
ॐ वं अद्भ्यो नमः पश्चिमे   ॐ यं वायवे नमः उत्तरे

तत्पश्चात् आग्नेयादि कोणों में निवृत्ति आदि की यथा -

ॐ निवृत्यै नमः आग्नेये,   ॐ प्रतिष्ठायै नमः नैर्ऋत्यै,
ॐ विद्यायै नमः वायव्ये,   ॐ शान्त्यै नमः ऐशान्ये ।

इसके बाद अष्टदलों में पूर्वादि दिशाओं के क्रम से बलाका आदि की पूजा करनी चाहिए । यथा -

१ - ॐ बलाकायै नमः पूर्वे   ५ - ॐ विभीषायै नमः पश्चिमे
२ - ॐ विमलायै नमः आग्नेये   ६ - ॐ मालिकायै नमः वायव्ये
३ - ॐ कमलायै नमः दक्षिणे   ७ - ॐ शाङ्कर्यै नमः उत्तरे
४ - ॐ वनमालायै नमः नैर्ऋत्ये   ८ - वसुमालिकायै नमः ऐशान्ये

इत्थं सपरिवारे योऽधरालक्ष्म्यौ जपादिभिः ।
आराधयेत् स लभते महतीमन्नसम्पदम् ॥ ७८ ॥
आज्याक्तैश्च तिलैर्बिल्वसमिदि्भर्जुहुयाच्छ्रिये ।
साज्येन पायसेनापि फलैः पत्रैश्च बिल्वजैः ॥ ७६ ॥
जपतामुं महामन्त्रं होमकार्यो दिने दिने ।
दशसंख्यः कुबेरस्य मनुनेध्मैर्वटोद्भवैः ॥ ८० ॥

कुबेरमन्त्रोद्धारः ध्यानादि च

तारो वैश्रवणायाग्निप्रियान्तोऽष्टाक्षरो मनुः[1] ॥ ८१ ॥
होमकाले कुबेरं तु चिन्त्येदग्निमध्यगम् ।
धनपूर्णं स्वर्णकुम्भं तथा रत्नकरण्डकम् ॥ ८२ ॥
हस्ताभ्यां विप्लुतं खर्वकरपादं च तुन्दिलम् ।
वटाधस्ताद्रत्नपीठोपविष्टं सुस्मिताननम् ॥ ८३ ॥

इध्मैस्समिदि्भः ॥ ८० ॥ कुबेरमन्त्रमाह – **तार इति** । तार ॐ । अग्निप्रिया स्वाहा ॥ ८१ ॥ कुबेरध्यानमाह – **धनेति** । रत्नकरण्डो दक्षे ॥ ८२–८४ ॥

इसके बाद भूपुर के भीतर पूर्वादि दिशाओं के प्रदक्षिण क्रम से इन्द्रादि दश दिक्पालों को तथा बाहर उनके वज्रादि आयुधों की पूजा कर गन्ध धूपादि द्वारा वसुधा और महाश्री की पूजा करे (फिर जप करे) ॥ ७६-७७ ॥

इस प्रकार जो व्यक्ति अपने परिवार के साथ वसुधा एवं महालक्ष्मी का जप पूजनादि के द्वारा आराधना करता है वह पर्याप्त धनधान्य प्राप्त करता है ॥ ७८ ॥

श्री की प्राप्ति के लिए साधक घृत मिश्रित तिलों से बिल्व वृक्ष की समिधाओं से घी मिश्रित खीर से तथा बिल्वपत्र एवं बेल के गुद्दा से हवन करे ॥ ७६ ॥

अब **कुबेर के विषय में** कहते हैं - कुबेर का मन्त्र जपते हुये प्रतिदिन कुबेर मन्त्र से वटवृक्ष की समिधाओं में दश आहुतियाँ प्रदान करे ॥ ८० ॥

तार (ॐ), फिर 'वैश्रवणाय', फिर अन्त में अग्निप्रिया (स्वाहा) लगा देने पर आठ अक्षरों का कुबेर मन्त्र बनता है । यथा - 'ॐ वैश्रवणाय स्वाहा' ॥ ८१ ॥

होम करते समय अग्नि के मध्य में कुबेर का इस प्रकार ध्यान करे -

अपने दोनों हाथों से धनपूर्ण स्वर्णकुम्भ तथा रत्न करण्डक (पात्र) लिए हुये उसे उड़ेल रहे हैं । जिनके हाथ एवं पैर छोटे छोटे हैं, पेट तुन्दिल (मोटा) है जो वटवृक्ष के नीचे रत्नसिंहासन पर विराजमान हैं और प्रसन्नमुख हैं । इस प्रकार ध्यान पूर्वक होम करने से साधक कुबेर से भी अधिक संपत्तिशाली हो जाता है ॥ ८२-८४ ॥

---

१. ॐ वैश्रवणाय स्वाहेत्यष्टार्णः ।

एवं कृत हुतो मन्त्री लक्ष्म्या जयति वित्तपम् ।

प्रत्यङ्गिरामन्त्रः

अथ प्रत्यङ्गिरां वक्ष्ये परकृत्या विमर्दिनीम् ॥ ८४ ॥
दीर्घेन्दुयुग्मरुद्ब्रह्मामांसलोहितसंस्थिताम् ।
यन्तिनोरय उच्चार्य क्रूरां कृत्यां समुच्चरेत् ॥ ८५ ॥
वधूमिव पदं पश्चात्तान् ब्रह्मान्तेसदीर्घणः ।
अपनिर्णुद्म इत्यन्ते प्रत्यक्कर्तारमृच्छतु ॥ ८६ ॥
तारमायापुटो मन्त्रः स्यात्सप्तत्रिंशदक्षरः[1] ।
ब्रह्मानुष्टुप्मुनिश्छन्दो[2] देवी प्रत्यङ्गिरेरिता ॥ ८७ ॥
बीजशक्तितारमाये कृत्या नाशे नियोजनम् ।
अष्टभिस्तोयनिधिभिर्युगैर्वेदैश्च पञ्चभि ॥ ८८ ॥

प्रत्यङ्गिरामाह – **दीर्घेति** । मरुत् यकारः । दीर्घेन्दुयुक् । आबिन्दुयुतः यां । ब्रह्मा कः । लोहितः पः । तत्संस्थं मांसं लः । ल्प । यन्तिनोऽरयः । क्रूरां कृत्यां वधूमिव तां ब्रह्मस्वरूपम् । सदीर्घो णः णा । अपनिर्णुद्म इति स्वरूपम् । प्रत्यक्कर्तारमृच्छतु स्वरूपम् । प्रणवमायाबीजसम्पुटः ॥ ८५–८७ ॥ षडङ्गमाह – **अष्टभिरिति** । तोयनिधिभिश्चतुर्भिः । दीर्घयुक् पार्वती माया बीजं परं येषाम् ।

अब शत्रुओं के द्वारा प्रयुक्त कृत्या (मारण के लिए किये गये प्रयोग विशेष) को नष्ट करने वाली प्रत्यङ्गिरा के विषय में कहता हूँ ॥ ८४ ॥

दीर्घेन्दुयुक् मरुत् (दीर्घ आ, इन्द्र अनुस्वार उससे युक्त मरुत् य्) 'यां', फिर ब्रह्मा (क) लोहित संस्थित मांस (ल्प), फिर 'यन्ति नोऽरयः' यह पद, इसके बाद 'क्रूरां कृत्यां' उच्चारण करना चाहिए । फिर 'वधूमिव' यह पद, फिर 'तां ब्रह्म', उसके बाद सदीर्घ ण (णा), फिर 'अपनिर्णुद्मः' के पश्चात् 'प्रत्यक्कर्त्तारमृच्छतु' इस मन्त्र को तार (ॐ) माया (ह्रीं) से संपुटित करने पर सैंतीस अक्षरों का प्रत्यङ्गिरा मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ ८५-८७ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है -

'ॐ ह्रीं यां कल्पयन्ति नोरयः क्रूरां कृत्यां वधूमिव तां ब्रह्मणा अपनिर्णुद्मः प्रत्यक्कर्त्तारमृच्छतु ह्रीं ॐ' ॥ ८५-८७ ॥

इस मन्त्र के ब्रह्मा ऋषि हैं, अनुष्टुप् छन्द है, देवी प्रत्यङ्गिरा इसके देवता हैं,

---

१. ॐ ह्रीं यां कल्पयन्ति नोरयः क्रूरां कृत्यां वधूमिव तां ब्रह्मणा अपनिर्णुद्मः प्रत्यक्कर्त्तारमृच्छतु ह्रीं ॐमिति सप्तत्रिंशदक्षरः ।

२. अस्य प्रत्यंगिरामन्त्रस्य ब्रह्माऋषिः अनुष्टुपछन्दः देवीप्रत्यंगिरादेवता ॐ बीजं ह्रीं शक्तिः ममाखिलावाप्तये जपे विनियोगः ।

वसुभिर्मन्त्रजैर्वर्णैर्दीर्घयुक्पार्वतीपरैः ।
प्रणवाद्यैः षडङ्गानि कल्पयेज्जातिसंयुतैः ॥ ८९ ॥
शिरोभ्रूमध्यवक्त्रेषु कण्ठे बाहुद्वये हृदि ।
नाभावूर्वोर्जानुनोश्च पदानि पदयोर्न्यसेत् ॥ ९० ॥
चतुर्दशक्रमान्मन्त्री तारमायापुटान्यपि ॥

प्रणव आद्यो येषाम् । जात यो हृदयाय नम इत्यादयस्तत्संयुतैरष्टादिवर्णैः षडङ्गम् ॥ ८८ ॥ पदन्यासमाह – **शिर** इति । प्रणव मायासम्पुटानि चतुर्दश पदानि शिर आदिषु न्यसेत् । तेषां वर्णसंख्या क्रमात् । एकचतुरेक त्रि द्वि द्वि द्वि द्वि एक त्रि पञ्च द्वि त्रि त्रिः वर्णैर्बोध्या । ॐ ह्रीं यां ह्रीं शिरसीत्यादि ॥ ८९–९० ॥

प्रणव बीज है, माया (ह्रीं) शक्ति है, पर कृत्या (शत्रु द्वारा प्रयुक्त मारण रूप विशेष अभिचार) के विनाश के लिए इसका विनियोग है ॥ ८७-८८ ॥

विमर्श – विनियोग – 'अस्य श्रीप्रत्यङ्गिरामन्त्रस्य ब्रह्माऋषिरनुष्टुप्छन्दः देवी प्रत्यङ्गिरा देवता ॐ बीजं ह्रीं शक्तिः परकृत्या निवारणे विनियोगः' ॥ ८७-८८ ॥

अब उक्त **मन्त्र का न्यास** कहते हैं –

मन्त्र के ८, तोयनिधि ४, युग ४, वेद ४ फिर ५ फिर वसु (८) अक्षरों से प्रारम्भ में प्रणव एवं अन्त में ६ दीर्घयुक्त पार्वती (माया ह्रीं) लगाकर जाति (हृदयाय नमः) आदि षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ ८८-८९ ॥

अब **मन्त्र का पदन्यास** कहते हैं –

साधक तार (ॐ) तथा माया से संपुटित मन्त्र के चौदह पदों का शिर, भ्रूमध्य, मुख, कण्ठ, दोनों बाहु, हृदय, नाभि, दोनो ऊरू, दोनों जानु तथा दोनों पैरों में इस प्रकार कुल चौदह स्थानों में क्रमपूर्वक उक्त न्यास करे ॥ ८९-९० ॥

विमर्श – षडङ्गन्यास इस प्रकार करे । यथा –

ॐ यां कल्पयन्ति नोरयः ह्रां हृदयाय नमः, ॐ क्रूरां कृत्यां ह्रीं शिरसे स्वाहा,
ॐ वधूमिव ह्रूं शिखायै वषट्, ॐ तां ब्रह्मणा ह्रैं कवचाय हुम्,
ॐ अपनिर्णुद्मः ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ प्रत्यक्कर्त्तारमृच्छतु ह्रः अस्त्राय फट् ।

मन्त्र का **पदन्यास** इस प्रकार करे –

ॐ ह्रीं यां ह्रीं शिरसि, ॐ ह्रीं कल्पयन्ति ह्रीं भ्रूमध्ये,
ॐ ह्रीं नो ह्रीं मुखे, ॐ ह्रीं अरयः ह्रीं कण्ठे,
ॐ ह्रीं क्रूरां ह्रीं दक्षिण वाहौ, ॐ ह्रीं कृत्यां ह्रीं वामबाहौ,
ॐ ह्रीं वधूम् ह्रीं हृदि, ॐ ह्रीं इव ह्रीं नाभौ,
ॐ ह्रीं तां ह्रीं दक्षिण उरौ, ॐ ह्रीं ब्रह्मणा ह्रीं वाम उरौ,
ॐ ह्रीं अपनिर्णुद्मः ह्रीं दक्षिणजानौ, ॐ ह्रीं प्रत्यक् ह्रीं वामजानौ,
ॐ ह्रीं कर्त्तारम् ह्रीं दक्षिणपादे ॐ ह्रीं ऋच्छतु ह्रीं वामपादे॥ ८८-९० ॥

ध्यानप्रयोगादिकथनम्

आशाम्बरा मुक्तकचा घनच्छवि
र्ध्येया सचर्मासिकराहिभूषणा ।
दंष्ट्रोग्रवक्त्राग्रसिताहितान्वया
प्रत्यङ्गिरा शङ्करतेजसेरिता ॥ ६१ ॥
ध्यायन्नेवं जपेन्मन्त्रमयुतं तद्दशांशतः ।
अपामार्गेध्मराज्याज्यहविर्भिर्जुहुयात्ततः ॥ ६२ ॥
अन्नपूर्णासने चार्चेदङ्गलोकेश्वरायुधः ।
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगेषु शतं जपेत् ॥ ६३ ॥
जुहुयाच्च शतं दिक्षु दशमन्त्रैर्हरेद् बलिम् ।

बलिमन्त्रपूर्वकं बलिदानम्

यो मे पूर्वगतः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा ॥ ६४ ॥

ध्यानमाह – **आशेति** । आशाम्बरा नग्ना । घनच्छविर्मेघश्यामा । ग्रसितो-ऽहितानां रिपूणामन्वयो वंशो यया । असिर्दक्षिणे ॥ ६१–६३ ॥ बलिमन्त्रमाह – **योम** इति । ॐ यो मे पूर्वगतः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा । इन्द्रस्तं देवराजो भञ्जयतु अञ्जयतु मोहयतु नाशयतु मारयतु कलिं तस्मै प्रयच्छतु कृतं मम शिवं मम शान्तिः स्वस्त्ययनं चास्तु । इति बलिमन्त्रः । अनेन प्राच्यां बलिं दद्यात् ॥ ६४–६७ ॥

अब **महेश्वरी का ध्यान** कहते हैं - जिस दिगम्बरा देवी के केश छितराये हैं, ऐसी मेघ के समान श्याम वर्ण वाली, हाथों में खड्ग और चर्म धारण किये, गले में सर्पो की माला धारण किये, भयानक दाँतों से अत्यन्त उग्रमुख वाली, शत्रु समूहों को कवलित करने वाली, शंकर के तेज से प्रदीप्त, प्रत्यङ्गिरा का ध्यान करना चाहिए ॥ ६१ ॥

इस प्रकार मन्त्र का ध्यान करते हुये दश हजार मन्त्रों का जप करे तथा अपामार्ग (चिचिहड़ी) की लकड़ी, घृत मिश्रित राजी (राई) से उनका दशांश होम करे ॥ ६२ ॥

अन्नपूर्णा पीठ पर अङ्गपूजा लोकपाल एवं उनके आयुधों की पूजा करनी चाहिए । इस प्रकार सिद्ध मन्त्र का काम्य प्रयोगों में १०० बार जप करे । फिर उतनी ही संख्या में होम भी करे । तदनन्तर वक्ष्यमाण दश मन्त्रों से दशो दिशाओं में बलि देवे ॥ ६३-६४ ॥

विमर्श - प्रयोगविधि - (६. ६) श्लोक में बतलाई गई विधि से पीठ देवता एवं पीठशक्तियों की पूजा कर पीठ पर देवी की पूजा करे । फिर उनकी अनुज्ञा लेकर इस प्रकार आवरण पूजा करे । कर्णिका में षडङ्गपूजा (द्र० ६. ६०) फिर अन्नपूर्णा के षष्ठ एवं सप्तम आवरण में बतलाई गई विधि से इन्द्रादि लोकपालों एवं उनके आयुधों की पूजा करे । (द्र० ६. २१) ॥ ६३-६४ ॥

इन्द्रस्तंदेव उच्चार्य राजान्ते भञ्जयत्विति ।
अञ्जयत्वितिचोच्चार्य मोहयत्विति चोच्चरेत् ॥ ६५ ॥
नाशयतुपदं पश्चान्मारयत्वित्यतो बलिम् ।
तस्मै प्रयच्छतु कृतंममान्ते च शिवं मम ॥ ६६ ॥
शान्तिः स्वस्त्ययनं चास्तु बलिमन्त्र उदाहृतः ।
प्रणवाद्योऽष्टषष्ट्यर्णस्तेनैव वितरेद् बलिम् ॥ ६७ ॥

दिक्षुबलिदानप्रकारकथनम्

अस्मिन्मन्त्रे पूर्वपदस्थानेग्न्यादिपदं वदेत् ।
अग्निरित्यादि च पठेदिन्द्र इत्यादिके स्थले ॥ ६८ ॥
एवं तु दशमन्त्राः स्युस्तैस्तत्तद् दिग्बलिं हरेत् ।
इत्थं कृते शत्रुकृता कृत्या क्षिप्रं विनश्यति ॥ ६९ ॥

अस्मिन्मन्त्रे । पूर्वेत्यस्य स्थाने अग्न्यादिपदम् । इन्द्र इत्यस्य स्थाने अग्निरित्यादि । देवराज इत्यत्र तेजो राज इत्यादि ऊहान् कृत्वा दशमन्त्रा विधेयास्तैस्तस्यां तस्यां दिशि बलिं दद्यात् । यथा – यो मेऽग्निगतः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा अग्निस्तं तेजो राजो भञ्जयत्वित्यादि० यो मे दक्षिणगतः यमस्तं प्रेतराज इत्यादि ॥ ६८–६९ ॥

पूर्व दिशा में 'यो मे पूर्वगतः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा इन्द्रस्तं देव' इतना कहकर 'राजो' फिर 'अन्त्रयतु' फिर 'अञ्जयुत' कह कर 'मोहयतु' ऐसा कहें, फिर 'नाशयतु', 'मारयतु', 'बलिं तस्मै प्रयच्छतु', इसके बाद 'कृतं मम', 'शिवं मम' फिर 'शान्तिः स्वस्त्ययनं चास्तु' कहने से बलि मन्त्र बन जाता है । आदि में प्रणव लगाकर अड़सठ अक्षरों से बलि प्रदान करना चाहिए ॥ ६४-६७ ॥

तत्पश्चात् बलि देने के समय इस मन्त्र में पूर्व के स्थान में आग्नेये आदि दिशाओं का नाम बदलते रहना चाहिए, और इन्द्र के स्थान में अग्नि इत्यादि दिक्पालों के नाम भी बदलते रहना चाहिए । इस प्रकार करने से शत्रु द्वारा की गई 'कृत्या' शीघ्र नष्ट हो जाती है ॥ ६८-६९ ॥

विमर्श – बलि मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है – 'ॐ यो मे पूर्वगतः पाप्मापाकेनेह कर्मणा इन्द्रस्तं देवराजो भञ्जयतु, अञ्जयतु, मोहयतु, नाशयतु मारयतु बलिं तस्मै प्रयच्छतु कृतं मम शिवं मम शान्तिः स्वस्त्ययनं चास्तु ' यह अड़सठ अक्षर का बलिदान मन्त्र है ।

दशो दिशाओं में बलिदान का प्रकार –

यो मे पूर्वगतः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा इन्द्रस्तं देवराजो भञ्जयतु इत्यादि
यो मे आग्नेयगतः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा अग्निस्तं तेजोराजो भञ्जयतु इत्यादि
यो मे दक्षिणगतः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा यमस्तं प्रेतराजो भञ्जयतु इत्यादि

प्रत्यङ्गिरामालामन्त्रः

अथ प्रत्यंगिरामालामन्त्रसिद्धिः प्रकीर्त्यते ।
तारो मायानभः कृष्णवाससेशतवर्णकाः ॥ १०० ॥
सहस्रहिंसिनिपदं सहस्रवदने पुनः ।
महाबलेपदंपश्चादुच्चरेदपराजिते ॥ १०१ ॥
प्रत्यङ्गिरे परसैन्यपरकर्मसदृग्जलम् ।
ध्वंसिनि परमन्त्रोत्सादिनि सर्वपदं ततः ॥ १०२ ॥
भूतान्ते दमनिप्रान्ते सर्वदेवान् समुच्चरेत् ।
बन्धयुग्मं सर्वविद्याश्छिन्धियुक्क्षोभयद्वयम् ॥ १०३ ॥
परयन्त्राणि संकीर्त्य स्फोटयद्वितयं पठेत् ।
सर्वान्ते शृंखला उक्त्वा त्रोटयद्वितयं ज्वलत् ॥ १०४ ॥
ज्वालाजिह्वेकरालान्ते वदने प्रत्यमुच्चरेत् ।
गिरे मायानमोन्तोऽयं शरसूर्याक्षरो मनुः ॥ १०५ ॥

प्रत्यङ्गिरामालामन्त्रमाह – **तार** इति । तारः प्रणवः । माया ह्रीं। सदृक् जलम्। इयुतो वः वि ॥ १००–१०४ ॥ शर सूर्य्याक्षरः । पञ्चविंशत्यधिकशतार्णः। ॐ ह्रीं नमः – कृष्णवाससे शतसहस्रहिंसिनि सहस्रवदने महाबले अपराजिते प्रत्यङ्गिरे परसैन्यपरकर्मविध्वंसिनि परमन्त्रोत्सादिनि सर्वभूतदमनि सर्वदेवान् बन्ध बन्ध सर्वविद्याश्छिन्धि छिन्धि क्षोभय क्षोभय परयन्त्राणि स्फोटय स्फोटय सर्वशृंङ्खलास्त्रोटय त्रोटय ज्वलज्ज्वालाजिह्वे करालवदने प्रत्यङ्गिरे ह्रीं नम इति ॥ १०५–१०६ ॥

यो मे नैर्ऋत्यगतः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा निर्ऋतिस्तं रक्षराजो भञ्जयतु इत्यादि
यो मे पश्चिमगतः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा वरुणस्तं जलराजो भञ्जयतु इत्यादि
यो मे वायव्यगतः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा वायुस्तं प्राणराजो भञ्जयतु इत्यादि
यो मे उत्तरगतः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा सोमस्तं नक्षत्रराजो भञ्जयतु इत्यादि
यो मे ईशानगतः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा ईशानस्तं गणराजो भञ्जयतु इत्यादि
यो मे ऊर्ध्वगतः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा ब्रह्मा तं प्रजाराजो भञ्जयतु इत्यादि
यो मे अधोगतः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा अनन्तस्तं नागराजो भञ्जयतु इत्यादि ॥ ६८-६६ ॥

अब **प्रत्यङ्गिरामाला मन्त्र का उद्धार** बतलाते हैं -

तार (ॐ), माया (ह्रीं), फिर 'नमः कृष्णवाससे शत वर्ण' फिर 'सहस्र हिंसिनि' पद, फिर 'सहस्रवदने', पुनः 'महाबले', फिर 'अपराजिते', फिर 'प्रत्यङ्गिरे', फिर 'परसैन्य परकर्म', फिर सदृक् जल (वि), फिर 'ध्वंसिनि परमन्त्रोत्सादिनि सर्व' पद, फिर उसके अन्त में 'भूत' पद, फिर 'दमनि', फिर 'सर्वदेवान्', फिर 'बन्ध' युग्म (बन्ध बन्ध),

ऋष्यादिकं पूर्वमुक्तं माययास्यात्षडङ्गकम्।
ध्यायेत्प्रत्यंगिरां देवीं सर्वशत्रुविनाशिनीम्॥ १०६॥

ध्यानजपादिमन्त्रसिद्धिकथनम्

सिंहारूढातिकृष्णं त्रिभुवनभयकृद्रूपमुग्रं वहन्ती,
ज्वालावक्त्रावसानानववसनयुगं नीलमण्याभकान्तिः।
शूलं खड्गं वहन्ती निजकरयुगले भक्तरक्षैकदक्षा,
सेयं प्रत्यङ्गिरा संक्षपयतु रिपुभिर्निर्मितं वोभिचारम्॥ १०७॥

ध्यानमाह – **सिंहेति** । खड्गो दक्षिणे॥ १०७–१०६॥

फिर 'सर्वविद्याः', फिर 'छिन्धि' युग्म (छिन्धि, छिंन्धि), फिर 'क्षोभय' युग्म (क्षोभय क्षोभय), फिर 'परमन्त्राणि' के बाद 'स्फोटय' युग्म् (स्फोटय स्फोटय), फिर 'सर्वशृङ्खलां' के बाद 'त्रोटय' युग्म (त्रोटय त्रोटय), फिर 'ज्वलज्ज्वाला जिह्वे करालवदने प्रत्यङ्गिरे' फिर माया (ह्रीं), तथा अन्त में 'नमः' लगाने से १२५ अक्षरों का प्रत्यंगिरा माला मन्त्र बनता है॥ १००-१०५॥

विमर्श – प्रत्यङ्गगिरा माला मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है –

'ॐ ह्रीं नमः कृष्ण वाससे शतसहस्रहिंसिनि सहस्रवदने महाबले अपराजिते प्रत्यङ्गिरे परसैन्य परकर्मविध्वंसिनि परमन्त्रोत्सादिनि सर्वभूतदमनि सर्वदेवान् बन्ध बन्ध सर्वविद्याश्छिन्धि छिन्धि क्षोभय क्षोभय परयन्त्राणि स्फोटय स्फोटय सर्वशृङ्खलास्त्रोटय त्रोटय ज्वलज्ज्वालाजिह्वे करालवदने प्रत्यङ्गिरे ह्रीं नमः'॥ १००-१०५॥

इस मन्त्र के ऋषि छन्द तथा देवता पूर्व में कह आये हैं । इस मन्त्र के माया बीज से षडङ्गन्यास करना चाहिए । तदनन्तर समस्त शत्रुओं को नाश करने वाली प्रत्यङ्गिरा का ध्यान करना चाहिए॥ १०६॥

विमर्श – विनियोग – 'अस्य श्रीप्रत्यङ्गिरामन्त्रस्य ब्रह्माऋषिरनुष्टुप्छन्दः प्रत्यङ्गिरादेवता ॐ बीजं ह्रीं शक्तिः ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे (परकृत्यनिवारणे वा) जपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास – ॐ ह्रां हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा,
ॐ ह्रूं शिखायै वषट्, ॐ ह्रैं कवचाय हुम्,
ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ ह्रः अस्त्राय फट्॥ १०६॥

सिंहारूढ़, अत्यन्त कृष्णवर्णा, त्रिभुवन को भयभीत करने वाले रूपकों को धारण करने वाली, मुख से आग की ज्वाला उगलती हुई, नवीन दो वस्त्रों को धारण किये हुये, नीलमणि की आभा के समान कान्ति वाली, अपने दोनों हाथों में शूल तथा खड्ग धारण करने वाली, स्वभक्तों की रक्षा में अत्यन्त सावधान रहने वाली, ऐसी प्रत्यङ्गिरा देवी हमारे शत्रुओं के द्वारा किये गये अभिचारों को विनष्ट करे॥ १०७॥

अयुतं प्रजपेन्मन्त्रं सहस्रं तिजराजिकाः ।
हुत्वा सिद्धमनुं मन्त्रं प्रयोगेषु शतं जपेत् ॥ १०८ ॥
ग्रहभूतादिकाविष्टं सिञ्चेन्मन्त्रं जपञ्जलैः ।
विनाशयेत्परकृतं यन्त्रमन्त्रादिकर्मणाम् ॥ १०६ ॥

शत्रुनाशकमन्त्रः

मन्त्रं विरोधिशमकं प्रवक्ष्ये षोडशाक्षरम् ।
प्रणवः केशवः सेन्दुर्वर्गाद्याः पञ्चसेन्दवः ॥ ११० ॥
वियच्चन्द्रान्वितं रान्तसद्योजातः शशांकयुक् ।
मायात्रिकर्णचन्द्राढ्यो भृगुः सर्गी सवर्मफट् ॥ १११ ॥
स्वाहान्तः षोडशार्णोऽयं मन्त्रः[1] शत्रुविनाशनः ।
विधाताष्टिर्ऋषिश्छन्दः[2] पर्वताब्ध्यग्निवायवः ॥ ११२ ॥

शत्रुनाशकमन्त्रमाह – **प्रणव** इति । प्रणवः ॐ । सेन्दुः केशवः । अं । सेन्दवः पञ्चवर्गाद्याः कं चं टं तं पं ॥ ११० ॥ चन्द्रान्वितं वियत् हं । रान्तं लः । सद्योजातः शशांको बिन्दुस्ताभ्यां युक्तः लों । माया ह्रीं । कर्णचन्द्राढ्यः उ । बिन्दुयुतोऽत्रि दुं । सर्गी भृगुः सः वर्म हुं ॥ १११ ॥ फट् स्वाहा स्वरूपम् । विधाता ब्रह्मा । महापूर्वाः पर्वतादयः । महापर्वतमहासमुद्र महाग्नि महावायुमहापृथ्वी

इस मन्त्र का दश हजार जप करना चाहिए तथा तिल एवं राई का होम एक हजार की संख्या में निष्पन्न कर मन्त्र सिद्ध करना चाहिए । फिर काम्य प्रयोगों में मात्र १०० की संख्या में जप करना चाहिए ॥ १०८ ॥

ग्रह बाधा, भूत बाधा आदि किसी प्रकार की बाधा होने पर इस मन्त्र का जप करते हुए जल से रोगी को अभिसिञ्चित करना चाहिए । इसी प्रकार शत्रुद्वारा यन्त्र मन्त्रादि द्वारा अभिचार भी विनिष्ट करना चाहिए ॥ १०६ ॥

अब **षोडशाक्षर वाला शत्रुविनाशक मन्त्र** बतलाता हूँ -

प्रणव (ॐ), सेन्दु केशव (अं), सेन्दु पञ्चवर्गों के आदि अक्षर (कं चं टं तं पं), चन्द्रान्वित वियत् (हं), सद्योजात (ओ), शशांक (अनुस्वार), उससे युक्त रान्त (ल), इस प्रकार (लों), माया (ह्रीं), कर्ण (उकार), चन्द्र (अनुस्वार), इससे युक्त अत्रि (द्) (अर्थात् दुं), सर्गी (विसर्गयुक्त), भृगु (स), इस प्रकार (सः), वर्म (हुं), फिर 'फट्' इसके अन्त में 'स्वाहा' लगाने से उक्त मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ ११०-११२ ॥

---

१. ॐ अं कं चं टं तं प हलों ह्रीं दु सः हु फट् स्वाहेति षोडशार्णः ।

२. अस्य मन्त्रस्य ब्रह्माऋषिः अष्टिछन्दः महापर्वतमहाब्धिमहाग्निमहावायुमहाधरामहामाशः षड्देवता हुंबीजं ह्रीं शक्तिः ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

धराकाशौ महापूर्वा देवताः परिकीर्तिताः ।
हुंबीजं पार्वतीशक्तिर्मायया तु षडङ्गकम् ॥ ११३ ॥

षडङ्गक्रमेण ध्यानवर्णनम्

नानारत्नार्चिराक्रान्तं वृक्षाम्भः स्रवर्णैर्युतम् ।
व्याघ्रादिपशुभिर्व्याप्तं सानुयुक्तं गिरिं स्मरेत् ॥ ११४ ॥
मत्स्यकूर्मादिबीजाढ्यं नवरत्नसमन्वितम् ।
घनच्छायं सकल्लोलमकूपारं विचिन्तयेत् ॥ ११५ ॥
ज्वालावतीसमाक्रान्त जगत्त्रितयमद्भुतम् ।
पीतवर्णं महावह्निं संस्मरेच्छत्रुशान्तये ॥ ११६ ॥
धरासमुत्थरेण्वौघमलिनं रुद्धभूदिवम् ।
पवनं संस्मरेद्विश्वजीवनं प्राणरूपतः ॥ ११७ ॥

महाकाशाः षड्देवताः । पार्वती ह्रीं । मायया दीर्घाढ्यया षडङ्गम् ॥ ११२–११३ ॥ षडङ्गक्रमेण ध्यानान्याह – **नानेति** ॥ ११४ ॥ अकूपारं समुद्रम् ॥ ११५–११६ ॥ प्राणरूपेण विश्वं जीवयतीति विश्वजीवनम् ॥ ११७–१२० ॥

विमर्श – मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है – 'ॐ अं कं चं टं तं पं हं लों ह्रीं दुं सः हुं फट् स्वाहा' ॥ ११०-१११ ॥

इस मन्त्र के विधाता ऋषि हैं, अष्टि छन्द हैं १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, ११ महाअग्नि, महापर्वत, महासमुद्र, महावायु, महाधरा तथा महाकाश देवता कहे गये हैं, हुं बीज है, पार्वती (ह्रीं) शक्ति है । षड्दीर्घ सहित माया बीज से इसके षडङ्गन्यास का विधान कहा गया है ॥ ११२-११३ ॥

विमर्श – विनियोग – 'अस्य विरोधिशामकमन्त्रस्य ब्रह्माऋषिरष्टिच्छन्दः महापार्वताब्ध्याग्निवायुधराकाश देवताः हुं बीजं ह्रीं शक्तिः शत्रुशमनार्थ जपे विनियोगः' ।

षडङ्गन्यास – ॐ ह्रां हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा,
ॐ ह्रूं शिखायै वषट्, ॐ ह्रैं कवचाय हुम्,
ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ ह्रः अस्त्राय फट् ॥ ११२-११३ ॥

अब उन छः **देवताओं का ध्यान** कहते हैं –

(i) अनेक रत्नों की प्रभा से आक्रान्त वृक्ष झरनों एवं व्याघ्रादि महाभयानक पशुओं से व्याप्त अनेक शिखर युक्त **महापार्वत** का ध्यान कराना चाहिए ॥ ११४ ॥

(ii) मछली एवं कछुआ रूपी बीजों वाला, नव रत्न समन्वित, मेघ के समान कान्तिमान्, कल्लोलों से व्याप्त **महासमुद्र** का स्मरण करना चाहिए ॥ ११५ ॥

(iii) अपने ज्वाला से तीनों लोकों को आक्रान्त करने वाले अद्भुत एवं पीतवर्ण वाले **महाग्नि** का शत्रुनाश के लिए स्मरण करना चाहिए ॥ ११६ ॥

नदीपर्वतवृक्षादिफलिताग्रामसंकुला ।
आधारभूता जगतो ध्येया पृथ्वीह मन्त्रिणा ॥ ११८ ॥
सूर्यादिग्रहनक्षत्रकालचक्रसमन्वितम् ।
निर्मलं गगनं ध्यायेत्प्राणिनामाश्रयप्रदम् ॥ ११६ ॥
एवं षड्देवता ध्यात्वा सहस्राणि तु षोडश ।
जपेन्मन्त्रं दशांशेन षड्द्रव्यैर्होममाचरेत् ॥ १२० ॥
व्रीह्यस्तन्दुलाआज्यं सर्षपाश्च यवास्तिलाः ।
एतैर्हुत्वा यथाभागं पीठे पूर्वोदिते यजेत् ॥ १२१ ॥
अङ्गदिक्पालवज्राद्यैरेवं सिद्धो भवेन्मनुः ।
शत्रूपद्रवमापन्नो युञ्ज्यात्तन्नष्टये मनुम् ॥ १२२ ॥

अस्य मन्त्रस्य प्रयोगकथनम्

अकारं पर्वताकारं धावन्तं शत्रुसम्मुखम् ।
पतनोन्मुखमत्युग्रं प्राच्यां दिशि विचिन्तयेत् ॥ १२३ ॥

यथाभागं सप्तषष्ट्यधिकं शतद्वयं प्रत्येकम् ॥ १२१–१२२ ॥ प्रयोगमाह – **अकारमिति** ॥ १२३–१२४ ॥

(iv) पृथ्वी की उड़ाई गई धूलराशि से द्युलोक एवं भूलोक को मलिन एवं उनकी गति को अवरुद्ध करने वाले प्राण रूप से सारे विश्व को जीवन दान करने वाले **महापवन** का स्मरण करना चाहिए ॥ ११७ ॥

(v) नदी, पर्वत, वृक्षादि, रूप दलों वाली, अनेक प्रकार ग्रामों से व्याप्त समस्त जगत् की आधारभूता **महापृथ्वी** तत्त्व का स्मरण करना चाहिए ॥ ११८ ॥

(vi) सूर्यादि ग्रहों, नक्षत्रों एवं कालचक्र से समन्वित, तथा सारे प्राणियों को अवकाश देने वाले निर्मल **महाआकाश** का ध्यान करना चाहिए ॥ ११६ ॥

इस प्रकार उक्त छः देवताओं का ध्यान कर सोलह हजार की संख्या में उक्त मन्त्र का जप करना चाहिए । तदनन्तर षड्द्रव्यों से दशांश होम करना चाहिए ॥ १२० ॥

१. धान, २. चावल, ३. घी, ४. सरसों, ५. जौ एवं ६. तिल - इन षड्द्रव्यों में प्रत्येक से अपने अपने भाग के अनुसार २६७, २६७ आहुतियाँ देकर पूर्वोक्त पीठ पर इनका पूजन करना चाहिए ॥ १२१ ॥

फिर अङ्गपूजा, दिक्पाल पूजा एवं वज्रादि आयुधों की पूजा करने पर इस मन्त्र की सिद्धि होती है । शत्रु के उपद्रवों से उद्विग्न व्यक्ति को शत्रुनाश के लिए इस मन्त्र का प्रयोग करना चाहिए ॥ १२२ ॥

अकार का ध्यान - पर्वत के समान आकृति वाले शत्रु संमुख दौड़ते हुये एवं उस पर झपटते हुये अकार का पूर्वदिशा में ध्यान करना चाहिए ॥ १२३ ॥

ककारं क्षुब्धकल्लोलं प्लाविताखिलभूतलम्।
समुद्ररूपिणं भीमं प्रतीच्यां दिशि संस्मरेत्॥ १२४॥
वर्णं तदग्रिमं ज्वालासंघव्याप्तनभस्तलम्।
याम्येरब्धजगद्दाहं स्मरेत्प्रलयपावकम्॥ १२५॥
तृतीयवर्गप्रथमं प्रकम्पितजगत्त्रयम्।
युगान्तपवनाकारमुत्तरस्यां दिशि स्मरेत्॥ १२६॥
तुरीयपञ्चमाद्यार्णौ पृथ्वीगगनरूपिणो।
शत्रुवर्गं बाधमानौ चिन्तयेन्नियतात्मवान्॥ १२७॥
तदग्रिमं वर्णयुगं शत्रोर्निःश्वासपद्धतिम्।
निरुन्धानं स्मरेन्मन्त्री विदधद्रिपुमाकुलम्॥ १२८॥
मायादिवर्णत्रितयं शत्रोर्नेत्रश्रुतीमुखम्।
प्रत्येकं तु निरुन्धानं चिन्तयेत्साधकोत्तमः॥ १२९॥
वर्मसंक्षोभितं त्वस्त्रं रिपोराधारदेशतः।
उत्थाप्य वह्निं तद्देहं प्रदहन्समनुस्मरेत्॥ १३०॥

तदग्रिमं चकारं याम्ये दक्षिणस्याम् । रब्ध आरब्धो जगद्दाहो येऽनलंकृतेति वा पाठः ॥ १२५ ॥ तृतीयेति टम् ॥ १२६ ॥ **तुरीयेति** । चतुर्थपञ्चम-वर्गयोरादिमार्णो तंपं ॥ १२७ ॥ तदग्रिमवर्णयुगं द्वयं हं लोमिति ॥ १२८ ॥ मायादिवर्णत्रितयं ह्रीं दुँ स इति ॥ १२९ ॥ वर्मणा हुँकारेण क्षोभितमस्त्रं फट्कारं रिपोराधारादग्निमुत्थाप्य रिपुदहन्तं स्मरेत्॥ १३०॥

समुद्र के समान आकृति वाले अपने तरङ्गों से सारे पृथ्वी मण्डल को बहाते हुये भयङ्कर रूप धारी **ककार** का पश्चिम दिशा में स्मरण करना चाहिए ॥ १२४॥

अपने ज्वाला समूहों से आकाश मण्डल को व्याप्त करते हुए सारे जगत् को जलाने वाले प्रलयाग्नि के समान **चकार** का दक्षिण दिशा में ध्यान करना चाहिए ॥ १२५॥

सारे जगत् को प्रकम्पित करने वाले युगान्त कालीन पवन के समान आकृति वाले तृतीय वर्ग का प्रथमाक्षर **टकार** का उत्तर दिशा में ध्यान करना चाहिए ॥ १२६॥

शत्रुवर्ग को बाधित करने वाले चतुर्थ वर्ग के प्रथमाक्षर **तकार** का पृथ्वी रूप में एवं पञ्चम वर्ग के प्रथमाक्षर **पकार** का गगन रूप में जितेन्द्रिय साधक को ध्यान करना चाहिए ॥ १२७॥

शत्रु की श्वास प्रणाली को अवरुद्ध कर उसे व्याकुल करते हुये आगे के अग्रिम दो वर्णों (हं लों) का ध्यान करना चाहिए ॥ १२८॥

फिर श्रेष्ठ साधक को शत्रु के नेत्र, मुख एवं कानों को अवरुद्ध करने वाले माया आदि तीन वर्णों का (ह्रीं दुं सः) का ध्यान करना चाहिए । फिर वर्म (हुङ्कार) से

एवं वर्णान् स्मरन्मन्त्रं जपेन्मन्त्रीसहस्रकम् ।
मण्डलत्रितयादर्वाङ् मारयत्येव विद्विषम् ॥ १३१ ॥
एवं यः कुरुते कर्मप्राणायामजपादिभिः ।
संशोधयित्वा स्वात्मानं स्वरक्षायै हरिं स्मरेत् ॥ १३२ ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचिते मन्त्रमहोदधावन्नपूर्णादि मन्त्रप्रकाशनं नाम नवमस्तरङ्गः ॥ ९ ॥



मण्डलमेकोनपञ्चाशद्दिनानि ॥ १३१ ॥ मारणं कुर्वतः प्रायश्चित्तमाह – एवमिति ॥ १३२ ॥

इति श्रीमन्महीधरविरचितायां मन्त्रमहोदधिव्याख्यायां नौकायाम–न्नपूर्णादिनिरूपणं नाम नवमस्तरङ्गः ॥ ९ ॥



संक्षोभित तथा अस्त्र (फट्) से शत्रु को मूलाधार से उठा कर अग्नि में फेक कर उसके शरीर को जलाते हुये दो अक्षर हुं फट् का ध्यान करना चाहिए ॥ १२६-१३० ॥

इस प्रकार मन्त्र के सब वर्णों का आदि के ॐ कार तथा अन्त में स्वाहा इन तीन वर्णो को छोड़कर (मात्र तेरह वर्णो का) ध्यान करने वाला मालिक एक हजार की संख्या में निरन्तर जप करे तो तीन मण्डलों (उन्चास दिन) के भीतर ही वह अपने शत्रु को मार सकता हैं ॥ १३१ ॥

जिसे शत्रुमारण कर्म करना हो उस साधक को प्राणायाम तथा इष्टदेवता के मन्त्र के जप से नित्य आत्मशुद्धि कर लेनी चाहिए तथा अपनी रक्षा के लिए भगवान् विष्णु का स्मरण करते रहना चाहिए ॥ १३२ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमन्महीधर विरचित मन्त्रमहोदधि के नवम तरङ्ग की महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत 'अरित्र' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ ९ ॥



अथ दशमः तरङ्गः

अथ प्रवक्ष्ये शत्रूणां स्तम्भिनी बगलामुखी।

बगलामुखीमन्त्रः

प्रणवो गगनं पृथ्वीशान्तिबिन्दुयुतं बग ॥ १ ॥
लामुखाक्षो गदीसर्वं दुष्टानां वाहलीन्दुयुक्।
मुखंपदं स्तम्भयान्ते जिह्वां कीलय वर्णकाः ॥ २ ॥
बुद्धिं विनाशायान्ते तु बीजं तारोऽग्निसुन्दरी।
षट्[१]त्रिंशदक्षरो मन्त्रो नारदो मुनिरस्य तु ॥ ३ ॥

---

* नौका *

बगलामुखीमाह – **प्रणव** इति । गगनं हः । पृथ्वी लः । शान्तिः ई । बिन्दुश्च तैर्युतं ह्रीं । बगलामुखी स्वरूपम् । गदी खः । साक्ष इयुतः खि । 'सर्व–दुष्टानां वा' स्वरूपम् । इन्दुयुक् हली चं । मुखं पदमित्यादि स्वरूपम् । बीजं ह्रीं । तार ॐ अग्निसुन्दरी स्वाहा ॥ १–३ ॥

---

* अरित्र *

अब शत्रुओं के मुख पीठ जिह्वा आदि का स्तम्भन करने वाले **बगलामुखी का मन्त्र** बतलाता हूँ ।

प्रणव (ॐ), शान्ति (ई) एवं बिन्दु (अनुस्वार), के सहित गगन (ह्), अर्थात् (ह्रीं), फिर 'बगलामु', फिर साक्ष इकार युक्त गदी (ख) अर्थात् (खि), फिर 'सर्वदुष्टानां वा', फिर इन्दु (अनुस्वार) युक् हली (च) अर्थात् (चं), फिर 'मुखं पदं स्तम्भय' के बाद 'जिह्वां कीलय बुद्धिं विनाशय', फिर बीज (ह्रीं), तार (ॐ), फिर अग्निसुन्दरी (स्वाहा) लगाने से छत्तिस अक्षरों का मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ १-३ ॥

विमर्श - इस **मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - 'ॐ ह्रीं बगलामुखि सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय जिह्वां कीलय बुद्धिं विनाशय ह्रीं ॐ स्वाहा' ॥ १-३ ॥

इस मन्त्र के नारद ऋषि हैं, बृहती छन्द है, बगलामुखी देवता हैं, मन्त्र के

---

१. ॐ ह्रीं बगलामुखि सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तंभय जिह्वां कीलय बुद्धिं विनाशय ह्रीं ॐस्वाहेति षट्त्रिंशदर्णः ।

छन्दोऽपिबृहती ज्ञेयं देवताबगलामुखी ।
नेत्राक्षसायकनवपञ्चकाष्ठाभिरङ्गकम् ॥ ४ ॥

ध्यानजपादिविधानम्

सौवर्णासनसंस्थितां त्रिनयनां पीतांशुकोल्लासिनीं
हेमाभाङ्गरुचिं शशाङ्कमुकुटां सच्चम्पकस्रग्युताम् ।
हस्तैर्मुद्गरपाश वज्ररसनाः सम्बिभ्रतीं भूषणै
र्व्याप्ताङ्गीं बगलामुखीं त्रिजगतां संस्तम्भिनीं चिन्तयेत् ॥ ५ ॥
एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षमयुतं चम्पकोद्भवैः ।
कुसुमैर्जुहुयात् पीठे पूर्वोक्ते पूजयेदिमाम् ॥ ६ ॥
चन्दनागुरुचन्द्राद्यैः पूजार्थं यन्त्रमालिखेत् ।
त्रिकोणषड्दलाष्टास्रषोडशारधरापुरम् ॥ ७ ॥

षडङ्गमाह – **नेत्रेति** । अक्षाणि पञ्च ॥ ४ ॥ ध्यानमाह – **सौवर्णेति** । मुद्गरवज्रौ दक्षयोः । पाशरिपुजिह्वे वामयोः ॥ ५ ॥ * ॥ ६–८ ॥

२, ५, ५, ६, ५, एवं १० अक्षरों से षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ ३-४ ॥

विमर्श - विनियोग - 'ॐ अस्य श्रीबगलामुखीमन्त्रस्य नारदऋषिः बृहतीछन्दः बगलामुखीदेवता शत्रूणां स्तम्भनार्थे जपे विनियोगः' ।

षडङ्गन्यास - ॐ ह्लीं हृदयाय नमः, ॐ बगलामुखि शिरसे स्वाहा,
ॐ सर्वदुष्टानां शिखायै वषट्, ॐ वाचं मुखं पदं स्तम्भय कवचाय हुम्
ॐ जिह्वां कीलय नेत्रत्रयाय वौषट्,
ॐ बुद्धिं विनाशय ह्लीं, ॐ स्वाहा अस्त्राय फट् ॥ ३-४ ॥

अब **बगलामुखी देवी का ध्यान** कहते हैं -

सुवर्ण निर्मित सिंहासन पर विराजमान, तीन नेत्रों वाली पीत वस्त्र से उदीप्त सुवर्ण के समान आभा वाली, चन्द्रकला युक्त मुकुट धारण की हुई, चम्पक की माला पहने हुये, अपने हाथों में मुद्गर, पाश, वज्र एवं शत्रु की जीभ लिए हुये, अपने समस्त अङ्गों में भूषण धारण किये हुये, तीनों लोकों को स्तम्भित करने वाली बगलामुखी का ध्यान करना चाहिए ॥ ५ ॥

इस प्रकार ध्यान कर उक्त मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिए । चम्पा के फूलों से दश हजार आहुतियाँ देनी चाहिए, तथा पूर्वोक्त पीठ पर इनका पूजन करना चाहिए । (द्र० ६.६) ॥ ६ ॥

अब **बगलामुखी का पूजन यन्त्र** कहते हैं - त्रिकोण, षड्दल, अष्टदल, षोडशदल एवं भूपुर से संयुक्त पूजायन्त्र को चन्दन, अगरु, कपूर आदि अष्टगन्ध

मध्ये सम्पूजयेद् देवीं कोणे सत्त्वादिकान्गुणान् ।
षट्कोणेषु षडङ्गानि मातृभैरवसंयुता ॥ ८ ॥
सम्पूज्याऽष्टदले पद्मे षोडशारे यजेदिमाः ।

अष्टषोडशपीठदेवताकथनम्

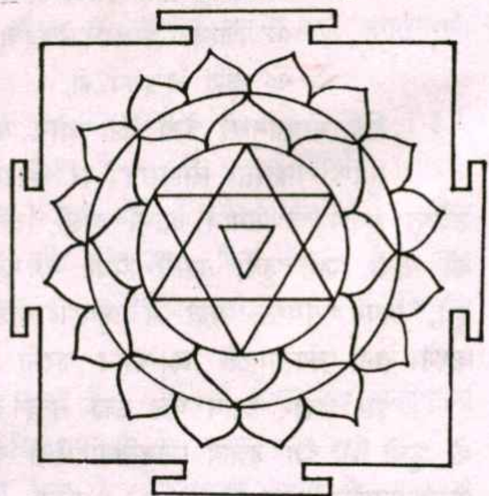
मङ्गलास्तम्भिनी चैव जृम्भिणीमोहिनी तथा ॥ ६ ॥
वश्याचलाबलाका च भूधराकल्मषाभिधा ।
धात्री च कलनाकालकर्षिणीभ्रामिकाऽपि च ॥ १० ॥
मन्दगमना च भोगस्था भाविका षोडशी स्मृता ।
भूगृहस्य चतुर्दिक्षु पूर्वादिषु यजेत् क्रमात् ॥ ११ ॥
गणेशं बटुकं चापि योगिनीं क्षेत्रपालकम् ।
इन्द्रादींश्च ततो बाह्ये निजायुधसमन्वितान् ॥ १२ ॥
इत्थं सिद्धमनुर्मन्त्री स्तम्भयेद् देवतादिकान् ।

भैरवसंयुतामातृरष्टदले सम्पूज्य षोडशदले इमा मङ्गलाद्या यजेत् ॥ ६–१२ ॥ * ॥ १३–१७ ॥

के द्रव्यों से निर्माण करना चाहिए ॥ ७ ॥

अब **यन्त्र पूजा की विधि** कहते हैं - **मध्य में** देवी की पूजा तथा **त्रिकोण में** सत्त्व, रज, तम आदि तीनों गुणों की, **षट्कोण में** षडङ्गपूजा तथा **अष्टदल में** भैरवों के साथ मातृकाओं का पूजन करना चाहिए ॥ ८ ॥

बगलामुखीपूजनयन्त्रम्



सोलह दल में १. मङ्गला, २. स्तम्भिनी, ३. जृम्भिणी, ४. मोहिनी, ५. वश्या, ६. चला, ७. बलाका, ८. भूधरा, ६. कल्मषा, १०. धात्री, ११. कलना, १२. कालकर्षिणी, १३. भ्रामिका, १४. मन्दगमना, १५. भोगस्था एवं १६. भाविका - इन सोलह शक्तियों की पूजा करनी चाहिए ॥ ६–११ ॥

भूपुर के पूर्वादि चारों दिशाओं में गणेश, बटुक, योगिनी एवं क्षेत्रपाल का पूजन करे । फिर उसके बाहर अपने अपने आयुधों के सहित इन्द्रादि दश दिक्पालों का पूजन करना चाहिए । इस प्रकार मन्त्र सिद्ध हो जाने पर साधक,

देवता, भूत, प्रेत, पिशाचादि सभी को स्तम्भित कर देता है ॥ ११-१३ ॥

विमर्श - आवरण पूजा - १०. ५ में वर्णित स्वरूप का साधक ध्यान कर मानसोपचार से विधिवत् पूजन कर शंख का अर्घ्यपात्र स्थापित करे । फिर ६-६ की रीति से पीठ पूजा कर मूल मन्त्र से देवी की मूर्त्ति की कल्पना कर पुष्प, धूपादि उपचार समर्पित कर पुष्पाञ्जलि समर्पित करे । तदनन्तर उनकी अनुज्ञा ले कर यन्त्र पर आवरण पूजा करे ।

सर्वप्रथम **त्रिकोण में** मूलमन्त्र द्वारा देवी बगलामुखी की पूजा करे । फिर त्रिकोण में सत्त्व रज और तम इन तीनों गुणों की यथा -

ॐ सं सत्त्वाय नमः, ॐ रं रजसे नमः, ॐ तं तमसे नमः ।

इसके पश्चात् **षट्कोण में** षडङ्गपूजा - यथा -

ॐ ह्रीं हृदयाय नमः ॐ बगलामुखि शिरसे स्वाहा,
ॐ सर्वदुष्टानां शिखायै वषट् ॐ वाचंमुखं पदं स्तम्भय कवचाय हुं,
ॐ जिह्वां कीलय नेत्रत्रयाय वौषट्,
ॐ बुद्धिं विनाशय ह्रीं ॐ स्वाहा अस्त्राय फट् ।

इसके बाद अष्टदल में अष्ट भैरवों सहित ब्राह्मी आदि अष्टमातृकाओं की पूजा करनी चाहिए -

१ - ॐ असिताङ्गब्राह्मीभ्यां नमः ५ - ॐ उन्मत्तवाराहीभ्यां नमः
२ - ॐ रुरुमाहेश्वरीभ्यां नमः ६ - ॐ कपालीन्द्राणीभ्यां नमः
३ - ॐ चण्डकौमारीभ्यां नमः ७ - ॐ भीषणचामुण्डाभ्यां नमः
४ - ॐ क्रोधवैष्णवीभ्यां नमः ८ - ॐ संहारमहालक्ष्मीभ्यां नमः

इसके बाद षोडशदल में मङ्गला आदि शक्तियों की पूजा करनी चाहिए ।

१. ॐ मङ्गलायै नमः, ७. ॐ बलाकायै नमः, १३. ॐ भ्रामिकायै नमः,
२. ॐ स्तम्भिन्यै नमः, ८. ॐ भूधरायै नमः, १४. ॐ मन्दगमनायै नमः,
३. ॐ जृम्भिण्यै नमः ९. ॐ कल्मषायै नमः, १५. ॐ भोगस्थायै नमः,
४. ॐ मोहिन्यै नमः, १०. ॐ धात्र्यै नमः, १६. ॐ भाविकायै नमः,
५. ॐ वश्यायै नमः, ११. ॐ कलनायै नमः,
६. ॐ चलायै नमः, १२. ॐ कालकर्षिण्यै नमः,

फिर भूपुर के पूर्वादि चारों दिशाओं में क्रमशः गणेश, बटुक, योगिनी एवं क्षेत्रपाल की पूजा करनी चाहिए -

ॐ गं गणपतये नमः, पूर्वे, ॐ बं बटुकाय नमः, दक्षिणे,
ॐ यं योगिनीभ्यो नमः, पश्चिमे, ॐ क्षं क्षेत्रपालाय नमः, उत्तरे,

इसके पश्चात भूपुर के बाहर अपनी अपनी दिशाओं में इन्द्रादि दश दिक्पालों की पूजा करनी चाहिए -

ॐ इन्द्राय नमः पूर्वे, ॐ अग्नये नमः आग्नेये, ॐ यमाय नमः दक्षिणे,

पीतवस्त्रस्तदासीनः पीतमाल्यानुलेपनः ॥ १३ ॥
पीतपुष्पैर्यजेद् देवीं हरिद्रोत्थस्रजा जपन्।
पीतां ध्यायन् भगवतीं प्रयोगेष्वयुतं जपेत् ॥ १४ ॥

अस्य मन्त्रस्य नानाविधानेन नानासिद्धयः

त्रिमध्वक्ततिलैर्होमो नृणां वश्यकरो मतः।
मधुरत्रितयाक्तैः स्यादाकर्षो लवणैर्ध्रुवम् ॥ १५ ॥
तैलाभ्यक्तैर्निम्बपत्रैर्होमो विद्वेषकारकः।
ताललोणहरिद्राभिर्द्विषां संस्तम्भनं भवेत् ॥ १६ ॥
अङ्गारधूमं राजीश्च माहिषं गुग्गुलुं निशि।
श्मशानपावके हुत्वा नाशयेदचिरादरीन् ॥ १७ ॥

ॐ निर्ऋतये नमः नैर्ऋत्ये, ॐ वरुणाय नमः पश्चिमे, ॐ वायवे नमः वायव्ये,
ॐ सोमाय नमः उत्तरे, ॐ ईशानाय नमः ऐशान्यां,
ॐ ब्रह्मणे नमः पूर्वेशानयोर्मध्ये, ॐ अनन्ताय नमः पश्चिमनैऋत्ययोर्मध्ये

फिर दिक्पालों के पास उनके अपने अपने वज्रादि आयुधों की

इन्द्रसमीपे वज्राय नमः, अग्निसमीपे शक्तये नमः,
यमसमीपे दण्डाय नमः, निर्ऋतिसमीपे खड्गाय नमः,
वरुणसमीपे पाशाय नमः, वायुसमीपे आकशाय नमः,
सासमीपे गदायै नमः, ईशानसमीपे शूलाय नमः,
ब्रह्मणःसमीपे पद्माय नमः अनन्तसमीपे चक्राय नमः ॥ १२ ॥

इस प्रकार आवरण पूजा कर धूपदीपादि उपचारों से विधिवत् देवी की पूजा कर यथासंख्य नियमित जप करना चाहिए ॥ ११-१३ ॥

अब **बगलामुखी के जप के लिए विशेष प्रकार** कहते हैं -

साधक पीला वस्त्र पहन कर, पीले आसन पर बैठकर, पीली माला धारण कर, पीला चन्दन लगाकर, पीले पुष्पों से देवी की पूजा करे, तथा पीतवर्णा देवी का ध्यान भी करे, काम्य प्रयोगों में हल्दी की माला का प्रयोग करे तथा १० हजार की संख्या में जप करे ॥ १३-१४ ॥

त्रिमधु (शहद्, शर्करा, दूध) मिश्रित तिलों के होम से मनुष्यों को वश में किया जाता है । त्रिमधु मिश्रित लवण के होम से निश्चित रूप से आकर्षण होता है । तेलाभ्यक्त नीम के पत्तों के होम से विद्वेषण होता है । लाल लोण एवं हरिद्रा के होम से शत्रु वर्ग का स्तम्भन होता है, श्मशान की अग्नि में रात्रि के समय अङ्गार, धूप, राजी (राई) मैंसा, गुग्गुल की आहुतियाँ देने से शत्रुओं का नाश होता है । चिता की अग्नि में गिद्ध एवं कौवे के पंख का, सरसों का

गरुतो गृध्रकाकानां कटुतैलं बिभीतकम् ।
गृहधूमं चितावह्नौ हुत्वा प्रोच्चाटयेद् रिपून् ॥ १८ ॥
दूर्वागुडूचीलाजान् यो मधुरत्रितयान्वितान् ।
जुहोति सोखिलान् रोगाञ्छमयेद् दर्शनादपि ॥ १६ ॥
पर्वताग्रे महारण्ये नदीसङ्गे शिवालये ।
ब्रह्मचर्यव्रतो लक्षं जपेदखिलसिद्धये ॥ २० ॥
एकवर्णगवीदुग्धं शर्करामधुसंयुतम् ।
त्रिशतं मन्त्रितं पीतं हन्याद्विषपराभवम् ॥ २१ ॥
श्वेतपालाशकाष्ठेन रचिते रम्यपादुके ।
अलक्तरञ्जिते लक्षं मन्त्रयेन्मनुनाऽमुना ॥ २२ ॥
तदारूढः पुमान् गच्छेत् क्षणेन शतयोजनम् ।
पारदं च शिलां तालपिष्टं मधुसमन्वितम् ॥ २३ ॥
मनुना मन्त्रयेल्लक्षं लिपेत्तेनाखिलान् तनुम् ।
अदृश्यः स्यान्नृणामेष आश्चर्यं दृश्यतामिदम् ॥ २४ ॥

यन्त्रादिसाधनप्रकारः

षट्कोणे विलिखेद् बीजं साध्यनामान्वितं मनोः ।
हरितालनिशाचूर्णैरुन्मत्तरससंयुतैः ॥ २५ ॥

गरुत् पक्षान् ॥ १८ ॥ * ॥ १६–२४ ॥ यन्त्रमाह – **षट्कोण** इति ।

तेल तथा बहेड़ा एवं गृहधूम का होम करने से शत्रु का उच्चाटन होता है । मधुरत्रय मिश्रित दूर्वा, गुडूची एवं लाजा का जो व्यक्ति होम करता है उसके दर्शन मात्र से रोग ठीक हो जाते हैं । पर्वत के शिखर पर, घोर जङ्गल में, नदी के सङ्गम पर तथा शिवालय में ब्रह्मचर्य व्रत पूर्वक एक लाख बगलामुखी मन्त्र का जप करने से सारी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं ॥ १५-२० ॥

एक वर्णा गाय के दूध में शर्करा एवं मधु मिलाकर ३०० की संख्या में मूल मन्त्राभिमन्त्रित कर उसे पीने से शत्रु के द्वारा पराभव नही होता है । सफेद पलाश की लकड़ी से बनी मनोहर पादुकाओं को आलता से रंग देवे । फिर इस मन्त्र से एक लाख बार अभिमन्त्रित करे । इस प्रकार की पादुका पहिन कर चलने से मनुष्य क्षण मात्र में सौ योजन की दूरी पार कर लेता है । मधु युक्त पारा, मैनसिल एवं ताल को पीस कर इस मन्त्र से एक लाख बार अभिमन्त्रित कर उसे अपने सर्वाङ्ग में लेप करे तो वह व्यक्ति मनुष्यों के बीच में रहकर भी उन्हें दिखाई नहीं देता, जिसे इच्छा हो वह ऐसा करके देख सकता है ॥ २१-२४ ॥

शेषाक्षरैः समावीतं धरागेहविराजितम् ।
तद्यन्त्रं स्थापितप्राणं पीतसूत्रेण वेष्टयेत् ॥ २६ ॥
भ्राम्यत् कुलालचक्रस्थां गृहीत्वा मृत्तिकां तया ।
रचयेद् वृषभं रम्यं यन्त्रं तन्मध्यतः क्षिपेत् ॥ २७ ॥
हरितालेन संलिप्य वृषं प्रत्यहमर्चयेत् ।
स्तम्भयेद्विद्विषां वाचं गतिं कार्यपरम्पराम् ॥ २८ ॥
आदाय वामहस्तेन प्रेतभूमिस्थखर्परम् ।
अङ्गारेण चितास्थेन तत्र यन्त्रं समालिखेत् ॥ २९ ॥
मन्त्रितं निहितं भूमौ रिपूणां स्तम्भयेद् गतिम् ।
प्रेतवस्त्रे लिखेद्यन्त्रमङ्गारेणैव तत्पुनः ॥ ३० ॥

धत्तूररसाक्तहरिद्राचूर्णेन षट्कोणेऽमुकं स्तंभ्येति वर्णयुतं ह्लीमिति बीजं विलिख्य मन्त्रशेषार्णैः संवेष्ट्योपरि चतुरस्रेण वेष्टितं पीतसूत्रवीतं कृत्वा भ्रमत्कुम्भकार–चक्रस्थमृदारचितवृषोदरे प्रक्षिप्य हरितालेन संलिप्य वृषं प्रत्यहं पूजयेत् । स्तम्भनफलम् ॥ २५ ॥ * ॥ २६–३१ ॥

हरिताल एवं हल्दी के चूरे में धतूरे का रस मिलाकर उससे निर्मित षट्कोण में उसी से ह्लीं बीज लिखकर जिस शत्रु का स्तम्भन करना हो उसका द्वितीयान्त (अमुकं) नाम लिखकर पुनः 'स्तम्भय' लिखे । शेष मन्त्राक्षरों को भूपुर में लिखकर चारों ओर उसे भूपुर से घेर देवें । उसमें प्राण प्रतिष्ठा कर पीले धागे से उसे घेर देवें । पुनः घूमती हुई कुम्हार की चाक से मिट्टी लेकर सुन्दर बैल बनावे तथा उसके पेट में उस यन्त्र को रखकर, उस पर हरताल का लेप कर, प्रतिदिन उस बैल की पूजा करता रहे तो ऐसा करने से शत्रुओं की वाणी, गति और समस्त कार्य की परम्परा स्तम्भित हो जाती है ॥ २५-२८ ॥

बगलामुखीस्तम्भनयन्त्रम्

श्मशान स्थान स्थित किसी खपड़े को बायें हाथ में लेकर उस पर चिता के अंगार से बगलामुखी यन्त्र बनावे । पुनः बगलामुखी मन्त्र से अभिमन्त्रित कर उसे शत्रु की जमीन में

मण्डूकवदने न्यस्येत् पीतवस्त्रेण वेष्टितम्।
पूजितं पीतपुष्पैस्तद् वाचं संस्तम्भयेद् द्विषाम्॥ ३१॥
यद्भूमौ भविता दिव्यं तत्र यन्त्रं समालिखेत्।
मार्जितं तद्वृषापत्रैर्दिव्यस्तम्भनकृद् भवेत्॥ ३२॥
इन्द्रवारुणिकामूलं सप्तशो मनुमन्त्रितम्।
क्षिप्तं जले दिव्यकृतां जलस्तम्भनकारकम्॥ ३३॥
किम्भूरिणा साधकेन मन्त्रः सम्यगुपासितः।
शत्रूणां गतिबुद्ध्यादेः स्तम्भनो नात्रसंशयः॥ ३४॥

स्वप्नवाराहीजनवशकरणो मन्त्रः

उच्यते स्वप्नवाराही जनतावशकारिणी।
वेदादिबीजं माया च हृद् दीर्घौ जलपावकौ॥ ३५॥
खं सदृक्सद्ययुग्मेधारे स्वप्नं सर्गिणौ च ठौ।
कृशानुवल्लभां तोयं मन्त्रः पञ्चदशाक्षरः[1]॥ ३६॥

वृषा आटरूषकः॥ ३२–३४॥ स्वप्नवाराहीमाह – **वेदादीति** । वेदादिबीजान् ॐ । माया ह्रीं । हृत् नमः । जलं वः । पावको रः । तौ दीघौ वारा । सदृक् खं हः हि । मेधा घः । सद्ययुक् ओयुता घो । रेस्वप्नं स्वरूपम् । सर्गिणौ ठौ । ठः ठः । कृशानुवल्लभाय स्वाहा॥ ३५–३७॥

गाड़ देवे तो उसकी गति स्तम्भित हो जाती है । कफन पर चिता के अङ्गार से यन्त्र निर्माण करे । फिर उस यन्त्र को मेढक के मुख में रखकर उसे पीले कपड़े से बाँध देवे । तदनन्तर पीले पुष्पों से पूजित करे, तो शत्रुवर्ग की वाणी स्तम्भित हो जाती है॥ २८-३१॥

जो भूमि दिव्य (उत्तम देवसम्बन्धी) हो, वहाँ इस यन्त्र को लिखें, फिर वृषापत्र (अडूसे) के पत्तों से उसे मार्जित करे तो वह देवता लोगों को भी स्तम्भित कर देता है॥ ३२॥

इन्द्र वारुणी नामक लता के मूल को सात बार इस मन्त्र से अभिमन्त्रित करे और उसे किसी देवस्थान के जल में अथवा दिव्य नदी में डाल देवें तो उससे जल का स्तम्भन हो जाता है॥ ३३॥

विशेष क्या कहें साधक के द्वारा सम्यगुपासित होने पर यह मन्त्र शत्रुओं की गतिविधि एवं उनकी बुद्धि को स्तम्भित कर देता है इसमें संदेह नहीं॥ ३४॥

अब जनसमूहों को वश में करने वाली **स्वप्न वाराही का मन्त्र** कहते हैं -

वेदादि (ॐ), मायाबीज (ह्रीं), हृद् (नमः), फिर दीर्घ युक्त जल एवं

ईश्वरो जगती स्वप्नवाराही मुनिपूर्वकाः ।
तारो बीजं च ह्रल्लेखाशक्तिष्ठौ कीलकं मतम् ॥ ३७ ॥
द्विपञ्चनेत्रहस्ताक्षियुग्मार्णैरङ्गकं मनोः ।
पादलिङ्गकटी कण्ठगण्डाक्षिश्रुतिनासिके ।
विन्यस्य मन्त्रजान् वर्णांश्चिन्तयेत् परदेवताम् ॥ ३८ ॥

वर्णन्यासमाह - **पादेति** । लिङ्गे कण्ठे मूर्ध्नि एकैकः । अन्यत्र द्वौ द्वौ ॥ ३८ ॥

पावक (वारा), तदनन्तर सदृक् ख (हि), फिर सद्ययुक् मेधा (घो), फिर 'रे स्वप्नं', फिर विसर्ग सहित दो ठ (ठः ठः), इसके अन्त में कृशानुवल्लभा (स्वाहा) लगा देने से १५ अक्षरों का मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ ३५-३६ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ॐ ह्रीं नमः वाराहि घोरे स्वप्नं ठः ठः स्वाहा' (१५) ॥ ३५-३६ ॥

इस मन्त्र के ईश्वर ऋषि हैं, जगती छन्द है, स्वप्नवाराही देवता हैं, प्रणव (ॐ) बीज है, ह्रल्लेखा (ह्रीं) शक्ति है तथा ठकार द्वय कीलक है ॥ ३७ ॥

विनियोग - ॐ अस्य श्री स्वप्न वाराही मन्त्रस्य ईश्वर ऋषि हैं जगती छन्द हैं स्वप्न वाराही देवता ॐ बीजं ह्रीं शक्ति ठः ठः कीलकं स्वाभीष्ट सिद्ध्यर्थ जपे विनियोग ॥ ३७ ॥

अब **स्वप्नवारही का षडङ्गन्यास** कहते हैं - द्वि (२), पञ्च (५), नेत्र (२), हस्त (२), अक्षि (२), युग्म (२) अक्षरों से षडङ्गन्यास करना चाहिए । फिर पैर, लिङ्ग, कटि, कण्ठ, गाल, नेत्र, कान, नासिका, एवं शिर - इन १५ स्थानों में मन्त्र के प्रत्येक वर्णो का न्यास करना चाहिए, तदनन्तर महादेवी का ध्यान करना चाहिए ॥ ३८ ॥

विमर्श - षडङ्गन्यास -

ॐ ह्रीं हृदयाय नमः, ॐ नमो वाराहि शिरसे स्वाहा,
ॐ घोरे शिखायै वषट्, ॐ स्वप्नं कवचाय हुं,
ॐ ठः ठः नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ स्वाहा अस्त्राय फट् ।

अब **वर्णन्यास** की विधि कहते हैं -

ॐ नमः दक्षपादे, ह्रीं नमः वामपादे, नं नमः लिङ्गे,
मों नमः दक्षकटौ, वां नमः वामकटौ, रां नमः कण्ठे,
हिं नमः दक्षगण्डे, घों नमः वामगण्डे , रें नमः दक्षनेत्रे,
स्वं नमः वामनेत्रे, प्नं नमः दक्षकर्णे, ठः नमः वामकर्णे
ठः नमः दक्षनासायाम्, स्वां नमः वामनासायाम्,
ह्रीं नमः मूर्ध्नि ॥ ३८ ॥

ध्यानजपपीठदेवतादिपूजाकथनम्

मेघश्यामरुचिं मनोहरकुचां नेत्रत्रयोद्भासितां
कोलास्यां शशिशेखरामचलयादंष्ट्रातले शोभिनीम्।
बिभ्राणां स्वकराम्बुजैरसिलतां चर्मापि पाशं सृणिं
वाराहीमनुचिन्तयेद्धयवरारूढां शुभालंकृतिम् ॥ ३९ ॥
लक्षं जपेद् दशांशेन नीलपद्मैस्तिलैः शुभैः।
जुहुयात् पूर्वसम्प्रोक्ते पीठे सम्पूजयेदिमाम् ॥ ४० ॥
त्रिकोणे तां समाराध्य षट्कोणेष्वङ्गदेवताः।
षोडशारे यजेच्छक्तीर्वक्ष्यमाणास्तु षोडश ॥ ४१ ॥
उच्चाटनी तदीशी च शोषणी शोषणीश्वरी।
मारणी मारणीशी च भीषणी भीषणीश्वरी ॥ ४२ ॥
त्रासनी त्रासनीशी च कम्पनी कम्पनीश्वरी।
आज्ञाविवर्तिनीपश्चादाज्ञाविवर्तिनीश्वरी ॥ ४३ ॥
वस्तुजातेश्वरी चाथ सर्वसम्पादनीश्वरी।
एताः पूज्याश्चतुर्थ्यन्ताः प्रणवाद्या नमोन्विताः ॥ ४४ ॥

ध्यानमाह – **मेघेति** । कोलास्यां वराहवदनाम् । दंष्ट्रातले वर्तमानयाऽचलया वसुधया शोभिताम् । असिलतां कुशौ दक्षयोः ॥ ३९ ॥ * ॥ ४०–४६ ॥

अब **वाराही देवी का ध्यान** कहते हैं -

काले मेघ के समान श्याम वर्ण वाली, मनोहर कुचों से युक्त, अपने तीन नेत्रों से प्रदीप्त, वाराही जैसे मुख वाली, अपने मस्तक पर चन्द्रकला धारण किये हुये, पृथ्वी को अपने दाँत से धारण करने के कारण शोभा युक्त तथा हाथों में तलवार, ढाल, पाश एवं अंकुश धारण किये हुये, घोड़े पर सवार, नाना अलङ्कारों से सुशोभित इस प्रकार के वाराही का ध्यान करना चाहिए ॥ ३९ ॥

उक्त मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिए । अत्यन्त कल्याणकारी नीलपद्म मिश्रित तिलों से दशांश होम करना चाहिए तथा पूर्वोक्त पीठ पर इनका पूजन करना चाहिए ॥ ४० ॥

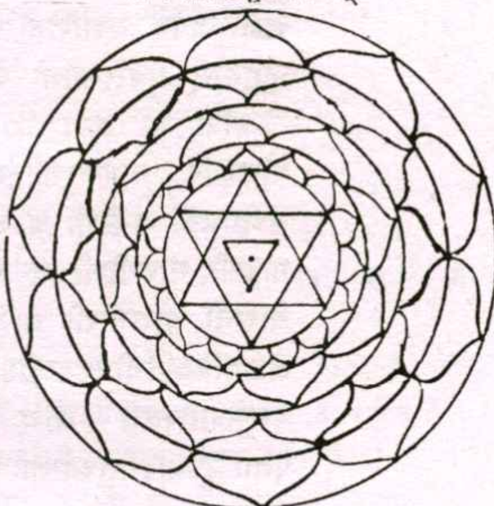
त्रिकोण में देवी की पूजा करे । फिर ६ कोणों में अङ्गपूजा करे और षोडशदलों में वक्ष्यमाण १६ शक्तियों की पूजा करनी चाहिए । १. उच्चाटनी, २. उच्चाटनीश्वरी, ३. शोषणी, ४. शोषणीश्वरी, ५. मारणी, ६. मारणीश्वरी, ७. भीषणी, ८. भीषणीश्वरी, ९. त्रासनी, १०. त्रासनीश्वरी, ११. कम्पनी, १२. कम्पनीश्वरी, १३. आज्ञाविवर्त्तिनी, १४. आज्ञाविवर्त्तिनीश्वरी, १५. वस्तुजातेश्वरी एवं १६. सर्वसंपादनीश्वरी

यन्त्रादिप्रयोगसाधनकथनम्

यजेदष्टदले पद्मे मातृभैरवसंयुताः ।
लोकपालान्दशदले द्वितीये हेतिसंयुतान् ॥ ४५॥

इन १६ शक्तियों को चतुर्थ्यन्त विभक्ति लगाकर अन्त में 'नमः' तथा आदि में प्रणव लगाकर पूजा करना चाहिए ॥ ४१-४४ ॥

स्वप्नवाराहीपूजनयन्त्रम्



अष्टदल में भैरव सहित, ८ मातृकाओं की, दश दल में इन्द्रादि दश दिक्पालों की, तथा द्वितीय दशदल में उनके आयुधों की पूजा करनी चाहिए ॥ ४५ ॥

विमर्श - पूजा प्रयोग - प्रथम १०.३६ में बताये गये स्वरूप के अनुसार देवी का ध्यान करे । मानसोपचार से उनका पूजन करे । इसके बाद शंख का अर्घ्यपात्र स्थापित कर ६. ६ में बताई गई रीति से पीठदेवता और पीठशक्तियों का पूजन कर 'ॐ ह्रीं सर्वशक्तिकमलासनायै नमः' मन्त्र से देवी को आसन रखे । पुनः मूलमन्त्र से देवी की मूर्त्ति की कल्पना कर धूपदीपादि समर्पित कर पुष्पाञ्जलि प्रदान करे । तदनन्तर उनकी आज्ञा ले यन्त्र पर आवरण पूजा प्रारम्भ करे ।

आवरण पूजा विधि - सर्वप्रथम त्रिकोण में मूलमन्त्र से देवी का पूजन करे। फिर षट्कोण में १०. ३६ में बताई गई रीति से षडङ्गन्यास करे । इसके बाद षोडशदलों में १६ शक्तियों की पूर्वादि दिशाओं के क्रम से इस प्रकार पूजा करे ।

ॐ उच्चाटन्यै नमः, ॐ उच्चाटनीश्वर्यै नमः, ॐ शोषिण्यै नमः,
ॐ शोषणीश्वर्यै नमः, ॐ मारण्यै नमः, ॐ मारणीश्वर्यै नमः,
ॐ भीषण्यै नमः, ॐ भीषणीश्वर्यै नमः, ॐ त्रासिन्यै नमः,
ॐ त्रासनीश्वर्यै नमः, ॐ कम्पिन्यै नमः, ॐ कम्पिनीश्वर्यै नमः,
ॐ आज्ञाविवर्त्तिन्यै नमः, ॐ आज्ञाविवर्त्तिनीश्वर्यै नमः,
ॐ वस्तुजातेश्वर्यै नमः, ॐ सर्वसम्पादनीश्वर्यै नमः,

फिर अष्टदलों में पूर्वादि दिशाओं के क्रम से असिताङ्गादि ८ भैरवों के साथ ब्राह्मी आदि आठ मातृकाओं की पूजा करनी चाहिए ।

ॐ असिताङ्गब्राह्मीभ्यां नमः, ॐ रुरुमाहेश्वरीभ्यां नमः,
ॐ चण्डकौमारीभ्यां नमः, ॐ क्रोधवैष्णवीभ्यां नमः,
ॐ उन्मत्तवाराहीभ्यां नमः, ॐ कपालीइन्द्राणीभ्यां नमः,
ॐ भीषणचामुण्डाभ्यां नमः, ॐ संहारमहालक्ष्मीभ्यां नमः ।

एवं सिद्धं मनुं मन्त्री काम्यकर्मणि योजयेत्।
तर्पयेन्नारिकेलोत्थैर्जलैस्तीर्थोद्भवैरपि ॥ ४६ ॥
मानयेत्तरुणीवर्गान् सर्वकामार्थसिद्धये।
कृष्णपक्षेष्टमीघस्रे भूताहे वा कृतव्रतः ॥ ४७ ॥
चतुष्पथान्नदीकूलद्वयात् कौलालवेश्मनः।
मृदमानीय धत्तूररससंयुक्तया तया ॥ ४८ ॥
रचयेत्पुत्तलीं रम्यां साध्यासुस्थापनान्विताम्।
ततः प्रेताम्बरे यन्त्रं नृकाकाजासृजा लिखेत् ॥ ४९ ॥
चिताङ्गारयुजायोनिं षट्कोणं भूपुरान्वितम्।
तदन्तमन्त्रमालिख्य वेष्टयेन्मनुनामुना ॥ ५० ॥
साध्यमुच्चाटययुगं शोषयद्वितयं ततः।
मारयद्वितयं चाथ भीषयद्वितयं ततः ॥ ५१ ॥

कृष्ण पक्ष इत्यारभ्य वशगा ध्रुवमित्यन्त एको वश्यार्थं प्रयोगः ॥ ४७–४८ ॥ नृकाकाजानां नरवायसमेषाणामसृजा रुधिरेण ॥ ४९–५० ॥ वेष्टनमन्त्रमाह – **साध्यमिति** ॥ ५१ ॥

तदनन्तर दश दलों में पूर्वादि दिशाओं के क्रम से इन्द्रादि दश दिक्पालों को तथा द्वितीय दश दलों में उनके वज्रादि आयुधों की पूर्ववत् पूजा करे (द्र० १०. १२) इस प्रकार आवरण पूजा कर धूपदीपादि समस्त उपचारों से देवी का पूजन कर पुरश्चरण विधि से जप करे । पुरश्चरण हो जाने पर मन्त्र सिद्ध हो जाता है । तदनन्तर काम्य प्रयोग करना चाहिए ॥ ४१-४५ ॥

मन्त्र सिद्ध हो जाने पर साधक अपनी सभी कामनाओं एवं मनोरथ की सफलता के लिए नारियल के जल अथवा तीर्थोदक से इस मन्त्र द्वारा देवी का तर्पण करे और तरुणीजनों का सम्मान करे ॥ ४६-४७ ॥

अब इस मन्त्र का **काम्य प्रयोग** कहते हैं - साधक कृष्णपक्ष की अष्टमी अथवा चतुर्दशी को व्रत रहकर चौराहे से नदी के दोनों किनारों से और कुम्भकार के घर से मिट्टी लावें । उसमें धतूरे का रस मिलाकर उसी से साध्य (जिसे वश में करना हो उस) की पुतली बनावें और उसमें प्राणप्रतिष्ठा करे । फिर कफन पर नर काक ओर मेष के खून से एवं चिता के अङ्गार से योनि (त्रिकोण), फिर षट्कोण तदनन्तर भूपुर युक्त मन्त्र बनावें । उसके बीच में स्वप्नवाराही का मन्त्र लिखकर उस भूपुर युक्त यन्त्र को ७७ अक्षरों वाले इस मन्त्र से वेष्टित करे ॥ ४७-५० ॥

'साध्य (नाम), उच्चाटय उच्चाटय, शोषय शोषय, मारय मारय, भीषय भीषय, नाशय नाशय के बाद, फिर 'स्वाहा' और 'कम्पय कम्पय' फिर 'ममाज्ञावर्त्तिनं' के बाद

नाशयद्वितयं पश्चाच्छिरःकम्पय युग्मकम् ।
ममाज्ञावर्तिनं पश्चात् कुरु सर्वाभिमार्णकाः ॥ ५२ ॥
तवस्तुजातं शब्दान्ते सम्पादययुगं ततः ।
सर्वं कुरु युगं स्वाहा मुनिसप्ताक्षरो मनुः ॥ ५३ ॥
अनेन वेष्टितं यन्त्रं कृतं देवीप्रतिष्ठितम् ।
पुत्तल्या हृदि विन्यस्य यजेत्तामुक्तमार्गतः ॥ ५४ ॥
तदग्रे प्रजपेन् मन्त्रं रात्रावेकान्तमाश्रितः ।
सहस्रं साष्टकं भूयः पूजयेत्तां समाहितः ॥ ५५ ॥
एवं कृते नरा नार्यो राजानो राजवल्लभाः ।
सिंहागजामृगाः क्रूरा भवेयुर्वशगा ध्रुवम् ॥ ५५ ॥
चित्ते ध्यात्वा निजं कार्यं शयीत विजने व्रती ।
यथा भावि तथा देवी स्वप्ने वदति मन्त्रिणे ॥ ५६ ॥

शिरः स्वाहा । स्पष्टमन्यत् ॥ ५२ ॥ मुनि सप्ताक्षरः सप्तसप्तत्यर्णः ॥ ५३ ॥ उक्तमार्गतः पूर्वोक्तविधिना ॥ ५४ ॥ * ॥ ५५–५७ ॥

'कुरु', फिर 'सर्वाभिम' तथा 'तवस्तु जातं', फिर 'संपादय संपादय' के बाद 'सर्वं कुरु कुरु', तथा अन्त में 'स्वाहा' लगाने से ७७ अक्षरों का मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ ५१-५३॥

विमर्श – मन्त्र का स्वरूप – 'साध्य (नाम देवदत्त), उच्चाटय उच्चाटय शोषय शोषय मारय मारय भीषय भीषय नाशय नाशय स्वाहा कम्पय कम्पय ममाज्ञावर्त्तिनं कुरु सर्वाभिमतवस्तु जातं संपादय संपादय सर्वं कुरु कुरु स्वाहा' (७७) ॥ ५१-५३ ॥

इस मन्त्र से वेष्टित यन्त्र में देवी की प्राण प्रतिष्ठा कर यन्त्र को पुत्तली के हृदय में रखकर, पूर्वोक्त विधि से आवरण पूजा करे । तदनन्तर रात्रि के समय किसी एकान्तस्थान में उसे अपने आगे रखकर उक्त मन्त्र का एक हजार आठ जप करे। जप के पश्चात् एकाग्रचित्त हो पुनः पुत्तली का पूजन करे तो नर एवं नारियाँ, राजा, राजा के प्रियजन, सिंह, हाथी मृगादि क्रूर जन्तु भी निश्चित रूप से उसके वश में हो जाते हैं ॥ ५४-५६ ॥

स्वप्नवाराहीवशीकरणयन्त्रम्

ॐ ह्रीं नमो
वाराही घोरे स्वप्नं
ठः ठः
स्वाहा

सिद्धिप्रदमहायन्त्रकथनम्

अथैतस्या महायन्त्रं प्रवक्ष्ये सिद्धिदं नृणाम् ।
कृत्वा त्रिकोणं षट्कोणं षोडशारं वसुच्छदम् ॥ ५८ ॥
दशारद्वितयं पञ्चदशास्रं भूपुरद्वयम् ।
त्रिकोणे कामबीजस्थं वाग्भवं विलिखेत् पुनः ॥ ५६ ॥
षट्सु कोणेषु वाग्बीजं पाशं मायां सृणिश्रियम् ।
दीर्घं च कवचं पश्चाद्विलिखेत् षोडशच्छदे ॥ ६० ॥
शक्तीः षोडशपूर्वोक्ता ब्रह्मयाद्या अष्टपत्रके ।
भैरवैः संयुतान्न्यस्येद् दशारे दिक्पतीन्क्रमात् ॥ ६१ ॥

दिक्पालानां बीजानि

स्वस्वबीजादिकान् बीजसमूहः कथ्यतेऽधुना ।
मांसं रक्तं विषं मेरुर्जलं वायुर्भृगुर्वियत् ॥ ६२ ॥
एतानि शशियुक्तानि पाशो मायान्तिमा मता ।
वज्राद्यान्विलिखेत् सम्यक्पंक्तिपत्रे द्वितीयके ॥ ६३ ॥

यन्त्रमाह – **कृत्वेति** ॥ ५८ ॥ काम क्लीं । वाग्भवम् ऐं ॥ ५६ ॥ पाशम् आं । मायां ह्रीं । सृणिं क्रों । श्रियं श्रीं दीर्घकवचं हूं ॥ ६० ॥ पूर्वोक्ता उच्चाटनाद्याः ॥ ६१ ॥ दिक्पालबीजान्याह – **मांसमिति** । मांसं लः । रक्तं रः । विषं मः । मेरुः क्षः । जलं वः । वायुर्यः भृगुः सः । वियत् हः ॥ ६२ ॥ एतानि शशियुक्तानि बिन्दुयुतानि । पाशः आं । अन्तिमा चरमा माया ह्रीं ॥ ६३ ॥

चित्त में अपने काम का ध्यान कर साधक व्रत रहकर किसी एकान्त निर्जन स्थान में सो रहे तो देवी स्वप्न में साधक के भावी कार्य के विषय में बता देती हैं ॥ ५७ ॥

अब मनुष्यों को सिद्धि देने वाले **स्वप्नवाराही का एक महायन्त्र** कहता हूँ -

त्रिकोण, षट्कोण, षोडशदल, अष्टदल, फिर दो दशदल, फिर पञ्चदशदल बनाकर, उसके बाद दो भूपुर बनाना चाहिए । त्रिकोण के प्रत्येक कोण में काम बीजयुक्त बाग्बीज लिखें । षट्कोणों में क्रमशः वाग्बीज (ऐं), पाश (आं), माया (ह्रीं), सृणि (क्रों), श्री (श्रीं), एवं दीर्घकवच (हूँ) लिखना चाहिए । षोडशदलों में पूर्वोक्त (१०. ४१-४३) उच्चाटनी आदि शक्तियों को तथा अष्टदल में अष्टभैरवों सहित अष्टमातृकाओं को (द्र० १०. ८) दशदल में यथाक्रम अपने अपने बीजों के साथ दिक्पालों को लिखना चाहिए ॥ ५८-६१ ॥

अब **दश दिक्पालों के बीज** समूहों को कहते हैं - १. बिन्दु युक्त मांस (लं), २. रक्त (रं), ३. विष (मं), ४. मेरु (क्षं), ५. जल (वं), ६. वायु (यं), ७. भृगु (सं), ८. वियत् (हं), ६. पाश (आं) तथा १०. माया (ह्रीं) ॥ ६२-६३ ॥

तिथिपत्रे मूलवर्णान्गायत्र्यर्णैः प्रवेष्टयेत् ।
वाय्वग्नी विलिखेद् भूमिं मन्दिरद्वितयास्रिषु ॥ ६४ ॥
भूर्जादौ यन्त्रमालिख्य जपं सम्पातसाधितम् ।
बाह्वादौ विधृतं दद्यान्नृणां कीर्तिं धनं सुखम् ॥ ६५ ॥
बहुना किमिहोक्तेन वाराहीष्टं प्रयच्छति ।

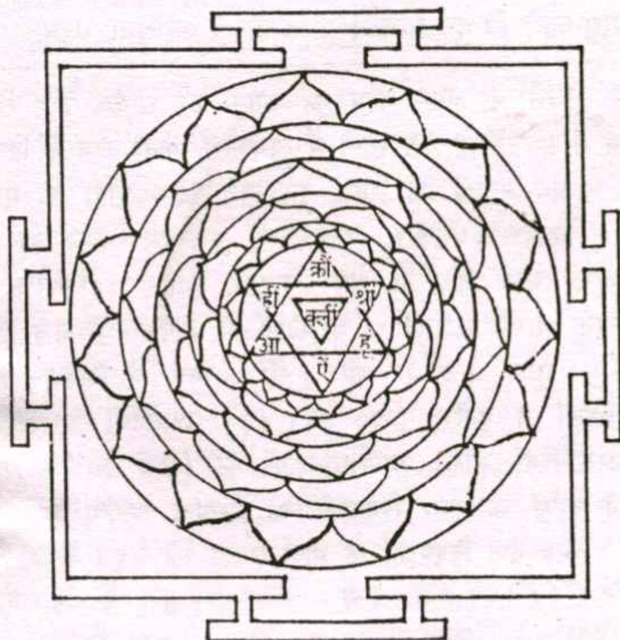
वार्तालीमन्त्रः

वाग्बीजपुटिताभूमिर्नमोन्ते भगवत्यथ ॥ ६६ ॥
वार्तालिवारा गगनं सदृग्वाराहिवा पदम् ।
राहमुखि ततो बीजत्रयं पूर्वोदितं वदेत् ॥ ६७ ॥
अन्धेअन्धिनि हृदयं रुन्धेरुन्धिनि हृत्तथा ।
जम्भेजम्भिनि हृत् पश्चान्मोहेमोहिनि हृत् पुनः ॥ ६८ ॥

तिथिपत्रे पञ्चदशदले । गायत्र्यर्णैर्वैदिकगायत्रींवर्णैः । **भूमिमिति** । चतुरस्रद्वयकोणेषु वाय्वग्नी यरेफौ लिखेत् ॥ ६४–६५ ॥ वार्तालीमाह – **वागिति** । भूमिः ग्लौं । सा वाग्बीजेन पुटिता तन्मध्यस्थ ऐं ग्लौं ऐमिति ॥ ६६ ॥ सदृक् गगनाह पूर्वोदितं बीजत्त्रयम् । ऐं ग्लौं ऐंमिति ॥ ६७ ॥ हृदयं नमः । हृन्नमः ॥ ६८ ॥

फिर द्वितीय दल में विधिवत् वज्रादि आयुधों को लिखना चाहिए । तदनन्तर पञ्चदशदल में मूलमन्त्र के वर्णों को गायत्री वर्णों के साथ, दोनों भूपुर के कोणों में वायु (यं) और अग्नि (रं) लिखना चाहिए। यह यन्त्र होमावशिष्ट संस्रव घृत से भोज-पत्रादि पर लिखकर मूलमन्त्र का जप कर भुजा आदि में धारण करने से मनुष्यों को कीर्त्ति, धन एवं सुख प्राप्त होता हैं । विशेष क्या कहें इस प्रकार से उपासना

स्वप्नवाराहीधारणयन्त्रम्



स्तम्भेस्तम्भिनि हार्दान्ते पुनर्बीजत्रयं वदेत्।
सर्वदुष्टप्रदुष्टानां सर्वेषां सर्ववाक्पदम्॥ ६९॥
चित्तचक्षुर्मुखगतिजिह्वास्तम्भं कुरुद्वयम्।
शीघ्रं वश्यं कुरुद्वन्द्वं त्रिबीजीठचतुष्टयम्॥ ७०॥
सर्गाढ्यं वर्मफट् स्वाहा वेदरुद्राक्षरो मनुः।
प्रणवादिर्मुनिश्छन्दः शिवोऽतिजगती तथा॥ ७१॥
वार्तालीदेवता प्रोक्ता वार्तालीहृदयं स्मृतम्।
वाराहीति शिरः प्रोक्तं शिखावाराहमुख्यपि॥ ७२॥
अन्धेअन्धिनि वर्मोक्तं रुन्धेरुन्धिनि नेत्रकम्।
जम्भेजम्भिनि चास्त्रं स्यात्ततो ध्यायेत्तु देवताम्॥ ७३॥

हार्द नमः । बीजत्रयं ऐं ग्लौं ऐमिति ॥ ६९ ॥ त्रिबीजी ऐं ग्लौं ऐमिति । सर्गाढ्यं ठचतुष्टयं ठः ठः ठः ठः॥ ७०॥ वेदरुद्राक्षरः चतुर्दशोत्तरशतार्णः॥ ७१–७३॥

करने पर वाराही देवी साधक को मनोवाञ्छित फल देती हैं॥ ६३-६६॥

अब **वार्त्ताली मन्त्र का उद्धार** कहते हैं - वाग्बीज पुटित भूमि (ऐं ग्लौं ऐं), फिर 'नमो' के बाद, 'भगवति वार्त्तालिवारा', उसके बाद सदृग् गगन (हि), फिर 'वाराहि वाराहमुखि', फिर पूर्वोक्त बीजत्रय (ऐं ग्लौ ऐं), फिर 'अन्धे अन्धिनि' और हृत् (नमः), उसके बाद 'रुन्धे रुन्धिनि' एवं हृत् (नमः), फिर 'जम्भे जम्भिनि' हृत (नमः), फिर 'मोहे मोहिनि', हृत् (नमः), फिर 'स्तम्भे स्तम्भिनि' एवं 'हृत् (नमः) फिर बीज त्रय (ऐं ग्लौं ऐं) तदनन्तर 'सर्वदुष्टप्रदुष्टानां सर्वेषां सर्ववाक्चित्तचक्षुर्मुख-गतिजिह्वां स्तम्भं' फिर कुरु द्वय (कुरु कुरु), फिर 'शीघ्र वश्यं', कुरु द्वय (कुरु कुरु), फिर पूर्वोक्त त्रिबीज (ऐं ग्लौं ऐं), फिर 'सर्गाढ्य ठ चतुष्टय (ठः ठः ठः ठः), वर्म (हुं), एवं अन्त में फट् (स्वाहा), तथा प्रारम्भ में ॐ लगाने से ११४ अक्षरों का वार्त्ताली मन्त्र निष्पन्न होता है । इस मन्त्र के शिव ऋषि हैं, अतिजगती छन्द है तथा वार्त्ताली देवता कही गई हैं॥ ६६-७२॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ॐ ऐं ग्लौं ऐं नमो भगवति वार्त्तालि वाराहि वाराहि वाराहिमुखि, ऐं ग्लौं ऐं अन्धे अन्धिनि नमो रुन्धे रुन्धिनि नमो जम्भे जम्भिनि नमः, मोहे मोहिनि नमः, स्तम्भे स्तम्भिनि नमः, ऐं ग्लौं ऐं सर्वदुष्टप्रदुष्टानां सर्वेषां सर्ववाक्चित्तचक्षुर्मुखगतिजिह्वां स्तम्भं कुरु कुरु शीघ्रवश्यं कुरु कुरु ऐं ग्लौं ऐं ठः ठः ठः ठः हुं फट् स्वाहा॥ ६६-७२॥

वार्त्ताली से हृदय, वाराहि से शिर, वाराहमुखि से शिखा, अन्धे अन्धिनि से कवच, रुन्धे रुन्धिनि से नेत्र तथा जम्भे जम्भिनि से अस्त्र - इस प्रकार षडङ्गन्यास कहा गया है । इसके बाद वार्ताली देवता का ध्यान करना चाहिए॥ ७२-७३॥

विमर्श - विनियोग - ॐ अस्य श्रीवार्त्तालीमन्त्रस्य शिवऋषिरतिजगतीछन्दः

ध्यानजपपीठदेवतापूजादिकथनम्

रक्ताम्भोरुहकर्णिकोपरिगते शावासने संस्थितां
मुण्डस्रक्परिराजमानहृदयां नीलाश्मसद्रोचिषम् ।
हस्ताब्जैर्मुसलं हलाभयवरान्सम्बिभ्रतीं सत्कुचां
वार्तालीमरुणाम्बरां त्रिनयनां वन्दे वराहाननाम् ॥ ७४ ॥

तत्सप्तदशसाहस्रं प्रजपेत्तद्दशांशतः ।
तिलैर्बन्धूककुसुमैर्जुहुयान्मधुरान्वितैः ॥ ७५ ॥
पूजायन्त्रमथो वक्ष्ये जपादिनवशक्तिकम् ।
स्वर्णे रूप्ये तथा ताम्रे भूर्जपत्रेऽथ दारुणि ॥ ७६ ॥
लिखेद् गोरोचनारात्रिचन्दनागुरुकुंकुमैः ।
योनिपञ्चास्रषट्कोणाष्टपत्रशतपत्रकम् ॥ ७७ ॥
सहस्रदलभूबिम्बसंवीतद्वारसंयुतम् ।
कैलासाचलमध्यस्थं पीठमेतद्विचिन्तयेत् ॥ ७८ ॥

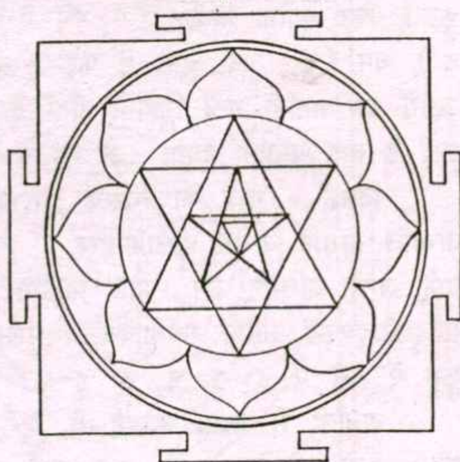
ध्यानमाह – **रक्तेति** । मुसलवरौ दक्षयोः ॥ ७४ ॥ *॥ ७५–७६ ॥ रात्रिर्हरिद्रा। पूजायन्त्रमाह – **योनीति** । योनिस्त्रिकोणम् ॥ ७७ ॥ भूबिम्बं चतुरस्रम् ॥ ७८ ॥

वार्त्तालीदेवता ममाखिलकार्यसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ॥ ७२-७३ ॥

अब **वार्त्ताली का ध्यान** कहते हैं -

लाल कमल की कर्णिका पर स्थित शवासन पर विराजमान, हृदय में मुण्डमाला धारण किये हुये, नीलमणि के समान कान्तिमती, अपने करकमलों में मुशल, हल, अभय एवं वरदमुद्रा धारण किये हुए, सुन्दर स्तनों से युक्त, त्रिनेत्रा, लालवणं का वस्त्र धारण किये हुये, वाराहमुखी भगवती वार्त्ताली की मैं वन्दना करता हूँ ॥ ७४ ॥

वार्तालीपूजनयन्त्रम्



उक्त मन्त्र का सत्रह हजार जप करना चाहिए । मधुरत्रय (मधु, शर्करा और घृत) से मिश्रित तिल एवं बन्धूक पुष्पों से उसका दशांश होम करना चाहिए ॥ ७५ ॥

अब **वार्त्ताली पूजा यन्त्र** कहते हैं - सुवर्ण, चाँदी, ताँबा भोजपत्र अथवा लकड़ी पर गोरोचन, हल्दी, लालचन्दन, अगुरु एवं कुंकुम से योनि (त्रिकोण),

तत्रावाह्य यजेद् देवीमुपचारैर्मनोहरैः ।
त्रिकोणमध्ये देवेशीं यदग्न्यादिषु चाङ्गकम् ॥ ७६ ॥
वार्त्ताली चापि वाराही पूज्या वाराह मुख्यपि ।
त्रिकोणेष्वथ पञ्चास्रेष्वन्धिनी रुन्धिनी तथा ॥ ८० ॥
जम्भिनीमोहिनी चापि स्तम्भिनीज्या तु पञ्चमी ।
षट्कोणेषु पुनः पूज्या डाकिनी राकिनी तथा ॥ ८१ ॥
लाकिनी काकिनी चापि शाकिनी हाकिनी पुनः ।
षट्कोणपार्श्वयोः पूज्यं स्तम्भिनीक्रोधिनीद्वयम् ॥ ८२ ॥
मुसलेष्टवरौ त्वाद्या कपालहलभृत्परा ।
षट्कोणाग्रे यजेच्चण्डोच्चण्डं तस्याः सुतोत्तमम् ॥ ८३ ॥
शूलं नागं च डमरुं कपालं दधतं करैः ।
इन्द्रनीलनिभं नग्नं जटाभारविराजितम् ॥ ८४ ॥

तदग्न्यादिषु तस्यारेव्या अग्न्यादिषु अग्निनिर्ऋतिवाय्वीशानाग्निदिशासु । अङ्गकं षडङ्गानि । यजेदिति पूर्वेणान्वयः ॥ ७६ ॥ * ॥ ८०–८२ ॥ स्तम्भिनीध्याने इष्टोवरो दक्षे मुसलं वामे । परा क्रोधिनी । कपालहलभृत् कपालं दक्षे । देवीसुताय चण्डोच्चण्डाय नम इति सुत पूजा ॥ ८३ ॥ सुतध्यानमाह – **शूलमिति** । डमरुकपाले दक्षयोः । शूलनागौ वामयोः ॥ ८४ ॥

पञ्चकोण, षट्कोण, अष्टदल, शतदल सहस्रदल तथा चारद्वारों वाले भूपुर से युक्त 'जपादि-नवशक्तिक-यन्त्र' का निर्माण करना चाहिए ॥ ७६-७८ ॥

कैलाशपर्वत के मध्य में स्थित पीठ का ध्यान करना चाहिए तथा उक्त पीठ पर देवी का मनोहर उपचारों से पूजन करना चाहिए ॥ ७८-७६ ॥

अब **आवरण पूजा** कहते हैं – **त्रिकोण के** मध्य बिन्दु में देवेशी की पूजा, ईशान पूर्व के मध्य में कर उनके अग्न्यादि कोणों में अङ्गपूजा करनी चाहिए । त्रिकोण के तीनों आग्नेय, नैर्ऋत्य, नैऋत्य-पश्चिम के मध्य वायव्य-ईशान कोणों में क्रमशः वार्त्ताली, वाराही एवं वाराहमुखी का पूजन करना चाहिए ॥ ७६-८० ॥

इसके बाद **पञ्चकोणों में** १. अन्धिनी, २. रुन्धिनी, ३. जम्भिनी, ४. मोहिनी एवं ५. स्तम्भिनी का, फिर **षट्कोण में** १. डाकिनी, २. राकिनी, ३. लाकिनी, ४. काकिनी ५. शाकिनी एवं ६. हाकिनी का, फिर षट्कोण के दोनों ओर स्तम्भिनी एवं क्रोधिनी का पूजन करना चाहिए ॥ ८०-८२ ॥

स्तम्भिनी के दोनों हाथों में क्रमशः मुशल एवं वर है तथा क्रोधिनी के दोनों हाथों में कपाल एवं हल हैं, षट्कोण के अग्रभाग में देवी के उत्तम पुत्र, चण्ड और उच्चण्ड का पूजन करना चाहिए, जिनके हाथों में शूल, नाग, डमरु एवं कपाल हैं,

अष्टपत्रेषु वार्तालीमुखं देव्यष्टकं यजेत्।
शतपत्रेषु सम्पूज्या रुद्रार्का वसवोऽश्विनौ ॥ ८५॥
त्रिरेकैकोन्त्यपत्रे तु जम्भिनीस्तम्भिनीयुता।
शतकोणाग्रतः पूज्यः सिंहोमहिषसंयुतः ॥ ८६॥

वाराहीमन्त्रकथनम्

सहस्रपत्रे वाराहीं पूजयेत्तु सहस्रशः।
अंकुशो ङेन्त वाराही नमोन्तस्तन्मनुः स्मृतः ॥ ८७॥
भूपुरद्वारदेशे तु बटुकं क्षेत्रपालकम्।
योगिनीं गणनाथं च तत्तन्मन्त्रैः प्रपूजयेत् ॥ ८८॥
फान्तः सबिन्दुर्बटुको ङेन्तो हृत् सप्तवर्णकः।
मेरुः शशियुतः क्षेत्रपालाय नमसान्वितः ॥ ८९॥

वार्तालीमुखं वार्ताल्यादि । देव्यष्टकमनन्तरोक्तं वार्ताली वाराही वाराहमुख्यंधिनीरुन्धिनीजम्भिनी मोहिनी स्तम्भिनीसंज्ञकम् । रुद्राः एकादश वीरभद्रादयः । अर्काः द्वादशः धात्रादयः । वसवोऽष्टौ धरादयः । अश्विनौ नासत्यदस्रौ ॥ ८५ ॥ एकैकःपत्रत्रिके पूज्यः । एवं नवनवतिः । चरमपत्रे तु जम्भिनीस्तम्भिनीभ्यां नम इति ॥ ८६ ॥ वाराहीमन्त्रमाह – **अंकुश** इति । क्रों वाराह्यै नमः इति मन्त्रेण सहस्रवारं वाराहीमेव पूजयेत् ॥ ८७ ॥ * ॥ ८८ ॥ बटुकमन्त्रमाह – **फान्त** इति । फान्तो बः । बं बटुकाय नम इति । क्षेत्रपालमन्त्रमाह – **मेरुरिति** । मेरुः क्षः । क्षं क्षेत्रपालाय नमः इति ॥ ८९ ॥

जिनके शरीर की आभा नीलमणि जैसी है ये विवस्त्र तथा जटामण्डित हैं, इस प्रकार के चण्डोच्चण्ड का ध्यान कर उनका पूजन करना चाहिए ॥ ८३-८४ ॥

अष्टदल में वार्त्ताली आदि (वार्त्ताली, वाराही, वाराहमुखी, अन्धिनी, रुन्धिनी, जम्भिनी, मोहिनी एवं स्तम्भिनी) ८ देवियों का पूजन करना चाहिए । पुनः शतदल में वीरभद्रादि एकादश एवं धात्रादि द्वादश, वसु अष्ट, सत्य एवं दस्र इन ३३ देवताओं का तीन-तीन पत्रों पर एक-एक देवता के क्रम से, इस प्रकार ९९ देवों का पूजन करे । शेष अन्तिम एक पत्र पर जम्भिनी एवं स्तम्भिनी का एक साथ पूजन करना चाहिए । शतकोण के अग्रभाग में महिष युक्त सिंह का पूजन करना चाहिए ॥ ८५-८६ ॥

सहस्रदल में वाराहीमन्त्र से एक हजार बार वाराही देवी का पूजन करना चाहिए । अंकुश (क्रों), चतुर्थ्यन्त वाराही (वाराह्यै) एवं अन्त में 'नमः' लगाने पर 'क्रों वाराह्यै नमः' ऐसा वाराही मन्त्र पूजन के लिए बतलाया गया है ॥ ८७॥

भूपुर के चारों द्वारों पर बटुक, क्षेत्रपाल, योगिनी एवं गणपति का उनके मन्त्रों से पूजन करना चाहिए ॥ ८८ ॥

योगिनीगणेशादीनां मन्त्राः

अष्टार्णः शेषयुग्वायुः सचन्द्रो योगिनीपदम्।
भ्यो नमोन्तः सप्तवर्णः खान्तश्चन्द्रान्वितो गण ॥ ६० ॥
पतयेह्रच्चाष्टवर्णाः प्रोक्तास्ते मनवः क्रमात्।
दिक्पालानायुधैर्युक्तान्दिक्षु सम्पूजयेत्ततः ॥ ६१ ॥

योगिनीमन्त्रमाह – **अष्टार्ण** इति । वायुर्यः शेषयुक् आयुतः सचेन्द्रो बिन्दुयुतश्च यां योगिनीभ्यो नम इति । गणेशमन्त्रमाह – **खान्त** इति । खान्तो गः । गं गणपतये नम इति ॥ ६०–६१ ॥ * ॥ ६२ ॥

---

१. सबिन्दु फान्त (बं), फिर बटुक का चतुर्थ्यन्त 'बटुकाय', फिर 'नमः', इस प्रकार 'बं बटुकाय नमः' यह ७ अक्षरों का बटुक मन्त्र बनता है ॥ ८६ ॥

२. शशि सहित मेरु (क्षं), फिर 'क्षेत्रपालाय नमः' इन आठ अक्षरों का क्षेत्रपाल पूजन मन्त्र बनता है ॥ ८६-६० ॥

३. सचन्द्र शेषयुक् वायु (यां), फिर 'योगिनीभ्यो नमः' इन ७ अक्षरों का योगिनी पूजन मन्त्र कहा गया है ॥ ६० ॥

४. चन्द्रान्वित खान्त (गं), फिर 'गणपतये' फिर हृद् (नमः), इस प्रकार 'गं गणपतये नमः' - कुल ८ अक्षरों का गणपति मन्त्र उनकी पूजा में प्रयुक्त होता है ॥ ६०-६१ ॥

इसके बाद आयुध युक्त दिक्पालों का अपनी अपनी दिशाओं में पूजन करना चाहिए ॥ ६१ ॥

विमर्श - आवरण पूजा - सर्वप्रथम त्रिकोण के मध्य में मूलमन्त्र से वार्त्ताली का पूजन कर आग्नेय, नैर्ऋत्य, पश्चिम नैर्ऋत्य के मध्य, वायव्य, ईशान तथा पूर्वेशान के मध्य इन छः कोणों में क्रमशः षडङ्गन्यास कर पूजन करे । यथा -

वार्त्ताली हृदयाय नमः, वाराही शिरसे स्वाहा,
वाराहमुखी शिखायै वषट्, अन्धेअन्धिनि कवचाय हुम्,
रुन्धे रुन्धिनि नेत्रत्रयाय वौषट्, जम्भे जम्भिनि अस्त्राय फट् ।

इसके बाद **त्रिकोण** के एक-एक कोणों में क्रमशः -

ॐ वार्त्ताल्यै नमः, ॐ वाराह्यै नमः, ॐ वाराहमुख्यै नमः ।

तत्पश्चात् **पञ्चकोणों** में अग्नि आदि का उनके नाम मन्त्र से क्रमशः -

ॐ अन्धिन्यै नमः, ॐ रुन्धिन्यै नमः, ॐ जम्भिन्यै नमः,
ॐ मोहिन्यै नमः, ॐ स्ताम्भिन्यै नमः ।

फिर **षट्कोण** में डाकिनी आदि का नाम मन्त्र से क्रमशः -

ॐ डाकिन्यै नमः, ॐ शाकिन्यै नमः, ॐ लाकिन्यै नमः,
ॐ काकिन्यै नमः, ॐ राकिन्यै नमः, ॐ हाकिन्यै नमः ।

पूजान्ते बटुकादिभ्यो बलिमन्त्रैर्बलिं हरेत् ।
बलिदानोचिता मन्त्राः कीर्त्यन्तेऽखिलसिद्धिदाः ॥ ६२ ॥

बटुकस्य बलिमन्त्रः

एह्येहीतिपदं प्रोच्य देवी पुत्रेति कीर्तयेत् ।
बटुकान्ते नाथकपिलजटाभारभासुरः ॥ ६३ ॥
त्रिनेत्रज्वालाशब्दान्ते मुखसर्वजलं सदृक् ।
घ्नान्नाशययुगं सर्वोपचारसहितं बलिम् ॥ ६४ ॥

बटुकस्य बलिमन्त्रमाह – **एहीति** ॥ ६३ ॥ सदृक् जलमियुतो वः । वि ॥ ६४ ॥

तदनन्तर **षट्कोण** के दोनों ओर स्तम्भिनी और क्रोधनी का तथा **षट्कोण** के अग्रभाग में देवी के पुत्र चण्ड और उच्चण्ड का नाम मन्त्र से पूजन करे ।

यथा – ॐ स्ताम्भिन्यै नमः दक्षपार्श्वे, ॐ क्रोधिन्यै नमः वामपार्श्वे,
ॐ चण्डोच्चण्डाय देवीपुत्रस्य नमः अग्रे,

इसके बाद अष्टदल में वार्त्ताली आदि ८ देवियों का पूर्वादिदलों में नाम मन्त्र से

ॐ वार्त्ताल्यै नमः, ॐ वाराह्यै नमः, ॐ वाराहमुख्यै नमः,
ॐ अन्धिन्यै नमः, ॐ रुन्धिन्यै नमः, ॐ जम्भिन्यै नमः,
ॐ मोहिन्यै नमः, ॐ स्तम्भिन्यै नमः,

फिर शतदल में वीरभद्र आदि एकादशा रुद्रों का, धात्रादि द्वादशादित्यों का, धर आदि आठ वसुओं का, दस्र एवं नासत्य आदि दो अश्विनी कुमारों का, कुल ३३ देवताओं का ९९ पत्रों पर एक एक का तीन पत्रों के क्रम से पूजन कर अन्तिम पत्र पर 'जम्भिनीस्तम्भिनीभ्यां नमः' से जम्भिनी एवं स्तम्भिनी का पूजन करे । शतकोण के अग्रभाग में महिष युक्त सिंह का पूजन करना चाहिए ।

तदनन्तर भूपुर के चारों द्वारों पर पूर्वादिक्रम से बटुक आदि का -

बं बटुकाय नमः, क्षं क्षेत्रपालाय नमः,
यां योगिनीभ्यो नमः, गं गणपतये नमः,

से पूजन करना चाहिए । फिर १०. ४५ में कहे गये मन्त्रों से भूपुर के बाहर अपनी अपनी दिशाओं में दिक्पालों का तथा उनके भी बाहर उनके वज्रादि आयुधों की पूजा करनी चाहिए ॥ ८८-९१ ॥

इस प्रकार आवरण पूजा कर लेने के बाद बटुक आदि को उनके बलिदान मन्त्रों से सर्वसिद्धिदायक बलिदान देना चाहिए ॥ ९२ ॥

अब **बलिदान का मन्त्र** कहते हैं -

'एह्येहि', यह पद कहकर 'देवीपुत्र' कहें, फिर 'बटुक' एवं 'नाथकपिलजटाभारभासुरत्रिनेत्रज्वाला', फिर 'मुखसर्व', फिर सदृक् जल (वि), फिर

गृह्णयुग्मं वह्निपत्नीशरपञ्चाक्षरो मनुः।
बटुकस्य बलिं दद्यादनेन श्रद्धयान्वितः॥ ६५॥

क्षेत्रपालबलिमन्त्रकथनम्

मेरुः षड्दीर्घयुग्वर्मस्थानक्षेत्रपदं वदेत्।
पालेशसर्वकामं च पूरयानलवल्लभा॥ ६६॥
त्रयोविंशतिवर्णाढ्यः क्षेत्रपालमनुर्मतः।
योगिनीनामथो मन्त्रः पद्यरूपः प्रपठ्यते॥ ६७॥

योगिनीगणेशादीनां बलिमन्त्रकथनम्

ऊर्ध्वब्रह्माण्डतो वा दिविगगनतले भूतले निष्कले वा
पाताले वातले वा सलिलपवनयोर्यत्र कुत्र स्थिता वा।
क्षेत्रे पीठोपपीठादिषु च कृतपदाधूपदीपादिकेन
प्रीता देव्याः सदानः शुभबलिविधिना पान्तु वीरेन्द्रवन्द्याः॥ ६८॥

वह्निपत्नी स्वाहा। स्वरूपमपरम्। शरपञ्चाक्षरः पञ्चपञ्चाशदर्णः। यथा – ऐह्येहि देवीपुत्र बटुकनाथ कपिलजटाभारभासुर – त्रिनेत्रज्वालामुखसर्वविघ्नान्नाशय नाशय सर्वोपचारसहितं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहेति॥ ६५॥ क्षेत्रपालबलिमन्त्रमाह – **मेरुरिति**। मेरुः क्षः। षड् दीर्घयुक् क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः हुंस्थान क्षेत्रपालेशसर्वकामपूरय स्वाहेति॥ ६६–६७॥ योगिनीबलिमन्त्रमाह – **ऊर्ध्वमित्यादि**॥ ६८॥

'घ्नान्', फिर 'नाशय' पद दो बार (नाशय नाशय), फिर 'सर्वोपचारसहितं बलिं', फिर 'गृह्ण द्वय' (गृह्ण गृह्ण), अन्त में वह्निपत्नी (स्वाहा) का उच्चारण करने से यह पचपन अक्षरों का बटुक मन्त्र बनता है। इस मन्त्र से श्रद्धा से युक्त हो कर बटुक को बलि देनी चाहिए॥ ६३-६५॥

विमर्श - इस **मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - 'एह्येहि देवीपुत्र बटुकनाथ कपिलजटाभारभासुरत्रिनेत्रज्वालामुख सर्वविघ्नान् नाशय नाशय सर्वोपचारसहितं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा' (५५)॥ ६३-६५॥

अब **क्षेत्रपाल के बलिदान का मन्त्रोद्धार** कहते हैं - षड् दीर्घ सहित मेरु क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः, फिर वर्म (हुं), फिर 'स्थानक्षेत्रपालेश सर्वकामं पूरय' कहकर अनलवल्लभा (स्वाहा) लगाने से २३ अक्षरों का क्षेत्रपाल बलिदान मन्त्र बनता है॥ ६६-६७॥

विमर्श - इस **मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - 'क्षां क्षीं क्षूं क्षै क्षौं क्षः हुं स्थानक्षेत्रपालेश सर्वकामं पूरय स्वाहा' (२३)॥ ६६-६७॥

यां योगिनीभ्यः स्वाहान्तो भूमिनन्दाक्षरो मनुः ।
योगिनीनां बलिं दद्यादनेन विधिपूर्वकम् ॥ ९९ ॥
दीर्घत्रयेन्दुयुक्सेन्दुः शार्ङ्गीगणपतार्णकाः ।
मारुतो भगवांस्तोयं रवरान्ते दसर्व च ॥ १०० ॥
जनं मे वशमानान्ते यः सर्वो लोहितो हली ।
दीर्घो रसहितं प्रान्ते बलिं गृह्णयुगं शिरः ॥ १०१ ॥
गणेशबलिमन्त्रोऽयं गगनश्रुतिवर्णवान् ।
एवं तेभ्यो बलिं दत्त्वा स्वस्वमुद्रां प्रदर्शयेत् ॥ १०२ ॥

स्वाहान्तः स्वरूपमेव । भूमि नन्दाक्षरः एकनवतिवर्णः पद्येन सह ॥ ९९ ॥ गणेशबलिमन्त्रमाह — दीर्घेति । शार्ङ्गी गः । दीर्घत्रयेन्दुयुक् गां गीं गूं । सेन्दुर्गं । मारुतो यः । भगवान् एयुतः ये । तोयं वः ॥ १०० ॥ लोहितः पः । दीर्घो हलीचा । शिरः स्वाहा ॥ १०१ ॥ गगनश्रुति पर्णवान् चत्वारिंशदर्णः यथा — गां गीं गूं गं गणपतये वरवरदसर्वजनं मे वशमानय सर्वोपचारसहितं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहेति ॥ १०२ ॥ * ॥ १०३–१०८ ॥

अब **योगिनियों का पद्यमय बलिमन्त्र** कहते हैं -

'ऊर्ध्व ब्रह्माण्डतो वा ...... ' इस पद्य के बाद 'योगिनीभ्यः स्वाहा' लगाने से ९१ अक्षरों का योगिनी बलिदान मन्त्र बनता है । इस मन्त्र से विधिवत् योगिनियों को बलि देना चाहिए ॥ ९८-९९ ॥

विमर्श - इस **मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है -

'ऊर्ध्वब्रह्माण्डतो वा दिविगगनतले भूतले निष्कले वा
पाताले वातले वा सलिलपवनयोर्यत्र कुत्र स्थिता वा
क्षेत्रे पीठोपपीठादिषु च कृतपदाधूपदीपादिकेन
प्रीता देव्याः सदानः शुभबलिविधिना पान्तु वीरेन्द्रवन्द्याः

यां योगिनीभ्यः स्वाहा' ॥ ९८-९९ ॥

अब **गणेश बलिदान मन्त्रोद्धार** कहते हैं -

दीर्घत्रयेन्दु युक् तथा सेन्दु शार्गी गां गीं गूँ गं, फिर 'गणपत', फिर 'भगवान् मारुत' ये, फिर तोय (व) एवं 'रवर दसर्व जनं मे वशमानय' के बाद 'सर्वो', फिर लोहित (प), दीर्घ हली (चा), फिर 'र सहितं' फिर 'बलिं गृह्ण गृह्ण', फिर अन्त में शिर (स्वाहा), लगाने से ४० अक्षरों का गणेश बलिदान मन्त्र बनता है ॥ १००-१०२ ॥

विमर्श - इस मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'गां गीं गूं गं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय सर्वोपचारसहितं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा' ॥ १००-१०२ ॥

इस प्रकार बलिदान देने के बाद उन्हें उनकी अपनी - अपनी मुद्रायें दिखलानी चाहिए ॥ १०२ ॥

तत्तद्देवतानां मुद्राकथनम्

अंगुष्ठं तर्जनीयुक्तं दर्शयेद् बटुके बलौ।
अंगुष्ठानामिके वामे क्षेत्रपालबलौ मता॥ १०३॥
किंचिद्वक्रीकृता मध्या गणनाथबलौ स्मृता।
अनामामध्यमाङ्गुष्ठा योगिनीनां बलौ पुनः॥ १०४॥
एवं सम्पूज्य संस्तुत्य नत्वात्मन्युपसंहरेत्।
सिद्धमन्त्रः प्रकुर्वीत प्रयोगाञ्छिवभाषितान्॥ १०५॥

एषां मन्त्राणां साधनप्रकारः

हरिद्रया चन्दनेन लाक्षया गुरुणापि च।
पुरेण विविधैर्मांसैर्जुहुयादिष्टसिद्धये॥ १०६॥
हरिद्रामालया कुर्याज्जपं स्तम्भनकर्मणि।
स्फाटिकैः पद्मबीजैश्च रुद्राक्षैः शुभकर्मणि॥ १०७॥
स्वर्णादिपात्रैः सुरया बन्धूककुसुमैस्तिलैः।
वाराहीं तर्पयेत् सम्यक् कामसम्पूर्तये नरः॥ १०८॥
चतुःशतं तु तापिच्छैर्जुहुयात्स्तम्भनेच्छया।
लाजचूर्णतिलैः कुर्यात् खरमेषासृजान्वितैः॥ १०९॥

---

१. बटुक के बलिदान में अङ्गूठा और तर्जनी मिलाकर दिखाना चाहिए ।

२. क्षेत्रपाल के बलिदान में बायें हाथ का अङ्गुष्ठ और अनामिका दिखलाना चाहिए ।

३. गणपति के बलिदान में मध्यमा को कुछ टेढ़ी कर दिखानी चाहिए । तथा

४. योगिनियों के बलिदान के अनन्तर अनामिका, मध्यमा और अङ्गुष्ठ दिखाना चाहिए ॥ १०३-१०४ ॥

इस प्रकार वार्त्ताली देवी का सावरण पूजन संपन्न कर साधक उन्हें अपने हृदय में स्थान देकर उनका विसर्जन करे । तदनन्तर मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर भगवान् सदाशिव के द्वारा उपदिष्ट काम्यप्रयोगों को करे ॥ १०५ ॥

अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिए हल्दी, चन्दन, लाह, अगर, गुग्गुल और विविध मांसों से होम करना चाहिए ॥ १०६ ॥

स्तम्भन कर्म में हल्दी की माला से जप करना चाहिए तथा शुभ कार्यो में जैसे शान्तिक पौष्टिक कर्मो में, स्फटिक, कमलगट्टा अथवा रुद्राक्ष की माला का प्रयोग करे ॥ १०७ ॥

साधक अपनी कामनापूर्त्ति के लिए स्वर्णादि पात्रों से बन्धूक पुष्प और तिलों से युक्त सुरा द्वारा वाराही का तर्पण करे ॥ १०८ ॥

स्तम्भन की इच्छा से साधक तमाल पुष्पों की ४०० आहुतियाँ दे ॥ १०९॥

पिण्डं मनोहरं तं तु पूजयेत्तर्पयेदपि।
सपत्नसदनं साङ्गमेतस्मै विनिवेदयेत् ॥ ११० ॥
कुण्डे पिण्डं निधायामुं जुहुयात्तत्र चायुतम्।
एकविंशतिरात्रीषु लाजैरक्तसमन्वितैः ॥ १११ ॥
एवं कृते वैरिवृन्दं भक्ष्यते योगिनीगणैः।

शकटाभिधं महादेव्या यन्त्रम्

अथ यन्त्रं महादेव्याः प्रोच्यते शकटाभिधम् ॥ ११२ ॥
विलिख्य तारे साध्याख्यं भूबीजेन प्रवेष्टयेत्।
उकारेण च संवेष्ट्य भूपुरं परितो लिखेत् ॥ ११३ ॥
अष्टवज्रान्वितं वज्रप्रान्ते प्रणवमालिखेत्।
वज्रमध्ये साध्यनाम लिखेत्कर्मसमन्वितम् ॥ ११४ ॥
धराबीजेन संवेष्ट्य भूपुरं मूलविद्यया।
बहिरंकुशसंवीतं झिण्टीशेन प्रवेष्टयेत् ॥ ११५ ॥

तापिच्छं नामतमालपुष्पम् । लाजानां चूर्णयुतैस्तिलैः खरमेषरुधिरयुतैः ॥ १०६ ॥ सपत्नसदनं शत्रुगृहम् । एतस्मैपिण्डाय ॥ ११० ॥ * ॥ १११–११२ ॥ यन्त्रमाह – **विलिख्येति** । तारे प्रणवे । साध्याख्यं साध्यनाम । भूबीजेन ग्लौमिति बीजेन ॥ ११३ ॥ कर्मसमन्वितम् । अमुकमुच्चाटयेति क्रियायुतम् ॥ ११४ ॥ धराबीजं तदेव । अंकुशः क्रों । झिंटीशः एकारः ॥ ११५ ॥ नूत्ने नवीने ॥ ११६ ॥ * ॥ ११७ ॥

लावा के चूर्ण में तिल, गर्दभ एवं भेड़ का रक्त मिलाकर एक सुन्दर पिण्ड बनाना चाहिए । फिर उसी पिण्ड का विधिवत् पूजन एवं तर्पण भी करे । फिर उसी पिण्ड को अपने शत्रु का सारा घर समर्पित कर देना चाहिए। तदनन्तर उस पिण्ड को कुण्ड में रखकर २१ रात्रि पर्यन्त रक्त मिश्रित लाजाओं से १०,००० आहुतियाँ देनी चाहिए । ऐसा करने से योगिनियाँ उस शत्रु के समूह को खा जाती हैं ॥ १०६-११२॥

अब **महादेवी के शकट संज्ञक यन्त्र** को बतलाते हैं - ॐ इस अक्षर के मध्य में साध्य नाम लिखकर उसे भू बीज (ग्लौं) से वेष्टित करे, फिर उसे भी उकार से वेष्टित कर उसके ऊपर अष्टवज्र सहित भूपुर लिखना चाहिए ॥ ११२-११४ ॥

अष्टवज्र के प्रान्त में प्रणव लिखना चाहिए, वज्रों के मध्य में साध्य नाम एवं उसके उच्चाटनादि विशेष कार्य लिखना चाहिए । यथा - उच्चाटनकर्म में 'अमुकं उच्चाटय', स्तम्भनकर्म में 'अमुकं स्तम्भय', विद्वेषणकर्म में 'अमुकं विद्वेषय' इत्यादि लिखना चाहिए ॥ ११४ ॥

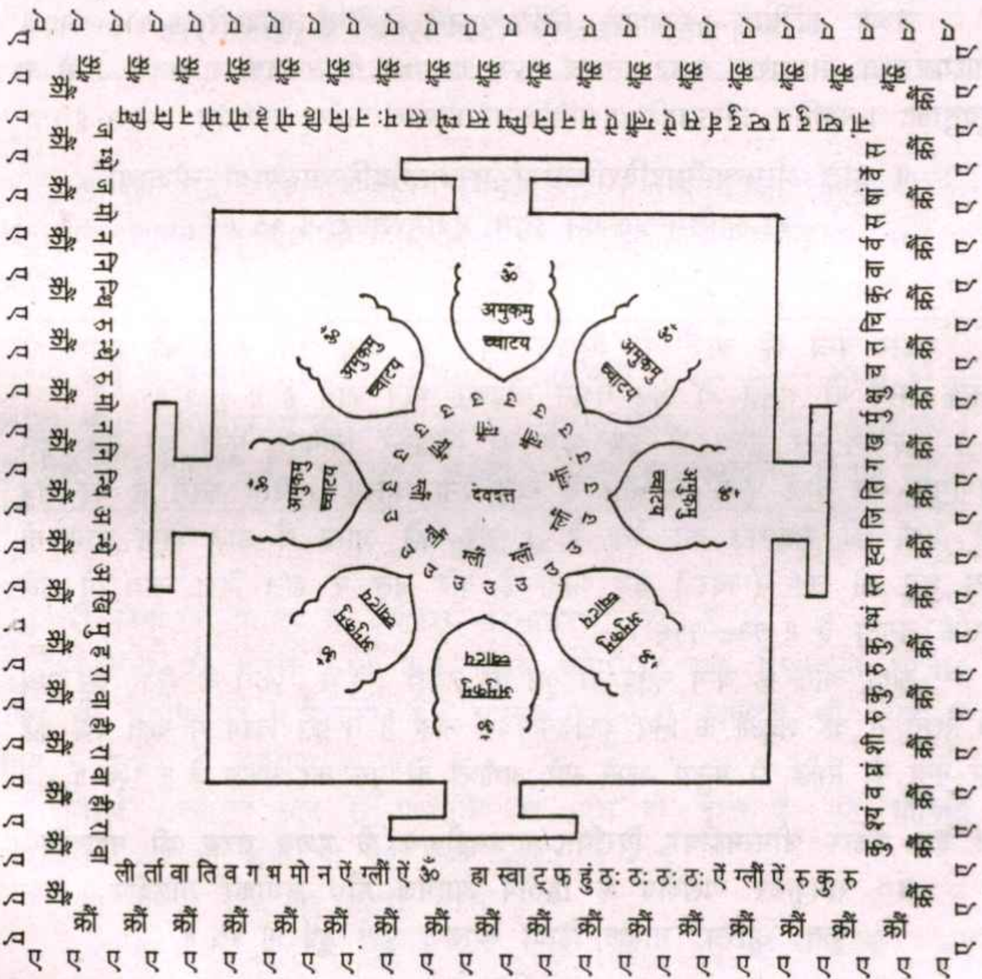
फिर भूपुर को धरा बीज (ग्लौं) से वेष्टित करे । फिर उसे (ॐ ऐं ग्लौं ऐं नमो भगवति वार्तालीवाराही वाराही वाराहमुखि अन्धे अन्धिनि नमो रुन्धे रुन्धिनि नमो

एतद्यन्त्रं समालिख्य नूत्ने कौलालखर्परे ।
कृष्णपुष्पैः समभ्यर्च्य निःक्षिपेत् वैरिवेश्मनि ॥ ११६ ॥
रिपुमुच्चाटयेच्छीघ्रं स्थितं वर्षशतान्यपि ।

जम्भे जम्भिनि नमो मोहे मोहिनि नमः स्तम्भे स्तम्भिनि नम ऐं ग्लौं ऐं सर्वदुष्ट प्रदुष्टानां सर्वेषां सर्ववाक् चित्तचक्षुर्मुख गति जिस्वा स्तम्भं कुरु कुरु शीघ्रं वश्यं कुरु कुरु ऐं ग्लौं ऐं ठः ठः ठः ठः हुं फट् स्वाहा' - इस) मूलविद्या से वेष्टित करे। फिर उसके बाहर पुनः अंकुश (क्रों) से वेष्टित कर झिण्टीश (ऐं) से वेष्टित करना चाहिए ॥ ११५ ॥

इस यन्त्र को कुलाल द्वारा निर्मित नवीन खर्पर कसोरा पर लिखकर पुनः काले पुष्पों से पूजन कर अपने शत्रु के घर में डाल देना चाहिए । ऐसा करने से यह मन्त्र अपने घर में सैकड़ों वर्षो से रहने वाले शत्रु का उच्चाटन कर देता है ॥ ११६-११७ ॥

वार्तालीस्तम्भनयन्त्रम्



वादित्रे यन्त्रमालिख्य वादयेत् समरान्तरे ॥ ११७ ॥
श्रुत्वा तद्रवसंत्रस्ताः पलायन्ते विरोधिनः ।

शत्रुवाक्स्तम्भनविधानम्

पाषाणे लिखितं रात्र्या पीतपुष्पेषु निःक्षिपेत् ॥ ११८ ॥
सम्पूजितमधोवक्त्रं वाचं संस्तम्भयेद् द्विषाम् ।
तापकार्यग्निनिःक्षिप्तं जले दोषप्रदं भवेत् ॥ ११९ ॥
साध्यर्क्षतरुगर्भस्थं शत्रूणां दुःखदायकम् ।
किंबहूक्तेन सर्वेष्टं साधयेत्साधितं नृणाम् ॥ १२० ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचिते मन्त्रमहोदधौ बगलादिमन्त्रकथनं नाम दशमस्तरङ्गः ॥ १० ॥



रात्र्या हरिद्रया । पाषाणे लिखित्वाऽग्नौ निःक्षिप्तं तापकारि ॥ ११८–११९ ॥ साध्यर्क्षतरवः साध्यस्य यज्जन्मनक्षत्रं तस्य वृक्षमध्ये क्षिप्तं तेषां दुःखदम् । ते च पूर्वमुक्ताः । साधितं सम्पातादिना प्रतिष्ठितमेतद्यन्त्रं सर्वेष्टं साधयेत् ॥ १२० ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचितायां मन्त्रमहोदधिव्याख्यायां नौकायां बगलादिमन्त्रकथनं नाम दशमस्तरङ्गः ॥ १० ॥



इस यन्त्र को बाजे पर लिखकर युद्ध के बीच उस बाजा को बजाने से उसके शब्द को सुनते ही शत्रु मैदान छोड़कर भाग जाते हैं ॥ ११७-११८ ॥

पाषाण पर हल्दी से इस यन्त्र को लिखकर विधिवत् पूजा कर पुनः इसे अधोमुख कर पीले फूलों के बीच में डाल देना चाहिए । ऐसा करने से वह शत्रु की वाणी को स्तम्भित कर देता है । यदि उसे अग्नि में डाल दिया जाये तो उस शत्रु को ताप (ज्वर) चढ़ जाता है यदि जल में डाल दिया जाय तो उसे कलंक लगता है ॥ ११८-११९ ॥

साध्य व्यक्ति के जन्म नक्षत्र की वृक्ष की लकड़ी (द्र ६. ५०) के भीतर इस यन्त्र को रखने से वह शत्रुओं के लिए दुःखदायी बन जाता है । इस विषय में बहुत क्या कहें इस मन्त्र की सिद्धि से मनुष्य अपने सारे अभीष्टों को पूरा कर सकता है ॥ १२० ॥

॥ इस प्रकार श्रीमन्महीधर विरचित मन्त्रमहोदधि के दशम तरङ्ग की महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डाँ० सुधाकर मालवीय कृत 'अरित्र' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ १० ॥

